तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

मुरादाबाद (उत्तरप्रदेश)

दूरस्थ शिक्षा

एम.ए. (उत्तरार्ध) जैनोलॉजी

(तृतीय पत्र)

-विषय-

अहिंसा, अनेकांत एवं जैनदर्शन के कतिपय प्रमुख विषय

इकाई (संवर्ग)

इकाई – 1	-अहिंसा : विश्वशांति का अमोघ उपाय	(कुल पाठ-3)
इकाई – 2	-अनेकांत एवं स्याद्वाद : जैनदर्शन की अद्वितीय देन	(कुल पाठ-4)
इकाई – 3	-जैनदर्शन में ज्योतिष विद्या	(कुल पाठ-4)
इकाई – 4	-जैन वास्तु विद्या	(कुल पाठ-5)
इकाई – 5	-जैन आगम में वर्णित आयुर्वेद एवं यंत्र मंत्र आदि	(कुल पाठ-5)

-मंगल प्रेरणा-

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (डी. लिट्.)

-लेखन एवं संकलन-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी (पीएच.डी.)

-निर्देशन-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

-संपादक-

प्रो. टीकम चन्द जैन

(अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद)

जीवन प्रकाश जैन (M.Sc. Maths), जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

संस्करण - **प्रथम संस्करण (नवम्बर-2014)**

मूल्य- 300/-रुपये

ISBN-978-93-84003-43-2

-प्रकाशक-

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

एवं

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com, rk195057@yahoo.com

कुलाधिपति की कलम से.....

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी विभाग का शुभारंभ होना, इस विश्वविद्यालय के नाम की परिपूर्णता का सूचक है। मुझे अंतरंग से प्रसन्नता है कि हम जैन होने के नाते विश्वविद्यालय स्तर से जैनधर्म की शिक्षा के प्रचार-प्रसार का एक व्यापक कार्य कर रहे हैं। इस विभाग के माध्यम से छात्र-छात्राएँ जैनदर्शन में बी.ए. एवं एम.ए. की मान्य डिग्री प्राप्त कर सकेंगे और इसके साथ ही एम.फिल. तथा पीएच.डी. भी करके वे अपने उज्ज्वल भविष्य को निखारने का प्रयास करेंगे, यह विश्वविद्यालय के लिए गौरवपूर्ण बात है।

विशेषरूप से इस जैन दर्शन विभाग की स्थापना में जैन समाज की वरिष्ठतम साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद महत्वपूर्ण निमित्त रहा। मुझे गौरव है कि हमारे विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह पूज्य माताजी के सान्निध्य में ही हुआ, जिसमें विश्वविद्यालय ने पूज्य माताजी के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं विशेषरूप से 400 से भी अधिक ग्रंथों के साहित्यिक योगदान को देखते हुए उन्हें विश्वविद्यालय की प्रथम डिग्री के रूप में "डी.लिट्." की मानद उपाधि 8 अप्रैल 2012, वैशाख कृ. दूज को माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के शुभ अवसर पर प्रदान की गई। इसके साथ ही पूज्य माताजी द्वारा लिखित षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद करके इतने प्राचीन ग्रंथ को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जन-जन के लिए सुलभ बनाने का महान कार्य करने वाली प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी को उनके द्वारा लिखित शताधिक ग्रंथों की विशेष सराहनापूर्वक उन्हें भी विश्वविद्यालय द्वारा प्रथम दीक्षांत समारोह में "पीएच.डी." की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

यह प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह सदैव ही विश्वविद्यालय के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने के योग्य रहेगा। इसी समय हमें पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से इस विश्वविद्यालय में जैन दर्शन विभाग का शुभारंभ करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी अतः अब यह प्रेरणा फलित हो रही है, जिससे निश्चित ही अनेकानेक छात्र-छात्राओं को न सिर्फ जैनधर्म का ज्ञान होगा अपितु विश्वविद्यालय की मान्य डिग्री से उनके भविष्य का भी सुन्दर निर्माण हो सकेगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

विश्वविद्यालय द्वारा जैनदर्शन में बी.ए. एवं एम.ए. के कोर्स दूरस्थ शिक्षा के साथ प्रारंभ किये गये हैं अतः इनका स्टडी मैटेरियल पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने हमारे निवेदन पर अथक परिश्रमपूर्वक तैयार करके दिया है। यह सरल भाषा में तथा जैन दर्शन के समग्र ज्ञान को प्रदर्शित करते हुए बनाया गया है। इसे सभी छात्र-छात्राएँ सरलता के साथ पढ़कर परीक्षाओं में उच्च सफलता हासिल करने का प्रयास करें, यही मेरी शुभकामनाएँ हैं।

सुरेश जैन
(कुलाधिपति)

जैन दर्शन विभाग स्थापना की सम्प्रेरिका गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का

मंगल आशीर्वाद

मुझे इस बात की अंतरंग से अपार खुशी है कि सारे विश्व भर में 'तीर्थंकर महावीर' के नाम से एक मात्र प्रसिद्धि को प्राप्त विश्वविद्यालय मुरादाबाद में हमारे भक्त कुलाधिपति माननीय श्री सुरेशचंद जी के बहुमूल्य प्रयासों से निर्मित हुआ है। इस 'तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय' ने आज भारत के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में अपना स्थान प्राप्त किया है। यहाँ की उच्च शिक्षा तकनीकी तथा शिक्षा के उपरांत छात्र-छात्राओं को उज्ज्वल भविष्य का सुनहरा अवसर प्राप्त होना, यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

यूँ तो विश्वविद्यालय में सैकड़ों प्रकार की विधाओं के माध्यम से छात्र-छात्राओं को अपना भविष्य बनाने का अवसर प्राप्त होता है। तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में भी लगभग 150 से अधिक विषयों पर छात्र-छात्राएँ विभिन्न प्रकार की डिग्रीयाँ प्राप्त करते हैं और अपने जीवन को समुन्नत बनाने का प्रयास करते हैं।

विशेषरूप से मैंने इस विश्वविद्यालय में "जैन दर्शन विभाग" की स्थापना करने की प्रेरणा प्रदान की, जिसमें जैनधर्म की शिक्षाओं में छात्र-छात्राएँ, स्नातक व स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर सकें। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि अब तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद में जैन दर्शन विभाग की स्थापना हो चुकी है और यहाँ पर अब बी.ए.-जैनोलॉजी व एम.ए.-जैनोलॉजी कोर्स के साथ ही जैनधर्म के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के सर्टिफिकेट व डिप्लोमा कोर्स का भी शुभारंभ कर दिया गया है।

मेरे सान्निध्य में बी.ए. एवं एम.ए. जैनोलॉजी कोर्स की पुस्तकें मेरी शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती एवं प्रो. टीकमचंद जी ने अत्यन्त सूझ-बूझ के साथ तैयार की हैं। जम्बूद्वीप के पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति जी का निर्देशन भी इसमें महत्वपूर्ण रहा है। उनके साथ ही संघस्थ बाल ब्र. जीवन प्रकाश ने भी इस कोर्स को तैयार कराने में अपनी सहभागिता के साथ-साथ सर्टीफिकेट डिप्लोमा एवं डिग्री कोर्स को संचालित करने में परिश्रम किया है। इन सभी के लिए मेरा शुभाशीर्वाद है।

विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आज सम्पूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न जैन श्रावक-श्राविकाओं व छात्र-छात्राओं द्वारा इस योजना का लाभ उठाकर घर बैठे ही जैनधर्म में विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त सर्टिफिकेट व डिप्लोमा प्राप्त किये जा रहे हैं, यह एक विशेष सफलता एवं हर्ष का परिचायक है।

अतः इस महत्वपूर्ण अवसर पर कुलाधिपति जी के साथ ही विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, रजिस्ट्रार महोदय, जैन दर्शन विभागाध्यक्ष आदि समस्त विश्वविद्यालय परिवार को मेरा कोटिशः आशीर्वाद है कि इसी प्रकार जैनधर्म की शिक्षा एवं तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों का विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा के रूप में प्रचार-प्रसार सतत होता रहे और विश्वविद्यालय से जैनधर्म में स्नातक एवं स्नातकोत्तर डिग्री हासिल करने वाले छात्र-छात्राएँ भी अपने जीवन को तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों से सुसज्जित करके धर्म प्रभावना, समाज सुधार एवं व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अपना जीवन समर्पित करें।

पुनः विश्वविद्यालय में जैन दर्शन विभाग की स्थापना हेतु मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ एवं मंगल आशीर्वाद है।

गणिनी ज्ञानमती

(गणिनी ज्ञानमती)

प्रस्तावना

-आर्यिका चन्दनामती

तीर्थंकर महावीर की पश्चात्वर्ती परम्परा में अनेकानेक ज्ञानी आचार्य, मुनि, आर्यिका, विद्वान् आदि हुए हैं उन्होंने जैन विद्या तथा भारतीय संस्कृति के संवर्धन और आचार संहिता के संरक्षण में अपना योगदान प्रदान किया है।

जैनधर्म प्राकृतिक, शाश्वत एवं अनादिनिधन धर्म है। इसे न किसी ने स्थापित किया है और न कोई कभी नष्ट कर सकता है। इसकी सार्वभौमिकता इस कथन से जानी जा सकती है-"कर्मारातीन् जयति इति जिनः, जिनो देवता यस्येति जैनः" अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिन अथवा जिनेन्द्र भगवान कहलाये और उन जिनेन्द्र भगवान की उपासना करने वाले जैन कहलाते हैं।

इस अर्थ के अनुसार सभी प्राणी जैनधर्म के सर्वोदयी सिद्धान्तों को पालन करने के अधिकारी हो सकते हैं। यह धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा न होकर पूर्णतया स्वतंत्र है। समय-समय पर इस धर्म का प्रचार-प्रसार तीर्थंकर भगवन्तों के माध्यम से होता रहा है। भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थंकर वर्तमान युग के धर्मतीर्थ प्रवर्तक माने गये हैं। इनमें से इस समय भगवान महावीर स्वामी का शासन काल चल रहा है।

भारतवर्ष में तीर्थंकर भगवान के नाम का प्रथम विश्वविद्यालय मुरादाबाद-उत्तरप्रदेश में है जिसका नाम है- तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय (TMU)। सन् 2005 में "महावीर डेन्टल कॉलेज" से प्रारंभ हुई यह शैक्षणिक संस्था आज विश्वविद्यालय के रूप में वटवृक्ष के समान विकसित होकर हजारों ज्ञानपिपासु स्नातकों को शीतल छाया प्रदान कर रहा है। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री सुरेशचंद जी जैन ने अपनी दूरदर्शिता एवं कर्मठता का परिचय देते हुए इसे देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की श्रेणी तक पहुँचा कर जैन समाज में एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सन् 2012 में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद द्वारा सन् 1995 में डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत) कुलाधिपति जी के विशेष निवेदन पर विश्वविद्यालय परिसर में 'भगवान महावीर जिनालय' की स्थापना में मंगल सान्निध्य प्रदान करने हेतु हस्तिनापुर से विहार करके मुरादाबाद पधारीं और वहाँ उनके 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस (वैशाख कृ. दूज, 8 अप्रैल 2012) के अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित किये गये "प्रथम विशेष दीक्षान्त समारोह" में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई। उस समय पूज्य माताजी ने तीर्थंकर महावीर के नाम वाले इस विश्वविद्यालय में जैनॉलोजी विभाग खोलने की प्रेरणा प्रदान की, जिसे माननीय कुलाधिपति सहित समस्त प्रबंध समिति ने सहर्ष स्वीकार करके बी.ए. जैनोलॉजी एवं एम.एम. जैनोलॉजी कोर्स के रूप में स्थापित करके प्रारंभ करने की घोषणा की।

आगे इस निर्णय के संदर्भ में प्रगति करते हुए बी. ए. जैनोलॉजी का कोर्स इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि जिससे जैन व जैनेतर समस्त छात्र-छात्राओं को जैनधर्म का प्राथमिक स्तर से लेकर समग्र ज्ञान प्राप्त हो सके अतः त्रिवर्षीय बी. ए. के कोर्स के पश्चात् स्नातकोत्तर अर्थात् एम.ए. में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए दो वर्ष के दूरस्थ शिक्षा कोर्स में कुल 8 पुस्तकें तैयार की गई हैं। जिनमें प्रथम वर्ष (पूर्वार्ध) में 4 पुस्तकें और

द्वितीय वर्ष (उत्तरार्ध) में 4 पुस्तकें हैं। यहाँ पर द्वितीय वर्ष की इस तृतीय पुस्तक में 5 इकाइयों के अन्तर्गत निम्न विषय प्रस्तुत किये गये हैं–

1. अहिंसा : विश्वशांति का अमोघ उपाय
2. अनेकांत एवं स्याद्वाद : जैनदर्शन की अद्वितीय देन
3. जैनदर्शन में ज्योतिष विद्या
4. जैन वास्तु विद्या
5. जैन आगम में वर्णित आयुर्वेद एवं यंत्र मंत्र आदि

परीक्षा बोर्ड के परामर्शानुसार इन सभी विषयों के कोर्स मैटेरियल सरलग्राह्य एवं विषय वस्तु के अनुरूप विस्तारित करके प्रस्तुत किये गये हैं।

उपर्युक्त पाँचों इकाइयाँ अलग-अलग पाठों में विभक्त हैं जिनके माध्यम से अहिंसा, अनेकांत एवं जैनदर्शन के कतिपय प्रमुख विषय के प्रायः समस्त पक्षों को प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति की मूल और सशक्त धारा है। जिसने सदा-सदा से भारत के आध्यात्मिक एवं शैक्षणिक गौरव को वृद्धिंगत किया है। जैनधर्म की साहित्यिक एवं पुरातात्विक विरासत विश्व के कोने-कोने में बिखरी हुई है, उन्हीं पर अनुसंधान करके वर्तमान वैज्ञानिकों ने कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट आदि के रूप में पुद्गल का चमत्कार भौतिक जगत को प्रदान किया है।

विश्वविद्यालय के द्वारा संचालित "दूरस्थ शिक्षा" (Distance Education) में एम.ए. के द्वितीय वर्ष की इस तृतीय पुस्तक के लेखन एवं संकलन में बहुत ही परिश्रमपूर्वक विषयों का चयन करके अनेक प्राचीन-अर्वाचीन सन्त और विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये गये हैं, ताकि उनके संकलन का ज्ञानवर्धन में व्यापक उपयोग हो सके तथा स्नातकोत्तर परीक्षा देने वाले विद्यार्थी सरलतापूर्वक जैनदर्शन के विषयों को पढ़कर डिग्री प्राप्त कर सकें।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की दूरदर्शिता युक्त प्रेरणा एवं कुलाधिपति जी के आग्रह पर मैंने इस स्नातकीय दूरस्थ शिक्षा की पाठ्यपुस्तक तैयार करने की जिम्मेदारी ली और यथासंभव उसे निभाने का प्रयत्न किया है।

हमारे इस प्रयत्न में हर क्षण जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी का कुशल निर्देशन प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही संघस्थ समस्त आर्यिकावर्ग एवं ब्रह्मचारिणी बहनों का भी प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में पूरा सहयोग मिला है।

पुस्तक में गर्भित विषयों के संकलन-संपादन में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैन जगत के विशिष्ट विद्वान् प्रो. टीकमचंद जैन (अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय) ने अथक परिश्रम के साथ हमें सहयोग प्रदान किया है, उनके साथ जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर ने उपयोगी विषयों के निर्धारण एवं सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर कर्तव्य निर्वाह किया है।

गुरु आशीर्वाद एवं उनका हर क्षण प्राप्त निर्देशन ही इसकी सफलता का मूल कारण है।

विश्वविद्यालय में स्थापित जैन अध्ययन केन्द्र सर्वतोमुखी विकास करे, इसके द्वारा बी. ए., एम. ए. (जैनोलॉजी) की डिग्री प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएँ भी जैनधर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों से जन-जन को लाभान्वित करें, यही मंगल भावना है।

-8 अक्टूबर 2014, शरदपूर्णिमा

विषयानुक्रमणिका

पाठ	पृष्ठ संख्या
इकाई 1—अहिंसा : विश्वशांति का अमोघ उपाय	**1-24**
पाठ-1 जैनधर्म में वर्णित अहिंसा की सूक्ष्म विवेचना	1-7
पाठ-2 अहिंसा के संबंध में प्रमुख भारतीय चिन्तकों के विचार	8-15
पाठ-3 अहिंसा परमो धर्म	16-24
इकाई 2—अनेकांत एवं स्याद्वाद : जैनदर्शन की अद्वितीय देन	**25-60**
पाठ-1 अनेकांत और स्याद्वाद जैनधर्म के मूल आधार हैं	25-36
पाठ-2 अनेकांतवाद एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान	37-46
पाठ-3 स्याद्वाद संशयवाद अथवा छल नहीं है	47-53
पाठ-4 अनेकांत-स्याद्वाद और सप्तभंगी का पारस्परिक संबंध	54-60
इकाई 3—जैनदर्शन में ज्योतिष विद्या	**61-117**
पाठ-1 जैनागम में ज्योतिष	61-66
पाठ-2 भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त	67-78
पाठ-3 नक्षत्रों के कार्य एवं नामाक्षर में छिपा रहस्य	79-95
पाठ-4 मुहूर्त विचार	96-117
इकाई 4—जैन वास्तु विद्या	**118-170**
पाठ-1 वास्तु शिल्प	118-130
पाठ-2 वास्तु नियमानुसार भवन निर्माण की रूपरेखा	131-140
पाठ-3 जिनमंदिर निर्माण हेतु वास्तु नियम	141-151
पाठ-4 वास्तु से संबधित कतिपय प्रमुख ज्ञातव्य विषय	152-159
पाठ-5 जिन प्रतिमा और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा	160-170
इकाई 5—जैन आगम में वर्णित आयुर्वेद एवं यंत्र मंत्र आदि	**171-214**
पाठ-1 ज्योतिष मंत्र-यंत्र आदि का संक्षिप्त इतिहास	171-181
पाठ-2 जैन शासन में यंत्र विद्या	182-187
पाठ-3 स्वप्न विज्ञान : स्वप्न दर्शन का शुभाशुभ फल	188-193
पाठ-4 जैनाचार ही आयुर्वेद है	194-201
पाठ-5 कल्याणकारक ग्रंथ में वर्णित प्रासुक चिकित्सा विधि	202-214

इकाई–1 अहिंसा : विश्वशांति का अमोघ उपाय

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) जैनधर्म में वर्णित अहिंसा की सूक्ष्म विवेचना

(2) अहिंसा के संबंध में प्रमुख भारतीय चिन्तकों के विचार

(3) अहिंसा परमो धर्म

पाठ 1 – जैनधर्म में वर्णित अहिंसा की सूक्ष्म विवेचना

1.1 अहिंसा, जैनधर्म का प्राण है। जैनधर्म की अहिंसा का मूल आधार समता है। समता से आत्मसाम्य की निर्मलदृष्टि प्राप्त होती है। विश्व में जितनी भी आत्माएँ हैं, उन सभी के प्रति समत्वदृष्टि रखना चाहिए क्योंकि जितनी भी आत्माएँ हैं, सभी जीव हैं; उन सभी में एक समान ज्ञान-दर्शन की ज्योति है, सभी के गुण–धर्म समान हैं, सभी को एक ही सदृश सुख–दु:ख की अनुभूति होती है, सभी को जीने में आनन्द आता है और मरने में कष्ट होता है। कूकर, शूकर और गन्दगी में बिलबिलाते हुए कीड़ों में भी जिजीविषा है। उन सबकी भी यही इच्छा है कि हमें मृत्यु न आए और यही इच्छा स्वर्ग में रहने वाले देव और इन्द्र की भी है।

जिसका जीवन सुख के सागर में निमग्न है, वह भी जीना चाहता है और दु:ख–दावाग्नि में जिसका जीवन सुलग रहा है, वह भी जीना चाहता है। जब यह मानव अपनी आत्मा के समान अन्य प्राणियों को समझता है तो वह हिंसा जैसे निकृष्टतम कृत्य को कैसे कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता। इस प्रकार जैनधर्म के अनुसार द्रव्य दृष्टि से सभी आत्माएँ समान हैं।

1.2 जीवों के प्रकार और अहिंसा–

जैनधर्म के अनुसार संसार के समस्त प्राणी 'त्रस' और 'स्थावर' के रूप में दो प्रकार के हैं। स्वत: जो चल फिर नहीं सकते ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति, ये पाँच स्थावर या स्थिर जीव हैं, इनमें मात्र एक 'स्पर्शन इन्द्रिय' ही होती है। इनके अतिरिक्त जो स्वयं चलते-फिरते दिखायी देते हैं, वे सब त्रस या जङ्गम जीव हैं, ये दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय वाले होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओं से लेकर जलचर, नभचर और थलचर, पशु-पक्षी, मनुष्य, नारकी और देव आदि सृष्टि के समस्त प्राणी, इस त्रस या जङ्गम की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं।

गृहस्थ व्यक्ति को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए जो कार्य करने पड़ते हैं, उनमें स्थावर जीवों की हिंसा निरन्तर होती ही रहती है, वह लौकिक जीवन की अनिवार्यता है; अत: उसके सर्वथा त्याग का उपदेश नहीं दिया गया है। इतनी अपेक्षा अवश्य की गई है कि अहिंसा का आदर करने वाले व्यक्ति के द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि का भी यत्नाचारपूर्वक उपयोग किया जाए, उसका आचरण करने से इन स्थावर जीवों का भी निरर्थक विनाश नहीं होगा और इससे पर्यावरण भी सुरक्षित एवं सन्तुलित रहेगा। यदि हमारी असावधानी, लापरवाही या प्रमादवश इन स्थावर जीवों का भी आवश्यकता से अधिक घात होता है तो वह अपराध माना जाता है। आज पर्यावरण प्रदूषण और असन्तुलन की समस्या का भी यह मूलभूत कारण है कि हमने इन स्थावर जीवों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया है।

त्रस जीवों की रक्षा के लिए मनुष्य को प्रतिक्षण तैयार रहना चाहिए। सुविचारित जीवनशैली में कहीं भी, एक भी त्रस जीव का विघात अनिवार्य नहीं है अत: उससे तो बचना ही चाहिए।

जैनधर्म में हिंसा के दोष का निर्णय उसकी कषाय और प्रमाद के आधार पर ही किया जाता है। क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार कषायें और अज्ञान, ये हिंसा की नींव हैं। कषाय होती है तो हिंसा होती है, कषाय नहीं होती तो हिंसा भी घटित नहीं होती है। इसी प्रकार कषाय जितनी मन्द होती है, हिंसा उतनी ही कम होती है और कषाय जितनी तीव्र होती है, हिंसा उतनी अधिक होती है।

हिंसा का स्तर निर्धारित करने के लिए जैनधर्म में दो साधन माने गये हैं—जीवों का अन्तर (भेद) और कषायभावों की मात्रा। यदि सभी जीवों की हिंसा का कुफल समान होता या हिंसा का पाप हिंसित जीवों की संख्या पर निर्भर होता तो एक व्यक्ति जो चार गाजर मूली उखाड़ लता है और दूसरा व्यक्ति जो एक मनुष्य की हत्या कर देता है, दोनों को समान पापी माना जाता, बल्कि मनुष्य का हत्यारा कम पापी माना जाता क्योंकि उसने तो सिर्फ एक प्राणी की ही हत्या की है परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि जिन जीवों का विघात हुआ है, उन दोनों जीवों के इन्द्रियविषयक विकास में महान अन्तर है। एक, एक इन्द्रिय वाला है और दूसरा पाँच इन्द्रिय वाला है।

स्थावर जीवों की हिंसा के समय उसकी ओर से न कोई प्रतिकार होता है, न किसी तरह दुःख की भावना व्यक्त होती है; अतः इन पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और वनस्पति इन एकेन्द्रिय स्थावरकायिक जीवों की हिंसा के समय हिंसक के मन में विशेष क्रूरता या कषायभाव आना अनिवार्य नहीं है, इसलिए उस हिंसा का अल्पदोष माना है लेकिन जैसे-जैसे-हम एक इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय के जीवों की हिंसा की ओर क्रमशः आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे मारने वाले के मन में कषाय की मात्रा बढ़ती जाती है, आत्मपरिणामों में क्रूरता अनिवार्य होती जाती है; अतः उसमें उत्तरोत्तर अधिक हिंसा होती है, उसका फल भी वैसा ही अधिक होता है।

1.3 पाँच व्रतों का स्वरूप-

जैनधर्म का एक प्रसिद्ध सूत्र है—**'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'**। यह सूत्र जैनधर्म के प्रतीक चिह्न के साथ अंकित है। इस सूत्र का अर्थ है कि 'जीवों में परस्पर उपकार अर्थात् निमित्तपना होता है'; वास्तव में कोई जीव किसी अन्य का भला-बुरा कर नहीं सकता क्योंकि सभी जीव अपने-अपने भले-बुरे कर्मों का ही फल भोगते हैं परन्तु व्यवहार से जीवधारियों में विशेषकर विवेकशील मानव का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह दूसरे जीवों की सहायता करे, उनकी रक्षा करे; उन्हें सताये नहीं और उन्हें दुःख पहुँचाने में भी निमित्त नहीं बने।

इसी पवित्र भावना को लक्ष्य में रखकर जैनधर्म में पाँच व्रतों का प्रतिपादन हुआ-ये पाँच अणुव्रत भी होते हैं और महाव्रत भी। इन पाँच व्रतों का आंशिक पालन अणुव्रत कहलाता है; इसे गृहस्थ लोग पालन करते हैं तथा इन्हीं पाँच व्रतों का पूर्णरूप से निर्दोष पालन महाव्रत कहलाता है, जिसे मुनिराज पालन करते हैं।

1.4 अहिंसक आचरण सम्बन्धी क्रियाएँ-

जैनधर्म के अनुयायी अहिंसाभावना के अनुरूप दैनिक क्रियाओं में ऐसी अनेक क्रियाएँ करते हैं जो उनकी शुद्ध अहिंसक जीवनशैली को प्रगट करती हैं। उन क्रियाओं में कुछ प्रमुख क्रियाओं का उल्लेख यहाँ आवश्यक है—

1. शाकाहार-

आहार शुद्धि पर जैनधर्म अत्यधिक बल देता है। जैनधर्म में माँसाहार का कड़ा निषेध है। अण्डा, माँस, शराब आदि पदार्थों का सेवन किसी भी मनुष्य को नहीं करना चाहिए। 'म' से प्रारम्भ होने वाले तीन मकार 'मद्य-माँस-मधु' गृहस्थ श्रावकों को अनिवार्य रूप से त्यागने योग्य हैं। जैनधर्म में शुद्ध शाकाहारी पदार्थों को भी उनकी कालावधि के बाद सेवन करने का निषेध है क्योंकि एक समय सीमा के बाद उनमें भी सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं; उनका सेवन करने से हिंसा तो होती ही है, स्वास्थ्य भी खराब होता है।

जमीन के भीतर उत्पन्न होने वाले प्याज लहसुन आदि जमीकन्द पदार्थों का सेवन भी नहीं करना चाहिए क्योंकि उनमें अनन्त सूक्ष्म जीव रहते हैं, उनकी हिंसा होती है और इनका सेवन तामसिकता को बढ़ाता है। बाजार में बनी वस्तुओं को भी अच्छा नहीं माना जाता क्योंकि उनकी निर्माण विधि शुद्ध, स्वच्छ नहीं होती और मिलावट का भय बना रहता है। इन सभी नियमों का पालन जिससे जितना भी बन सके, अपनी-अपनी क्षमता और विवेक के अनुसार करना ही चाहिए।

2. पानी छानना —

जल मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता है। यदि मनुष्य अशुद्ध जल पिएगा तो उसका जीवन संकट में आ जाएगा। जैनधर्म ने मनुष्यों से कहा कि पानी छान कर पिओ क्योंकि उसमें असंख्य जीव रहते हैं। पहले लोगों को विश्वास नहीं होता था कि पानी में जीव कहाँ से आये ? हजारों-लाखों वर्षों से जैनधर्म ने अपने इस विश्वास को नहीं छोड़ा और अपनी बात कहता रहा। अब जाकर आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित किया है कि एक बूँद जल में 36,450 जीव होते हैं। पानी विधिपूर्वक नहीं छानने से इन जीवों की हिंसा तो होती ही है, साथ ही इससे स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। एक पुरानी कहावत है —

पानी पिओ छानकर, जीव जन्तु बच जायें।
लोग कहें धर्मात्मा, रोग निकट नहिं आयें।।

यदि जीवों की हिंसा से बचना चाहते हो तो पानी को विधिपूर्वक छानकर ही प्रत्येक कार्य में उपयोग लेना चाहिए।

3. रात्रिभोजन त्याग —

जैनधर्म में रात्रि भोजन का निषेध है। जैनधर्म के अनुसार सूर्य की किरणों से वातावरण शुद्ध रहता है और सूर्यास्त के बाद रात्रि में अनेक जीव उत्पन्न होते हैं, जो वातावरण को अशुद्ध करते हैं। रात्रि में भोजन बनाने और खाने से बहुत हिंसा होती है। साथ ही रात्रि में पाचन क्रिया मन्द होने से भोजन करने से स्वास्थ्य पर भी गलत प्रभाव पड़ता है; अतः रात्रि में भोजन न बनाना चाहिए और न ही करना चाहिए।

रात्रि में अन्न ग्रहण करना खाने के प्रति अत्यधिक आसक्ति को दर्शाता है। जैन परम्परा में तो सभी आचारशास्त्र रात्रिभोजन का कड़ा निषेध करते ही हैं साथ ही वैदिक परम्परा में भी रात्रि के भोजन को उचित नहीं माना गया है। महाभारत में लिखा है —

''श्वभ्रद्वाराणि चत्वारि प्रथमं रात्रिभोजनम्।''

तथा —

ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयंति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते।।

अर्थात् रात्रिभोजन नरक का प्रथम द्वार है तथा जो रात्रि में आहार नहीं करते उन्हें महीनें में 15 दिन के उपवास का फल मिल जाता है।

स्कन्दपुराण के अनुसार दिन में भोजन करने वाला तीर्थयात्रा के जैसा फल पा लेता है —

''अनस्तभोजिनो नित्यं तीर्थयात्रा फलं भजेत्''।

इस प्रकार रात्रि का भोजन सिर्फ धार्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अहिंसा के अनुकूल नहीं है।

4. लोकोपकारी कार्य —

जीव कल्याण और समाजसेवा की भावना से अहिंसाधर्म के लिए अनेक लोकोपकारी कार्य करने चाहिए। जैसे —निर्धनों को वस्त्र आदि देना, जनता के सेवार्थ चिकित्सालय खोलना, धर्मशाला बनवाना, शिक्षा के लिए विद्यालय खोलना, गोशाला तथा पशु-पक्षी चिकित्सालय का संचालन करना, समाज में व्यसन मुक्ति हेतु कार्य करना,

आदि-आदि। जैनधर्म के अनुयायी इन सब कार्यों को जीव दया की दृष्टि से करते हैं। उनके ये कार्य सिर्फ जैनों के लिए ही नहीं हैं वरन् सभी मनुष्यों के लिए हैं, चाहे वे किसी भी धर्म या जाति के हों। सहृदय अहिंसक भावना वाला गृहस्थ मनुष्य, मानव सहित सभी जीवों के हित के लिए जितना कर सकता है उतना कार्य अवश्य करना चाहिए। निःस्वार्थभाव से किए गए इन कार्यों से सामाजिक सौहार्द बढ़ता है और सम्पूर्ण विश्व शान्ति की ओर बढ़ता है।

इस प्रकार और भी अनेक नियम व कार्य हैं जो जैनधर्म की अहिंसाभावना को प्रगट करते हैं। यहाँ अहिंसा सिर्फ सिद्धान्त के रूप में ही नहीं बल्कि प्रायोगिक रूप में भी स्पष्ट दिखलाई देती है।

1.5 मानसिक और वाचिक अहिंसा-अनेकान्त और स्याद्वाद—

जैनधर्म ने सापेक्ष चिन्तन पर जोर दिया है हम कभी किसी भी घटना या परिस्थिति को सिर्फ अपनी ही दृष्टि से न सोचें; दूसरों के सम्यक् दृष्टिकोण का भी ख्याल रखें, हो सकता है कि वह सही हो। इसे जैनधर्म का 'अनेकान्त चिन्तन' कहते हैं। जैनदर्शन के अनुसार 'हिंसा' का मूल कारण 'एकान्त चिन्तन' ही है। जैनदर्शन 'मेरा सो खरा' वाली नीति पर विश्वास नहीं करता। उसे तो 'खरा सो मेरा' वाली ही नीति पसन्द है और यही उसका अनैकान्तिक दृष्टिकोण है। सत्य अनेकान्त स्वरूप ही है। अपने अलावा दूसरों के सम्यक् विचारों का भी चिन्तन करना और वस्तु में गर्भित अनन्त और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले धर्मों का विचार करना, यह चिन्तन में अनेकान्त है, इसे **'मानसिक अहिंसा'** का नाम दिया गया है।

जैनदर्शन के अनुसार "जो वस्तु तत् (जैसी) है, वही अतत् (वैसी नहीं) है; जो एक है, वही अनेक है; जो सत् है वही असत् है; जो नित्य है वही अनित्य है; इस प्रकार एक वस्तु में वस्तुत्व को उत्पन्न करने वाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का एक साथ प्रकाशन होना अनेकान्त है।"

वचनों का संसार भी अद्‌भुत है। हम वचनों को भी सापेक्ष बनाकर उन्हें शुद्ध कर सकते हैं। एकांगी या मिथ्या वचनों का प्रयोग अशान्ति फैलाता है इसीलिए वाणी की पवित्रता व सत्यता बहुत जरूरी है; अतः जैनधर्म वाणी में स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रयोग की बात कहता है।

स्याद्वाद का अर्थ है कि सापेक्ष अर्थात् किसी अपेक्षा से कथन करना। जैसे—मैं कहूँ कि 'मैं पुत्र हूँ' तो यहाँ संशयपूर्ण वचन होगा परन्तु यदि मैं कहूँ कि 'मैं माता-पिता की अपेक्षा पुत्र हूँ' तो यह वचन अधिक शुद्धवचन होगा तथा किसी को संशय नहीं होगा और न ही संघर्ष होगा अतः यदि शुद्ध बोलें और हित-मित-प्रिय वचन बोलें तो सभी को अच्छा लगता है। ऐसा नहीं बोलें जिससे दूसरों को दुःख पहुँचता हो, उससे हिंसा होती है।

जैनधर्म के अनुसार वचनों की अहिंसा का व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग किया जाना चाहिए अर्थात् हिंसक शब्दों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। जैसे—'सब्जी या फल काट दो' कहने की अपेक्षा 'सब्जी या फल बना दो या सुधार दो' कहना अहिंसक वचन है। 'काटना' शब्द हिंसक है अतः इसके कहने में हिंसा का वातावरण बनता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि सोचने और कहने का अन्दाज अलग-अलग है। इसी प्रकार मनुष्यों के वैचारिक स्तर में भी अन्तर हो जाता है।

1.6 अहिंसा के तीन स्तर : मानसिक, वाचिक और कायिक—

किसी भी प्राणी को नहीं मारना, उसे दुःख नहीं पहुँचाना, यह सामान्य अर्थ में अहिंसा है। व्यापक अर्थ में मन-वचन-काय और कृत, कारित, अनुमोदना से प्राणीमात्र को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना या उनके प्राणों का घात न करना अहिंसा है। मन, वचन और काय (शरीर) में से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीव की हिंसा न हो, ऐसा व्यवहार ही संयमी जीवन है; ऐसे जीवन को निरन्तर धारण करना ही अहिंसा है।

अहिंसा का यह सैद्धान्तिक और नैतिक आधार जैनधर्म दर्शन में उपलब्ध है। अहिंसा का क्षेत्र सीमित नहीं है। अहिंसा का सम्बन्ध अन्तरंग और बहिरंग दोनों रूपों में है। प्राणीमात्र को मन, वचन और काय से किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाना, उसका दिल नहीं दु:खाना, यह तो बहिरंग अहिंसा है और राग-द्वेष से निवृत्त होकर साम्यभाव में स्थिर होना अन्तरंग अहिंसा है। इतनी व्यापक परिभाषा हमें पूरब से लेकर पश्चिम तक कहीं भी देखने को नहीं मिलती। कोई भी कार्य या क्रिया, जो राग-द्वेष भाव से की जाती है, वह अहिंसा की श्रेणी में नहीं आती है। वस्तुत: अन्तरंग में आंशिक साम्यता आए बिना अहिंसा की शुरुआत हो ही नहीं सकती।

कहा जाता है कि चारों तरफ हिंसा बढ़ रही है। सम्पूर्ण विश्व में रोजमर्रा की जिन्दगी में हिंसा प्रभावी हो रही है। इस सन्दर्भ में क्या कभी यह विचार किया कि वास्तव में हिंसा कितनी बढ़ रही है ? क्या बाह्य हिंसा की मात्रा बाह्य अहिंसा से अधिक हो गई है ? सामान्यत: मनुष्य चौबीस घण्टे किसी न किसी को सिर्फ मारने-मारने का काम नहीं कर सकता। यह घटना कभी-कभी ही होती है। अधिकांश समय मनुष्य शान्ति से किसी को कष्ट पहुँचाए बिना ही व्यतीत करता है। दंगे-फसाद भी कोई वर्ष भर तो चलते नहीं हैं। कभी-कभी अचानक इस प्रकार की घटनाएँ होती हैं। ऐसी घटनाएँ ज्यादा भी हों तो उन दिनों की संख्या कहीं ज्यादा ही निकलेगी, जिन दिनों में ऐसी घटना या बातें नहीं होती हैं।

बात स्पष्ट है कि हिंसक प्रवृत्ति की प्रधानता वाला मनुष्य या समाज भी सतत हिंसा बर्दाश्त नहीं कर सकता क्योंकि हिंसा प्राणीमात्र का स्वभाव नहीं अपितु विभाव है। मनुष्य का मूलस्वभाव तो अहिंसा है। जिस प्रकार जल का स्वभाव शीतलता है किन्तु कभी अग्नि आदि के संयोग से वह गर्म हो जाता है। उष्णता, जल का स्वभाव नहीं है इसलिए अग्नि का निमित्त हट जाने पर कुछ समय बाद वह पुन: स्वत: शीतलता की ओर बढ़ता है और वहाँ पहुँचकर सदा स्वत: वैसा ही बना रहता है।

यद्यपि तथाकथित कुछ मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि हिंसा भी मनुष्य का स्वभाव है परन्तु यह उनके सोचने का अपना तरीका है। उनके हिंसा-अहिंसा के कारणों को खोजने के मापदण्ड भिन्न हैं तथापि धर्म की यह मान्यता है कि मनुष्य में सिर्फ शरीर और मन ही नहीं है बल्कि मनुष्य में एक आत्मा भी वास करती है और उस आत्मा का स्वभाव अहिंसा, क्षमा, शान्ति और करुणा है।

1.6.1 मानसिक अहिंसा—

हिंसा की व्याख्या करते समय प्राय: यह समझा जाता है कि यदि किसी की जान ली जा रही है, उसे दु:ख पहुँचाया जा रहा है तो हिंसा हो रही है और यदि ऐसी घटनाएँ नहीं हो रही हैं तो अहिंसा है किन्तु यह स्थूल व्याख्या है। हमारे जीवन में बाह्य हिंसा से अधिक मानसिक हिंसा होती है। वास्तव में तो लगभग 99 प्रतिशत बाह्य हिंसा के पीछे मानसिक हिंसा ही कारण होती है इसीलिए मानसिक हिंसा से बचने के लिए सदा सौहार्दभाव, स्वस्थ्य चिन्तन बढ़ाते रहना चाहिए।

अपने मन में किसी के अहित का विचार करना मानसिक हिंसा तो है ही; किसी दूसरे के मन को दु:ख पहुँचाना भी मानसिक हिंसा का ही एक रूप है। किसी व्यक्ति, परिवार, समाज या समग्र राष्ट्र को दु:खी करने के उद्देश्य से उनके अहित का चिन्तन करना और योजनाएँ बनाना भी मानसिक हिंसा है। जैनदर्शन में मान्यता है कि किसी को तकलीफ पहुँचाना तो दूर, इसके बारे में मन में बुरा ख्याल आना भी हिंसा है। उदाहरण के रूप में हमने किसी को मारने का विचार किया किन्तु मारा नहीं तो भी हमें हिंसा का दोष अवश्य लगेगा। कई बार फिल्म या सीरियल देखते समय खलनायक या अन्य किसी के अनिष्ट का चिन्तन करके हम व्यर्थ ही मानसिक हिंसा के भागी बन जाते हैं।

अनेक घटनाओं में यह देखा जाता है कि हिंसा का सतत चिन्तन करते रहने के कारण मनुष्य का मानसिक सन्तुलन खराब हो जाता है और वह बड़ी-बड़ी हिंसक घटनाओं को अंजाम देने लगता है इसीलिए मानसिक रूप से अहिंसक भावना को विशेष महत्त्व दिया गया है। मनुष्य जब मन से शान्त रहेगा, हिंसक विचार नहीं करेगा तो बाह्य हिंसा

का प्रश्न ही नहीं उठेगा। मानसिक और वैचारिक शान्ति हमारे अहिंसक व्यवहार का प्रमुख कारण है। मन में राग-द्वेष रूप विचारों को नहीं आने देना और क्षमा, समता, शान्ति आदि अहिंसक विचारधारा को अपने में सतत प्रवाहित होने देना ही मानसिक अहिंसा है।

1.6.2 वाचिक अहिंसा—

हिंसा का द्वितीय स्तर वाचिक हिंसा है। सर्वप्रथम मनुष्य हिंसा का विचार मन में लाता है फिर अपने वचनों के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है। कई बार जनसभाओं में ऐसे-ऐसे भाषण दिए जाते हैं कि जनसमुदाय भड़क जाता है और हिंसा पर उतारू हो जाता है, वह वाचिक हिंसा का एक रूप है। अपने वचनों के माध्यम से ऐसे शब्दों को प्रयोग करना, जिससे किसी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र की शान्ति भंग हो या उन्हें दुःख पहुँचे, वाचिक हिंसा है। व्यवहारिक रूप में गाली देना, किसी की निन्दा करना, अपशब्दों का प्रयोग करना, यह सब वाचिक हिंसा है और ऐसा नहीं करना वाचिक अहिंसा है।

कई बार लोगों को अनावश्यक बड़बड़ाने या व्यर्थ का अधिक बोलने की आदत होती है, उनसे अनायास ही वाचिक हिंसा होती रहती है; अतः वाणी पर संयम रखना ही वाचिक अहिंसा है। किसी महापुरुष ने कहा है कि अनावश्यक बोलो ही मत; जरूरत पड़े तो कम बोलो ; वह भी बहुत विचारपूर्वक नाप-तोल कर बोलो ; जो भी बोलो, हित-मित-प्रिय बोलो। संयमित वचनों से हमारा व्यक्तित्व निखरता है।

1.6.3 कायिक अहिंसा—

मनुष्य का मन पर संयम नहीं रहता तो वह मानसिक हिंसा करता है, उससे आगे वचनों पर संयम नहीं रहता तो वह वाचिक हिंसा करता है और इसके बाद वह कायिक हिंसा पर उतर आता है। अपने शरीर की क्रियाओं के द्वारा किसी भी प्राणी का अहित करना कायिक हिंसा है। स्वयं हाथ-पैर चलाकर किसी की जान लेना, उसे तकलीफ पहुँचाना, अंगों के इशारों से किसी दूसरे को हिंसा की अनुमति या आदेश देना या फिर क्रोध में आकर स्वयं के अंगों का घात करना कायिक हिंसा है।

अनेक स्थितियों में मनुष्य जाने-अनजाने भी कायिक हिंसा का दोषी बनता है। इसे अनर्थदण्ड कहा गया है। पार्क या बगीचों में रास्ते पर चलते-फिरते निष्प्रयोजन (**Unnecessary**) पेड़-पौधों अथवा फूलों को तोड़ना, टहनियाँ या पत्ते तोड़ना, चलते समय पैरों के नीचे छोटे-छोटे निर्दोष जीवों का ख्याल न करना, घास-फूस को कुचलना, उन पर मल-मूत्र त्यागना, बैठे-बैठे हाथ-पाँव चलाना, नदी-तालाब के किनारे बैठकर उसमें पत्थर या कूड़ा-करकट फेंकना इत्यादि अनेक उदाहरण हैं, जब हम अनायास अकारण और निष्प्रयोजन ही कायिक हिंसा करते हैं, जबकि मन में हिंसा की भावना नहीं रहती है। यहाँ प्रमाद, हिंसा का कारण बनता है। इससे पर्यावरण भी बिगड़ता है तथा इस पर हमारी आदतों से बुरा असर पड़ता है। मन-वचन-काय की अहिंसा का पालन करके हम पर्यावरण को भी सन्तुलित रख सकते हैं। मानसिक और वैचारिक प्रदूषण, शोर-शराबे का प्रदूषण और हमारी असंयमित क्रियाओं से अन्य सभी किस्म के प्रदूषण हमारे वातावरण को दूषित बना देते हैं जिससे शान्ति भंग होती है, पर्यावरण असन्तुलित होता है। अहिंसा के द्वारा हम इसे सन्तुलित बना सकते हैं।

1.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-जैनधर्म की अहिंसा का मूल आधार.....है।

(क) पूजा-पाठ ☐
(ख) भाईचारा ☐
(ग) समता ☐

प्रश्न 2-जैनधर्म के अनुसार संसार के समस्त प्राणी कितने प्रकार के हैं ?

(क) पाँच ☐
(ख) दो ☐
(ग) आठ ☐

प्रश्न 3-हिंसा का स्तर निर्धारित करने के लिए जैनधर्म में कितने साधन माने गए हैं ?

(क) दस ☐
(ख) बारह ☐
(ग) दो ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-हिंसा की नीव क्या-क्या हैं ? स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 2-जैनधर्म का प्रसिद्ध सूत्र क्या है ? यह सूत्र किसके साथ अंकित है ?

प्रश्न 3-जैन दर्शन के अनुसार अनेकांत की परिभाषा बताइए ?

प्रश्न 4-अहिंसा के तीन स्तर कौन-कौन से हैं, नाम बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-अहिंसक आचरण संबंधी क्रियाएँ कौन-कौन सी हैं, विस्तार से बताइए ?

पाठ-2–अहिंसा के संबंध में प्रमुख भारतीय चिन्तकों के विचार

2.1 प्रमुख भारतीय चिन्तक और अहिंसा–

अहिंसा की प्राचीन अवधारणा का संबंध हमारे धर्म से है। जो युगों–युगों से अविरल रूप से हमारे सामने आज भी जीवंत है। भारत में आधुनिक युग में भी ऐसे अनेक महापुरुष हुये हैं जिन्होंने चिन्तन में तथा जीवन के प्रयोगों में अहिंसा को जिया है। उनमें कतिपय चिन्तक और सन्तों के विचारबिन्दु निष्कर्ष के रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं—

2.2 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज एवं अहिंसा—

आचार्य श्री शान्तिसागरजी मुनिराज दिगम्बर जैन परम्परा के एक महान् तपस्वी आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आप अहिंसा महाव्रत के जीवन्त प्रतीक थे। आपका जन्म बुधवार, 25 जुलाई 1872 को भोजग्राम, दक्षिण भारत में हुआ था। बाल्यकाल से ही आप धार्मिक प्रवृत्ति के थे। घर में रहकर भी जीवन को धर्म की साधना में लगाते थे। आप भगवान महावीर की परम वीतरागी नग्न दिगम्बर दशा की उत्कृष्ट साधना को अपने जीवन में उतारना चाहते थे। आत्मकल्याण के उद्देश्य से आपने गृहस्थावस्था का त्याग कर दिया और 25 जून 1915 को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। 15 जनवरी 1919 को ऐलक दीक्षा ग्रहण की और 2 मार्च 1920 को आप मुनि दीक्षा ग्रहण कर नग्न दिगम्बर हो गये। बुधवार, 08 अक्टूबर 1924 को आप आचार्य बने।

आपकी चारित्रिक तपस्या की उत्कृष्टता को देखकर चतु:संघ ने आपको चारित्र चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया। जीवन भर आपने गाँव–गाँव पैदल ही भ्रमण किया, सभी जीवों को अहिंसा का उपदेश दिया। उनके जीवन की कई घटनाएँ अहिंसा धर्म की ज्वलन्त उदाहरण हैं। आपने सभी प्रमुख आगमों का स्वाध्याय किया तथा सभी को स्वाध्याय की प्रेरणा दी। आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव के महान् आध्यात्मिक ग्रंथ 'समयसार' के वे अनन्य उपासक थे, उन्होंने धवलादि सिद्धान्त ग्रंथों का भी बहुत अभ्यास किया। समाप्तप्राय दिगम्बर साधना को आपने पुनर्जीवित किया।

आचार्य श्री शान्तिसागर मुनिराज के कुछ वचन–बिन्दु—

(1) धर्मस्य मूलं दया। जिनधर्म का मूल क्या है ?—सत्य, अहिंसा। मुख से सभी सत्य, अहिंसा बोलते हैं, पालते नहीं। रसोई करो, भोजन करो। ऐसा कहने से क्या पेट भरेगा ?—सब कार्य छोड़ो, सत्य–अहिंसा का पालन करो। सत्य में सम्यक्त्व आ जाता है। अहिंसा में किसी जीव को दु:ख नहीं दिया जाता; संयम होता है, वह व्यवहारिक बात है। इस व्यवहार का पालन करो। सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो तब आपका कल्याण होगा। इसके बिना कल्याण नहीं होगा।

(2) जिस समय जो भवितव्य है, उसे कोई भी अन्यथा नहीं परिणमा सकेगा किन्तु हमारा निश्चय का एकान्त नहीं है; दूसरों के दु:ख दूर करने का विचार करुणावश है।

(3) आगम के मार्ग को छोड़कर जाने से तथा मनमाने रूप से प्रवृत्ति करने से सिद्धि नहीं मिलती। जैसे मार्ग छोड़कर उल्टे रास्ते जाने वालों को इष्ट ग्राम की प्राप्ति नहीं होती; उसी प्रकार मोक्षनगर में जाने के लिए अहिंसा का मार्ग अंगीकार करना आवश्यक है।

(4) हिंसा आदि पापों का त्याग करना धर्म है, इसके बिना विश्व में कभी भी शान्ति नहीं हो सकती। इस धर्म का लोप होने पर सुख तथा आनन्द का लोप हो जाएगा।

आचार्यश्री के अहिंसक जीवन को देखकर तथा प्रवचनों से प्रभावित होकर कटनी (म. प्र.) के पास बिलहरी गाँव के कई हरिजनों ने आजीवन माँसाहार का त्याग कर दिया था। धौलपुर राज्य के एक गाँव में एक व्यक्ति ने इन पर

प्राणघातक हमला किया, पुलिस द्वारा पकड़ लिये जाने पर भी उन्होंने उसे माफ करने को कह दिया था। आचार्य श्री शान्तिसागरजी के अहिंसक प्रयोगों के ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

इस प्रकार आचार्य श्री शान्तिसागर मुनिराज, संयम साधना की उत्कृष्ट भूमिका में सम्पूर्ण भारतवर्ष में शान्ति, अहिंसा, त्याग और संयम का सन्देश फैलाते रहे। आप दिगम्बर जैनधर्म में मुनिराजों के लिए निर्धारित नियमों का, जैसे– चौबीस घण्टे में एक समय अन्न–जल ग्रहण करना, हाथ में शुद्धि के लिए एक कमण्डलु तथा सूक्ष्म जीवों के रक्षार्थ अहिंसा धर्म के पालन के लिए एक पीछी (मोरपंखों द्वारा निर्मित) रखना; कहीं बैठने, उठने, लेटने तथा कोई शास्त्र रखने उठाने से पहले पीछी द्वारा उस स्थान को साफ करना ताकि इन क्रियाओं से सूक्ष्म जीवों की भी हिंसा न हो, हिंसा से बचने के लिए चार हाथ आगे की जमीन देखकर कदम बढ़ाना ताकि जमीन पर चलने वाले छोटे जीव पैरों से दबकर न मर जाएँ आदि का, वे कड़ाई से पालन करते थे। जीवन में अहिंसा को जीने का इतना उत्कृष्ट स्वरूप दिगम्बर जैन मुनिराजों के अतिरिक्त कहीं भी देखने को नहीं मिलता।

2.3 आचार्य भिक्षु और अहिंसा—

श्वेताम्बर जैन परम्परा में एक आचार्य भिक्षु हुए हैं। उनका जन्म विक्रम संवत् 1783 को हुआ था। विक्रम संवत् 1808 में उन्होंने स्थानकवासी मुनि दीक्षा स्वीकार की। विक्रम संवत् 1817 में तेरापंथ का प्रवर्तन किया और विक्रम संवत् 1860 को उनका देवलोकगमन हो गया।

आचार्य भिक्षु अहिंसाविषयक सूक्ष्म चिन्तन रखते हैं। उनका कहना है कि जीवरक्षा अहिंसा का परिणाम है, उद्देश्य नहीं। जीवरक्षा अहिंसा का परिणाम हो सकता है परन्तु अहिंसा से जीवरक्षा होती ही है, ऐसी बात नहीं। नदी के जल से भूमि उपजाऊ हो सकती है पर नदी इस उद्देश्य से बहती है–यह नहीं कहा जा सकता।

अहिंसा का उद्देश्य क्या है—आत्मशुद्धि या जीवरक्षा ? कई विचारक अहिंसा के आचरण का उद्देश्य जीवरक्षा बतलाते हैं और कई आत्मशुद्धि। अहिंसा जीवरक्षा के लिए हो तो आत्मशुद्धि या संयम की बात गौण हो जाती है और यदि वह आत्मशुद्धि के लिए हो तो जीवरक्षा की बात गौण हो जाती है। आचार्य भिक्षु मानते हैं कि 'अहिंसा में जीवरक्षा की बात गौण है; मुख्य बात है आत्मशुद्धि की।

एक संयमी सावधानीपूर्वक चल रहा है। उसके पैर से कोई जीव मर गया तो भी वह हिंसा का भागी नहीं होता, उसको पापकर्म का बन्ध नहीं होता। कहा है—

इरजा सुमत चालंतां साध ने, कदा जीवतणी हुवे घात।
ते जीव मूंआ रो पाप साधने, लागे नहीं असंमात रे।।

एक संयमी असावधानीपूर्वक चल रहा है, उसके द्वारा किसी भी जीव का घात नहीं हुआ फिर भी वह हिंसक है; उसके पाप कर्म का बन्ध होता है। कहा है—

जो ईर्या सुमत विण साधु चाले, कदा जीव मरे नहीं कोय।
तो पिण साध ने हिंसा छकाय री लागी, पाप तणो बन्ध होय रे।।

आचार्य भिक्षु के अहिंसा सम्बन्धी सूत्र—

(1) देह के रहते हुए पूर्णतः जीवघात से नहीं बचा जा सकता किन्तु अहिंसा की पूर्णता आ सकती है।

(2) हिंसा या अहिंसा के मूल स्रोत, आत्म की असत् और सत् प्रवृत्तियाँ हैं; जीवघात या जीवरक्षा उनकी कसौटी नहीं है।

(3) जैसे—मोक्षमार्गी को व्यवहारदृष्टि की अहिंसा से धर्म नहीं होता; वैसे ही व्यवहारदृष्टि की हिंसा से पाप नहीं होता। जीवघात होने पर भी व्यावहारिक हिंसा बन्धन का कारण नहीं होती; वैसे ही जीवरक्षा होने पर भी व्यावहारिक अहिंसा मुक्तिकारक नहीं होती।

(4) जो जीवों की रक्षा को अहिंसा का ध्येय मानते हैं, उन्हें बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों के घात में पुण्य मानना ही पड़ता है और वे मानते भी हैं; इसीलिए जीवरक्षा अहिंसा का एकमात्र ध्येय नहीं है।

(5) अहिंसा का सिद्धान्त जहाँ मात्र करुणा या जीवरक्षा से जुड़ जाता है वहाँ अहिंसा लोकप्रिय बनती है, पर पवित्र नहीं रह पाती।

(6) अहिंसा में जीवरक्षा हो सकती है पर यह उसकी अनिवार्यता नहीं है।

इस परम्परा के अन्य आचार्य—

आचार्य भिक्षु ने तेरापंथ धर्मसंघ की स्थापना की। इसी परम्परा में आगे चलकर नवम आचार्य तुलसी हुए, जिन्होंने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया और अहिंसा धर्म की उपयोगिता को जनसामान्य में प्रतिष्ठापित करने के लिए विशाल साहित्य रचा। इनके बाद आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान के नये प्रयोगों तथा अहिंसा आदि सिद्धान्तों की आधुनिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या कर पूरे विश्व में शान्ति का सन्देश फैलाया। आचार्य महाप्रज्ञ ने भी अहिंसा एवं विश्वशांति के लिए सैकड़ों ग्रंथ तथा हजारों निबन्ध लिखे हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के देवलोक गमन के पश्चात् आचार्य महाश्रमण अहिंसा की अलख जला रहे हैं।

2.4 दलाई लामा और अहिंसा—

दलाई लामा बौद्धधर्म के प्रमुख गुरू हैं, उनका जन्म 06 जुलाई, 1935 को एक कृषक परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था से ही आप अहिंसा और अध्यात्म के उपासक रहे। आपकी छह वर्ष की अवस्था से ही तिब्बती बौद्ध भिक्षु के रूप में शिक्षा-दीक्षा हुई, पच्चीस वर्ष की आयु में आपने गेशे लाहरम्पा (पीएच. डी) की उपाधि प्राप्त की थी। जब चीनी सत्ता ने तिब्बत पर आक्रमण की धमकी दी थी, उसी समय अपने लोगों के आग्रह पर 16 वर्ष की आयु में वे राजनैतिक शासन तथा शक्ति की बागडोर सम्भालने पर बाध्य हुए।

नोरवेजियन नोबेल कमेटी ने 1889 का नोबेल शान्ति पुरस्कार तिब्बती लोगों के धार्मिक और राजनैतिक अगुआ तेनसिंग ग्यात्सो 14वें दलाई लामा को देने का निर्णय किया। कमेटी ने इस बात पर बल दिया कि तिब्बत के स्वतन्त्रता संघर्ष में दलाई लामा ने लगातार हिंसा के प्रयोग का विरोध किया। हिंसा के स्थान पर वह अपने लोगों की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहर को बचाए रखने में शान्तिपूर्ण उपायों के अधिवक्ता रहे हैं।

दलाई लामा ने शान्ति का यह दर्शन सभी सत्त्वों के प्रति सम्मान की भावना, मानवता व प्रकृति के प्रति सार्वभौमिक उत्तरदायित्व की भावना को लेकर विकसित किया है। कमेटी के अनुसार दलाई लामा ने आन्तरिक संघर्षों, मानवीय अधिकार के प्रश्नों और विश्वस्तरीय पर्यावरण की समस्या के लिए रचनात्मक तथा प्रगतिशील सुझाव रखे हैं।

अहिंसा और शान्तिविषयक उनके प्रमुख विचारसूत्र निम्न प्रकार हैं-

(1) बोधिचित्ताभ्यासी के लिए द्वेष और क्रोध सबसे बड़ी बाधा है। बोधिसत्त्वों में कभी भी घृणा का जन्म नहीं होना चाहिए बल्कि उन्हें उसका विरोध करना चाहिए। इसकी प्राप्ति के लिए सहिष्णुता या शान्ति का अभ्यास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

(2) हृदय और बुद्धि के समन्वय से ही शान्तिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण मानव परिवार का निर्माण सम्भव है।

(3) करुणा और निष्ठा के अभ्यास से ही हम सही अर्थों में बुद्धानुयायी हो सकते हैं। दूसरों के प्रति दयाभाव रखकर ही हम स्वार्थ को कम करने की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, दूसरों के दु:खों को बाँटकर हम अन्य सभी जीवों की

भलाई हेतु और संवेदनशील हो सकते हैं।

(4) यदि पर दुःख को दूर करने के लिए अपना सुख तुम उन्हें दे नहीं सकते तो इस वर्तमान जीवन में सुख भी नहीं मिल सकता, बुद्धत्व की आशा व्यर्थ है।

(5) जिस प्रेम का सन्देश हम दे रहे हैं वह ऐसा प्रेम है जो हम उन व्यक्तियों से भी कर सकें जिन्होंने हमें हानि पहुँचाई है। इस प्रकार का प्रेम सभी सत्त्वों से किया जाना चाहिए।

(6) विशुद्ध अहिंसा का सम्बन्ध हमारी मानसिक प्रवृत्ति से है। जब हम शान्ति की बात करते हैं, तब हमारा मन्तव्य विशुद्ध अहिंसा होना चाहिए, मात्र युद्ध का न होना नहीं। उदाहरण के लिए पिछले कई दशकों में यूरोप महाद्वीप में अपेक्षाकृत शान्ति बनी थी, पर मुझे नहीं लगता कि वह सच्ची शान्ति थी। शीतयुद्ध के परिणामस्वरूप जो भय छाया था यह शान्ति उसी से उत्पन्न हुई थी।

(7) अहिंसा की प्रकृति इस प्रकार होना चाहिए जो निष्क्रिय न होकर दूसरों के कल्याण के लिए सक्रिय हो। अहिंसा का अर्थ है कि यदि तुम दूसरों की सहायता या सेवा कर सकते हो तो तुम्हें करना चाहिए; यदि तुम नहीं कर सकते तो कम से कम दूसरों को हानि नहीं पहुँचाना चाहिए।

दलाई लामा का जीवन संघर्षों से भरा रहा किन्तु फिर भी उन्होंने अहिंसा का रास्ता नहीं छोड़ा। उनका अखण्ड विश्वास है कि जिस प्रकार पूरे विश्व से प्रेम और समर्थन जुटाने में वो सफल हुए हैं उसके पीछे सबसे बड़ा कारण उनका अहिंसक संघर्ष ही है।

2.5 महर्षि अरविन्द और अहिंसा—

भारत के समकालीन दार्शनिकों तथा वैदिक योगियों में जिनका आदर पूरे विश्व में है उनमें महर्षि अरविन्द का नाम प्रमुख है। श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त 1872 में हुआ था। श्री अरविन्द की अधिकांश शिक्षा लन्दन में सम्पन्न हुई। चौदह वर्ष बाद जब वे भारत की धरती पर वापस लौटे तब कई नौकरियाँ करने के बाद वे देशभक्ति के प्रमुख प्रेरणास्रोत के रूप में काम करने लगे। अंग्रेजों ने श्री अरविन्द को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया किन्तु जेल उनके लिए साधना और योग की भूमि बन गया। साल भर वे जेल में रहे, उनके लिए जेल जीवन वरदान साबित हुआ। उन्होंने स्वयं कहा है कि अंग्रेजी सरकार ने उन्हें बन्द करके उनके ऊपर उपकार किया है।

श्री अरविन्द का अध्यात्म मनुष्य को शक्तिशाली बनाने का था। हिंसा-अहिंसा को लेकर उनकी अपनी विशेष मान्यताएँ थीं, जिनका उल्लेख उनकी पुस्तकों में मिलता है।

महर्षि अरविन्द ने व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अहिंसा को एक साधन के रूप में स्वीकार किया है। गाँधीजी ने अहिंसा को साध्य बतलाया था जबकि श्री अरविन्द का कथन है कि जिस प्रकार मानव के विकास के लिए जहाँ अन्य अनेक साधन हैं, वहाँ अहिंसा भी एक साधन है। श्री अरविन्द ने राष्ट्र के उत्थान के लिए कभी-कभी युद्ध और हिंसा को भी उचित बतलाया है। अरविन्द के विचारों का सार यह है कि कोई भी सिद्धान्त कितना ही महान् क्यों न हो, उसको जन जीवन में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता और न ही उससे सबका भला हो सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति विशेष के लिए अहिंसा कल्याणकारी हो सकती है किन्तु उसे सब कालों में, सब परिस्थितियों में, सब लोगों के लिए एक समान चरितार्थ नहीं किया जा सकता। अहिंसा एक योगी के लिए तो उपादेय हो सकती है; सामाजिक जीवन के लिए हिंसा और अहिंसा दोनों आवश्यक हैं।

श्री अरविन्द जिस आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर थे, उसमें अहिंसा की प्रधानता थी। यही कारण है कि देशभक्ति के जज्बे में स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने हिंसकमार्ग की वकालत नहीं की। वे राष्ट्र को एक निर्जीव भूमिखण्ड नहीं, स्वयं

जननी का जीवित विग्रह मानते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को अंग्रेजी में जो पत्र लिखे, उसमें उनकी राष्ट्रभक्ति और अहिंसक चेतना के स्पष्ट दर्शन होते हैं। 17 फरवरी 1907 को लिखे एक पत्र के एक अंश का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत हैं—

''.....मैं जानता हूँ, इस पवित्र जाति के उद्धार करने का शारीरिक बल मेरे अन्दर नहीं है। तलवार या बन्दूक लेकर मैं युद्ध करने नहीं जा रहा हूँ। तलवार के स्थान पर ज्ञान का एक बल है। ब्रह्म तेज भी एक तेज है। यह तेज ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित होता है। यह भाव नया नहीं है; इस भाव को लेकर ही मैंने जन्म ग्रहण किया है। यह भाव मेरी नस-नस में भरा है।.....''

2.6 स्वामी विवेकानन्द और अहिंसा—

भारतवर्ष में महान् आध्यात्मिक क्रान्तिकारी विचारक स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को हुआ था। उनके पिता का नाम विश्वनाथदत्त तथा माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। प्रारम्भ में इनका मूल नाम नरेन्द्रनाथ था। इनके गुरु का नाम श्री रामकृष्ण परमहंस था।

नरेन्द्रनाथ जब श्री रामकृष्ण परमहंस से मिले तो सहसा उन्हें एक महापुरुष मानने को तैयार नहीं थे किन्तु प्राणिमात्र के प्रति श्री रामकृष्ण के निष्काम प्रेम और दयाभाव ने उन्हें उनकी ओर आकृष्ट किया। उन्होंने देखा कि परमहंसजी के संसर्ग से कई लोगों का जीवन पूर्णतया बदल चुका है; अतः उन्होंने परमहंस को अपना गुरू मान लिया।

स्वामी विवेकानन्द ने पूरे भारत का भ्रमण किया और विशेषकर नवयुवकों के अन्दर आध्यात्मिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। वे युवा चेतना के मसीहा थे। विवेकानन्द ने अपने विचारों से विदेशियों को भी प्रभावित किया और विश्वशान्ति का सन्देश दिया। उन्होंने शिकागो में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में भारतीय अध्यात्म को लेकर एक ओजस्वी वक्तव्य दिया था, वह आज भी प्रसिद्ध है। विदेशों में भारत के आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान की जड़ें मजबूत करने में स्वामी विवेकानन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

प्रमाद या आसक्ति को हिंसा कहा गया है। स्वामी विवेकानन्द ने इसे अलग दृष्टि से व्याख्यायित किया। विशेष रूप से जब भारतीय नवयुवकों को आलसी, दुर्बल और कामचोर देखते थे, तब उनका खून खौल उठता था। उनका यह सन्देश बहुत प्रसिद्ध है—'उठो, जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाओ, तब तक चैन न लो। उठो, जागो.....निर्बलता के उस व्यामोह से जाग जाओ। वास्तव में कोई भी दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त सर्वशक्ति-सम्पन्न और सर्वज्ञ है। इसलिए उठो, अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करो। तुम्हारे अन्दर जो भगवान है, उसकी सत्ता को ऊँचे स्वर में घोषित करो; उसे अस्वीकार मत करो। हमारी जाति के ऊपर घोर आलस्य, दुर्बलता और व्यामोह छाया हुआ है।

अहिंसा-हिंसा को लेकर विवेकानन्द बहुत चिन्तित नहीं दिखायी देते थे। उनका विचार था कि यदि अहंकार दूर होता है, अनासक्ति प्रगट होती है और आत्मा शुद्ध बनती है तो अहिंसा के उपदेश की जरूरत नहीं है। यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण है किन्तु व्यावहारिक रूप में वे अहिंसा के प्रति बहुत स्पष्ट अवधारणा रखते हैं। उनका कहना है—'अहिंसा ठीक है, निश्चय ही बड़ी बात है। कहने में बात तो अच्छी है पर शास्त्र कहते हैं कि यदि तुम गृहस्थ हो, तुम्हारे गाल पर यदि कोई एक थप्पड़ मारे और यदि उसका जवाब तुम दस थप्पड़ों से न दो तो तुम पाप करते हो।

इस प्रकार वे गृहस्थ को विरोधी हिंसा का अधिकारी मानते थे। उन दिनों हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था। अंग्रेज भारतीयों को मारते थे; भारतीय फिर भी उनकी सेवा करते थे अतः विवेकानन्द का यह चिन्तन प्रसंग तथा परिस्थितियों के अनुकूल माना गया, वे आक्रमण सहने के पक्ष में नहीं थे।

अहिंसा की कसौटी को लेकर वे कहते थे कि 'अहिंसा की कसौटी है—ईर्ष्या का अभाव। कोई व्यक्ति भले ही क्षणिक आवेश में आकर अथवा किसी अन्धविश्वास से प्रेरित हो या पुरोहितों के छक्के-पञ्जे में पड़कर कोई भला

काम कर डाले अथवा बड़ा दान दे डाले, पर मानव जाति का सच्चा प्रेमी तो वह है, जो किसी के प्रति ईर्ष्याभाव नहीं रखता। बहुधा देखा जाता है कि संसार में जो बड़े मनुष्य कहे जाते हैं, वे अक्सर एक-दूसरे के प्रति थोड़े से नाम, कीर्ति या चाँदी के चन्द टुकड़ों के लिए ईर्ष्या करने लगते हैं। जब तक यह ईर्ष्याभाव मन में रहता है तब तक अहिंसाभाव में प्रतिष्ठित होना बहुत दूर की बात है।'

वे अहिंसा के लिए आत्मज्ञान को आवश्यक मानते थे। उनका विचार था कि आत्मा के ज्ञान बिना जो कुछ भौतिक ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह सब आग में घी डालने के समान है, उससे दूसरों के लिए प्राण उत्सर्ग कर देने की बात तो दूर ही रही, इससे स्वार्थी लोगों को दूसरों की चीजें हर लेने के लिए, दूसरों के रक्त पर फलने-फूलने के लिए एक और यन्त्र, एक और सुविधा मिल जाती है।

विवेकानन्द की अहिंसा और महर्षि अरविन्द की अहिंसा काफी कुछ साम्य रखती है। यह अहिंसा स्थूल तथा व्यावहारिक अहिंसा है। राजनीति, समाज तथा जीवन व्यवहार की दृष्टि से परिस्थितिवशात् ऐसी अहिंसा की अवधारणाएँ बहुत अधिक रोचक तथा तर्कपूर्ण प्रतीत होती हैं। इस अहिंसा को हम भौतिक अध्यात्मवाद कह सकते हैं। आत्मरक्षा, राष्ट्ररक्षा और धर्मरक्षा के लिए हिंसा को उचित कहने वालों की परम्परा भी नयी नहीं है। प्राचीन काल से इस प्रकार की अवधारणाएँ चली आ रही हैं।

2.7 सीमांत गाँधी और अहिंसा—

गाँधीजी के समय ही लगभग 1930 में भारत के उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त (अब पाकिस्तान) में पठान जाति के नेता खान अब्दुलगफ्फार खान बहुत प्रसिद्ध हुए; इन्होंने खासकर भारतीय उपमहाद्वीप की जनता के विभिन्न वर्गों में अहिंसा का सन्देश फैलाया। गाँधीजी की ओर आकर्षित होना इनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना है। श्री खान ने अपना सारा जीवन अपने अनुयायियों के हृदयों में गाँधीजी की अहिंसा की मशाल जलाने में लगा दिया। आपने 'लालकुर्ती आन्दोलन' चालू किया जिसे 'खुदाई खिदमतगार' के नाम से जाना जाता है। इस आन्दोलन के माध्यम से उन्होंने गाँधीजी की अहिंसा को व्यवहार में और अधिक अर्थवान् बनाया। ये हजारों पठानों को संगठित करने में सक्षम हुए। उग्र पठानों को अहिंसा के पुजारियों में बदल देना, इनकी नेतृत्व क्षमता का ज्वलन्त उदाहरण है। महात्मा गाँधी इन्हें 'बादशाह खान' के नाम से पुकारते थे। आपको सीमान्त गांधी के नाम से भी जाना जाता है।

गफ्फार खान लालकुर्ती के केन्द्र स्थापित करने के लिए गाँव-गाँव घूमे। छह माह के भीतर ही सारा प्रान्त लाल कुर्तियों से भर गया। खुदाई खिदमतगारों की संख्या 500 से 80,000 तक पहुँच गई और उसने बाद में 1,00,000 की अहिंसक सेना का रूप ले लिया। इस सेना की नियमित परेड होती थी, उनके पास कोई हथियार नहीं होते थे, कोई अस्त्र-शस्त्र छड़ी या लाठी तक भी नहीं होती थी। उन्होंने सैनिक तौर-तरीके के लम्बे-लम्बे मार्च आयोजित किए।

अपने संगठन का सदस्य बनाते समय आप ग्यारह नियमों वाले प्रतिज्ञापत्र पर उस सदस्य से हस्ताक्षर करवाते थे, उसमें **छठा** नियम था—'मैं सदा अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुरूप जीवनयापन करूंगा।' और **आठवाँ** नियम था—'मैं अपने कर्मों में सच्चाई और पवित्रता का पालन करूंगा।

2.8 आचार्य विनोबा और अहिंसा—

आचार्य विनोबा भावे ने 1940 में एकल सत्याग्रही के रूप में आजादी का ध्वज उठाने और धनाढ्यों के हृदयों को करुणा और ईश्वर भक्ति की ओर मोड़ने में अहिंसा का उपयोग किया। इन्होंने अगले चार दशक तक अहिंसा के आधार को बहुत विस्तार दिया। इसके लिए आचार्य विनोबा भावे ने '**भूदान आन्दोलन**' चलाया। आचार्य विनोबा गाँधीजी के प्रिय शिष्य तथा उत्तराधिकारी के रूप में जाने जाते थे।

विनोबाजी देश भर में लाखों भूमिधरों के हृदयों को आन्दोलित करने में सफल रहे। उनकी प्रेरणा से भूमिधरों ने स्वेच्छा से चार लाख एकड़ से अधिक भूमि भूमिहीनों में बाँटने के लिए दान में दी। यह मात्रा प्रदर्शित करती है कि अहिंसा को सही परिप्रेक्ष में ग्रहण कर सही ढंग से लागू करने से इसके अत्युत्तम परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। यह आन्दोलन संसार भर में अभूतपूर्व था। अब यह माना जाता है कि इस शान्त और प्रभावशाली आन्दोलन द्वारा भूमि वितरण और स्वातन्त्र्योत्तर भारत सरकार द्वारा किए गए अन्य भूमिसुधारों के बिना, भारत के गणतन्त्र का स्वरूप वह न होता, जो आज है। भूदान आन्दोलन की सफलता का सबसे बड़ा कारण यह था कि इसे यश और किसी भी भौतिक लाभ की कामना से परे सन्त विनोबा जैसे पारदर्शी चरित्र वाले, नि:स्वार्थ व्यक्ति ने सञ्चालित किया था।

एक विशुद्ध अध्यात्म उनकी अहिंसा का लक्षण था। उनका जीवन धार्मिक शिष्टाचार का आदर्श नमूना था जिससे प्रमाणित होता था कि किसी सन्यासी का कर्त्तव्य मात्र एकान्त में जाकर जीवनयापन करना नहीं होता बल्कि उसे जनता में जाकर काम करना और उसे आत्मान्वेषण का सही मार्ग बताना होता है। गाँधीजी की तरह उन्होंने राजनीति, अर्थ, विज्ञान और धर्म को अध्यात्म से जोड़ना चाहा। बर्ट्रेण्ड रसेल ने उनके जीवन को 'मानवीय मामलों में चेतना की भूमिका का प्रतीक' बताया था।

विनोबाजी ने अहिंसा के आधार पर जो भी आन्दोलन चलाए, उसमें वे सफल रहे और उन्हें अत्यधिक ख्याति भी प्राप्त हुई।

आचार्य विनोबा जैनधर्म की अहिंसा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने जैनधर्म के सभी सम्प्रदाय के आचार्यों से निवेदन करके सर्वसम्मतिपूर्वक **'समणसुत्तं'** नामक ग्रंथ का निर्माण करवाया। इस ग्रंथ को उन्होंने जैन गीता के नाम से पुकारा। **'समणसुत्तं'** का संकलन महान कृति –जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' के रचनाकार क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र प्रसाद जी वर्णी ने किया था। आचार्य विनोबा अपना अन्त समय अहिंसा की आराधना में ही बिताना चाहते थे; अत: उन्होंने संयम के प्रतीक 'सल्लेखना' व्रत को लेकर अत्यन्त संयम तथा आत्मश्रद्धा के साथ अपने शरीर का त्याग किया।

विनोबा जी ने अहिंसा, दया, करुणा, अध्यात्म बंधुता और समग्र जीवन के सार का प्रयोग मूलभूत समाज परिवर्तन तथा सम्पत्ति पर आधारित सम्बन्ध, संस्थानिक ढांचे, परम्परा एवं व्यवहार के पूर्व निर्मित आग्रह को बदलने के लिए किया। उन्होंने वर्तमान आर्थिक सम्बन्धों की विषमता के प्रति सचेत करने, सामुदायिक चेतना पर आधारित नए सम्बन्धों को विकसित करने तथा कार्यों, आय और जीवन स्तर में समानता लाने के लिए वास्तविक क्रांतिकारी शक्ति का प्रयोग एक साधन के रूप में किया। इस कार्य के लिए वे सदैव याद किये जायेंगे।

2.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज ने मुनि दीक्षा किस तारीख और किस सन् में ग्रहण की?

(क) 25 जुलाई 1872 ☐
(ख) 25 जून 1915 ☐
(ग) 2 मार्च 1920 ☐

प्रश्न 2-जिनधर्म का मूल क्या है ?

(क) सत्य-अहिंसा ☐
(ख) स्वाध्याय ☐
(ग) त्याग-तपस्या ☐

प्रश्न 3-तेरापंथ धर्मसंघ की स्थापना किसने की ?

(क) आचार्य तुलसी ☐
(ख) आचार्य भिक्षु ☐
(ग) आचार्य महाश्रमण ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के वचन बिन्दुओं में से किन्हीं दो का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 2-महर्षि अरविन्द का जन्म किस सन् और किस तारीख में हुआ ? राष्ट्रभक्ति और अहिंसक चेतना के संदर्भ में उन्होंने पत्र में क्या संदेश दिया ?

प्रश्न 3-स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त परिचय बताइए ? उनका प्रसिद्ध संदेश क्या है ?

प्रश्न 4-खान अब्दुल गफ्फार खान को किस नाम से जाना जाता है ? उन्होंने किस आन्दोलन को प्रारंभ किया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-आचार्य विनोबा भावे और उनकी अहिंसा को विस्तृत रूप में बताइए ?

पाठ 3 – अहिंसा परमो धर्मः

3.1 आज विश्व में हिंसा की वारदातें बढ़ रही हैं। पिछले दिनों एक ओर अमरीकी जहाजों ने एक छोटे से देश लीबिया में जबर्दस्त बमबारी की तो दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने जांबिया, जिम्बाब्बे और वोत्स्याना पर शर्मनाक हमला बोल दिया। सैकड़ों निर्दोष—निरपराध मारे गए। भारत में भी आतंकवाद अपना सिर उठा रहा है। सुबह–सुबह अखबार खोलते ही देश में हत्याओं के समाचार सुर्खियों में पढ़ने को मिलते हैं। अखबार का हर पन्ना बलात्कार, चोरी, डकैती, हत्या, आत्महत्या, लूटपाट, दंगे या बहुओं के जला देने की खबरों से रंगा रहता है। यह सब पढ़-सुनकर दिल काँप उठता है और मन का स्वाद बिगड़ जाता है।

मानव की बुद्धि आज भाँति-भाँति की विषैली गैसों, प्रक्षेपणास्त्रों और बमों के आविष्कार में लगी हुई है। उसके भयंकर दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। भोपाल की गैस त्रासदी जिन्होंने भोगी है, वे क्या कभी उसकी कटु स्मृतियों से उबर सकेंगे ? रूस की एक परमाणु भट्टी से हुई रिसन से एक लाख लोगों के कैंसरग्रस्त होने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जा रही है। बम विस्फोटों का परिणाम विकलांगता के रूप में सामने आ रहा है। हिंसा दानव के इस बढ़ते दबाव से मनुष्य का जीवन कैसा असहाय और कितना असुरक्षित हो गया है।

आचार्य शुभचन्द्र ने ठीक ही कहा था—**''हिंसैव दुर्गतेर्द्वारं'।** यह दुर्गति आज सर्वत्र दिखाई दे रही है। इस जगह मानवीय संवेदना और सहानुभूति मिटती जा रही है। उसका स्थान नृशंसता, क्रूरता और कठोरता ने ले लिया है। ऐसी परिस्थिति में एक बार फिर दुनिया के विचारक अहिंसा के महत्त्व पर नए सिरे से विचार करने के लिए विवश हो रहे हैं, अयुद्ध–सन्धि और निःशस्त्रीकरण की चर्चायें इसी का प्रतिफल है। लोगों में यह समझ बढ़ी है कि अहिंसा ही इस महाविनाश से मानवता को बचा सकती है। अहिंसा विश्वधर्म का एक सदाबहार तत्त्व है। उसका त्रैकालिक महत्त्व है। अतीत से भी अधिक महत्त्व आज है। सूर्य के प्रकाश में मोमबत्ती की रोशनी भले ही अधिक महत्व न रखती हो किन्तु अमावस की अंधेरी रात में तो उसकी उपयोगिता के बारे में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। आज हिंसा की अमावस ने निराशा की काली चादर धरती पर फैला दी है। उनसे बचने के लिए अहिंसा की टार्च हाथ में लेकर चलने पर ही उससे त्राण मिल सकता है।

'ज्ञानार्णव' में कहा गया—**'अहिंसा लक्षणो धर्मः, तद्विपक्षश्च पातकम्'** अर्थात् धर्म अहिंसा लक्षण वाला है और उससे विपरीत जो भी है, वह सब पाप है। अहिंसा से बड़ा कोई धर्म और हिंसा से बढ़कर पाप दूसरा नहीं हो सकता। यूँ तो कहने को भगवान महावीर ने पाँच अणुव्रतों का उपदेश दिया था परन्तु वास्तव में उनका सबसे अधिक जोर अहिंसा पर ही था। **'एक हि साधे सब सधे'** के अनुसार अहिंसा की पूर्णता में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भी सहज ही सध जाते हैं। कोई अहिंसक व्यक्ति झूठ कैसे बोल सकता है, चोरी कैसे कर सकेगा, शील से डिगने का प्रश्न ही उसके सामने नहीं उठता तथा आवश्यकता से अधिक का संग्रह बिना दूसरों को कष्ट में डाले सम्भव ही नहीं है। अहिंसा व्रत को स्वीकार करने वाला पहले ही यह संकल्प कर लेता है कि वह किसी को सताएगा नहीं अतः शेष व्रतों का पालन उसके द्वारा स्वतः ही हो जाता है इसीलिए तो पंचाणुव्रतों में अहिंसा को सिरमौर कहा गया है।

आचार्य शुभचन्द्र ने **'अहिंसैव जगन्मात'** कहकर अहिंसा को ममतामयी 'माँ ' के समकक्ष रख दिया है। संसार में माँ से बढ़कर हितैषी और कौन हो सकता है ? जो रक्षा करे वह माँ कहलाती है। स्वयं कष्ट सहकर भी माता जिस तरह बालक की रक्षा करती है उसी तरह तीन लोक की रक्षा अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। आचार्य श्री गुणभद्र ने 'आत्मानुशासन' में लिखा है कि जब तक मनुष्य के मन में अहिंसा धर्म रहता है तब तक वह मारने वालों को भी नहीं मारता किन्तु जब अहिंसा धर्म उनके दिल और दिमाग से निकल जाता है तब औरों की कौन कहे, प्रिय पुत्र को पिता मार डालता है और पिता की हत्या पुत्र कर देता है। श्रीकृष्ण और जरत्कुमार तथा श्रेणिक महाराज और कुणिक अजातशत्रु

के उदाहरण हमारे सामने हैं अत: यह निश्चित है कि इस विश्व की रक्षा का मूल आधार धर्म है और वह अहिंसामय है। स्वामी समन्तभद्र तो सबसे आगे बढ़कर कहते हैं—**'अहिंसा भूतानां जगतिविदितं ब्रह्मपरमम्'** अर्थात् जीवों की अहिंसा (रक्षा) ही परमब्रह्म परमात्मा है और यह बात संसार में प्रसिद्ध है। इस तरह हमारे मनीषी आचार्यों ने अहिंसा को सदैव सर्वोपरि धर्म के रूप में स्वीकार किया है।

3.2 अहिंसा : तीन पहलू—

अहिंसा का सामान्य अर्थ है—दूसरों को न सताना किन्तु यह केवल इसका एक पक्ष है। जिस तरह बिजली के तार 'निगेटिव' और 'पोजीटिव' दो तरह के होते हैं, उसी तरह अहिंसा का 'निगेटिव' पक्ष है–दूसरों को न सताना और 'पॉजिटिव' पक्ष है—दूसरों की यथाशक्ति सेवा-भलाई करना। मैत्री, करुणा, सहिष्णुता, सहानुभूति आदि सब शब्द अहिंसा के ही पर्याय हैं। अहिंसा का एक तीसरा सबसे बड़ा पक्ष और भी है, वह है—स्वयं को न सताना। स्वयं को सताये बिना आदमी दूसरों को सता ही नहीं सकता। जब भी हम दूसरों को मारने या सताने की सोचते हैं तभी हमारी रात की नींद गायब हो जाती है। पहले हम स्वयं दुखी होते हैं तब दूसरों को कष्ट होता है। दूसरों को कष्ट हो ही, यह निश्चित नहीं है किन्तु स्वयं को कष्ट होना अनिवार्य है। दूसरों पर कीचड़ फेंकने से यह जरूरी नहीं कि दूसरा गन्दा ही हो किन्तु फेंकने वाले के हाथ तो गन्दे होते ही हैं।

जैनाचार्यों ने रागादि परिणामों को स्वहिंसा तथा षट्काय के जीव हनन को परहिंसा कहा है। यह भी कहा है कि स्वहिंसा के बिना परहिंसा सम्भव नहीं है। अहिंसा वस्तुत: स्वसेवा ही है और स्वसेवा ही सबसे बड़ी सेवा है। एक चिन्तक ने व्यंगपूर्वक कहा है कि दूसरों पर दया करने का दम्भ करने वाला आज का आदमी खुद की हिंसा करता रहता है। इस व्यंग के पीछे जो तत्त्व छिपा हुआ है, उस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। किसी ने सच कहा है—

''अरे सुधारक ! जगत की चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार।।''

स्वयं का सुधार सबसे बड़ी अहिंसा है। जिसका चित्त जगत भर की कल्याण कामना से भरा हुआ है, वह महामानव है। एक सच्चा जैन प्रतिदिन शान्ति पाठ के माध्यम से संसार की कल्याण कामना करता है—"संपूर्ण प्रजाओं को क्षेम हो, राजा (या मंत्रीगण) बलवान और धार्मिक हो तो मेघ समय पर वर्षा करें, व्याधियों का नाश हो, क्षण भर के लिए भी अकाल, चोरी और महामारी संसार के प्राणियों को पीड़ित न करे तथा विश्व को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र का धर्मचक्र निरन्तर प्रसारित हो।" इस प्रकार हम प्रात:कालीन उपासना द्वारा भी 'अहिंसा' की ही वन्दना करते हैं।

3.3 अहिंसा विश्वधर्म—

विश्व में ऐसा कौन सा धर्म है, जिसमें अहिंसा के गीत न गाए गए हों ? आज स्कूल-पाठशालाओं, मन्दिरों और सभाभवनों की दीवालों पर जो एक वाक्यांश प्राय: लिखा हुआ दीख पड़ता है—**'अहिंसा परमो धर्म:'**–यह महाभारत के आदिपर्व के एक श्लोक का पहला चरण है। इस श्लोक में **''मा हिंस्यात् सर्वभूतानि''** अर्थात् किसी जीव की हिंसा मत करो, ऐसा आदेश दिया गया है। महाभारत के ही शान्तिपर्व में **'न वैरं कुर्वेत् केनचित्''** की प्रेरणा भी अहिंसा को बल प्रदान करने के लिए ही है। अहिंसक जीवन के लिए उपायों की विवेचना करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है—**''आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'**। कन्फ्यूशियस ने इसी का अनुवाद करते हुए अपने अनुयायियों को आदेश दिया—"तुम्हें जो चीज नापसन्द है, वह दूसरों के लिए हर्गिज मत करो। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि अहिंसा सर्वोपरि है।

'धम्मपद' में कहा गया है—"**न तेन आरियो होति येन पाणाणि हिंसति**' अर्थात् जो प्राणियों की हिंसा करता है, वह 'आर्य' कहलाने का अधिकारी नहीं है। तथागत बुद्ध स्वयं करुणा की मूर्ति थे। उनके सम्बन्ध में एक प्रसंग प्रसिद्ध है। एक बार वह किसी रसाल–पादप के नीचे बैठे थे। वृक्ष आम्र फलों से लदा था। पास में खेलते हुए कुछ लड़कों ने आम का फल पाने के लिए एक ढेला फेंककर मारा। निशाना चूक जाने से ढेला फल को न लगकर महात्मा बुद्ध के माथे पर लगा। माथे से खून रिसने लगा। लड़के डरते-डरते उनके पास आए। उन्होंने देखा कि बुद्ध की आँखों में आँसू हैं। रोते हुए वे बोले—"महात्माजी, हमें क्षमा कर दीजिए। हमसे बहुत बड़ी भूल हो गई है। आइन्दा ऐसी गलती कभी नहीं होगी।" बुद्धदेव ने सान्त्वना देते हुए कहा—"बच्चों ! मेरे माथे में चोट लगी इसलिए मैं नहीं रो रहा हूँ। ढेला मारने पर वृक्ष बदले में मीठा फल देता है। मेरे ढेला लगा लेकिन मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं तो वृक्ष से भी गया-बीता हूँ, इसलिए मैं रोता हूँ।" इसलिए प्रसिद्ध है कि सम्राट् अशोक ने महात्मा बुद्ध के अहिंसामय उपदेशों का देश-देशान्तरों में प्रचार कराया था। '**मज्झिमनिकाय**' में निर्दिष्ट तप के चार भेदों में से जुगुप्सा तप का अर्थ ही है हिंसा का पूर्णरूपेण तिरस्कार।

इस्लाम धर्म में भी जीव दया का संदेश स्थान-स्थान पर मिलता है। **कुरान शरीफ** में 'विस्मिल्लाह रहमानुर्रहीम' लिखकर खुदा को रहम का देवता कहा गया है। बताया जाता है कि कुरान में रहतम और रहम जैसे शब्दों का प्रयोग चार सौ से भी अधिक बार हुआ है। किसी के प्रति बुरा बोलने या गाली देने को भी वहाँ गुनाह कबूल किया गया है। हजरत मुहम्मद साहब की दयालुता के बारे में एक किस्सा मशहूर है। किसी शिकारी ने एक हिरनी को पकड़ लिया। उसकी कातर दशा से द्रवित होकर मुहम्मद साहब ने शिकारी से कहा—"इस हिरनी के बच्चे भूखे हैं। इसे इतनी मोहलत दे दो कि यह उन्हें दूध पिलाकर लौट आए। तब तक के लिए मैं अपनी जान को अमानत के रूप में तुम्हें सौंपता हूँ।" अहिंसा के प्रति कितनी अगाध निष्ठा थी उनके हृदय में, इस घटना से यह पता चलता है।

इस्लाम धर्म में कुर्बानी का उपदेश कब, किसने और क्यों दिया, यह विचारणीय है। मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरत अली साहब ने तो पशु-पक्षियों तक पर रहम करते हुए फर्माया है—'रे इंसान ! तू पशु-पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत बना।" दीनेइलाही के प्रवर्तक सम्राट् अकबर ने भी शब्दान्तर से यही दुहराया है। कुरानशरीफ में खुदा (परमात्मा) को सारे खल्क (दुनिया) का खलिक (पिता) तथा समस्त प्राणियों को उसका बन्दा (पुत्र) बताया गया है। कोई खलिक अपनी ही औलाद को सताने या मारने की सीख कैसे दे सकता है ? इस्लाम धर्म में गोश्त की तो कौन कहे, शराब पीने तक की मनाही है। इस्लाम अरबी का शब्द है, जिसका अर्थ 'शान्ति में प्रवेश करना' होता है।

ईसामसीह ने अपने दुश्मनों से भी प्यार करने का उपदेश दिया है। उनकी दृष्टि में प्रेम के बदले प्रेम करने में कोई मार्के की बात नहीं है। वह कहते हैं—"अपने वैरी से प्रेम कर और सताने वाले के लिए प्रार्थना कर,..... जो तुझे शाप दे, उन्हें आशीर्वाद दे। जो तुम्हारी चादर छीन ले, उन्हें अपना कुर्ता भी ले लेने दे। ..... यदि तू बुरी नीयत से किसी को देखता है तो तू उससे व्यभिचार कर चुका। अच्छा हो कि तू उस आँख पर हमेशा के लिए पट्टी बाँध दे, ताकि सारा शरीर तो नरक में जाने से बच जाए।"

ईसा का अहिंसा के प्रति लगाव बहुत गहरा था। एक जगह वह कहते हैं—"यदि तू चर्च जा रहा हो और रास्ते में तुझे याद आ जाए कि यहाँ अमुक से तेरी खटपट या अनबन है तो चर्च जाने से पहले उससे अपराध की क्षमा माँग। अपराध या भूल को स्वीकार किए बिना प्रार्थना करने का तुझे कोई अधिकार नहीं है" उन्होंने स्पष्ट कहा है—"धन्य हैं वे, जो दयावान हैं क्योंकि उन पर ही दया की जाएगी।"

यहूदी, पारसी आदि मतों की बुनियाद में भी अहिंसा की भावना पाई जाती है। इनके धर्मग्रंथों में कहा गया है कि किसी आदमी का अपमान करना उतना ही बड़ा पाप है, जितना उसका खून कर देना। पशुओं को मारने और बदले की भावना रखने का निषेध सर्वत्र किया गया है।

विश्व के प्राय: सभी धर्मों में अहिंसा के स्वर मुखरित हुए हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि जैनदर्शन में अहिंसा की जितनी सूक्ष्म और निर्दोष—निर्मल व्याख्या मिलती है, उतनी दुनिया के किसी अन्य धर्म में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ वैदिक मान्यतानुसार कृतयुग में ज्ञान यज्ञ का प्रचलन था। उसमें किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती थी। त्रेतायुग में कुछ स्वार्थी लोगों ने हिंसा को उत्तेजना दी। स्व. श्री रामधारीसिंह जी 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है—"वैदिक काल में हिंसा और अहिंसा का संघर्ष चल रहा था। कुछ ब्राह्मणों ने हिंसा का पक्ष लिया क्योंकि यज्ञ से उनकी रोजी चलती थी और हिंसा के बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं किया जा सकता था। ऐसे में निरीह पशुओं की रक्षा का भार क्षत्रियों पर आ पड़ा और वे अहिंसावाद के नेता हुए।"

3.4 अहिंसा : जिओ और जीने दो—

अहिंसा आत्मा का आलोक है। 'भगवती आराधना' में तो कहा है—**'अत्ता चेव अहिंसा'**—आत्मा ही अहिंसा है। जैनदर्शन के अनुसार हिंसा या अहिंसा का सम्बन्ध दूसरों से उतना नहीं, जितना स्वयं से है। महर्षि व्यास, महात्मा बुद्ध, यीशु, नानक आदि सभी ने एक स्वर से एक ही बात कही—"दूसरों को बचाओ, प्राणियों की रक्षा करो।" किन्तु भगवान महावीर ने जोर देकर कहा—"पहले स्वयं बचो, अपनी रक्षा करो।" जो स्वयं सुरक्षित नहीं है, वह दूसरों को भी सुरक्षा नही दे सकता। 'जिओ और जीने दो' के नारे के पीछे भी यही भावना निहित है। यहाँ पहले स्वयं जीने को कहा गया है, बाद में दूसरों को जिलाने की बात है। जो स्वयं मृत हो, वह दूसरों को कैसे जिलाएगा ? यह आत्महत्या सबसे बड़ी हिंसा है। जिसे अपना जीना ही पसन्द नहीं है वह दूसरों को जिला सकेगा, ऐसा सोचना ही हास्यास्पद है। जो अपने प्रति इतना क्रूर है, क्या वह दूसरों के प्रति दयालु हो सकता है ? जिस दीपक की लौ प्रकाशित है, वह तो बुझे हुए सैकड़ों-हजारों अन्य दीपकों को भी रोशनी बाँट सकता है लेकिन एक बुझे हुए दीपक में दूसरे दीपकों को प्रकाशित करने की क्षमता नहीं होती।

हमारे आचार्यों ने कहा है—"आत्मा में आकुलता का उत्पन्न होना ही हिंसा है। सभी धर्म प्राणों के घात को हिंसा कहते हैं किन्तु यह भूल जाते हैं कि प्राण दूसरे के ही नहीं, अपने पास भी मौजूद हैं। दूसरों के प्राणों का विघटन तो बाद में होगा, पहले अपने ही प्राणों का विघटन होता है और अपने प्राणों का विघटन होना ही वस्तुत: हिंसा है।" उनके इस कथन को बहुत गहराई से समझने की आवश्यकता है। हिंसा और अहिंसा के व्यापक अर्थों की छानबीन एवं विश्लेषण में तभी हम सफल हो सकते हैं।

संस्कृत वाङ्मय के आदि सूत्रकार आचार्य श्री उमास्वामी ने हिंसा की परिभाषा देते हुए एक सूत्र लिखा है—**"प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा"** अर्थात् प्रमाद के वश होकर किसी के प्राणों को पीड़ा देना हिंसा है। यह पद बड़े मार्के का है। प्रमाद को अनर्थों की जड़ कहा जाता है। यह प्रमाद है किस चिड़िया का नाम ? आचार्य श्री पूज्यपाद सकषाय अवस्था को प्रमाद कहते हैं (प्रमाद: सकषायत्व) तथा आचार्य अकलंकदेव के अनुसार अच्छे कार्यों के करने में आदर भाव का न होना प्रमाद कहलाता है। (**स च प्रमादं कुशलेष्वनादर:**)। इसका सीधा सा अर्थ हुआ है कि कषाय भाव से की जाने वाली क्रिया हिंसा कहलाएगी। हिंसा से बचना है तो कषाय से बचना होगा। कहा भी है—**'आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।'** कषाय मानसिक मलिनता का ही दूसरा नाम है। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि अन्त:करण की अशुद्धि हिंसा और परिणाम विशुद्धि अहिंसा है। कोई भी आदमी जब क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों के फेर में पड़ जाता है तो वह कोई अच्छा कार्य कर ही नहीं सकता और कदाचित् करना भी पड़े तो वह उसे बेमन से करता है। आचार्यों ने किसी सत्कार्य को अनिच्छा या अनुत्साह से करने को भी हिंसा कहा है। कषाय से उत्पन्न यह हिंसा ही बन्ध का कारण है। जिसने कषाय की, वह बँध गया बैचेनी और अशान्ति से। कषायी जीव का निराकुल होना असम्भव है।

ऐसे प्रमाद के वश होकर प्राणों को पीड़ा देना हिंसा है। प्राण किसे कहते हैं ? धवला में कहा है—**'प्राणिति जीवति एभिरिति प्राणाः'** अर्थात् जिनके द्वारा जीव जीता है, उन्हें प्राण कहते हैं। जैसा कि हमने पहले कहा कि प्राण दूसरों के ही नहीं, अपने भी पास होते हैं। ये प्राण दो प्रकार के हैं—(1) द्रव्य प्राण और (2) भाव प्राण। द्रव्य प्राण के दस भेद हैं—पाँच इन्द्रियां, तीन बल (मन-वचन-काय बल,) आयु और उच्छ्वास। भाव प्राणों से तात्पर्य है आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख-शान्ति, निराकुलता आदि गुण। किसी को सताने का विचार मात्र करना आत्मविकलता को न्योता देना है। इस विकलता का उत्पन्न होना ही हिंसा कहलाता है। दियासलाई की तीली रगड़ खाकर जल उठती है। स्वयं जलने के बाद सूखे घास-फूस को जलाने लगती है। तीली के जलते ही यदि तेज हवा का झोंका आ जाए तो घास-फूस जलने से बच भी सकता है किन्तु तीली स्वयं तो जले बिना रहती नहीं, इसीलिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि जीवन की सबसे बड़ी बुराई भाव हिंसा है।

3.5 जैन ग्रंथकारों ने हिंसा के चार भेद बताए हैं—

(1) संकल्पी, (2) आरम्भी (3) उद्योगी और (4) विरोधी। इनमें गृहस्थ को केवल संकल्पी हिंसा का त्याग करना होता है। **'सागारधर्मामृत'** में सोदाहरण यह बात इस प्रकार कही गई है—

''आरम्भेऽपि सदा हिंसा, सुधीः सांकल्पिकीं त्यजेत्।
ध्नतोऽपि कर्षकादुच्चैः, पापोऽध्नन्नपि धीवरः।।''

अर्थात् सुधीजन आरम्भ या गृहस्थोचित कार्यों यथा—भोजन-पाक, घर की सफाई आदि कार्यों में संकल्पपूर्वक हिंसा का त्याग करें। एक धीवर मछलियों के मारने के संकल्प से नदी में जाल डालता है। एक भी मछली जाल में न फँसे तो भी धीवर को हिंसा का पाप लगता ही है किन्तु एक किसान की नीयत अन्नोत्पादन की है, उसके हल की नोंक से जीवों की विराधना होने पर भी वह पाप का भागी नहीं होता।

एक न्यायाधीश भी मनुष्य के भावों के आधार पर ही अपना निर्णय सुनाता है। तीन 'ड कार' का उदाहरण देखें। एक ड्राइवर मोटर चला रहा है। उसी समय एक मोड़ से कोई बच्चा निकलकर सड़क पार करने लगता है। ड्राइवर उसे बचाने की कोशिश करता है किन्तु बच्चा मोटर की चपेट में आकर मर जाता है। एक डाकू किसी मुसाफिर को लूटता है। प्रतिरोध करने पर उसे गोली से उड़ा देता है। एक डाक्टर रोगी की प्राण रक्षा के लिए आपरेशन करता है किन्तु बचाने की हरसम्भव कोशिश करने पर भी रोगी मर जाता है। ये तीनों मामले कोर्ट में पेश होते हैं। तीनों मृत्यु के मामले हैं किन्तु सबका पक्ष सुनने के बाद जज का फैसला अलग-अलग होता है। तनिक सी असावधानी के लिए वह ड्राइवर को छः मास का कारावास तथा डाकू को उसकी क्रूरता के लिए फाँसी की सजा देता है एवं डाक्टर को निर्दोष होने से रिहाई मिल जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि फल क्रिया के अधीन नहीं भावों के अधीन है।

3.6 हिंसा-अहिंसा : अनेक सम्भावनाएँ—

आचार्य श्री अमृतचन्द्र ने अपने ग्रंथ **'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय'** में हिंसा-अहिंसा का बड़ा ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी विवेचन किया है। उन्होंने अनेक सम्भावनाओं की चर्चा की है—

हिंसा न करते हुए भी किसी-किसी जीव को हिंसा का बन्ध होता है, जैसे—आयुध निर्माता अपने आयुधों से स्वयं कोई हिंसा नहीं करता किन्तु हिंसा का फल तो उसे भोगना ही पड़ता है।

हिंसा हो जाने पर भी कोई-कोई जीव हिंसा के फल को नहीं भोगता, जैसे—डाक्टर अथवा आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसा में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्त या ईयासमिति से चलता हुआ साधु।

हिंसा तो करे कोई एक जीव किन्तु फल अनेक को भोगना पड़े,—जैसे—देवी के सामने किसी पशु की हत्या (या बलि) तो करे कोई एक आदमी किन्तु उसका फल भोगना पड़े उन सैकड़ों को, जो इस हत्या से हर्षित हो उसका अनुमोदन कर रहे हैं।

बहुत से लोग मिलकर हिंसा करें किन्तु फल एक को मिले, जैसे—युद्ध में लड़ती तो है सेना किन्तु उसका फल मिलता है कमाण्डर या सेनापति को। हिटलर स्वयं किसी को मारने नहीं गया, किन्तु हजारों लोगों को सैनिकों ने उसकी आज्ञा से मार डाला। इस महापाप का फल भोगने से हिटलर बच नहीं सकता।

हिंसा करने पर भी फल अहिंसा का मिले, जैसे—किसी दीन, अनाथ, अबला या साधु की रक्षा के लिए की गई हिंसा में मिलता है।

हिंसा हो या न हो किन्तु पाप का बन्ध अवश्य हो, जैसे—धीवर को होता है। शास्त्रों में तन्दुल मच्छ का उदाहरण आता है, वह आकार में छोटा होने से किसी को मारता नहीं किन्तु भावों से मारने की कल्पना करते रहने से रौरव नरक में उसे जाना पड़ता है।

ऐसे-ऐसे अनेक भंग (अपेक्षा) आचार्य श्री अमृतचन्द्र ने प्रस्तुत किए हैं, जिनसे भावों की महिमा पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है। सुप्रसिद्ध विचारक श्री अमर मुनि ने ठीक ही लिखा है—"**जब किसी की आत्मा में किसी के प्रति रोष जगा तो हिंसा हो गई तथा किसी भी रूप में झूठ बोलने, चोरी करने या व्यभिचार का दुर्भाव आया अथवा कभी क्रोधादि चतुष्टय की भावनाएँ, जो जीवन को अपवित्र बनाती हैं, उठीं तो इसी को हिंसा कहा जाता है।**" यह भाव हिंसा मिथ्यात्व या अज्ञान दशा की सूचक है इसीलिए "ज्ञानार्णव' में '**हिसैव गहनः तमः**' कहकर इससे बचने की सलाह दी गई है। अज्ञान दशा में आदमी स्वार्थी हो जाता है। अधीनस्थ व्यक्तियों से अधिक समय तक काम लेना, शक्ति से अधिक काम लेना, उनका शोषण करना या उचित वेतन न देना आदि कार्य स्वार्थ प्रेरित हिंसा के ही प्रतिफल हैं। कोई भी अहिंसक प्राणी दूसरों के प्रति कठोर नहीं होता।

भावों का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता ही है। एक व्यक्ति रोता है तो उसे देखकर दूसरों को भी रोना आ जाता है। एक हँसने वाला व्यक्ति दूसरों को भी हँसाता है। स्वयं झूठ बोलने वाला दूसरों को सत्य का पाठ नहीं सिखा सकता। क्या कोई कायर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को बहादुर बना सकता है ? किसी भोगी से आत्म निग्रह की सीख नहीं मिल सकती। महात्मा गाँधी ने अहिंसा को जीवन का अमृत कहा है। स्वच्छ हृदय वाले अहिंसक लोग ही एक शिष्ट और संयत समाज की रचना कर सकते हैं। अहिंसा का दर्शन जीवन की हर क्रिया में प्रतिपल-प्रतिक्षण सोते-जागते और उठते-बैठते होते रहना चाहिए। गाँधीजी ने लिखा है—"अहिंसा तो मानो मेरी माला के मनको में धागे की तरह है जो मेरे सारे कामों में ओतप्रोत है।

3.7 अहिंसा : उपदेश या आचरण ?

एक वैद्य के पास एक ऐसा रोगी पहुँचा, जिसकी आँखें दुख रही थीं और एक पैर में गठिया का दर्द था। वैद्यजी ने उसे दो दवायें दीं, पर उस मूर्ख ने पैर पर लगाने वाला लेप तो आँखों में आँज लिया और आँख की दवा पैर पर मल ली। उसे जो मजा इससे आया होगा, उसे आसानी से समझा जा सकता है। हिंसा और अहिंसा को लेकर भी आज कुछ ऐसा ही हुआ है। हिंसा, जो अन्याय और अनाचार के फोड़े पर मलने-मसलने की चीज थी, उसे तो हमने जाने-अनजाने अपने जीवन व्यवहार में अपना लिया है और अहिंसा, जो सदा सर्वदा, क्षण-प्रतिक्षण पालनीय-आचरणीय थी, उसे हमने उपदेश की वस्तुमात्र बनाकर रख छोड़ा है। अहिंसा अब शास्त्रों के पन्नों में कैद होकर रह गई है। ध्वनि विस्तारक यन्त्रों की सहायता से हम उसे सभा-सम्मेलनों में जोर-शोर से उछालते हैं। हम दूसरों को तो अहिंसक देखना चाहते हैं किन्तु रोज-रोज अपने द्वारा होने वाली हिंसा को प्रायः अनदेखा करते रहते हैं।

अपने जैन समाज को ही लें। रात्रि को भोजन न करने वालों का प्रतिशत निरन्तर घटता जा रहा है। ब्याह-बारातों में सूर्यास्त के बाद गोधूलि बेला में ही नहीं, दिया बाती हो जाने के बाद तक भी ज्यौनार में जीमते हुए जैनियों को कहीं भी देखा जा सकता है। पानी छानकर पीने वालों का औसत नगण्य रह गया है। आलोकितपान भोजन की बात आज केवल साधुओं तक सिमट कर रह गई है। हमें एक घटना याद आ रही है। एक आदमी के पेट में दर्द था। वह इलाज के लिए डाक्टर साहब के पास गया। डाक्टर साहब ने उससे पूछा—'आज आपने भोजन में क्या लिया है ?' उसने बताया कि आज दोस्तों के साथ बाजार में चाट-पकौड़ी और तली हुई चटपटी-मसालेदार चीजें ज्यादा मात्रा में खा ली हैं। डाक्टर ने अपने कम्पाउण्डर से कहा—इसकी आँख में दवा डाल दो।' मरीज चौंककर कहने लगा—'जी, दर्द आँख में नहीं, पेट में है।' डाक्टर ने कहा—"जानता हूँ। आँखों से देखकर खाओगे तो कभी पेट में दर्द नहीं होगा। पहले पेट दर्द का नहीं, तुम्हारी आँखों का इलाज जरूरी है।" भक्ष्याभक्ष्य का विचार किए बिना चाहे जो और चाहे जब खाने-चबाने वालों पर इस घटना में कैसा तीखा व्यंग्य छिपा हुआ है।

हमारी अधिकांश बीमारियों का कारण भोजन सम्बन्धी हिंसा भी है। अण्डा सेवन से हार्ट अटैक, धूम्रपान से कैंसर, मद्यपान से गुर्दों का निष्क्रिय होना, माँस भक्षण से स्नायु दौर्बल्य जैसी बीमारियाँ बढ़ रही हैं। यह कैसा विरोधाभास है कि आज विश्व के वैज्ञानिक और चिकित्सक तो शाकाहार के लाभों पर शोध कर रहे हैं किन्तु भारत में अण्डा-माँस-मछली के विज्ञापन की संस्कृति फल-फूल रही है। 'मछली की खेती' और 'अण्डों की पैदावार' सरीखे शब्द प्रचलित हो गए हैं। चमड़े की बनी वस्तुओं, शैम्पू, लिपिस्टिक आदि के माध्यम से होने वाली हिंसा का तो अभी पूरा हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता है।

किसी शिष्य ने पूछा था—'सर्वत्र जीवों के सद्भाव में अहिंसा कैसे पले ? आचार्य महाराज ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा है—

"जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण वज्झई"।।

ठीक प्रकार से चलने, खड़े होने, बैठने, सोने, खाने और बोलने वाला पापबन्ध को प्राप्त नहीं होता अर्थात् विवेकपूर्ण क्रिया करने वाला हिंसा के दोष से बचा रहता है। दैनिक कार्य-व्यवहार में समितियों के पालन की बात इसी दृष्टि से कही गई है। जैन मान्यता के अनुसार पाँच समितियाँ अहिंसा की रक्षा कवच के रूप में हैं। वे विवेक की प्रतीक हैं। चीजों को उठाने-धरने, सभा में बैठने-उठने, समाज में बोलने-चालने का भी एक विज्ञान है और उसका सम्बन्ध अहिंसा से है। परनिन्दा, चुगली, विकथा, कठोर वचन आदि का प्रयोग अहिंसक के लिए वर्जित है। जीवन की हर छोटी-बड़ी क्रिया में यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही अहिंसक हो सकता है। 'भागवत के इस श्लोक से भी इसका समर्थन होता है—

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं पिवेज्जलम्।
सत्यपूतं वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत्।।"

मद्य-माँस-मधु का त्याग अहिंसा की पहली शर्त है। महाकवि बाल्मीकि ने श्रीराम के बारे में लिखा है—**'न मांसं राघवो भुक्ते, न चैवं मधु सेवते।'** मधु संचय में जो हिंसा होती है, उसे कोई आँख से देख ले तो उल्टी हो जाएगी। कपड़ों पर खून का एक धब्बा लग जाता है तो जब तक उसे धो नहीं लेते तब तक मन में ग्लानि बनी रहती है। खून सने कपड़ों से मन्दिर, मस्जिद या चर्च में प्रवेश नहीं हो सकता। जिसके शरीर से रक्त बह रहा है, उसे कौन अपने पास बिठाएगा ? कैसा आश्चर्य है कि जिह्वा के क्षणिक स्वाद के लिए यह जीव खून से लथपथ माँस के लोथड़ों को अपने पेट में रख लेता है। जार्ज बर्नार्ड शा, गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे मनीषियों को, जो पहले माँसाहारी थे, माँस से ऐसी घृणा हुई कि वे कट्टर शाकाहारी बन गए।

सिगरेटों पर लिखा रहता है कि 'धूम्रपान विष है'। टेलीविजन, सिनेमा आदि के द्वारा प्रचारित किया जाता है कि 'मद्यपान विष है' किन्तु लोगों ने न तो सिगरेट पीना कम किया और न मद्यपान में ही कहीं कोई कमी आई। सिगरेट और शराब सरकार के लिए राष्ट्रीय आय के साधन हैं। विदेशी मुद्रा के लालच में बन्दरों, मेढ़कों आदि का निर्यात क्या सरकार की अहिंसा नीति के खोखलेपन को ही व्यक्त नहीं करता ? गाँधीजी ने कहा था—'साधन और साध्य दोनों ही पवित्र होने चाहिए, आज यह पवित्रता सर्वांग में कहीं दिखती है क्या ?

'अहिंसा' आत्मा की खुराक है तो 'रोटी' शरीर की। जो रोटी न्यायपूर्वक, बिना दूसरे को पीड़ा दिए हुए, दूसरों का हक सुरक्षित रहे, इस भावना से कमाई जाती है, वह खाने योग्य है। भोजन का उद्देश्य बल या आयु बढ़ाना, शरीर पुष्टि और स्वाद नहीं, बल्कि संयम-ध्यान-ज्ञान की साधना में उसका सहकारी होना है। जो पाप, बेईमानी और कपट से कमाई रोटी खाता है उसका तो पतन होता ही है, जिस परिवार में ऐसी रोटी आती है वहाँ भी धर्म नहीं टिक पाता। खान-पान का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है।

3.8 अहिंसा : पूर्णतः व्यावहारिक—

कुछ लोग अहिंसा की व्यावहारिकता पर संदेह करते हैं। उनका तर्क होता है कि अहिंसा तो साधु-सन्यासियों का धर्म है। राजधर्म में अहिंसा का क्या काम ? यदि सरकार आततायियों को दण्ड न दे तो संसार में जुल्म की वृद्धि होगी, सज्जन कष्ट पाएँगे, अधर्म का बोलबाला और धर्म का ह्रास होगा। ऐसे सन्देहों का निवारण करते हुए स्व. पं. गोपालदास जी बरैया ने 'जैन मित्र' में लिखा था—"किसी बालक के पेट में कृमि हो गए हैं तो उनसे मुक्ति के लिए धर्म यह कभी नहीं कहता कि उसे औषधि नहीं देनी चाहिए क्योंकि औषधि देने से जो कृमि मरेंगे उस हिंसा में प्रमत्त योग नहीं होगा। वहाँ बालक के स्वास्थ्य लाभ का लक्ष्य है, कृमि मारने का नहीं"।

वैसे भी गृहस्थ विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं होता। राम ने रावण से और पाण्डवों ने कौरवों से युद्ध किया, उसमें हिंसा तो हुई किन्तु उस हिंसा का कारण साम्राज्य विस्तार, धनसंग्रह, यशोलिप्सा या निजी स्वार्थ नहीं था। वे दोनों युद्ध क्रमशः सतीत्व और स्वत्व की रक्षा के लिए लड़े गए थे। युद्ध से पहले राम के दूतों ने रावण को तथा पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को समझाने की भरसक कोशिश की थी किन्तु जब मदान्धों पर समझाने का असर नहीं होता तब युद्ध अनिवार्य और अनिर्वार हो जाता है। ऐसे युद्धों का उद्देश्य कुछ निश्चित आदर्शों की रक्षा करना होता है। अहिंसा में उसका निषेध नहीं है। सम्राट खारवेल, सेनापति चामुण्डराय आदि को भी युद्ध लड़ने पड़े थे। द्वेषरहित होकर समबुद्धि से लोक कल्याण के लिए दिया गया दण्ड या प्राण हनन हिंसा की कोटि में नहीं आता। हाँ, गाँधीजी के शब्दों में—"यदि हमारी महत्त्वाकांक्षा साम्राज्य फैलाने की है, यदि हमारी आँखे दूसरों की सम्पत्ति पर गड़ी हैं, यदि भूखे पड़ोसियों के प्रति हमें कोई हमदर्दी नहीं है, हम अपने ही स्वार्थ में रत रहकर भोगों के पीछे पड़े हुए हैं तो फिर यहाँ अहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है।"

आज संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए बहुत प्रयत्न किए जा रहे हैं किन्तु वे सफल क्यों नहीं हो रहे ? उन सभी प्रयत्नों की असफलता का कारण भय और अविश्वास की भावना है। अहिंसा तो समर्पण और निर्भयता चाहती है। अभी कुछ वर्षों पहले पंजाब से भागकर आये हिन्दुओं को पंजाब के एक मंत्री ने सलाह दी—"तुम्हें अपने प्रदेश में लौटना चाहिए। हम करेंगे तुम्हारी सुरक्षा। तुम डरते क्यों हो ?" एक पलायित हिन्दू ने पूछा—"क्या आप स्वयं सुरक्षित हैं ? यदि हाँ, तो आपके पीछे-पीछे यह सुरक्षा गार्ड और हथियारबंद सैनिक क्यों चल रहे हैं ? इससे तो यही मालूम होता है कि आप स्वयं भयभीत हैं। जिसे स्वयं अपनी सुरक्षा का भरोसा न हो वह दूसरों की गारण्टी कैसे दे सकता है ? मंत्रीजी बेचारे निरुत्तर मुँह लटकाये लौट गए।

गाँधीजी जहाँ भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते थे, वहाँ निर्भय होकर पहुँच जाते, उनके साथ फौज तो क्या, रिवाल्वर भी नहीं होती थी। आत्मबल और अनशन——सत्याग्रह के अहिंसक अस्त्र से वह अनेक बार बलवाइयों का हृदय परिवर्तन करने में सफल हुए थे।

बुराइयों से संघर्ष करना ही अहिंसा है और यह अहिंसा ही सर्वोपरि धर्म है।

3.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-"हिं सैव दुर्गतेर्द्वारं" यह वाक्य किन आचार्य ने कहे ?

(क) आचार्य जिनसेन ☐ (ख) आचार्य शुभचन्द्र ☐ (ग) आचार्य रविषेण ☐

प्रश्न 2-किस ग्रंथ में निम्न लक्षण कहा गया है-अहिंसा लक्षणो धर्मः तद्विपक्षश्च पातकम्" ?

(क) आत्मानुशासन ☐ (ख) उत्तर पुराण ☐ (ग) ज्ञानार्णव ☐

प्रश्न 3-भगवती आराधना में अहिंसा धर्म के बारे में क्या सूक्ति कही है ?

(क) अत्ता चेव अहिंसा ☐

(ख) न वैरं कुर्वेत् केनचित् ☐

(ग) मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-अहिंसा के तीन पहलू कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 2-इस्लाम धर्म में जीवदया के संदेश में क्या-क्या कहा है ? हजरत मुहम्मद साहब की दयालुता के बारे में क्या किस्सा मशहूर है ?

प्रश्न 3-संस्कृत वाङ्मय के आदि सूत्रकार आचार्यश्री उमास्वामी ने हिंसा की परिभाषा देते हुए क्या सूत्र कहा है, अर्थ सहित बताइए ?

प्रश्न 4-धवला ग्रंथानुसार प्राण किसे कहते हैं और उसके कितने और कौन-कौन से भेद हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन ग्रंथानुसार हिंसा के चार भेद कौन-कौन से हैं ? इस संदर्भ में सागार धर्मामृत में सोदा हरण क्या कथन किया गया है ?

इकाई–2 अनेकांत एवं स्याद्वाद : जैनदर्शन की अद्वितीय देन

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) अनेकांत और स्याद्वाद जैनधर्म के मूल आधार हैं

(2) अनेकांतवाद एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान

(3) स्याद्वाद संशयवाद अथवा छल नहीं है

(4) अनेकांत–स्याद्वाद और सप्तभंगी का पारस्परिक संबंध

पाठ 1–अनेकांत और स्याद्वाद जैनधर्म के मूल आधार हैं

1.1 अनेकान्तवाद—

जैन दर्शन में अनेकान्त पद्धति को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने उसे 'परमागमस्य जीवम्' परमागम का प्राण प्रतिपादन करके उसके महत्त्व को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। इस सिद्धान्त की ओर यद्यपि प्राचीन जैनेतर भारतीय विद्वानों का ध्यान जैसा चाहिए वैसा नहीं गया और न उन लोगों ने इसके प्रति समुचित सन्मान का भाव प्रदर्शित किया, किन्तु अर्वाचीन पंडित इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। कई विख्यात विद्वान् तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि अनेकान्तवाद जैनधर्म की विश्व के लिए सबसे बड़ी देन (Contribution) है। फिर भी सर्वसाधारण के हृदय में इस सिद्धान्त के प्रति उपेक्षा का भाव विद्यमान है। अतएव इस विषय पर प्रकाश डालना अतीव आवश्यक है।

अनेकान्तवाद एक मनोहर, सरल एवं कल्याणकारी शैली है, जिससे एकान्तरूप से कहे गये सिद्धान्तों में पाया जाने वाला विरोध दूर होकर उनमें अभूतपूर्व मैत्री का प्रादुर्भाव होता है। अनेकांत 'अनेक' और 'अन्त' शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ होता है 'अनेक धर्मात्मक'। इस कारण यह दृष्टि वस्तु में अनेक धर्मों (Attributes) को अंगीकार करती है। जो–जो पदार्थ हमारे ज्ञानगोचर होता है वह सब अनेक धर्म समुदायात्मक है–अनेकान्त दृष्टि एक धर्म को प्रधान कर देती है और अन्य सब को गौण। जैसे ग्वालिन दही–मथन करते समय रस्सी को एक ओर से खेंचती है और दूसरी ओर से ढीला कर देती है। जैसा कि पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा गया है—

एकेनाकर्षयन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी।।225।।

अर्थात् जैसे ग्वालिन मथन करने की रस्सी को कभी एक तरफ और कभी दूसरी तरफ खैंचती है ऐसे ही जिनेन्द्र की अनेकांत पद्धति भी कभी वस्तु के एक धर्म को मुख्य बताती है और कभी दूसरे को; ऐसी स्याद्वाद पद्धति जयवंत हो।

1.2 एकान्तवाद द्वारा वस्तु तत्त्व का निर्दोष निरूपण नहीं हो पाता-

एकान्त दृष्टि एक धर्म को ग्रहण कर अन्य धर्म का परित्याग करती है इस कारण पारस्परिक विरोध भी दृढ़ हो जाता है। उदाहरणार्थ एक वस्त्र को लीजिये, बौद्ध सिद्धान्त 'सर्वक्षणिकं सत्वात्' के व्यापक नियमानुसार उस वस्त्र को 'सर्वथा क्षणिक' कह देगा। सांख्य दर्शन उसी वस्त्र को बौद्ध दर्शन से ठीक विपरीत प्रतिपादन करेगा कि वह 'सर्वथा अविनाशी तथा नित्य' है। उपरोक्त दृष्टि–बिन्दुओं में जब पारस्परिक विरोध है तब तत्त्व का क्या स्वरूप होना चाहिए ? अनेकान्त का दिव्य आलोक ही इस विषय को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकता है तथा ऐसी व्यवस्था देता है जो दोनों सिद्धान्तों की घातक नहीं होती। अनेकान्तवाद दो दृष्टियों से तत्त्व–व्यवस्था करता है। उसमें से द्रव्य–दृष्टि (Substantial point of view) द्रव्य अर्थात् (substance) को लक्ष्य बिन्दु में रखकर वस्तु को नित्य बताती है, कारण द्रव्य का

कभी नाश नहीं होता। पर्याय दृष्टि (Modal point of view) पर्यायों–अवस्थाओं (modifications) को ध्यान में रखते हुए उसे अनित्य बताती है। जब हम पर्यायार्थिक नय से, पर्याय दृष्टि से वस्त्र पर विचार करते हैं तो वह हमें नश्वर प्रतीत होने लगता है, कारण–वह वस्त्र जो कुछ समय पूर्व नवीन कहलाता था वही जीर्ण–शीर्ण अवस्था को प्राप्त होकर पुरातन कहलाने लगता है। वस्तु क्षण–क्षण में नवीन से पुरातन होती जाती है। जब तक यह परिवर्तन सूक्ष्म रहता है तब तक यह हमारी समझ में नहीं आता, किन्तु जब यह स्थूल हो जाता है तब हमारी चर्मेन्द्रियों का विषय भी हो जाता है। अतएव पर्याय दृष्टि की मुख्यता से विचारने पर बौद्ध दर्शन द्वारा मान्य 'क्षणिकत्व' वस्तु का अंग सिद्ध होता है।

अब हम यदि उस वस्त्र पर द्रव्य दृष्टि से विचारते हैं तो उसे विनाश रहित पाते हैं; कारण–जिस द्रव्य (Substance) से अथवा जिन परमाणुओं (Atoms) से वह बना है वे नश्वर नहीं हैं, उनके आकार (form) में परिवर्तन भले ही हो, किन्तु द्रव्य का नाश कभी भी नहीं होता। क्योंकि सत् का नाश और असत् का उत्पाद नहीं होता, इस कारण जो वस्त्र पर्याय दृष्टि की मुख्यता से अनित्य है वही द्रव्य दृष्टि की प्रधानता से नित्य एवं स्थायी है। ये दोनों धर्म–नित्य और अनित्य–वस्तु के अंश हैं। पूर्ण वस्तु नित्य–अनित्यात्मक है।

कोई महाशय यह कह उठते हैं कि 'नैकस्मिन् संभवात्' इस सूत्र द्वारा शंकराचार्य ने अनेकान्तवाद को सदोष बताया है, क्योंकि नित्यत्व और अनित्यत्व तो परस्पर विरुद्ध धर्म हैं। 'शीतोष्ण' की भाँति वे दोनों एक जगह नहीं पाए जा सकते। इस आक्षेप के प्रतिवाद में एक अर्वाचीन वैदिक विद्वान् ने लिखा है कि यदि श्री शंकराचार्य ने अनेकांतवाद को ठीक–ठीक समझा होता तो उन्हें उस पर आक्षेप करने का मौका ही न आता। विरुद्ध धर्मों का एक जगह पाया जाना कोई नवीन बात नहीं है। यह तो प्रतिदिन सब के अनुभव में आती है। कौन नहीं जानता है कि एक ही मनुष्य में अपने पिता की अपेक्षा 'पुत्रपना' और अपने पुत्र की अपेक्षा 'पितापना' जैसे विरुद्ध धर्म एक साथ, एक ही समय पाए जाते हैं। हाँ ! विरोध की शंका तब उचित हो सकती थी जब कि एक ही दृष्टि से परस्पर विरुद्ध धर्मों का निरूपण किया जाता। यहाँ अनेकांत दृष्टि में द्रव्यार्थिक नय से वस्तु को नित्य कहा जाता है और पर्यायार्थिक नय से उसे अनित्य कहते हैं।

1.3 अनेकांतवाद को विरोध मूलक बताना युक्तिसंगत नहीं है-

वह तो विरोध का परम शत्रु है। इसीलिये अनेकांतप्रधानी श्री अमृतचन्द्रसूरि ने (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में) कहा है कि—

सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्।।2।।

अर्थात् नयों के विलास के विरोध का नाश करने वाले अनेकान्त को मैं नमस्कार करता हूँ।

वस्तु को अनेकांतात्मक न मानकर यदि सर्वथा नित्य स्वीकार किया जाय तो क्या बाधा आयेगी, इस पर समंतभद्र आचार्य (आप्तमीमांसा में) कहते हैं—

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम्।।37।।

अर्थात् सर्वथा नित्यत्व पक्ष को मानने पर पदार्थों में हलन–चलन आदि रूप विक्रिया होना असंगत होगा, पहले ही कारण का अभाव हो जायेगा, इससे प्रमाण और उसका फल कहाँ रहेंगे ?

पुण्य–पाप क्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बंधमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः।।40।।

अर्थात्–भगवन ! जिनके आप स्वामी नहीं हैं उनके यहाँ पुण्य और पापरूप क्रिया नहीं होगी। जन्मान्तर में उत्पत्ति नहीं होगी; इससे सुख–दुःखादि का अनुभव नहीं बन सकेगा तथा बंध और मुक्ति की व्यवस्था भी न बन सकेगी।

सर्वथा अनित्य पक्ष अङ्गीकार करने पर क्या बाधा आती है, इस पर हेमचन्द्राचार्य कहते हैं—

कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृति–भङ्गदोषान्।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभंगमिच्छन्नहो महासाहसिकः परस्ते।।

अर्थात्–पूर्वकृत कर्मों का फल–भोग हुए बिना नाश हो जाना, स्वयं न किए गए कर्मों का फल भोगना, संसार का अभाव, मोक्ष का अभाव तथा स्मरण का नाश, इन अनुभवसिद्ध दोषों की उपेक्षा करके क्षणिकत्व को अङ्गीकार करने वाला दार्शनिक हे भगवन् , बहुत अधिक साहसी है।

आचार्य समन्तभद्र तो कहते हैं कि क्षणक्षयैकान्त पक्ष को स्वीकार करने पर बड़ी ही उपहासपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। क्योंकि—

हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते।।51।।

अर्थात्–(क्षणिक पक्ष अङ्गीकार करने पर) हिंसा का अभिप्राय न रखने वाला तो हिंसा करेगा; और हिंसा का संकल्प करने वाला हिंसा न कर सकेगा। हिंसा का संकल्प करने वाला तथा हिंसा करनेवाला न बंधकर अन्य ही बंधन को प्राप्त होगा; जो बद्ध है उसकी मुक्ति न होकर अन्य की ही मुक्ति होगी।

इस प्रकार आचार्य का अभिप्राय है कि क्षणिकैकान्त सिद्धान्तानुसार बड़ी विचित्र हास्यास्पद दशा हो जायेगी।

इस तरह तथा और भी अनेक युक्तियों के आधार पर मनन करने से भलीभाँति निश्चय हो जाता है कि अनेकान्त का आश्रय लिए बिना तत्त्व व्यवस्था नहीं हो सकती।

कोई दार्शनिक वैशेषिक की तरह मानते हैं कि दीपक–सदृश कुछ पदार्थ क्षणिक हैं और कुछ पदार्थ आकाश के तुल्य नित्य हैं। इस धारणा का निराकरण करते हुए स्याद्वादमञ्जरी में लिखा है कि—

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः।।

अर्थात्–दीपक से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त पदार्थ समान स्वभाव धारण करने वाले हैं। कारण सब ही स्याद्वाद की मर्यादा का उलघंन नहीं करते हैं, तथापि उनमें दीपक आदि अनित्य ही हैं और आकाश आदि कुछ पदार्थ नित्य ही हैं–इस प्रकार का प्रलाप भगवन् ! आपकी आज्ञा से विद्वेष रखनेवालों का है। इस कारण एक ही पदार्थ में नित्य–अनित्य दोनों धर्मों को मानना श्रेयस्कर है। उपर्युक्त दोनों धर्मों का यदि हम एक साथ वर्णन करना चाहें तो यह असंभव है। जिस समय हम नित्य धर्म का उच्चारण करेंगे उसी समय अनित्य का उच्चारण नहीं हो सकेगा; अथवा अनित्य धर्म को कहते समय नित्यधर्म को नहीं कह सकेंगे। अतएव 'सहवक्तुमशक्तेः'–एक साथ उभय धर्मों का प्रतिपादन करना शब्दों की सामर्थ्य के बाहर है, इस कारण 'अवक्तव्य' नाम का एक भेद और निकल आता है। इस आपेक्षिक अर्थात् कथंचित् अवक्तव्यत्व के द्वारा 'तत्त्वमनिर्वचनीयं' का सिद्धान्त भी युक्तियुक्त सिद्ध किया जा सकता है। उपर्युक्त तीन भेदों के पारस्परिक संयोग से गणित शास्त्र के (Law of Permutation and Combination) के अनुसार सात भंग भेद–उत्पन्न होते हैं, जैसे–नमक, मिर्च, खटाई इन तीन मूल पदार्थों के संयोग से निम्नलिखित सात स्वाद उत्पन्न होंगे–1. नमक, 2. मिर्च, 3. खटाई, 4. नमक + मिर्च, 5. नमक + खटाई, 6. मिर्च + खटाई तथा 7. नमक + मिर्च + खटाई। उसी प्रकार नित्य, अनित्य और अवक्तव्य इन तीन के संयोग से निम्न सात ही भंग/भेद बनते हैं–(1) नित्य, (2) अनित्य, (3) अवक्तव्य, (4) नित्य–अनित्य, (5) नित्य अवक्तव्य, (6) अनित्य अवक्तव्य और (7) नित्य–अनित्य अवक्तव्य। इन सात भेदों में प्रत्येक भेद के साथ स्यात् अथवा कथंचित् शब्द जोड़ दिया जाता है, जिसका अर्थ होता है–एक दृष्टि से, न कि सर्वथा। जैसे 'स्यात् नित्य' का अर्थ है कि वस्तु द्रव्य–दृष्टि से नित्य है। इस 'स्यात्' शब्द से यह द्योतित होता है कि यहाँ वस्तु के शेष अन्य धर्म गौण कर दिये गये हैं।

जैन ग्रंथों में यह 'सप्तभंगी न्याय' के नाम से कहा जाता है। इस संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उपर्युक्त सप्तभंगी 'नित्य धर्म' को लेकर निरूपण की गई है। इसी प्रकार एक, अनेक, सत् , असत् आदि धर्मों की अपेक्षा से पृथक्–पृथक् सप्तभंगी होती हैं। इसी भाँति अनन्त धर्मों की अपेक्षा से उतने ही सप्तभंगी होंगे।

इस अनेकान्त सिद्धान्त पर सयुक्तिक विषद विवेचन 'अष्टसहस्री' आदि महान ग्रंथों में किया गया है। यहाँ संक्षेप में प्रकृत विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई विद्वान यह शिकायत करते हैं कि जब यह प्रणाली सब एकान्तों के विरोध को दूर कर उन में भ्रातृभाव उत्पन्न करती है तो जैन ग्रंथों में जैनेतर सिद्धान्तों का खण्डन क्यों किया गया है ? इस शंका का उत्तर सीधा है, अनेकांत एकांतरूप से माने गए धर्म की कमजोरी को बताता है कि सत्य के अंश को पूर्ण सत्य मान लेना सत्यता की सीमा के बाहर है। इस कारण सत्य–प्रकाश सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि वह विकृत सत्य को दूर कर यथार्थता को प्रगट करे। जैसे—सर्वथा नित्य तत्त्व को मानना युक्ति तथा अनुभव के विपरीत है, इस कारण अनेकान्त शैली को नित्य एकान्त का निरसन कर यह बताना पड़ता है कि नित्य धर्म मानने वालों की कुशल अनित्य धर्म अंगीकार किए बिना नहीं हो सकती।

1.4 यह अनेकान्त पद्धति मतभेद–सहिष्णुता के उदार पाठ को सिखाती है—

धर्म के नाम पर जो महान विषमता की दीवार एक–दूसरे के बीच में खड़ी हो गई है वह इस विज्ञान के द्वारा दूर हो जाती है। यदि हम दूसरों के दृष्टि बिन्दुओं को समझने की चेष्टा करें तो दार्शनिक एकता के साथ–साथ लौकिक जीवन में भी एकता उत्पन्न हो सकती है। यह एकता ऐसी नहीं होगी जिसमें प्रत्येक का व्यक्तित्व (Individuality) नष्ट हो जावे। यह व्यक्तित्व के रक्षण के साथ–साथ समष्टि के भाव को उत्पन्न कर (Unity in Diversity) अर्थात् विविधता में एकता के सिद्धान्त को चरितार्थ करेगी।

प्रत्येक विचारशील का कर्त्तव्य है कि अनेकान्त के माहात्म्य को समझे, अन्य को समझावे तथा तदनुकूल आचरण करे। इसी में निखिल विश्व का कल्याण है।

1.5 स्याद्वाद का अर्थ—

'स्याद्वाद' शब्द के अन्तर्गत दो शब्द हैं—स्यात् और वाद। स्यात् का अर्थ अपेक्षा–सहित (दृष्टिकोण सहित) तथा वाद शब्द का अर्थ सिद्धान्त या मत होता है। इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ 'सापेक्ष सिद्धान्त' समझना चाहिये।

स्याद्वाद की परिभाषा—

अपने व दूसरे के विचारों, वचनों व कार्यों में अपेक्षा या दृष्टिकोण का ध्यान रखना ही स्याद्वाद की परिभाषा है।

1.6 स्याद्वाद की आवश्यकता—

मनुष्य के जितने विचार, वचन व कार्य हैं उनका कोई न कोई दृष्टिकोण अवश्य होना चाहिये ; उसी के आधार पर उनकी उपयोगिता या अनुपयोगिता समझी जा सकती है। हम अपने विचारों–वचनों व कार्यों को दृष्टिकोण के अनुकूल बनाएंगे तो वे लाभप्रद होंगे, दृष्टिकोण के प्रतिकूल बनायेंगे या उनका कोई दृष्टिकोण नहीं रखेंगे तो वे लाभप्रद तो होंगे ही नहीं, बल्कि कभी–कभी हानिप्रद हो सकते हैं। इसी प्रकार दूसरों के विचारों, वचनों व कार्यों को उनके दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर देखेंगे तो हम उनकी सत्यता (उपादेयता) या असत्यता (अनुपादेयता) का ज्ञान कर सकेंगे। यदि दूसरे के विचारों–वचनों व कार्यों को उनके प्रतिकूल दृष्टिकोण से देखेंगे या बिना दृष्टिकोण के देखेंगे तो हम उनकी सत्यता या असत्यता का ज्ञान नहीं कर सकेंगे। इसलिये हमें स्याद्वाद या सापेक्ष सिद्धान्त के अपनाने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि जीवन की स्थिरता के लिए भोजन की।

1.7 स्याद्वाद का विकास—

यों तो वस्तुयें तथा उनके विचारक अनादि हैं तो स्याद्वाद भी अनादि ही कहा जायेगा, लेकिन आवश्यकता के आधार पर ही किसी भी वस्तु का विचार किया जाता है।

इसी स्याद्वाद ही को लें—विचार करने पर मालूम पड़ता है कि जितना भी लोक व्यवहार है उसका आधार स्याद्वाद ही है, पर जनसाधारण तो स्याद्वाद का नाम तक नहीं जानते, और ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं है जो स्याद्वाद को जानकर भी अपनाना नहीं चाहते, इतने पर भी उनका व्यवहार अव्यवस्थित या बन्द नहीं हो जाता। इसका आशय यही है कि जब किस वस्तु की आवश्यकता बढ़ जाती है उसके जाने बिना हमारा कार्य नहीं चलता है तब लोगों के हृदय में उसके जानने की भावना पैदा होती है और तभी से उसका विकास माना जाता है। स्याद्वाद के विकास का विचार इसी आधार पर किया जाता है।

प्राय: सभी मतों के अनुसार पौराणिक दृष्टि से सृष्टि के आदि भाग में जीवन सुख और शान्ति के साम्राज्य से परिपूर्ण था। शनैः–शनैः सुख और शान्ति में विकृति पैदा हुई अर्थात् लोगों के हृदयों में अनुचित पाप–वासनाओं का अंकुर जन्मा, वहीं से धर्मतत्त्व प्रकाश में आया। तात्पर्य यह कि अनुचित पाप–वासनाओं से लोगों की अनुचित पापों में प्रवृत्ति होने लगी, उसको हटाने के लिए तात्कालिक महापुरुषों ने पापप्रवृत्ति के त्यागरूप व्यवस्था बनाई, उसी को धर्म का रूप दिया गया।

सुख और शान्ति के सहायक नियम या धार्मिक नियम वैसे–वैसे ही बढ़ते गये जैसे–जैसे उनके प्रतिबन्धक निमित्तों का प्रादुर्भाव होता गया। इसके अतिरिक्त विविध लोगों की विवेक–बुद्धि ने भी काम किया जिससे देश–काल के अनुसार नाना प्रकार के धार्मिक नियम बने, और उनकी उपादेयता के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार से उनका महत्त्व दर्शाया गया। तात्पर्य यह कि धीरे–धीरे धर्मों में विविधता पैदा हुई। इस धर्म–विविधता के कारण भिन्न–भिन्न समष्टियों की रचना हुई। उन समष्टियों में काल–क्रम से अपने को सत्यमार्गानुगामी और दूसरों को असत्यमार्गानुगामी ठहराने की कुत्सित ऐकान्तिक भावनायें जाग्रत हुईं। यहीं से दर्शन शास्त्र का कलेवर पुष्ट हुआ, जिसके बल पर लोगों ने स्वपक्ष–पुष्टि और परपक्ष–खण्डन में काल यापन करना प्रारम्भ किया, जिससे विरोधरूपी अन्धकार से लोक व्याप्त हो गया। उसका अन्त करने के लिए स्याद्वादरूपी सूर्य का उदय हुआ।

स्याद्वाद की जैनधर्माङ्गता—स्याद्वाद तत्त्व का विकास उन महापुरुषों की तर्कणा शक्ति का फल है जिन्होंने समय और परिस्थिति के अनुसार निर्मित धार्मिक नियमों के परस्पर समन्वय करने की कोशिश की थी, तथा इसमें उनको आश्चर्यजनक सफलता भी मिली थी। परलोक हित भावना में स्वार्थवासना का समावेश हो जाने से उसकी धारा एक देश में ही रह गई। वे महापुरुष जैन थे, इसलिये कालान्तर में स्याद्वाद जैनधर्म का मूल बन गया, अन्य कई विद्वान स्याद्वाद की विचारधारा और महत्त्व को पूर्णतः समझ नहीं पाये।

1.8 जैनाचार में स्याद्वाद—

इसके विषय में अमृतचन्द्र सूरि ने हिंसा के विषय में स्याद्वाद का जो भावपूर्ण चित्रण किया है वही पर्याप्त होगा। वे कहते हैं—

"कोई मनुष्य हिंसा नहीं करके अर्थात् प्राणियों को नहीं मार करके भी हिंसा के फल को पाता है, जबकि दूसरा मनुष्य हिंसा करके भी हिंसा के फल को नहीं पाता। एक मनुष्य को अल्प हिंसा अधिक फल देती है जबकि दूसरे मनुष्य को अधिक हिंसा भी अल्प फल देती है। समान हिंसा करने वाले दो पुरुषों में से एक को वह हिंसा तीव्र फल देती है और दूसरे को वही हिंसा मंद फल देती है। किसी को हिंसा करने के पहिले ही हिंसा का फल मिल जाता है और किसी को

हिंसा करने के बाद हिंसा का फल मिलता है। किसी ने हिंसा करना प्रारम्भ किया, लेकिन बाद में बन्द कर दिया तो भी हिंसा करने के भाव हो जाने से हिंसा का फल मिलता है। किसी समय हिंसा एक करता है, उसका फल अनेक भोगते हैं। किसी समय हिंसक अनेक होते हैं और फल एक को भोगना पड़ता है। किसी की हिंसा हिंसा का अल्प फल देती है, किसी की वही हिंसा अहिंसा का अधिक फल देती है। किसी की अहिंसा हिंसा का फल देती है, किसी की हिंसा अहिंसा के फल को देती है।"

इस प्रकार विविध प्रकार के भङ्गों से दुस्तर हिंसा आदि के स्वरूप को समझाने के लिए स्याद्वाद तत्त्व के वेत्ता ही समर्थ होते हैं।

राजनैतिक दण्ड–व्यवस्था भी इसी आधार पर बनी हुई है जिससे हिंसा आदि के विषय में स्याद्वाद का स्वरूप अच्छी तरह समझ में आ सकता है।

1.9 जैन संस्कृति में स्याद्वाद का व्यावहारिक उपयोग और उसकी सफलता—

समय–समय पर जैन संस्कृति में बहुत–से परिवर्तन हुए होंगे, परन्तु भगवान् महावीर से लेकर आजतक जितने परिवर्तन हुए वे ऐतिहासिक कहे जा सकते हैं।

जैनों के बाह्याचार पर भगवान् महावीर के बाद से विक्रम की 15वीं–16वीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर अधिक प्रभाव पड़ता गया। इसका कारण यह है कि यद्यपि भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध ने प्रचलित क्रियाकाण्ड पर प्रहार किया था, पर इस तरह की भावनायें कुछ लोगों के हृदय में बनी रही थीं जिनके आधार पर पुनः क्रियाकांड की समर्थक संस्कृति का उत्थान हुआ। इधर जैनधर्म और बौद्ध धर्म की बागडोरें ढीली पड़ीं, जिससे क्रियाकांड समर्थक संस्कृति को बढ़ने का अच्छा मौका मिल गया और उसका धीरे–धीरे व्यापक रूप बन गया। यही कारण है कि जैनधर्म उससे अछूता न रह सका।

उस समय क्रियाकाण्ड समर्थक संस्कृति का इतना अधिक प्रभाव था कि सभी लोगों का झुकाव उस तरफ हो गया था। इसलिये जैनाचार्यों को लिखना पड़ा कि—'जिस लोकाचार से सम्यक्त्व की हानि या व्रत दूषित नहीं होते हैं वह लोकाचार जैनधर्म–बाह्य नहीं कहा जा सकता।' इस प्रकार उस समय जो जैनधर्म से विमुख हो रहे थे उनकी स्थिरता करते हुए जैनाचार्यों ने जैनधर्म की सत्ता कायम रखी थी जिसका फल यह है कि आज भी भारतवर्ष में जैन लोग विद्यमान हैं।

1.10 आधुनिक भूलें—

किसी भी सिद्धांत का साधक है तर्क, स्याद्वाद सहायक है और विश्वास उसका आधार है। इन तीनों का आश्रय लेकर जिन लोगों ने वस्तु–व्यवस्था के सिद्धान्त स्थिर किये थे या जो आज करते हैं उनका ऐसा करना असंगत नहीं कहा जायेगा। बल्कि जिसका हृदय तर्क, स्याद्वाद और विश्वास से व्याप्त होगा उसके द्वारा की गई वस्तु–व्यवस्था आदरणीय समझी जायेगी। जैन सिद्धान्त की सत्यता या उपादेयता इसलिये नहीं है कि वह सर्वज्ञभाषित है, किन्तु इसलिये है कि उसका मूल तर्क, स्याद्वाद और विश्वास है। सर्वज्ञ तो सिद्धान्त की अविरोधता से सिद्ध किया जाता है। हेतु का साध्य उसी हेतु का हेतु नहीं माना जाता।

इसलिये जो लोग पूर्व पुरुषों के किसी भी सिद्धान्त को तर्क, स्याद्वाद और विश्वास के बिना मिथ्या सिद्ध करने की कोशिश करते हैं वे स्वयं भूल करते हैं और जो किसी सिद्धान्त की तर्क, स्याद्वाद और विश्वास के आधार पर परीक्षा करना पाप समझते हैं वे भी भूल करते हैं। दोनों ही स्याद्वाद के रहस्य से अनभिज्ञ हैं।

इसी प्रकार जो आचरण या व्यवहार आज संक्लेशवर्धक, लोकानुपयोगी, लोकनिन्दनीय हों वे भले ही किसी समय शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोकप्रशंसित रहे हों, आज उनको मिथ्या या अनुपादेय समझा जायेगा। इससे विपरीत जो आचार या व्यवहार आज शान्तिवर्धक, लोकोपयोगी व लोकप्रशंसित हों वे भले ही किसी समय संक्लशेवर्धक, लोकानुपयोगी व लोकनिन्दनीय रहे हों, आज उनको सत्य या उपादेय ही समझा जायेगा। इसलिये जो लोग परिस्थिति का अध्ययन किये बिना कर्मकाण्ड समर्थक संस्कृति के अपनाने में तात्कालीन जैनाचार्यों की भूल बतलाते हैं, वे स्वयं भूल करते हैं। और जो आज की परिस्थिति का अध्ययन किये बिना उस जमाने की संस्कृति को आज की संस्कृति बनाना चाहते हैं वे भी भूल करते हैं—दोनों ही स्याद्वाद के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। इतना ही नहीं, स्याद्वाद के रहस्य को हम लोग इतना भूल गये कि **'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना'** की लोकोक्ति जैनों के अन्दर ही अन्दर चरितार्थ हो रही है। प्रत्येक जैन इच्छानुकूल अपनी समझ के अनुसार अपने आचार व व्यवहार को ही धर्म समझने लगा है। उसके सामने दूसरों के उपदेशों का कुछ महत्त्व नहीं, जब तक कि वे उसकी इच्छा के अनुकूल न हों।

1.11 स्याद्वाद के उपयोग की कमी का फल—

जहाँ जैनधर्म में स्याद्वाद का अधिक से अधिक उपयोग किया गया है वहीं उसके उपयोग में कमी भी रह गई है। स्याद्वाद का उद्देश्य संपूर्ण धर्मों का समन्वय करके मनुष्य समाज में शान्ति स्थापित करना था, लेकिन दूसरी धार्मिक समष्टियाँ स्वार्थवासना की पूर्ति के लिए स्वधर्मप्रेमी होती हुई भी परमधर्म-असहिष्णु व हठग्राही बन गई थीं, इसलिये उस उद्देश्य की पूर्ति में तो स्याद्वादी असफल ही रहे। इसके अतिरिक्त जैनों में भी स्वार्थवासना आने लगी थी जिससे जैन भी स्वधर्मप्रियता के साथ-साथ परधर्मअसहिष्णुता व हठग्राहिता के शिकार हो गये, जिससे धीरे-धीरे स्याद्वादी जैन भी सम्प्रदायवादी बने। स्याद्वाद का महत्त्व एक साम्प्रदायिक पुष्टि से अधिक न रह सका। दूसरों की दृष्टि में जैनधर्म एक सम्प्रदाय समझा जाने लगा। इधर जैनों ने भी पक्षपुष्टि में अपनी शक्ति का उपयोग करना प्रारम्भ किया, जिससे जैनाचार्य जैसा कि ऊपर स्याद्वाद का उपयोग बतला आये हैं उसके अनुसार सम्प्रदाय रूप से ही जैनधर्म को कायम रख सके। उसका परिणाम यह हुआ कि आज जब साम्प्रदायिकता मनुष्य-समाज का रक्त शोषण कर रही है उसमें जैन भी कम भाग नहीं ले रहे हैं। तात्पर्य यह कि स्याद्वादी होकर के भी जैनों ने स्याद्वाद का क्रियात्मक उपयोग करना नहीं सीखा, जिससे स्याद्वाद के द्वारा मनुष्य-समाज का जो कुछ हित हो सकता था वह न तो हुआ और न हो रहा है।

1.12 हमारा कर्त्तव्य—

इस भयानक किन्तु विचारशील युग में हमारा कर्त्तव्य है कि अपने जीवन को लोकोपयोगी बनावें। यदि हम अपने जीवन को लोकोपयोगी नहीं बना सकते तो विश्वास रखना चाहिये कि हम परलोक के लिए भी कुछ नहीं कर रहे हैं। स्याद्वाद सिद्धान्त के अधिकारी रहने मात्र से हम स्याद्वाद का असर दूसरों पर नहीं डाल सकते। कार्यों का ही दूसरों पर असर हुआ करता है। हम अपने लोकोपयोगी कर्त्तव्य को स्याद्वाद के द्वारा निर्धारित कर उसी के लिए जीवन समर्पित कर दें; उसके द्वारा हमारे जीवन को शान्ति ही न होगी बल्कि जैनधर्म की लोकोयोगिता मनुष्य समाज में क्रियात्मक चमत्कार दिखला देगी।

1.13 जैनेतर दर्शनों में स्याद्वाद—

जैनेतर दर्शनों में तद्विषयक विद्वानों ने स्याद्वाद को कहाँ तक और किस रूप में अपनाया है—इस बात को बताने के पूर्व 'स्याद्वाद' शब्द का लक्षण समझ लेना आवश्यक है। क्योंकि उसी लक्षण के सहारे ही हम अजैन दर्शनों में स्याद्वाद का अन्वेषण कर सकेंगे।

स्याद्वाद का स्वरूप—स्याद्वाद शब्द एकान्त या सर्वथापन का निषेधक और अनेकता का सूचक है। स्याद्वाद का अर्थ होता है—पदार्थ का भिन्न–भिन्न दृष्टियों से (अपेक्षाओं से) परीक्षण कर निर्णय करना। क्योंकि सर्वथा एक ही दृष्टि से पदार्थ का सर्वाङ्ग निर्णय नहीं हो सकता। इसीलिए जैनाचार्यों ने सब से प्रथम '**सिद्धिरनेकान्तात्**' अर्थात् 'वस्तु तत्त्व की सिद्धि अनेकान्त स्याद्वाद से ही हो सकती है अन्यथा नहीं' की घोषणा की।

अनेकान्तवाद, अपेक्षावाद, कथंचित्वाद और स्याद्वाद–ये सब एकार्थवाची शब्द हैं। 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'कथंचित्—किसी अपेक्षा से' होता है। संस्कृत भाषा के अनुसार 'स्यात्' अव्यय है और अनेकान्त का द्योतक एवं सर्वथापन का निषेधक है। जैसा कि विद्यानन्द स्वामी ने कहा है—

''स्यादिति शब्दोऽनेकान्तद्योती प्रतिपत्तव्यो, न पुनर्विधिविचार प्रश्नादिद्योती तथाविवक्षा पायात्।''

—अष्टसहस्री

अकलङ्कदेव ने भी (अष्टशती में) स्याद्वाद का पर्यायवाचक अनेकान्त का लक्षण इस प्रकार किया है—

''सदसन्नित्यादि सर्वथैकान्त प्रतिक्षेप लक्षणोऽनेकान्तः''।

पंचास्तिकाय की (गाथा–15 की) टीका में अमृतचन्द्रसूरि ने भी कहा है—

''सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तिको द्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः'।

स्वामी समन्तभद्राचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध 'देवागम स्तोत्र' में स्याद्वाद का बहुत सुन्दर लक्षण किया है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्त–त्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभंगनयापेक्षो, हेयादेयविशेषकः।।104।।

स्याद्वाद सर्वथा एकान्त का त्याग–निषेध करके कथंचित् अपेक्षा–भेद से वस्तुतत्त्व का निर्णय करता है। और वह ही सप्तभंगी–रूप नयों की अपेक्षा से, स्वभाव और परभाव द्वारा वस्तु में सत्–असत्, नित्य–अनित्य, एक–अनेक और सामान्य–विशेष की व्यवस्था का प्रतिपादन करता है।

स्याद्वाद की उपयोगिता—वस्तु के यथार्थ स्वरूप–निर्णय के लिए स्याद्वाद का उपयोग सर्वप्रथम है। बिना इसके वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता। यदि हम किसी वस्तु को उसके किसी एक धर्म की मुख्यता से एक ही रूप मान लें, और उसके शेष समस्त धर्मों का अपलाप कर दें तो संसार का व्यवहार तक नहीं चल सकता; वस्तु का निर्णय तो बहुत दूर की बात है। उदाहरणार्थ—यदि हम किसी मनुष्य को 'मामा' कहते हैं, तो क्या वह संसार के सभी मनुष्यों का मामा है ? उत्तर में कहना पड़ेगा कि 'नहीं'। क्योंकि किसी की अपेक्षा से वह 'चाचा' भी है, किसी की अपेक्षा से 'भाई' भी है, आदि। इसी प्रकार अखण्ड अनन्त धर्मरूप वस्तु को भी किसी एक धर्म की मुख्यता से उस एकरूप कहना अयुक्त है, अपितु भिन्न–भिन्न अपेक्षाओं से उसे नाना–रूप ही मानना सर्वथा न्यायसंगत है। अब भिन्न–भिन्न दर्शनों के ग्रंथों का अवतरण देकर यह दिखाने का यत्न किया गया है कि भारतीय प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानों ने भी 'स्याद्वाद' का अपने यहाँ कहाँ तक उपयोग किया है।

1.13.1 नित्य–अनित्य विचार—

जैन दर्शन की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु द्रव्य–अपेक्षा नित्य एवं पर्याय–अपेक्षा अनित्य है। पर्याय–उत्पाद और व्यय स्वभाव वाली होती है जो कि वस्तु में अनित्यता सिद्ध करती है, साथ ही उत्पाद–व्यय से वस्तु में हमें उसकी स्थिति का, ध्रुवता का भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही स्थिरता–ध्रुवता वस्तु में नित्य धर्म का अस्तित्व सिद्ध करती है। इस प्रकार संक्षेप में वस्तु उत्पाद, व्यय और धौव्ययुक्त हुआ करती है, जैसा कि आचार्य उमास्वामि ने तत्वार्थसूत्र में कहा है—

'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'।।5/30।।

1.13.2 पतञ्जलि महाभाष्य—

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के पशपशाह्निक में जैन दर्शन के उक्त सिद्धान्त का निम्नलिखित शब्दों में कितना अच्छा विवेचन किया है—

द्रव्यं नित्यमाकृतिरनित्या, सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तं पिंडो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियन्ते, रुचकाकृतिमुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनरावृत्तः स्वर्णपिण्डः पुनरपरयाऽऽकृत्या युक्तः खदिरांगार सदृशे कुण्डलेभवतः। आकृतिरन्या चान्या च भवति, द्रव्यं पुनस्तदेव, आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्यते।

1.13.3 मीमांसा श्लोकवार्तिक—

मीमांसा दर्शन के उद्भट विद्वान् कुमारिल भट्ट ने भी पदार्थों के इस उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप को स्वीकार किया है, देखिए—

वर्द्धमानकभंगे च, रुचकः क्रियते यदा।
तदा पूर्वार्थिनः शोकः, प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः।।21।।
हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तूभयात्मकम्।
नोत्पादस्थितिभंगानामभावे स्यान्मतित्रयम्।।22।।
न नाशेन बिना शोको, नोत्पादेन बिना सुखम्।
स्थित्या विना न माध्यस्थ्यं तेन सामान्य नित्यता।।23।।

कुमारिलभट्ट का उक्त सिद्धान्त जैनदर्शन के तो अनुकूल है ही, साथ ही वह वर्णनशैली में भी स्वामी समन्तभद्राचार्य का कितना अधिक अनुकरण करता है, यह देवागमस्तोत्र के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट विदित हो जाता है। पाठकों को इस बात का ध्यान रहे कि कुमारिलभट्ट से स्वामी समन्तभद्र पांच शताब्दी पूर्व हो चुके हैं। इससे निश्चित है कि स्वामी समन्तभद्र के स्याद्वाद का प्रभाव उस समय के सभी दर्शनों पर पड़ा था। अस्तु, वे श्लोक ये हैं—

घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम्।।59।। देवागम स्तोत्र
पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम्।।60।।

गंभीर निरीक्षण से पाठक यह अनुभव किए बिना न रहेंगे कि कुमारिलभट्ट ने स्वामी समन्तभद्र के सूत्रात्मक श्लोकों की व्याख्या रूप ही व्याख्यान किया है।

सत्–असत्–विचार—

सम्पूर्ण चेतन और अचेतन पदार्थ स्वरूप से, स्व द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव से सत् हैं और पररूप से, पर द्रव्य–क्षेत्र–काल भाव से असत् स्वरूप हैं। जैसे—घट अपने द्रव्य–पुद्गल मृत्तिका, क्षेत्र–इस स्थान, काल–वर्तमान एवं भाव–लाल–काला आदि की अपेक्षा से तो 'है'—सत् स्वरूप है, वही घट पर–द्रव्य से–अन्य पटादिक के द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव से–'नहीं' है, असत्रूप है। दोनों में से किसी एक रूप मानने से वस्तु या तो सर्वात्मक हो जायेगी, अथवा लोक–व्यवहार का अभाव हो जायेगा। इसलिए वस्तु को दोनों रूप ही मानना आवश्यक है। इसीलिए आचार्य श्री समन्तभद्र ने कहा है कि—

सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।।15।। —देवागम स्तोत्र

इस श्लोक का अन्तिम चरण बहुत महत्त्व का है; आचार्य कहते हैं कि यदि उभयात्मक वस्तु न मानोगे तो पदार्थ की व्यवस्था ही नहीं हो सकती है।

1.13.4 वैशेषिक दर्शन—

महर्षि कणाद ने (वैशेषिक दर्शन, 9.1.4–5) अन्योन्याभाव के निरूपण में भी उक्त उभयरूप वस्तु को ही स्वीकार किया है—

'सच्चासत्। यच्चान्यदसदतस्तदसत्।'

उपस्कार..... यत्र सदेव घटादि असतिदि व्यवह्रियते, तत्र तादात्म्याभावः प्रतीयते। भवति हि असन्नश्वो गवात्मना। असन् गौरश्वात्मना, असन् पटो घटात्मना इत्यादि : (पृ. 313)

भाष्य—तदेवं रूपान्तरेण सदप्यन्येन रूपेणासद् भवतीत्युक्तम् (पृ. 315)

1.13.5 न्याय दर्शन—

गौतम ऋषि के न्याय–सूत्रों पर अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकायें उपलब्ध हैं। जिसमें वैदिक वृत्ति में 'कर्म से उत्पन्न होने वाला फल उत्पत्ति के पूर्व सत् है अथवा असत् ?' इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है कि—

'उत्पादव्ययदर्शनात्' –4–1–49

व्याख्या—प्राङ्निष्पत्तेः सदसदिति चानुवर्तते फल–सम्बन्धात् पूर्ववत् निष्पत्तेः प्राक् फलं कार्यं, सदसदिति वेदितव्यम्। कुतः 'उत्पादव्ययदर्शनात्'। तदुत्पत्तिविनाशयोरुपलभ्यमानत्वात्। चेदुत्पत्तेः प्राक् कार्यमसद्भवेत्—न जातूत्पद्येत असतः शशशृंगादेरुत्पत्त्यदर्शनात्। सच्चेत् न कदाचिद्विनश्येत्। पुरस्तात् सतः पश्चादपि सत्वनियमेन विनाशसंभवात्। उत्पद्यते विनश्यति च कार्यं, तस्मात् भवति प्रतिपत्तिर्नूनमेतदुत्पत्तेः प्राक् नासदस्ति, नापि सत्, किन्तु सदसदिति।।49।। (वैदिकी वृत्ति)

यहाँ कितने उत्तम प्रकार से वृत्तिकार ने सत्–असत् उभयात्मक वस्तु को स्वीकार किया है, जो कि जैन दर्शन के बिल्कुल अनुरूप ही है।

भेद-अभेद विचार—

द्रव्य से पर्याय, गुण से गुणी अथवा धर्म से धर्मी कथंचित् अपने संज्ञा–लक्षण आदि से भिन्न हैं, और आधार आदि की अपेक्षा अभिन्न हैं। यह जैनदर्शन का प्रसिद्ध कथन है। इसी को स्वामी समन्तभद्र ने (आ. मी. में) कहा है—

प्रमाणगोचरौ सन्तौ, भेदोभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया।।36।।

एक वस्तु में किसी दृष्टि से भेद एवं किसी दृष्टि से अभेद प्रमाणसिद्ध ही हैं, काल्पनिक नहीं। हाँ, इनमें कभी कोई प्रधान, तो दूसरा गौण हो जाता है।

1.13.6 वेदान्तदर्शन—

व्यास–प्रणीत ब्रह्मसूत्रों पर भास्कराचार्य–रचित भाष्य में भेद–अभेद का विचार करते हुए 'युक्तेः शब्दान्तराच्च' (2.1.1.8) सूत्र पर लिखा है कि—

अवस्था तद्वतोश्च नात्यन्तभेदो नहि शुक्लपटयोधर्म–धर्मिणोरत्यन्तभेदः, किन्तु एकमेव वस्तु, नहिनिर्गुणं नाम द्रव्यमस्ति, नहि निर्द्रव्यो गुणोऽस्ति, तथोपलब्धेः, उपलब्धिश्च भेदाभेदव्यवस्थायां प्रमाणं, प्रमाणव्यवहारिणाम्। तथा कार्याकारणयोर्भेदाभेदावनुभूयेते, अभेदधर्मश्च भेदो यथा महोदधेरभेदः स एव तरंगाद्यात्मनां वर्तमानो भेद इत्युच्यते। नहि तरंगादयः पाषाणादिषु दृश्यन्ते। तस्यैव ताः शक्तयः, शक्ति–शक्तिमतोश्चयानन्यत्वमन्यत्वं चोपलभ्यते।। (पृ. 101)

1.13.7 अद्वैतवाद—

अद्वैत जैसे अभिन्नवाद में भी भेदाभेद की चर्चा का स्पष्ट वर्णन देखने में आता है। विद्यारण्य स्वामी अपने ग्रंथ में कार्य–कारण का विचार करते हुए लिखते हैं कि—

स घटो नोमृदो भिन्नो, वियोगे सत्यनीक्षणात्।
नाप्यभिन्नः पुरा पिण्डदशायामनवेक्षणात्।।35।।

कितने स्पष्ट शब्दों में भेद–अभेद को स्वीकार किया है।

सामान्य–विशेष विचार—

यद्यपि सांख्य, अद्वैतवादी एवं और भी अनेक मत सामान्यरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, और बौद्धादिक विशेषरूप ही पदार्थ को स्वीकार करते हैं, किन्तु अनुभव, तर्क एवं आगम बताता है कि यथार्थ में पदार्थ सामान्य–विशेषात्मक उभयरूप हैं। एकरूप मानने पर दोनों का ही अभाव सिद्ध हो जाता है। इसीलिए आचार्यों ने पदार्थ को सामान्यविशेषात्मक उभयरूप माना है—

सामान्यविशेषात्मका तदर्थो विषयः।।4.1।। परीक्षामुख

अर्थात्–सामान्य–विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाण का विषय है।

इसी बात का उल्लेख पातञ्जलि भाष्य में भी है। जैसे—

सामान्य–विशेषात्मनोऽर्थस्य।।7।। समाधि पा.

सामान्य–विशेष–समुदायो द्रव्यम्।।44।। विभू. सू.

कुमारिलभट्ट ने भी सामान्य–विशेषरूप वस्तु को स्वीकार किया है। यथा—

सर्ववस्तुषु बुद्धिश्च, व्यावृत्त्यनुगमात्मिका।
जायते द्वयात्मकत्वं न, बिना साचन सिद्धयति।।5।।
अन्योन्यापेक्षिता नित्यं, स्यात्सामान्य–विशेषयोः।
विशेषाणाञ्चसामान्यं, तेचतस्य भवन्ति हि।।6।।
निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छश विषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च, विशेषास्तद्वदेवहि।।7।।
तदनात्मकरूपेण, हेतू वाच्याविमौ पुनः।
तेन नात्यन्तभेदोपि, स्यात्सामान्य–विशेषयोः।।8।।

—(पृ. 546, 47, 48)

इन उद्धरणों से यह बिल्कुल स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जैनदर्शन के स्याद्वाद–मार्तण्ड की प्रखर किरणें सर्व ही दर्शनों में निराबाध रूप से प्रकाशित हो रही हैं।

1.14 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन ग्रंथों में अनेकांतवाद का दूसरा नाम क्या है ?

(क) सप्तभंगी न्याय ☐
(ख) सर्वक्षणिक न्याय ☐
(ग) अनेक धर्मात्मक न्याय ☐

प्रश्न 2-नमक, मिर्च, खटाई के संयोग से कितने स्वाद बनते हैं ?

(क) छह ☐
(ख) सात ☐
(ग) दस ☐

प्रश्न 3-पुरुषार्थसिद्धियुपाय के रचयिता कौन है ?

(क) समन्तभद्र स्वामी ☐
(ख) अमृतचन्द्रसूरि ☐
(ग) हेम चन्द्र स्वामी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-स्याद्वाद का क्या अर्थ है ? परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 2-स्याद्वाद का विकास कैसे हुआ ?

प्रश्न 1-देवागम स्तोत्र के अनुसार अनेकान्तवाद का लक्षण लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन संस्कृति में स्याद्वाद का व्यवहारिक उपयोग और सफलता कहाँ तक सिद्ध होती है ? परिभाषित कीजिए ?

पाठ-2 – अनेकांतवाद एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान

2.1 लोहे की एक छोटी सी कील पानी में नहीं तैरती है किन्तु लोहे का विशाल जहाज पानी में तैरता है, भौतिक विज्ञान के इस तथ्य को हम अच्छी तरह जानते हैं एवं समझते हैं। कील का डूबना एवं जहाज का तैरना ये दोनों ऐसी परस्पर विरोधी बाते ऐसी हैं जिसे हमारी साधारण विवेक बुद्धि या साधारण तर्क शक्ति स्वीकार नहीं करती है। किन्तु विज्ञान जब सचमुच प्रयोग द्वारा यह दिखाता है तो हमें हमारी विवेक बुद्धि एवं तर्क शक्ति को इसे मानना होता है कि हम इन परस्पर विरोधी बातों का एक सत्य स्वीकार कर लें। सच पूछा जाये तो ज्यों–ज्यों विज्ञान का विकास होता गया त्यों–त्यों ऐसी स्थितियाँ और अधिक बनती गईं जहां दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी बातें एक साथ सत्य प्रतीत होती है। क्वाण्टम सिद्धान्त में ऐसे विरोधाभासों की बहुत प्रचुरता है। क्वान्टम सिद्धान्त भौतिक विज्ञान का ही नहीं अपितु आधुनिक ज्ञान विज्ञान का सर्वोच्च शिखर समझा जाता है। परस्पर विरोधी कथनों के एक साथ सत्यरूप में लगने के कारण क्वाटम सिद्धान्त को समझना एवं पचाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। क्वाण्टम सिद्धान्त की रग–रग में न केवल परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले कथनों की स्वीकृति दिखाई देती है अपितु सूक्ष्म कणों के वर्णन में क्वाण्टम सिद्धान्त यह कहने में भी हिचक नहीं करता है कि प्रकृति के कई रहस्यों को क्वाण्टम सिद्धान्त के समीकरणों से समझा तो जा सकता है किन्तु उन्हें शब्दों या भाषा द्वारा नहीं कहा जा सकता है।

2.2 आचार्य कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में स्याद्वाद के सातभंग लिपिबद्ध किये हैं-

सात भंगों का सरल भाषा में अर्थ है—सात प्रकार से कथन। इन सात प्रकारों में चार प्रकार ऐसे हैं जहाँ पदार्थ को किसी अपेक्षा से अकथनीय या अवर्णनीय यानी 'अवक्तव्य' स्वीकारा गया है। क्वाण्टम सिद्धान्त के पूर्व 19वीं शताब्दी में वैज्ञानिकों को यह मानने की आवश्यकता नहीं हुई कि पदार्थ अवर्णनीय या अकथनीय भी है किन्तु क्वाण्टम सिद्धान्त के आने से एक विशेष बात यह हुई कि अकथनीयता को विज्ञान में सम्मानजनक स्वीकृति प्राप्त हुई। दूसरों शब्दों में क्वाण्टम सिद्धान्त कई सन्दर्भों में अकथनीयता को व्यक्ति के ज्ञान की सीमा या यंत्रों की कमजोरी न मानकर पदार्थ की ही विशेषता स्वीकार करता है। यही नहीं, ऐसा भी है कि अकथनीयता के कथन की इतनी आवश्यकता क्वाण्टम सिद्धान्त में रहती है कि इसके बिना क्वाण्टम सिद्धान्त के अनुसार वस्तु का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता है।

2.3 प्रसिद्ध वैज्ञानिक नोबेल पुरस्कार विजेता फाइनमैन (Feynman) का प्रयोग-

उन्होंने अपनी एक पुस्तक में क्वाण्टम सिद्धान्त की अकथनीयता या अवक्तव्यता को ही मुख्य रूप से समझाने हेतु एक विस्तृत विवेचन 'क्वाण्टम व्यवहार' (Quantum Behaviour) शीर्षक के अन्तर्गत किया। इसमें उन्होंने जो प्रयोग समझाया उसकी चर्चा करना यहाँ उपयोगी होगा।

इस प्रयोग में दो छिद्रों वाली एक प्लेट के एक तरफ से इलेक्ट्रॉन भेजे जाने की व्यवस्था होती है एवं दूसरी तरफ सामने एक दूसरी प्लेट पर इलेक्ट्रॉन पहुँचने पर उनकी गिनती की जाती है। यह जानने की व्यवस्था रहती है कि किसी स्थान पर कितने इलेक्ट्रॉन पहुँचते हैं इस प्रक्रिया के परिणामों की चर्चा करते हुए फाइनमैन ने मुख्यतया यह समझाने का प्रयास किया है कि यह भी सत्य है कि इलेक्ट्रॉन अखण्ड रूप में ही सामने वाली प्लेट पर पहुँचता है यानी इलेक्ट्रॉन किसी भी छेद में से टुकड़े जैसा होकर नहीं जाता है व दोनों छेदों के अतिरिक्त अन्य मार्ग से भी नहीं जाता है किन्तु यह मानना भी असत्य होगा कि कोई इलेक्ट्रॉन या तो छेद नं 1 से होकर गया होगा या छेद नं. 2 से होकर गया होगा। यदि यह माना जाये कि इलेक्ट्रॉन या तो छेद नं. 1 से गया होगा या छेद नं 2 से गया होगा तो सिद्धान्त एवं प्रयोग में विरोध आयेगा। यानी स्थिति यह है कि

किसी अपेक्षा से छेद नं. 1 से इलेक्ट्रॉन का जाना कहा जा सकता है तो किसी अपेक्षा से उसी छेद से नहीं जाना कहा जा सकता है, और किसी अपेक्षा से अवक्तव्यपना या अकथनीयता भी कहा जा सकता है। यानी बिना अवक्तव्यपने का सहारा लिये इस प्रयोग में इलेक्ट्रान या तो छेद नं. 1 से होकर गया होगा या छेद नं. 2 से होकर गया होगा। क्योंकि सामान्य तर्क बुद्धि यही कहेगी कि चूँकि इलेक्ट्रान छेदों से ही होकर जाता है अतः या तो छेद नं 1 से गया होगा या छेद नं. 2 से गया होगा)

हम क्वाण्टम सिद्धान्त में सूक्ष्म कणों के बारे में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से स्याद्वाद के सातों भंगों (कथनों) को स्वीकार करते हैं। उदाहरण के रूप में हम यहाँ इलेक्ट्रॉन के लिये यह कथन यहाँ लिख रहे हैं जो क्वाण्टम सिद्धान्त के द्वारा मान्य है। सिद्धान्त ही नहीं अपितु आधुनिक प्रयोग भी इनका आधार है। तथ्य यह है कि कुछ प्रयोग पदार्थ का कण स्वीकार करते हैं व तरंग रूप नकारते हैं तो कुछ प्रयोग उसी पदार्थ का तरंग रूप स्वीकारते हैं व कण रूप नकारते हैं। इस शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक में वैज्ञानिकों के सामने यह विकट समस्या थी कि प्रकाश का कण रूप स्वीकारें या तरंग रूप स्वीकारें या इसी प्रकार इलेक्ट्रान का कण रूप स्वीकारा जाये या तरंग रूप। क्वाण्टम सिद्धान्त या क्वाटम यांत्रिकी ने इस समस्या को एक नवीन एवं अद्‌भुत तरीके से हल किया जिसे स्याद्वाद का एक रूप भी कहा जा सकता है। क्वाण्टम सिद्धान्त इलेक्ट्रॉन के कण–कण को स्वीकारता भी है व नकारता भी है व इसी प्रकार तरंग रूप को भी स्वीकारता भी है व नकारता भी है। साथ ही क्वाण्टम सिद्धान्त यह भी कहता है कि इलेक्ट्रॉन का कण एवं तरंग का मिला–जुला रूप ऐसा है जो वर्णनातीत है।

2.4 स्याद्वाद की भाषा में इलेक्ट्रान के बारे में निम्नांकित कथन क्वाण्टम सिद्धान्त स्वीकार करता है—

1. कथंचित् (किसी अपेक्षा से) इलेक्ट्रान कण है।
2. कथंचित् (किसी अपेक्षा से) इलेक्ट्रान कण नहीं है।
3. कथंचित् (किसी अपेक्षा से) इलेक्ट्रान कण है भी व कण नहीं भी है।
4. कथंचित् (किसी अपेक्षा से) इलेक्ट्रान का स्वरूप अवक्तव्य (अवर्णनीय) है।
5. इलेक्ट्रान का कण रूप कथंचित् अवक्तव्य है।
6. यह कथंचित् अवक्तव्य है कि इलेक्ट्रॉन कण रूप नहीं है।
7. इलेक्ट्रान कण रूप है या कण रूप नहीं है यह कथंचित् अवक्तव्य है।

2.5 स्याद्वाद से आशय-

स्याद्वाद का शाब्दिक अर्थ होता है ऐसा वाद (कथन) जिसमें 'स्याद्' या 'स्यात्' अर्थात् कथंचित् यानी 'किसी अपेक्षा से' विशेषण का सद्‌भाव है। जब वक्ता एवं श्रोता या लेखक एवं पाठक के बीच पूर्ण सन्दर्भ या धारणा स्पष्ट हो तो यह आवश्यक नहीं है कि वाणी या लेखनी में 'स्यात्' शब्द का प्रयोग हो। ऐसी स्थिति में 'स्यात्' शब्द का उपयोग गौण हो जाता है किन्तु अभिप्राय में कायम रहता है। कालबेल की आवाज सुनकर दरवाजा खोलने पर बच्चा जब अपने मामा को देखता है तो माँ से यही कहता है कि 'मामा आये हैं'। इस कथन में यह गौण है कि 'मेरे मामा' यानी 'मम्मी के भाई' आये हैं। इसी प्रकार भौतिकी विज्ञान में भी इलेक्ट्रान को जब कण कहा जाता है तब बिना कहे ही मान लिया जाता है कि इलेक्ट्रान यद्यपि कणरूप नहीं भी है किन्तु इस समय इलेक्ट्रान के कणरूप की प्रमुखता से कथन हो रहा है। यह बात अलग है कि जैसे दूल्हे के मामाजी दूल्हे के मित्रों के भी मामाजी कहलाते–कहलाते सभी बारातियों के मामाजी कहलाने लगते हैं व ऐसी स्थिति भी बनने लगती है कि वह व्यक्ति जो कि दूल्हे का मामा है, सभी का मामा बन जाता है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञान में भी इलेक्ट्रान का कणरूप एवं

प्रकाश का तरंग रूप प्रारम्भ में इतना अधिक चर्चित होता है कि साधारण विद्यार्थी यही मानने लगते हैं कि मूलतः इलेक्ट्रान कण है वह अपवाद् स्वरूप तरंग भी है। यह धारणा गलत है। वस्तुस्थिति यही है कि उसके प्रत्येक रूप के साथ कथंचित् या स्यात्पना छिपा हुआ है। अतः न केवल विज्ञान एवं व्यावहारिक जगत् में अपितु आध्यात्मिक कथनों में भी जब कभी 'किसी अपेक्षा से' या 'स्यात्' विशेषण गौण हों तब उस कथन का मर्म समझने हेतु उसमें छिपी हुई 'अपेक्षा' को समझना आवश्यक होगा।

एक उदाहरण से उक्त कथन स्पष्ट हो सकता है, जैसे शास्त्रों में इस प्रकार का कथन आता है कि 'घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन जन रखवाले' अर्थात् घर एक कैद है, पत्नी हथकड़ी है व रिश्तेदार उस कैद के सिपाही है। अब यहाँ 'स्याद्वाद' लगाना नहीं भूलना चाहिए कि किसी अपेक्षा से ऐसा कहा गया है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अपनी पत्नी व घर को छोड़कर दूसरे शहर में दूसरी महिला से नाता जोड़ा जाये। वस्तुतः जब तक गृहस्थपने की सुविधाओं में आसक्ति है तब तक परिवार को यथायोग्य स्नेह, सम्मान एवं अधिकार प्रदान करना ही चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में भी किसी भी घटना या कथन में छिपे हुए विचित्र अभिप्रायों को समझने का प्रयास करें तो जीवन में बहुत कुछ शान्ति एवं समृद्धि पा सकते हैं। जब हमारे रिश्तेदार या मित्र अप्रिय वाक्य बोलते हैं तब हम स्याद्वाद को याद करके उस वाक्य में छिपे हुए प्रेम या हित या अन्य मजबूरी को पहचान कर नाराज होने से या अपने ही व्यक्ति से दुश्मनी करने से बच सकते हैं। इसी प्रकार जीवन की किसी घटना में उसके तत्काल हानिकारक प्रतीत होने वाले पक्ष के साथ–साथ उसके संभावित लाभदायक उजले पक्ष पर भी विचार करें तो स्याद्वाद का दर्शन हमारे जीवन को धन्य बना सकता है।

इस भूमिका के साथ आगे के पृष्ठों में कुछ उदाहरण सारणी के रूप में दिए जा रहे हैं। सारणी के प्रथम स्तम्भ में भौतिक विज्ञान में अनेकान्तवाद सम्बन्धित उदाहरण है। दूसरे स्तम्भ में अध्यात्म से सम्बन्धित उदाहरण है।। मुख्य उद्देश्य अध्यात्म के अनेकान्तवाद को समझाने का है। अतः भौतिक विज्ञान का उदाहरण अध्यात्म की विषय वस्तु के अनुसार चुना गया है।

जैसे बाहर का छिलका सड़ा–गला हो तो अन्दर आम का रस शुद्ध एवं स्वादिष्ट नहीं रह सकता है। इसी प्रकार व्यावहारिक जीवन की पवित्रता के बिना आध्यात्मिक जीवन की श्रेष्ठता संभव नहीं है। जीवन में साम्यभाव, तनाव शैथिल्य एवं मानसिक संतुलन हेतु व्यावहारिक जीवन को भी सुधारना आवश्यक होता है। इसे ध्यान में रखते हुए प्रत्येक सारणी के तीसरे स्तम्भ में पहले एवं दूसरे स्तम्भ के अनुरूप व्यावहारिक जीवन में उपयोगी सूत्र प्राप्त किये गये हैं। तीनों स्तम्भों की विषयवस्तु अत्यन्त भिन्न होते हुए भी तीनों में तर्क की गहराई एवं तर्क की दिशा बहुत कुछ समान है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आगामी सारणियों में यह प्रयास किया गया है कि भौतिक विज्ञान से प्राप्त तर्क का उपयोग आध्यात्मिक जीवन एवं व्यावहारिक जीवन में हो सके।

श्री उमास्वामी के अनुसार, 'सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र (की एकता) मोक्षमार्ग है। इसी को ध्यान में रखते हुए आगामी सारणियों में विषयवस्तु ऐसी चुनी है ताकि यह वर्णन सच्चा श्रद्धान (सम्यग्दर्शन), सच्चा ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) एवं सच्चारित्र प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो।

सारणी क्रं. 1 सूक्ष्म एवं स्थूल

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
एक अपेक्षा से जल द्रव रूप है। जल वाष्प रूप है। जल ठोस रूप है।	**एक अपेक्षा से** जीव मनुष्य है।..... जीव हाथी है।..... जीव देव है।.....	**एक अपेक्षा से** मैं धनी हूँ। मैं गरीब हूँ। मैं अफसर हूँ।... मेरे पद के अनुरूप मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन एवं लोकोपकार करना है व अपने में सुधार करना है।

दूसरी अपेक्षा से जल न तो ठोस है, न द्रव है और न गैस है। ठोस, द्रव या गैस तो जल के कई अणुओं के समुदाय के शक्ल के नाम हैं। जैसे एक ईंट न तो मकान होती है , न दुकान होती है और न ही मालगोदाम होती है। कई ईंटें किस रूप में एकत्रित होती हैं; उसके अनुसार मकान, दुकान या मालगोदाम नाम बनता है। इसी प्रकार जल का एक अणु न तो ठोस होता है, न द्रव होता है और न गैस होता है।	**दूसरी अपेक्षा से** जीव न मनुष्य है, न देव है, न हाथी है,.....। मनुष्य, हाथी, देव आदि तो जीव एवं कई पुद्गल परमाणुओंके समुदाय के नाम है।	**दूसरी अपेक्षा से** मैं न तो धनी हूं, न गरीब हूं, न अफसर हूं। ये बाहरी संयोग क्षणिक हैं। अतः इन बाहरी संयोगों के आधार पर न तो अभिमान करूं और न ही अपने को छोटा समझूं।

सारणी क्रं. 2 कर्ता–अकर्ता

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
एक अपेक्षा से ऊर्जा की बचत करना चाहिए। ऊर्जा की देश में कमी है अतः ऊर्जा उत्पादन करना चाहिए। अच्छे वैज्ञानिक एवं इंजीनियर तैयार करना चाहिए जो ऊर्जा उत्पादन का कार्य कर सकें।	**एक अपेक्षा से** जीव को बचाना चाहिये। जीव की मृत्यु होती है। जीव हिंसा नहीं करना चाहिए। जीव एक दूसरे का उपकार कर सकते हैं। (परस्परोपग्रहो जीवानां)	**एक अपेक्षा से** देश व परिवार का विकास करने हेतु हमें सेवा एवं त्याग करना चाहिए।
दूसरी अपेक्षा से ऊर्जा का न तो नाश होता है और न ही उत्पादन किया जा सकता है। ऊर्जा की मात्रा में कोई घट–बढ़ नहीं हो सकती है। ऊर्जा वस्तु में ही होने पर प्रकट होती है। यानी इंजीनियर या वैज्ञानिक ऊर्जा का उत्पादन नहीं कर सकते हैं।	**दूसरी अपेक्षा से** जीव न जन्मता है और न ही मरता है। जीव को हमने बचाया है यह अहंकार न करें। हम अजर, अमर अविनाशी हैं यह श्रद्धान करके निर्भय बनें।	**दूसरी अपेक्षा से** दूसरों की मदद करने का अहंकार न करें।

सारणी क्रं. 3 शाश्वत अशाश्वत

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
जिसे हम कोयले का जलना कहते हैं, उसे रसायन शास्त्र की भाषा में निम्नांकित रासायनिक क्रिया द्वारा व्यक्त करते हैं :	उमास्वामी ने बताया है कि– **सत् द्रव्य लक्षणं।** **उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।**	कई नुकसान ऐसे होते हैं जो कई लाभ के दरवाजे भी खोलते हैं। कुछ आधुनिक विद्वान् यहाँ तक स्वीकारते

$C + O_2 — CO_2$ + ऊर्जा

भौतिक विज्ञान द्वारा इस क्रिया का विश्लेषण करें तो बड़ा विचित्र लगेगा। जरा पता लगायें की कौन जला ? कार्बन (C) में 6 प्रोटॉन, 6 न्यूट्रॉन एवं 6 इलेक्ट्रॉनथे। ऑक्सीजन के अणु (O_2) में 16 प्रोटॉन, 16 न्यूटॉन एवं 16 इलेक्ट्रॉन थे। अब कार्बन डाई आक्साइड (CO_2)में 22 प्रोट्रॉन, 22 न्यूट्रॉन एवं 22 इलेक्ट्रॉन हैं। यानी जलने के पहले भी 22 प्रोटॉन, 22 न्यूट्रॉन एवं 22 इलेक्ट्रॉन रहते हैं। तो फिर कौन जला ? इसका उत्तर यह है कि स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि कार्बन जला है किन्तु सूक्ष्म रूप से जांच करने पर पता चलता है कि कोई भी कण नहीं जला है केवल विभिन्न इलेक्ट्रॉनों, प्रोट्रॉनों एवं न्यूट्रॉनों के पड़ोसी बदले हैं। अनेकान्तवाद की भाषा में जलना हुआ भी है व जलना नहीं भी हुआ है। स्याद्वाद की प्रधानता से कथन करें तो किसी अपेक्षा पदार्थ जलता है किसी अपेक्षा नहीं जलता है।

अर्थात् द्रव्य में उत्पाद एवं नाश होते हुए भी द्रव्य का ध्रुवत्व बना रहता है।

जन्म, मृत्यु भी एक सच्चाई है तो आत्मा की अजरता–अमरता भी एक परम सच्चाई है। न केवल आत्मा अपितु जड़ भी इसी अपेक्षा अजर अमर है।

हैं कि हर हानि में लाभ का बीज दिखता रहता है। (within every adversity there is a seed of an equivalent or greater benefit)

सारणी क्रं. 4 अदृश्य घटक

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
ट्रांजिस्टर (रिसीवर) कई छोटे–छोटे–छोटे पुर्जों से मिलकर बना होता है। यदि सभी पुर्जे ठीक हों व सही ढंग से जुड़े हों व उचित बैटरी लगी हो तो उससे किसी रेडियो स्टेशन का प्रोग्राम सुन सकते हैं। ट्रांजिस्टर के चालू करने पर उससे लता मंगेशकर के कंठ की	शरीर भी ट्रांजिस्टर की तरह है। आत्मा को नकारने वाले सारा श्रेय ट्रांजिस्टर को ही देते हैं। रेडियो स्टेशन की तरंगों की तरह आत्मा की उपस्थिति अध्यात्मवादी स्वीकारता है।	हमें यह समझ में आना चाहिए कि जो कुछ भी घटित होता है उसका श्रेय किसे वे कितना दें। जैसे प्रस्तुत विषय विवेचन का श्रेय ऐसे कई पूर्व विद्वानों व मनीषियों को भी है जिनसे या जिनके ग्रंथों से यह विषय ग्रहण किया गया है। इसी तरह शरीर के जनक, परिवार के सदस्य, स्याही, स्याही के

आवाज जो सुनाई देती है उसके बारे में निम्नांकित कथन बन सकते हैं– 1. आवाज ट्रांजिस्टर के पुर्जों से निकल रही है। उसमें गायिका लतामंगेशकर को श्रेय बिल्कुल नहीं है। यदि ट्रांजिस्टर का एक भी पुर्जा खराब हो जाये तो गाना सुनाई नहीं देगा। 2. आवाज गायिका लता मंगेशकर की है। उसमें ट्रांजिस्टर को श्रेय नहीं है। यदि वह गाना रेडियो स्टेशन से रिले नहीं होता व उस गाने की तरंगे ट्रांजिस्टर में प्रवेश न करतीं तो ट्रांजिस्टर कितना ही अच्छा क्यों न हो उससे वह गाना नहीं निकलता। 3. ट्रांजिस्टर के बजने में श्रेय ट्रांजिस्टर को भी है व रेडियो स्टेशन की तरंगों को भी है।		निर्माता..... आदि सभी सहयोगियों पर विचार करें तो सबका योगदान इस विषय के प्रस्तुतीकरण में समाविष्ट है।

सारणी क्रं. 5 बंधन

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
हाइड्रोजन के एक परमाणु में एक प्रोटॉन एवं एक इलेक्ट्रॉन होता है (चित्र क्रं.२) इसके बारे में निम्नांकित कथन बन सकते हैं : 1. इलेक्ट्रान प्रोटॉन से बंधा हुआ है या प्रोटॉन इलेक्ट्रॉन से बंधा हुआ है। दोनों एक-दूसरे से बँधे हुए हैं व हाइड्रोजन परमाणु की दृष्टि में प्रोटॉन एवं इलेक्ट्रॉन दोनों एक साथ होने से उनके धन एवं ऋण आवेश जुड़ जाने से हाइड्रोजन परमाणु का कुल आवेश शून्य बन गया है। 2. इलेक्ट्रॉन की दृष्टि में प्रोटॉन उसका पड़ोसी है। इलेक्ट्रॉन का ऋण आवेश थोड़ा भी नहीं बदला है।	संसारी जीव के साथ कर्म होते हैं। किसी अपेक्षा यह कहा जा सकता है कि आत्मा ने कर्म बांधे हैं या कर्मों ने आत्माको बांधकर संसार में रोक रखा है। वस्तुतः दोनों ने एक दूसरे का का कुछ नहीं बिगाड़ा है। आत्मा का एक प्रदेश भी कर्म परमाणुओं एवं शरीर के साथ रहने से कम ज्यादा नहीं होता है। आत्मा की शक्ति में कोई कमी नहीं आती है व वह न्यारा का न्यारा है। इस शक्ति को पहचानकर पुरुषार्थ करने पर आत्मा की शक्ति प्रकट हो सकती है। यानी आत्मा को पृथक् पहचानकर मुक्त किया जाना संभव है।	हम अपने आपको कई बंधनों से जकड़ा अनुभव करते हैं। यह मानकर कि समय की कमी है, धन की कमी है, साधनों की कमी,..... इत्यादि। बंधन हमारे जीवन में हम इतने अधिक मान लेते हैं कि हम इन कमियों से जकड़ा हुआ सा अनुभव करते हैं। कभी विपरीत रूप से भी विचार किया जा सकता है कि मेरे पास कितना समय है या कितना धन है या कितने साधन हैं। ज्यों ही हम इस दिशा में सोचना शुरु करेंगे हमें ऐसा लग सकता है कि आगे बढ़ने एवं लोकोपकारी सत्कार्य करने हेतु हमारे पास बहुत कुछ है।

कॉम्पटन विवर्तन (Compton rcattering) जैसे प्रयोग द्वारा इलेक्ट्रॉन की स्वतंत्रता सिद्ध होती है। 3. इलेक्ट्रॉन की तरह प्रोटॉन की दृष्टि में प्रोटॉन भी स्वतंत्र है व उसका धन आवेश थोड़ा भी नहीं बदलता है। नाभिकीय संलयन (nuclearfusion) जैसी क्रियाओं में प्रोटॉन इस प्रकार व्यवहार करता है जैसे इलेक्ट्रॉन से वह स्वतंत्र है।		आज के मनोवैज्ञानिक कई समस्याएँ इसी सिद्धान्त द्वारा हल करते हैं जहाँ दो के बीच लड़ाई हो तो प्रेम का अस्तित्व दर्शाते हैं व साधन या समय की कमी की भावना से ग्रस्तता हो तो इनकी प्रचुरता का एहसास कराते हैं।

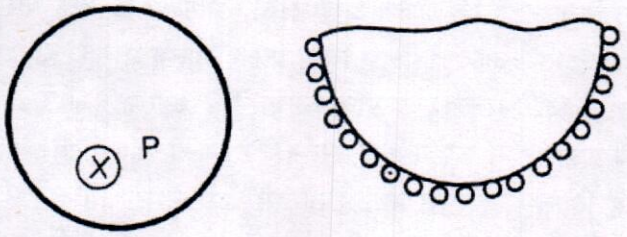

(अ) हाइड्रोजन परमाणु एक प्रोटॉन एवं एक इलेक्ट्रॉन से मिलकर बना होता है।

(ब) मोती का हार मोती एवं धागे से मिलकर बना है। (हार की अपेक्षा मोती एवं धागा हार के ही अनिवार्य एवं साथ रहने वाले अवयव है। किन्तु मोती की अपेक्षा मोती धागे से पृथक् है। धागे की अपेक्षा धागा मोती से पृथक् है। इसी प्रकार हाइड्रोजन परमाणु की अपेक्षा प्रोटॉन एवं इलेक्ट्रॉन इस परमाणु के अनिवार्य एवं साथ में रहने वाले अवयव हैं। हाइड्रोजन परमाणु का विद्युत आवेश शून्य है। किन्तु इसी परमाणु में इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा इलेक्ट्रॉन का ऋणात्मक आवेश है तथा वह प्रोटॉन से पृथक् है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य की अपेक्षा आत्मा एवं शरीर साथ हैं किन्तु आत्मा की अपेक्षा आत्मा शरीर से पृथक् है।)

सारणी क्रं. 6 शुद्ध-अशुद्ध

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
एक अपेक्षा से गंदा पानी नहीं पीना चाहिए। पानी में गन्दे पदार्थ मिल जाने से पानी अशुद्ध हो जाता है। **दूसरी अपेक्षा से** जिसे हम गंदा पानी कह रहे हैं वह पानी एवं अन्य पदार्थों का संयोग हैं इस तथा कथित गंदे पानी में भी जो	**एक अपेक्षा से** अपनी आत्मा को मलिन नहीं बनाना चाहिए। बुरे कार्यों से डरना चाहिए। **दूसरी अपेक्षा से** आत्मा तो सभी वासनाओं एवं बुराइयों से परे है। ये वासनाएँ आत्मा के साथ होते हुए भी पृथक् हैं। आत्मा	'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं'। यह कथन निराधार नहीं है।

पानी उसका अणु (H_2O) वैसा ही है जैसा की शुद्ध पानी का अणु। पानी का अणु चाहे स्वच्छ पानी का लें या गन्दी नाली का, दोनों अणु एक जैसे ही होंगे। पानी के अणु में गंदगी का अणु प्रवेश नहीं करता है।	संसार में भ्रमण कर रही है किन्तु आत्मा की पवित्रता ज्यों की त्यों है। उसमें कोई कमी नहीं हुई है।	

सारणी क्रं. 7 अवक्तव्यता में मार्ग

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
प्रकाश कण रूप होता है या तरंग की तरह है ? न्यूटन के समय से ही इसका उत्तर खोजा जा रहा है। विवाद भी रहा है। आज क्वाण्टम सिद्धान्त के आधार पर यह माना जाता है कि विवाद हल हो गया है। यद्यपि प्रकाश का स्वरूप हम समझ गये हैं किन्तु साथ ही यह भी समझ गये हैं कि इसका स्वरूप शब्दों एवं चित्रों से परे है। हम यह जान गये हैं कि प्रकाश कण रूप भी है व तरंग रूप भी है, दोनों रूप भी है व दोनों रूप नहीं भी है। प्रकाश कदाचित् अवक्तव्य भी है। यही बात इलेक्ट्रॉन आदि अन्य सूक्ष्म कणों के बारे में कही जा सकती है। इस स्थिति से वैज्ञानिक अब परेशान नहीं भी हैं। वैज्ञानिक यह कहते हैं कि इसका उत्तर महत्त्वपूर्ण नहीं है कि प्रकाश क्या है ? महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि किस परिस्थिति में प्रकाश क्या व्यवहार करेगा।	आत्मा कैसा है ? उसके विभिन्न प्रदेश किस प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं कि आत्मा अखण्ड है ? ज्ञान, सुख आदि कई गुण किस प्रकार आत्मा में सर्वत्र एक साथ व्याप्त हैं ? आत्मा में रूप नहीं है, रस नहीं है, गन्ध नहीं है, स्पर्श नहीं है तो इसे कैसे समझा जाये ? इन प्रश्नों के उत्तरों से अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि आत्मा का विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार क्या है। चींटी में आत्मा चींटी के आकार की तो वही आत्मा हाथी में हाथी के आकार की हो जाती है। यह जानना आत्मा के व्यवहार को जानने का एक उदाहरण है। 'आत्मा बाहरी पदार्थों से ध्यान हटाकर आत्मा में लीन हो जाये, तो आत्मा के साथ रहने वाले दु:ख, वासनाओं आदि का क्षय हो जाता है। यह जानना भी आत्मा के व्यवहार को जानने का एक उदाहरण है।	एक ही व्यक्ति के दो विरोधी रूप हमें जब दिखाई देते हैं तो हम कई बार परेशान हो जाते हैं। करोड़ों के दानी को भी कभी हम इस रूप में पा सकते हैं कि वह व्यक्ति कंजूस लगे। अत: परेशानी से बचने के लिए किसी भी व्यक्ति पर ऐसे स्थायी लेबल नहीं लगाना चाहिए कि अमुक व्यक्ति महादानी है या अमुक व्यक्ति महाकंजूस है। आज के मनोवैज्ञानिक भी ऐसे लेबल लगाने को बहुत बड़ी गलती बताते हैं। अत: कोई व्यक्ति क्षमाशील है या क्रोधी है ऐसे प्रश्न के बदले महत्वपूर्ण यह जानना है कि किन परिस्थितियों में अमुक व्यक्ति के क्रोधी होने की संभावना अधिक है, व किन परिस्थितियों में अमुक व्यक्ति के शान्त बने रहने की संभावना है।

सारणी क्रं. 8 कौन साधक ? कौन बाधक ?

विज्ञान	अध्यात्म	व्यावहारिक जीवन
लोहा पानी में तैरता भी है (उदाहरण–जहाज) एवं लोहा पानी में डूबता भी है (उदाहरण–लोहे की कील)। इसी प्रकार (दूरी के आधार पर) एक प्रोटॉन दूसरे प्रोटॉन को अपनी ओर आकर्षित भी करता है एवं प्रतिकर्षित भी करता है।	शरीर आत्मा के पतन में भी सहायक हो सकता है व वही शरीर आत्मा के विकास में भी सहायक हो सकता है।	लाभ समझकर किसी वस्तु में बहुत आसक्त भी रहे हैं तो कुछ क्षण के लिये उसका दूसरा पक्ष भी विचार करें। इसी प्रकार जिसे हानिकारक समझकर बहुत नफरत कर रहे हों तो उसका भी दूसरा पक्ष सोचकर साम्यभाव धारण करने का प्रयास करें।

2.6 अनेकांतवाद पदार्थ का सच्चा स्वरूप प्रकट करने की एक शैली-

उपर्युक्त सारणियों के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि अनेकान्तवाद या स्याद्वाद शब्दों का विकास मात्र न होकर एक ऐसी शैली है जिसके बिना किसी भी पदार्थ का सच्चा स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सकता है। हम क्या हैं ? यदि शरीर जीव नहीं है व आत्मा अजर अमर है तो फिर प्राणीरक्षा एवं प्राणिबध में पुण्य–पाप क्यों ? ऐसे कई प्रश्न जिज्ञासु के मस्तिष्क में आते हैं जिनका उत्तर अनेकान्तवाद के बिना संभव नहीं होता है। यही कारण है कि हमारे आचार्यों ने कई दृष्टिकोणों (नयों) से पदार्थ का स्वरूप समझाया है। कुछ महत्त्वपूर्ण नयों के नाम इस प्रकार हैं–नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत, निश्चय, व्यवहार, परमशुद्ध निश्चयनय, शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनय, सद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय, सद्भूत उपचरित व्यवहार नय, असद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय, असद्भूत उपचरित व्यवहारनय, आदि) एक तरफ वासनाएं एवं शरीर को भी आत्मा का नहीं माना है तो दूसरी तरफ असद्भूत उपचरित व्यवहार नय से पत्नी, मकान आदि से भी जीव का रिश्ता जोड़ा है अन्यथा स्वपत्नी–परपत्नी एवं सम्पत्ति–पर संपत्ति में भेद ही नहीं रहता। बहुत ही नाप–तौल की भाषा बोलने वाले भौतिक विज्ञान में भी कई स्थानों पर विरोधाभास प्रतीत होता है जिन्हें उपर्युक्त सारणियों में विस्तार से कुछ उदाहरणों द्वारा समझाया गया है।

एक सावधानी अनेकान्तवाद के सम्बन्ध में यह भी रखना आवश्यक है कि मिथ्या अनेकान्तवाद से बचकर सम्यक् अनेकान्तवाद अपनाना चाहिये। जैसे एक तरफ किसी व्यक्ति को सभी का मामा ही मान लेना मिथ्या एकान्त होगा क्योंकि वह व्यक्ति किसी का बेटा भी है तो किसी का पौत्र भी है.....। किन्तु यदि अनेकान्त को हम इतना मनमाने ढंग से खींच लें कि हम कहने लगें कि एक ही व्यक्ति किसी का पिता भी होना चाहिए व किसी का पति भी होना चाहिये तो अविवाहित व्यक्ति के लिय ऐसा अनेकान्तवाद मिथ्या अनेकान्तवाद होगा। ऐसा मिथ्या अनेकान्त त्याज्य है। अतः चाहे भौतिक विज्ञान हो चाहे अध्यात्म, अनुभव, प्रमाण एवं तर्क से यह भी सन्तुष्ट कर लेना चाहिए कि वर्णित अनेकान्त मिथ्या अनेकान्त तो नहीं है।

2.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-कौन सा सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान का सर्वोच्च शिखर माना जाता है ?

(क) क्वान्टम सिद्धान्त ☐
(ख) अनेकांत वाद ☐
(ग) कोई नहीं ☐

प्रश्न 2-व्यवहारिक जीवन की पवित्रता के बिना.....की श्रेष्ठता संभव नहीं है ?

(क) स्याद्वाद जीवन ☐
(ख) आध्यात्मिक जीवन ☐
(ग) गृहस्थ जीवन ☐

प्रश्न 3-श्री उमास्वामी के अनुसार मोक्षमार्ग है।

(क) सिर्फ सम्यग्दर्शन ☐
(ख) मिथ्याज्ञान ☐
(ग) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-'घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन रखवारे' इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 2-विज्ञान की दृष्टि से 'अदृश्य घटक' को सिद्ध करिये ?

प्रश्न 3-'कर्ता-अकर्ता' को विज्ञान-अध्यात्म-व्यवहारिक जीवन में कैसे घटित किया है ? लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-आधुनिक भौतिक विज्ञान में अनेकांतवाद को किस प्रकार से परिभाषित किया ? उदाहरण देकर लिखिए ?

पाठ 3 – स्याद्वाद संशयवाद अथवा छल नहीं है

3.1 जैनों का स्याद्वाद–न्याय पदार्थ को जानने के लिए एक निर्दोष साधन है, इसके बिना हमें पदार्थ का केवल एकपक्षीय ज्ञान होता है; सम्यक्ज्ञान नहीं हो सकता। यह वस्तु का सब अपेक्षाओं (By all view points) से विचार कर प्रतिपादन करता है। 'ही' के एकान्त आग्रह का निराकरण कर यह बतलाता है कि पदार्थ ऐसा 'भी' है। पदार्थ का विभिन्न धर्मों की अपेक्षा से प्रतिपादन करना ही स्याद्वाद न्याय है।

इस बात को मानने से कोई इन्कार न करेगा कि यह विश्व–प्रकृति अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्मात्मक है। इस ब्रह्माण्ड की छोटी से छोटी वस्तु को लेकर जब हम बड़ी से बड़ी वस्तु का विचार करते हैं तो हमें निःसन्देह कहना पड़ता है कि उसके गुणों की कोई संख्या नहीं है। पदार्थ के कुछ स्थूल गुण तो हमारे अनुभव में आ जाते हैं, किन्तु उन सूक्ष्म गुणों की कोई संख्या नहीं जो हमारी मनुष्य बुद्धि के बाहर हैं। मनुष्य की बुद्धि परिमित है, उसके द्वारा अपरिमित गुणवाली वस्तु को एक साथ कैसे जाना जा सकता है ? तो स्याद्वाद हमें एक ऐसा मार्ग बताता है जिससे हम वस्तु को निर्दोषतया जान सकें।

यदि प्रत्येक युग के दर्शनाचार्यों ने स्याद्वाद को वास्तविक अर्थ में अपनाया होता तो साम्प्रदायिकता की सृष्टि न होती, क्योंकि स्याद्वाद मनुष्य को विशाल बुद्धि देता है और साम्प्रदायिकता संकीर्ण बुद्धि का फल है। वस्तु का विवेचन करने के लिए उदारबुद्धि से काम लेना स्याद्वाद कहलाता है। वस्तुतः स्याद्वाद केवल जैनदर्शन की ही वस्तु नहीं है, वरन किसी न किसी रूप में वह आपको हर दर्शन में मिलेगी; तो भी स्याद्वाद का सैद्धान्तिक स्वरूप जैनदर्शन ने ही प्रकट किया है, इसलिए वह केवल जैनदर्शन की ही वस्तु मानी जाने लगी। तब साम्प्रदायिकता के पक्षपात ने स्याद्वाद पर भी आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। संसार में ऐसा कोई सम्प्रदाय, दर्शन और सिद्धान्त न मिलेगा जहाँ स्याद्वाद का उपयोग न हुआ हो। सांख्य, पातञ्जलि, न्याय, वैशेषिक, मीमांसक और वेदान्तवादियों ने अपने–अपने दर्शनों में आवश्यकतानुसार इसका यथेच्छ उपयोग किया है। फिर भी मनुष्य में पक्षपात की कमजोरी बनी ही रहती है, इसलिए वह एक वस्तु का उपयोग करता हुआ भी उसकी सत्ता से इन्कार करने को तैयार हो जाता है।

3.2 स्याद्वाद का अर्थ है—

'अपेक्षा विशेष (View point) से वस्तु का प्रतिपादन करना।' मेरा चाकू तेज है इस का अर्थ यह कभी न होगा कि संसार का कोई चाकू इससे तेज नहीं है। अन्य तेज चाकुओं की अपेक्षा यह चाकू मन्द भी है, अतः एक ही समय में मैं अपने चाकू को तेज और मन्द, परस्पर विरोधी दोनों धर्मोवाला कह सकता हूँ कहने में यह बात असंगत–सी जान पड़ती है कि एक ही चाकू एक ही समय में तेज और मन्द दोनों है। किन्तु अपेक्षावाद इस प्रकार की असंगति को दूर करने का ही उपाय है। इसी प्रकार 'स्यादस्त्येव जीवः' अर्थात् कथञ्चित् जीव है, इसका अर्थ हुआ कि स्वद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा से जीव का अस्तित्व है। किन्तु यदि पर–द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा से विचार करें तो हमको कहना पड़ेगा कि 'स्यान्नास्त्येवजीवः' अर्थात् परद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा से जीव नहीं है। जिस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में अस्ति और नास्ति दो धर्म माने जाते हैं, इस ही तरह एक अवक्तव्य धर्म भी वस्तु में रहता है। इन्हीं तीन धर्मों के द्वारा बने हुए तीन भंगों से ही शेष चार भंगों का भी निर्माण होकर सप्तभंगी हो जाते हैं। कहीं भी तीन वस्तुओं से एक–एक, दो–दो और तीन के मिलने से सात भेद हुए बिना न रहेंगे। रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग में भी इसी तरह सात भेद बन जाते हैं। कई विद्वानों का मत है कि प्रारम्भ में ये तीन ही भङ्ग थे, फिर इनके सात भंग बनते हैं; किन्तु ये सात भंग कब से बने— इस विषय को स्याद्वाद के प्ररूपण करने वाले जैनागम का अध्ययन करने से ही जान सकते हैं, क्योंकि यह इतिहास का विषय है।

3.3 सप्तभंग—

शब्द के द्वारा पदार्थ के दो धर्मों को एक साथ नहीं कहा जा सकता क्योंकि शब्द धातुओं से बनते हैं और धातुएँ क्रिया की वाचक हैं और क्रिया एक समय में एक ही होती है दो नहीं, इसलिए जब दो धर्मों को एक साथ प्रतिपादन करने का समय उपस्थित होता है तब यह कहा जाता है कि पदार्थ अवक्तव्य है, इस प्रकार स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति च, स्यादवक्तव्य एव, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, तथा स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च, ये सात भंग हो जाते हैं। पदार्थ के प्रत्येक धर्म के साथ ये सात भंग लगेंगे। किन्तु जब किसी एक धर्म का प्रतिपादन किया जाता है उस समय अन्य सब धर्मों का निषेध न कर केवल उनकी उपेक्षा कर दी जाती है। उपेक्षा करने का यही प्रयोजन है कि उस समय हमें उन धर्मों का प्रतिपादन नहीं करना है। संसार में अनेक वाद प्रचलित हैं; जैसे—नित्यानित्यवाद, भिन्नाभिन्नवाद, सदसत्वाद, दैवपुरुषार्थवाद, इत्यादि इन सब वादों पर यदि सप्तभंगी न्याय से विचार किया जाए तो कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि पदार्थ में ये सभी धर्म रहते हैं। अनेकधर्मात्मक पदार्थ को सर्वथा एकान्तात्मक कह देना हठ करना है। इसलिए जैन सिद्धान्त की यह आज्ञा है कि उसको अनेक दृष्टियों से देखा जाए। यहाँ तक कि अनेकान्त भी सर्वथा अनेकान्तात्मक नहीं है, कथञ्चित् वह भी एकान्तात्मक है, किन्तु उस एकान्तात्मक का अर्थ है सम्यक्–एकान्त। आचार्य समन्तभद्र ने अपने स्वयंभू स्तोत्र में अरनाथ तीर्थंकर की स्तुति करते हुए कहा है कि—

अनेकान्तोप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोर्पितान्नयात्।।103।।

आचार्य समन्तभद्र ने अपने आप्तमीमांसा नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में इस स्याद्वाद का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। स्याद्वाद का ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर व्याख्यान अन्यत्र दुर्लभ है। यह स्याद्वाद जैनदर्शन का प्राण है, इसलिए भारतीय दर्शन ग्रंथों में जैन दर्शन का उल्लेख 'स्याद्वाद दर्शन' के नाम से भी मिलता है।

3.4 स्याद्वाद संशयवाद नहीं—

यदि मनुष्य के हृदय में सम्प्रदायगत पक्षपात का विष न हो तो इस प्रकार के सर्वोपयोगी स्याद्वाद की महत्ता को मानने से वह कभी इन्कार नहीं कर सकता, किन्तु जिस प्रकार एक हेयोपादेय–शून्य मनुष्य पक्षपात के आधीन होकर दूसरों के जलाशयों के मीठे पानी को भी पीना नहीं चाहता अथवा आवश्यकता पड़ने पर पीकर भी उसकी प्रशंसा करना उचित नहीं समझता इसी प्रकार वस्तु–विवेचन की इस शुद्ध प्रणाली का उपयोग करते हुए भी कुछ जैनेतर भारतीय दार्शनिकों ने इस पर बहुत आक्षेप किये हैं। औरों की बात तो जाने दीजिए; वेदान्तसूत्र के निर्माता महर्षि व्यास ने भी अपने 'वादरायण सूत्र' में 'एकस्मिन्नसंभवात्' इत्यादि सूत्रों द्वारा इसका खण्डन करने की चेष्टा की है। तदनुसार वेदान्त के अद्वितीय विद्वान् श्री शंकराचार्य ने भी अपने 'शांकर भाष्य' में इस पर कुछ कम आक्रमण नहीं किया ! स्वयं स्याद्वाद का उपयोग करते हुए भी उसका खण्डन करें, यह बहुत आश्चर्य की बात है ! इस अनेकान्तवाद के सम्बन्ध में भी अनेक दार्शनिकों ने तो यह भी कह डाला है कि स्याद्वाद केवल संशयवाद (संशयहेतु) अथवा छलमात्र है; इससे किसी वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। पर जब संशय और छल के लक्षणों पर विचार किया जाता है तो स्याद्वाद को संशयवाद अथवा छलमात्र बताने वालों पर हँसी आती है। स्याद्वाद संशयवाद न होकर पदार्थ के निर्बाध संशयरहित ज्ञान कराने का साधन है। स्याद्वाद निश्चयात्मक है, जब कि संशयवाद संदेहात्मक है। इन दोनों को एक मानना मिथ्याज्ञान और सम्यक्ज्ञान को एक बता देना है। संशय से तो किसी वस्तु का निश्चय नहीं होता, पर स्याद्वाद से तो किसी अपेक्षा विशेष से वस्तु का अथवा वस्तु के किसी भी अंश का निश्चय होगा। भट्ट अकलंकदेव ने लिखा है कि **'संशयो हि निर्णयविरोधी'** अर्थात् संशय निर्णय का विरोधी है। संशय का अर्थ है—'विरुद्ध अनेक कोटि का स्पर्श करने वाला

ज्ञान'। अक्षपाद के न्यायदर्शन में कहा है कि—

'समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थाश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः' अर्थात् समान और असमान धर्म के उपलम्भ होने से अथवा विरुद्ध कोटिद्वय उपस्थित होने से उपलब्धि और अनुपलब्धि की व्यवस्था न होने पर जो सामान्य–विशेष की स्मृतिपूर्वक ज्ञान होता है वही संशय है। जैसे यह सीप है या चाँदी अथवा आत्मा नित्य है या अनित्य। स्याद्वाद में संशय का यह लक्षण बिल्कुल घटित नहीं हो सकता, क्योंकि यह तो संशय को दूर करने के लिए उपयुक्त होता है। 'आत्मा कथंचित् नित्य है' इसमें कोटि द्वयात्मक ज्ञान नहीं होता, किन्तु एक कोटि का निश्चयात्मक ज्ञान होता है। हाँ, अवश्य ही इसमें अन्य धर्मों का निषेध नहीं किया जाता। संशय उत्पन्न होने पर उसको दूर करने के लिए सप्तभंगी का अवतार होता है, जैसे—प्रथम भंग के पहिले जब यह संशय होता है कि 'स्याद्घटः अस्त्येव वा न वा' तो इसका निराकरण करने के लिए 'स्यादस्त्येव घटः' इस पहिले भंग का जन्म होता है। इसी प्रकार द्वितीय–तृतीयादि भंगों का जन्म उनके पहिले उत्पन्न हुए संशयों का निराकरण करने के लिए होता है। सप्तभंगी का लक्षण ही आचार्यों ने यह बताया है कि—

'प्रश्नवशादेकत्र वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभंगी।'

अर्थात् प्रश्न के वश से एक किसी घट आदि वस्तु में अविरोधरूप से विधि तथा प्रतिषेध की जो कल्पना होती है। उसको सप्तभंगी कहते हैं। इसलिए सप्तभंगी का प्रादुर्भाव सात प्रकार के जो प्रश्न उत्पन्न होते हैं उनके निराकरणार्थ होता है। यदि यह कहा जाय कि प्रश्न सात ही क्यों होते हैं, छह या आठ क्यों नहीं होते तो इसके उत्तर में यही कह देना पर्याप्त होगा कि जिज्ञासा अर्थात् जानने की इच्छा सात ही प्रकार की होती है और यह इसलिए कि संशय सात प्रकार का होता है। पदार्थों के विषयीभूत धर्मों की संख्या सात ही है, न अधिक, न कम। अतः संशय भी सात ही होते हैं जैसा कि 'सप्तभंगी तरंगिणी' में कहा है—

भंगास्सत्त्वादयस्सप्त संशयास्सप्त तद्गताः।
जिज्ञासास्सप्त सप्त स्युः प्रश्नास्सप्तोत्तराण्यपि।।2।।

अतः यह निर्विवाद है कि सप्तभंगी का अवतार संशयों के निराकरणार्थ होता है। अब तार्किक लोग स्वयं विचार सकते हैं कि स्याद्वाद क्या संशयवाद अथवा संशय का हेतु हो सकता है ?

3.5 स्याद्वाद छल से पूर्णतः भिन्न है—

जैसे स्याद्वाद को संशयवाद बताया जाता है वैसे कुछ लोग इस पर छल का कलंक मंढ कर भी स्याद्वाद को बदनाम करना चाहते हैं। किन्तु छल के लक्षणों को देखते हुए यह कहना बिल्कुल युक्तिसंगत नहीं है। 'वचनविघातोर्थ विकल्पोपपत्त्या छलम्' यह छल का लक्षण बताया गया है। इसका आशय है कि वादी के द्वारा अभिप्रेत अर्थ से उलटे अर्थ की कल्पना करने की युक्ति से वादी के द्वारा कहे गये वचन का विघात कर देना अर्थात् उसको दोषी बता देना छल है। इस छल के तीन भेद हैं—वाक्छल, सामान्यछल और उपचार छल। छल के तीनों भेदों के लक्षणों तथा उदाहरणों को देखते हुए कौन बुद्धिमान यह कह सकता है कि स्याद्वाद वास्तव में छलमात्र है। न्यायदर्शन में इन छलों के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

'अविशेषाभिहितेर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्' अर्थात् सामान्य शब्द को वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध ले जाना वाक्छल है। जैसे किसी के यह कहने पर कि 'अहा ! सैन्धव की पूँछ कैसी सुन्दर है ' यह कह देना कि 'क्या नमक के भी पूंछ होती है ?' क्योंकि सैंधव शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक नमक और दूसरा घोड़ा। वक्ता ने सैन्धव शब्द को घोड़े के अर्थ में प्रयुक्त किया था। किन्तु छलवादी जानबूझकर उस अर्थ को भुला देता है और केवल नमकवाले अर्थ को लेकर कहता है कि—'नमक के पूँछ कहाँ होती है ?' प्रकृत में स्यादस्ति इत्यादि सातों भंगों में कोई दो अथवा अनेक अर्थ नहीं होते और न स्याद्वाद का प्रयोग करनेवाला उनमें से किसी एक अर्थ को लेकर किसी को

धोखा देना चाहता है। अतः वाक् छल का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है।

'सम्भवतोर्थस्यातिसामान्ययोगादसद्भूतार्थकल्पना सामान्यछलम्'। अर्थात् प्रशंसावाद या प्रायोवाद से कहे हुए वचन को हेतुपरक वा नियमपरक ले जाना सामान्य छल है। जैसे किसी के यह कहने पर कि 'भारतीय धर्मात्मा होते हैं' यह व्याप्ति बना लेना कि 'जो–जो भारतीय होते हैं वे सभी धर्मात्मा होते हैं।' यहाँ वक्ता का आशय भारतीयों को धर्मात्मा बतलाकर उनकी प्रशंसा करने का था। उसके कहने की यह इच्छा न थी कि 'जो–जो भारतीय होते हैं, वे सभी धर्मात्मा होते हैं', किन्तु वक्ता के इस अभिप्राय को न लेकर 'भारतीय धर्मात्मा होते हैं', इस प्रशंसापरक वाक्य को हेतुपरक व नियमपरक नहीं बताता।

तीसरे छल का लक्षण है—**'धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचारछलम्'** अर्थात् उपचार से कहे हुए शब्द को मुख्य अर्थ में लेकर दूषण देना उपचार छल है। जैसे किसी के उपचार से यह कहने पर कि 'ओ ! ताँगा इधर आना' यह दूषण देना कि तांगेवाला इधर आ सकता है न कि तांगा ! यहाँ वक्ता का अभिप्राय तांगेवाले मनुष्य को बुलाने का है न कि तांगे को। क्योंकि बिना मनुष्य के अकेला तांगा तो कभी आ नहीं सकता। वक्ता ने तांगे में तांगेवाले का उपचार कर तांगे शब्द का प्रयोग किया था। उपचार का प्रयोजन तांगे को किराये पर लेने का था। किन्तु छलवादी श्रोता इस उपचरित अभिप्राय को न लेकर तांगे के मुख्य अर्थ को लेता है; इसलिए यह उपचार के सम्बन्ध में छल हुआ।

स्याद्वाद सिद्धान्त में इस उपचार छल की भी कोई संभावना नहीं है, क्योंकि स्यादस्ति इत्यादि वाक्यों में कोई मुख्य और उपचरित अर्थ की संभावना नहीं है और न स्याद्वादी उपचरित अर्थ को बाधित कर किसी मुख्य अर्थ का प्रयोग करता है। इस तरह तीनों ही छलों का स्याद्वाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए जैनों का 'स्याद्वाद' जैसे 'संशयवाद' नहीं है वैसे ही 'छलमात्र' भी नहीं है।

3.6 स्याद्वाद ही धार्मिक असहिष्णुता की महौषधि है—

संसार के धर्माचार्यों का अभिमत है कि इहलौकिक तथा पारलौकिक उत्थान एवं जगत–शान्ति के लिए धर्म परमावश्यक है। वस्तुतः धर्म का विकास मानव समाज की उन्नति के लिए ही है, इससे प्राणी यथेष्ट शान्ति को प्राप्त करता है एवं अपनी मनोनीत सिद्धि तक पहुँच जाता है। परन्तु इस सम्बन्ध में यदि इतिहास का अवलोकन किया जाता है तो मालूम होता है कि बजाय शान्ति के धर्म के नाम पर संसार में जितनी अशान्ति व अज्ञान फैला है उतना अन्य किसी से नहीं। दुनिया के धर्मों का इतिहास हत्या, रक्तपात और मनुष्य की रक्तपिपासा का इतिहास है। इसी धर्म के नाम पर हजारों बड़े–बड़े युद्ध हुए। असंख्य मनुष्यों का रक्तपात हुआ। हजारों गाँव जला दिये गए, लाखों सतियों का सतीत्व अपहरण किया गया। केवल एक देश में ही नहीं, अपितु कोई ऐसा देश नहीं मिलेगा जिसमें धर्म के नाम पर भीषण से भीषण अत्याचार न हुए हों। यूरोप की इनक्वीजीशन (Inquisition) नामक धार्मिक अदालत एवं स्टार चैम्बर न्यायालय (Court of Star Chamber) की रोमाञ्चकारी घटनाओं को सुनकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा जिसका हृदय काँप न उठे ! 'रैक', 'कालर आफ टौरचर' तथा 'स्कैवैंजर्स रौटर' जैसे भीषण यन्त्र जिस सभा में बेगुनाह अपराधियों का बलात् अपराध स्वीकार कराने में प्रयुक्त किये जाते थे और तत्पश्चात् वे जीते–जी प्रज्वलित अग्निकुण्ड में होम दिये जाते थे या कभी–कभी भोथरी तलवार से उनका नामावशेष कर दिया जाता था। लौण्टी ने लिखा है कि अकेले टोर्कीटेडा नामक राजा ने अपने राज्यशासन के 18 वर्ष के समय में एक लाख चौदह हजार चार सौ एक कुटुम्बों का सर्वनाश किया। कहाँ तक कहा जाय, केवल इन दोनों धार्मिक अदालतों से करीबन एक करोड़ मनुष्यों ने मृत्यु की सजा पाई। यह केवल यूरोप का इतिहास है। हिन्दुस्तान में भी धर्म के नाम पर जो घोर संग्राम और भयंकर मनुष्यहिंसा व पशुहिंसा हुई वह भी यूरोप से कम नहीं है। धर्म के नाम पर होने वाले इन अत्याचारों का वर्णन सुनकर एक बार तो शैतान की आत्मा भी दहल उठती है। यदि इन हृदय–विदारक अत्याचारों का पूर्णतः वर्णन किया जाय तो। एक खासा स्वतंत्र

साहित्य तैयार हो सकता है। मत–सहिष्णुता (स्याद्वाद) के अभाव के कारण ही संसार को यह सब भीषण दृश्य देखने पड़े हैं।

ऐसी परिस्थिति का अनुशीलन करते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि धर्म विश्वशान्ति का कारण हो सकता है ? लेकिन नहीं, यदि हम बुद्धिपूर्वक विचार करें तो कहना होगा कि संसार में यदि शान्ति का साम्राज्य हो सकता है तो केवल एक धर्म से; यदि वह पारस्परिक सहानुभूति सीख सकता है तो केवल एक धर्म से और यदि वह करुणावत्सल हो सकता है तो केवल एक धर्म से। संसार में होने वाले ये भीषण अत्याचार धर्म के प्रतिफल नहीं, अपितु आज तक, धर्मों में जो एक अपूर्णता रहती आई है, उसी के परिणाम हैं। यदि दुनिया में एक धर्म का साम्राज्य होता तो भीषण अत्याचार कभी न होते, सर्वत्र शान्ति का झण्डा फहराता, एवं विश्व आज एक और ही किसी प्रौढ़तम अवस्था में होता। परन्तु दुर्भाग्यवश नाना धर्मों के होने से सम्प्रदायवाद का प्रपंच संसार में फैला और वही इन सबका कारण हुआ। वस्तुतः धार्मिक संकीर्णता ऐसी ही है, वह मनुष्य के हृदय में निवास करने वाले सहानुभूति, प्रेम और शान्ति के विचारों को समूलतः नष्ट कर देती है और उसके हृदय को कुटिलता, निष्ठुरता तथा उद्दण्डता के भावों का निवास स्थान बना देती है। भूतकाल में इसी सम्प्रदायवाद का दौर दौरा रहा और इसी के फलस्वरूप भीषण से भीषण अत्याचार दुनियाँ को सहने पड़े; अब भी अब तक संकीर्णतावाद का अस्तित्व है, जगत् में शान्ति की आशा करना पत्थर पर अंकुर उगाने के समान है। यदि संसार विश्वशान्ति का इच्छुक है तो संकीर्णतावाद को तिलाञ्जली देते हुए किसी एक धर्म को ऐसा रूप देने की आवश्यकता है जो सब धर्मों को आपस में किसी समझौते पर पहुँचाने में समर्थ हो।

किन्तु अब सब से कठिन बात यह रह जाती है कि दुनियाँ का कौन सा ऐसा धर्म है जो सब धर्मों को एक्य–सूत्र में पिरोकर जगत्–कल्याणकारी हो सकता है ! भिन्न–भिन्न धर्मों के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उनमें से किसी एक का सार्वजनिक धर्म हो जाना बिल्कुल ही असम्भव है। वे इतने विरोधात्मक हैं कि उनमें परस्पर में मेल होना किसी भी तरह सम्भव नहीं। यह तो कभी नहीं कहा जा सकता कि वे बिल्कुल साधार हैं। चार्वाक, जिसके सिद्धान्तों को दुनिया घृणा की दृष्टि से देखती है, यदि तत्कालीन परिस्थिति यहाँ विद्यमान होती तो वह एवं उसके सिद्धान्त कभी घृणित न समझे जाते। जिस समय दुनिया शरीर के सम्बन्ध में लापरवाह हो चुकी थी और अध्यात्मवाद के कृत्रिम पाखंड ने उसको और भी विमूढ़ बना दिया था, उस समय 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' के सिद्धान्त ने ही उन लोगों को 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' की तरफ ऋजु किया। यदि उस समय इस सिद्धान्त का प्रचार न होता तो जनसमाज की क्या गति होती, यह हर कोई जान सकता है। इसलिए यह तो निश्चित है कि तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार सभी धर्म किसी न किसी अपेक्षा ठीक हैं ; तो भी वे सब धर्म परस्पर विरोधात्मक होने से सर्वमान्यधर्म होने की क्षमता नहीं रखते। विरोध भी थोड़ा बहुत नहीं, अपितु रात और दिन का है—जहाँ सांख्य वस्तु को कूटस्थ नित्य बतलाता है वहाँ बौद्ध क्षणिकवाद की ही आलाप लगाता है। जहाँ नैयायिक प्रभृति ईश्वर को असिद्ध कर डालता है, एवं जहाँ सर्वज्ञत्व एवं परलोकास्तित्व का विधान किया जाता है वहीं चार्वाक इन सबके ताने–बाने बिखेर डालता है।

जब इस प्रकार परस्पर में विरोध है तब किस प्रकार किसी एक समझौते पर पहुँचना सम्भव हो सकता है ? कदापि नहीं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि किसी भी धर्म के आंशिक सिद्धान्त पारस्परिक उलझनों को सुलझाने में समर्थ नहीं हैं और इसीलिए वे जगत् हितैषी भी नहीं हैं।

3.7 अनेकांत से सभी समस्याओं का समाधान—

ये सब उलझनें यदि सुलझ सकती हैं तो केवल एक ऐसे सिद्धान्त से, जो किसी भी विषय पर एक दृष्टिकोण से (One point of view) विचार न कर विविध दृष्टिकोणों (By all point of view) से विचार करता है; क्योंकि भिन्न–भिन्न अवस्थाओं व व्यवस्थाओं में वस्तुओं के भिन्न–भिन्न रूप होते हैं, अतः उनका कथन एकान्त से हो नहीं सकता,

अनेकान्त ही उनकी संगत व्याख्या कर सकता है। बहुत छानबीन करने पर स्याद्वाद ही केवल एक ऐसा सिद्धान्त प्रतीत होता है जो उपरोक्त गुण से पूर्णत: अलंकृत है। यह सिद्धान्त किसी वस्तु के लिए यह नहीं कहता कि यह एकान्तत: ऐसी ही है, अत: यह एकान्त विश्वास का निषेध कर वस्तु के सर्वांग वास्तविक स्वरूप का निश्चय कराता है। एकान्ती जो कुछ भी कथन करते हैं एक नय की सर्वथा प्रधानता को लेकर। वे उसके विविध दृष्टिकोणों से उसका विचार नहीं करते-अत: यही बात उनको जन-समाज के प्रति हितेच्छु होने से रोकती है, परन्तु इसके प्रतिकूल स्याद्वाद जिसका कि विविध दृष्टिकोणों से विचार करना ही खास उद्देश्य है, वास्तविक शान्ति का कारण हो जाता है। जहाँ सांख्य वस्तु के कूटस्थ नित्यत्व को स्वीकार करता है एवं जहाँ बौद्ध बिल्कुल ही इसके प्रतिकूल क्षणिकवाद को अपना सिद्धान्त मानता है वहाँ स्याद्वादी कहते हैं कि वस्तु यदि सर्वथा नित्य ही है तो उसमें पर्याय-परिवर्तन किस तरह होती है; कूटस्थ नित्य में तो कभी विकार नहीं होता, और यदि वस्तु सर्वथा क्षणिक ही है तो 'यह वस्तु वही है जो पहले देखी थी' ऐसा प्रत्यभिज्ञान नहीं होना चाहिए; किन्तु प्रत्यभिज्ञान तो अबाधरूप से होता देखा जाता है। इस तरह यह दोनों ही कल्पनायें तर्क की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं। पर स्याद्वाद सिद्धान्त इस विषय का अच्छा निरूपण करता है—वह प्रतिपादन करता है कि 'वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी।' अर्थात् नय-विवक्षा से वस्तु में अनेक स्वभाव हैं और वे परस्पर में बिल्कुल विरोधात्मक हैं, जैसे कि अस्ति-नास्ति, एक-अनेक, भेद-अभेद, नित्य-अनित्य। परन्तु स्याद्वाद इस विरोध को समूलत: दूर कर देता है; क्योंकि एक ही पदार्थ कथञ्चित् स्वचतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) की अपेक्षा अस्तिरूप है, एवं कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप भी। समुदाय की अपेक्षया एकात्मक है, एवं गुण-पर्याय अपेक्षया अनेकात्मक है। कथञ्चित् संज्ञा-संख्या-लक्षणापेक्षया भेदात्मक है एवं कथञ्चित् सत्व की अपेक्षया अभेदात्मक है। कथञ्चित् द्रव्य की अपेक्षा वस्तु नित्य भी है एवं पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी। इस प्रकार स्याद्वाद अनंत धर्मवाली वस्तु के लिए कभी भी 'ही' शब्द का प्रयोग नहीं करता, क्योंकि वस्तु के किसी एक धर्म को किसी विशेष अर्थ में ही सत्य कह सकते हैं सर्वथा नहीं। प्रत्येक वाक्य की सत्यता केवल अवस्थापन्न है; क्योंकि कोई वाक्य ऐसा नहीं है जो सत्य ही हो, और न कोई ऐसा ही वाक्य है जो सर्वथा असत्य ही हो, अपितु सभी वाक्य किसी एक अर्थ में सत्य हैं और दूसरे अर्थ में असत्य। वाक्य को केवल सत्य ही मान बैठना या केवल असत्य ही मानना ही झगड़े का कारण है। आज तक जो भीषण अत्याचार हुए हैं वे सब इसी एकान्त दृष्टि के प्रतिफल हैं। अगर वहाँ हम इस अनेकान्त जैसे सिद्धान्त का उपयोग करते तो कभी इतनी अशान्ति न होती।

3.8 स्याद्वाद की इतनी उपयोगिता दर्शाना कोरी कल्पना मात्र नहीं है—

व्यावहारिक जीवन में भी हमें अनेक ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अपेक्षाभेद के समझे बिना बहुत-सी असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। एक कहानी के माध्यम से स्याद्वाद की उपयोगिता समझी जा सकती है।

कुछ दिनों पहिले मैंने इंगलिश की एक पुस्तक में एक कहानी पढ़ी थी। उस कहानी का भाव यह है कि—यूरोप के किसी नगर में चौराहे पर एक विशाल मूर्ति खड़ी थी। मूर्ति का एक हिस्सा चाँदी का बना हुआ था और दूसरा सोने का। संयोगवश एक दिन ऐसा हुआ कि एक ही समय दोनों तरफ से दो अश्वारोही योद्धा आए। उनमें से प्रथम जो कि मूर्ति के स्वर्ण भाग की तरफ था, बोला—'अहा, कैसी अच्छी स्वर्ण की मूर्ति है !' पर दूसरा, जिसने कि मूर्ति के रजत भाग को देखा था, बोला कि 'मूर्ति स्वर्ण की नहीं है, चाँदी की है।' पर पहिला कब मानने वाला था। उसने कहा—'अरे बेवकूफ ! यह तो स्वर्ण की है, चाँदी की नहीं'। इस प्रकार बहुत देर तक तो उनमें परस्पर वाक्युद्ध होता रहा, दोनों ही अपनी बात पर दृढ़ रहे। इसका फल यह हुआ कि बात बढ़ते-बढ़ते दोनों में मल्लयुद्ध होने की नौबत आ गई और दोनों बहुत देर तक लड़ लेने के पश्चात् अन्त में बेहोश होकर गिर पड़े। भाग्यवश उधर से एक कोई अच्छा चिकित्सक आ निकला, जिसने उन दोनों मूर्च्छितों को देखकर कुछ उपचार किया, जिससे दोनों की बेहोशी दूर हुई। दोनों फिर लड़ने लगे। जब उस विवेकी वैद्य / चिकित्सक ने उन दोनों की लड़ाई का कारण समझा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

वह उनको इस प्रकार लड़ते हुए देखकर बोला—'अरे भले आदमियो ! तुम मूर्ति के एकान्त ज्ञान के पीछे पड़कर अपने समय और शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हो ?' उसने उन दोनों के हाथ पकड़ कर उन्हें मूर्ति के दोनों हिस्सों को दिखलाया। तब दोनों को अपनी भयंकर भूल का पता लगा, अब वे अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगे।

स्याद्वाद की उपयोगिता का यह कितना अच्छा उदाहरण है। संसार के विविध विरोधों का कारण केवल वस्तु का एकांश ज्ञान है। इसी से मत–असहिष्णुता पैदा होती है और उसी के फल–स्वरूप संसार में भीषण रक्तपात तक भी होने लगता है। यदि इसकी कोई अव्यर्थ औषधि हो सकती है तो वह केवल एक स्याद्वाद है। कभी किसी वस्तु पर एक दृष्टिकोण से विचार न कर, विविध दृष्टिकोणों से ही उसका विचार करना चाहिए। इसी से वस्तु के वास्तविक स्वरूप का निश्चय हो सकेगा।

3.9 स्याद्वाद सिद्धान्त जैनधर्म का सर्वस्व है—

वस्तुतः स्याद्वाद एक ऐसा अद्भुत और अनूठा सिद्धान्त है जिससे प्रत्येक प्रकार का धार्मिक वाद–विवाद व व्यावहारिक कलह आसानी से दूर हो सकता है। बस यही सिद्धान्त जैनधर्म का सर्वस्व है। स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का बीज/जीव/मूल है, जैसा कि अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है—

परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्।।

जिस प्रकार जीव–सहित शरीर ही कार्यकारी होता है, जीव बिना मृतक शरीर किसी काम का नहीं होता, उसी प्रकार स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का जीव है, यदि उसको हटा दिया जाय तो जैनधर्म किसी काम का नहीं रह जायेगा।

उपर्युक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि स्याद्वाद सिद्धान्त सब सिद्धान्तों को अपने में समाहित/आत्मसात किये हुए हैं और जब वह इतना समर्थ है तो यह भी निश्चित ही है कि वह विश्व–शांति का भी साधन हो सकता है। यदि संसार सच्चे सुख का इच्छुक है, यदि वह शान्ति और आनन्द का अनुभव करना चाहता है तो उसे जैन धर्म के स्याद्वाद सिद्धान्त रूपी परम शान्त सरोवर में डुबकियाँ लगानी चाहिये।

3.10 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1–वेदान्त सूत्र के रचयिता कौन थे ?

(क) महर्षि व्यास ☐ (ख) बाल्मिकी जी ☐ (ग) तुलसीदास जी ☐

प्रश्न 2–प्रत्येक पदार्थ के कितने धर्म होते हैं ?

(क) तीन ☐ (ख) दो ☐ (ग) सात ☐

प्रश्न 3–स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का.....है ?

(क) बीज ☐ (ख) जीव ☐ (ग) सच्चा सुख ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1–न्याय दर्शन में छल का लक्षण क्या है ? एवं छल के भेद कितने हैं ?

प्रश्न 2–वाक् छल किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित लिखिए ?

प्रश्न 3–अनेकांतवाद से सभी समस्याओं का समाधान कैसे होता है ? लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1–स्याद्वाद की उपयोगिता को एक कहानी के माध्यम से लिखिए ?

पाठ-4 – अनेकांत–स्याद्वाद और सप्तभंगी का पारस्परिक संबंध

4.1 जगत का प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्मात्मक है, एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रिया करने से देवदत्त के समान। जिस समय देवदत्त को मामा कहा जाता है उस ही समय उसे पिता, चाचा, बाबा, नाना और भाई भी कहा जाता है ! ये सब बातें एक–दूसरे से भिन्न हैं। जो मामा से तात्पर्य है वही चाचा आदिक से नहीं। इससे देवदत्त का एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रिया करना तो नि:सन्देह है। इस ही प्रकार उसका मामा, पिता, बाबा, नाना और पुत्र आदि अनेक धर्मात्माक होना भी शंका रहित है। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक कार्य तो करता हो किन्तु अनेक धर्मात्मक न हो। अत: एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाकारित्व और अनेक धर्मात्मक की व्याप्ति अविनाभाव माननी पड़ती है।

एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाकारित्व जगत के प्रत्येक पदार्थ में मिलता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं, चाहे वह जड़ हो या चेतन, मूर्त हो या अमूर्त, सक्रिय हो या निष्क्रिय, जिसमें एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाकारित्व व क्रिया न हो। अत: कहना चाहिये कि जगत का प्रत्येक पदार्थ एक साथ परस्पर विलक्षण अनेक अर्थक्रियाकारी होने से अनेकान्तात्मक–अनेक धर्मात्मक है।

4.2 पदार्थ के सामान्य व विशेष गुण—

इन धर्मों को, जिनका समुदायस्वरूप जगत का प्रत्येक पदार्थ है, स्थूलरीति से दो भेदों में विभाजित कर सकते हैं। एक सामान्य और दूसरा विशेष। **सामान्य गुण** से तात्पर्य उनसे है जो बिना किसी भेदोपभेद के सम्पूर्ण द्रव्यों में पाये जाते हैं। इस ही प्रकार **विशेष गुण से** तात्पर्य उनसे है जो सब द्रव्यों में नहीं रहते किन्तु खास–खास द्रव्य में रहते हैं।

4.2.1 अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व आदि सामान्य गुण हैं।

जिससे द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता उस शक्ति का नाम **अस्तित्वगुण** है, जिससे द्रव्य में प्रतिसमय परिणमन होता रहता है उस शक्ति को **द्रव्यत्व** कहते हैं, जिससे द्रव्य में प्रतिसमय कुछ न कुछ अर्थक्रिया होती रहती है उसको **वस्तुत्व** कहते हैं, जिससे द्रव्य किसी न किसी प्रमाण का विषय होता रहता है उसको **प्रमेयत्व** कहते हैं, जिससे द्रव्य में न्यूनता और अधिकता नहीं आती उसको **अगुरुलघुत्व** कहते हैं, और जिससे द्रव्य का कुछ न कुछ आकार बना रहा है उसको **प्रदेशत्व** गुण कहते हैं। नाश का न होना, प्रतिसमय कुछ न कुछ अर्थक्रिया करना, प्रतिसमय परिणमनशील रहना, सदा ज्ञेय बने रहना, कम और अधिक न होना और किसी न किसी आकार में रहना—ये ऐसी बातें हैं जो प्रत्येक द्रव्य में पाई जाती हैं, अत: अस्तित्वादिक द्रव्य के **सामान्यगुण** कहे जाते हैं।

4.2.2 विशेष गुण-इसी प्रकार रूप, रस, गंध और स्पर्श; चेतना, सुख और बल; वर्तनाहेतुत्व, गति–सहकारित्व, स्थिति–सहकारित्व और अवकाशदान आदि गुण भी हैं किन्तु इनमें इतनी विशेषता है कि ये सामान्य गुणों की तरह सब द्रव्यों में नहीं रहते। रूपादिक चार गुण पुद्गल में मिलते हैं, आत्मा आदि में नहीं। इसी प्रकार चेतनादिक गुण आत्मा में। यही बात वर्तनाहेतुत्व आदि के सम्बन्ध में है। इसी दृष्टि से ये **विशेष गुण** कहलाते हैं।

4.3 गुणों का समुदाय द्रव्य है—

इन्हीं सब बातों को यदि दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि इन्हीं गुणों का समुदाय द्रव्य है। ये गुण अनेक हैं, अत: इनका समुदायस्वरूप द्रव्य भी अनेकान्तात्मक या अनेकान्त कहा जाता है।

समान गुण समुदायों में समानता लाते हैं और असमानों में असमानता आती हैं। असमान–विशेष–गुणों को छ: भेदों में विभाजित किया गया है; अत: समुदाय भी इतने ही प्रकार के हैं। इन्हीं को द्रव्य के छ: भेद कहते हैं।

इन्हीं गुणों में एक अस्तित्व गुण भी है, इस गुण से द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता, अतः वह नित्य कहलाता है। अस्तित्वगुण के समान द्रव्य में एक द्रव्यत्व गुण भी है, इस गुण से द्रव्य में प्रति समय परिणमन–तब्दीलियाँ–होती रहती हैं इससे यह अनित्य कहलाता है। ये दोनों ही बातें द्रव्य में ही होती हैं तथा प्रतिसमय होती हैं, अतः समुदाय दृष्टि से द्रव्य नित्य अनित्य है।

गुण–समुदाय में जितने भी गुण हैं वे सब सत् स्वरूप हैं तथा यही बात सम्पूर्ण समुदायों में है, अतः इस दृष्टि से ये सब एक हैं। किन्तु द्रव्यों में कुछ गुण ऐसे भी हैं जिनसे एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न ही रहता है, अतः इस दृष्टि से ये अनेक हैं, समुदाय–दृष्टि से द्रव्य एक-अनेक है।

इसही प्रकार अपने निजरूप की दृष्टि से प्रत्येक द्रव्य सत् स्वरूप है किन्तु दूसरे पदार्थ का स्वरूप उसमें नहीं रहता अतः वह असत् भी है। समुदाय–दृष्टि से द्रव्य सदा **सदसत्** स्वरूप है।

इसही प्रकार अन्य धर्म भी घटित कर लेना चाहिये। दृष्टान्त के लिए समझियेगा कि—एक दवाई की गोली है जो पचास औषधियों को कूट–पीट करके तैयार की गई है। इसमें नमक, मिर्च और खटाई आदि वस्तुएँ भी हैं। नमक की दृष्टि से गोली नमकीन है, खटाई की दृष्टि से खट्टी और मिर्च की दृष्टि से चरपरी। यदि इन सब दृष्टियों को भुला दिया जाय और गोली के सम्बन्ध में कहा जाय तो उसको नमकीन, चरपरा और खट्टा सब ही कहना होगा। इस ही प्रकार द्रव्य है, अन्तर केवल इतना है कि यहाँ औषधियों का समुदाय है और द्रव्य में गुणों का। गोली की तरह द्रव्य में भी जब तक एक–एक गुण पर दृष्टि रहती है तब तक वह भी एक रूप ही मालूम होती है और जब इसी को द्रव्य दृष्टि बना दिया जाता है तब वही अनेकधर्मात्मक मालूम पड़ने लगती है।

इन ही सब बातों को सामने रखते हुए किसी–किसी आचार्य ने एक और अनेक, नित्य और अनित्य, सत् और असत् आदि धर्मात्मक को ही अनेकान्तात्मक कहा है। अनेक धर्मात्मक को अनेकान्त कहना या अनेक परस्पर विरोधी धर्मात्मक को अनेकान्त कहना—इसमें अन्तर केवल शब्दों का ही है अर्थ तो दोनों ही दृष्टियों से वही है।

4.4 अनेकान्त और वस्तु–स्वरूप—

वस्तु–स्वरूप का विवेचन करते समय यदि अनेकान्तात्मकत्व को भुला दिया जाय तो वस्तु–स्वरूप का निर्णय करना ही असम्भव हो जाता है। इसके लिए **वैशेषिक दर्शन** को ले लीजियेगा। वैशेषिक दर्शन ने द्रव्य और गुण इन दोनों को भिन्न–भिन्न स्वीकार किया है और परस्पर में इनका समवाय सम्बन्ध स्वीकार किया है। गुणों को द्रव्य से यदि सर्वथा भिन्न मान लिया जाता है तो फिर द्रव्य का अस्तित्व ही नहीं रहता। वैशेषिक दर्शनकार कणाद ने जब भी जिस किसी द्रव्य को समझाया या उसका लक्षण किया है वह गुणों के द्वारा ही। आत्मा का लक्षण ज्ञानाधिकरण है। हमने माना कि आत्मा ज्ञान का अधिकरण है किन्तु फिर भी उसका निजरूप क्या है ? पृथ्वी घट का अधिकरण है, किन्तु फिर भी उसका स्वतंत्र अस्तित्व और निजरूप तो है। घट का अधिकरण कहकर ही तो पृथ्वी को नहीं समझया जा सकता। यह तो उसकी तरफ केवल संकेत मात्र कहा जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि ऐसी परिस्थिति में गुण–गुणी भाव भी ठीक नहीं बैठता। गुण द्रव्य से भिन्न है और उसका उसके साथ समवाय सम्बन्ध है। यह बात भी कैसे मानी जा सकती है। जिस प्रकार गुण द्रव्य से भिन्न है उस ही प्रकार समवाय भी तो इन दोनों से भिन्न है फिर भी यह अमुक गुण का अमुक द्रव्य के ही साथ सम्बन्ध करेगा, इसको भी बिना नियामक के कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? वैशेषिक दर्शन की इस मान्यता के सम्बन्ध में इस प्रकार की आपत्तियाँ आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व भी उपस्थित की जा चुकी हैं। आचार्य विद्यानन्दि ने भी इस प्रकार की आपत्ति ज्ञान और परमात्मा के सम्बन्ध में उपस्थित की है। वैशेषिक दर्शन के साहित्य में इनका सन्तोषजनक कोई उत्तर नहीं मिलता, यही बात दूसरे दर्शनों के सम्बन्ध में है। इनमें स्पष्ट है कि अनेकान्तात्मकत्व ही वस्तु का स्वरूप है। इसको वस्तुस्वरूप से अलग करना वस्तु–स्वरूप को ही छोड़ देना हैं

4.5 अनेकान्त और स्वामी शंकराचार्य—

स्वामी शंकराचार्य अद्वैतवाद के एक प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। इन्होंने अपने वेदान्तसूत्र के शंकरभाष्य में अनेकान्त पर आपत्तियाँ उपस्थित की हैं। इनका कहना है कि 'एक पदार्थ में परस्पर विरोधी दो धर्मों का रहना असम्भव है। यदि ऐसा स्वीकार किया जायेगा तो पदार्थ व्यवस्था संदिग्ध हो जायेगी। जो जिस रूप है वही उससे विपरीत भी है, अतः पदार्थ–स्वरूप का निर्णय ही नहीं हो सकेगा.....। किसी भी पदार्थ में यदि सत् और असत् या नित्य और अनित्य धर्मों का रहना असम्भव होता तो उस ही पदार्थ में इनका प्रतिभास नहीं होना चाहिये था। जिस पदार्थ में हम सत्व को पाते हैं, उस ही में असत्व को भी, इस ही प्रकार नित्य–अनित्यत्व को। दृष्टान्त के लिए घट को ही ले लीजियेगा; यह अपने स्वरूप की दृष्टि से सत् है, यदि ऐसा न होता तो 'घट है' ऐसा ज्ञान भी नहीं होना चाहिए था, घट घट है किन्तु पट/कपड़ा नहीं। अतः इसमें कपड़े का अभाव भी स्वीकार करना पड़ता है, और इस ही लिए इसको कपड़े की दृष्टि से सत् और दूसरे के स्वरूप की दृष्टि से असत् स्वीकार नहीं किया जायेगा तो किसी भी विशेष पदार्थ में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार अपने स्वरूप की दृष्टि से सत्त्व उसी पदार्थ का धर्म है, उस ही प्रकार दूसरे पदार्थ की दृष्टि से असत्त्व भी। यदि ऐसा न होता तो उसमें इन दोनों बातों का व्यवहार भी नहीं हो सकता था; सत्त्व के समान असत्त्व का भी व्यवहार होता है, अतः पदार्थ को उस रूप भी माना जाता है।

पदार्थ को जिस दृष्टि से सत् स्वरूप माना जाता है उसी दृष्टि से यदि असत् स्वरूप माना जाता तब तो शंकराचार्य का कथन ठीक भी हो सकता था, किन्तु ऐसा है नहीं। यहाँ जिस दृष्टि से सत् स्वरूप माना है, उस दृष्टि में वह सत् ही है। इसी प्रकार जिस दृष्टि से असत् है उस दृष्टि से वह असत् ही है। अतः असंभवता की कोई बात ही नहीं रहती। यही बात नित्यानित्यत्व के सम्बन्ध में है। जिस दृष्टि से हम पदार्थ को नित्य स्वीकार करते हैं उससे वह नित्य ही है, इसी प्रकार जिस दृष्टि से पदार्थ को अनित्य माना जाता है, उसमें वह अनित्य ही है। यदि नित्यवाली दृष्टि से अनित्य और अनित्यवाली दृष्टि से नित्य माना जाता तब तो यहाँ असंभवता को स्थान हो सकता था। पदार्थ में सत्व और असत्व की तरह नित्य–अनित्यत्व भी स्पष्ट झलकते हैं। कोई भी पदार्थ किसी भी साधन से नष्ट नहीं किया जा सकता, बड़े–बड़े वैज्ञानिकों ने इसके सम्बन्ध में परीक्षण किये हैं, किन्तु फिर भी वे इस कार्य में असफल ही रहे हैं, अतः पदार्थ की नित्यता तो निःसन्देह है, किन्तु यह मूल पदार्थ की ही दृष्टि से, न कि उसकी अवस्थाओं की दृष्टि से, अवस्थाओं में तो परिवर्तन होते ही रहते हैं। अतः पदार्थ को द्रव्य की दृष्टि से नित्य और पर्याय की दृष्टि से अनित्य माना जाता है। ये दोनों ही बातें पदार्थ में ही हैं, अतः पदार्थ ही नित्यानित्यात्मक हैं।

4.6 आचार्य समन्तभद्र ने इस ही बात को एक स्वर्ण के दृष्टान्त के द्वारा समझाया है—

इनका कहना है कि—तीन मनुष्य थे, इनमें एक टूटे सोने को चाहता था, दूसरा सोने के घड़े को, और तीसरा सिर्फ सोने को। अपने इच्छित पदार्थ की खोज में ये तीनों ही निकले और एक दरबार में पहुँचे। वहाँ एक सोने का घड़ा रखा हुआ था, किन्तु इन तीनों के पहुँचते ही कुछ ऐसी घटना हुई जिससे वह टूट गया। ज्यों ही घड़ा टूटा, इन तीनों ही व्यक्तियों को तीन प्रकार के विचार हुए। जिसको स्वर्ण–घट की आवश्यकता थी उसको दुःख हुआ, जो स्वर्ण के टुकड़े चाहता था वह सुखी हुआ, और जो स्वर्ण चाहता था वह न सुखी हुआ और न दुःखी। इन तीनों मनुष्यों के भाव निष्कारण नहीं, अतः उस स्वर्ण–पिण्ड में तीन प्रकार की बात माननी पड़ती है, स्वर्णरूप में नित्यता, घटरूप में नाश और टुकड़े–रूप में उत्पाद। घट का नाश और टुकड़ों का उत्पाद भिन्न–भिन्न बातें नहीं, अतः इन तीनों ही बातों को एक समय में ही मानना पड़ता है। जिस प्रकार यह पदार्थ स्वर्ण–रूप से ध्रुव रहता है, उसी प्रकार संसार के अन्य पदार्थ भी ध्रुव रहते हैं। अतः पदार्थों का नित्यानित्यत्व किसी भी प्रकार असम्भव नहीं माना जा सकता, यही बात दूसरे प्रकार के धर्मों के

सम्बन्ध में है।

इनके सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि इस प्रकार के धर्मों का अस्तित्व एक पदार्थ में असम्भव क्यों समझा जाए ? खर–विषाण के समान तुच्छ स्वरूप होने से या परस्पर में विरोध से ? जहाँ तक पहली बात का सम्बन्ध है, इसको तो स्वामी शंकराचार्य भी नहीं मानते। अत: इनके सम्बन्ध में दूसरी बात ही विचारणीय रह जाती है, परस्पर विरोध के सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि वह इनके सम्बन्ध में घटित नहीं होता, विरोध तो उन पदार्थों में होता है जिनका एक स्थान पर अस्तित्व न रहता हो, इन धर्मों का तो एक स्थान पर अस्तित्व है, अत: यहाँ तो विरोध को गुंजायश नहीं। दूसरी बात यह है कि यदि विरोध माना भी जाय तो वह कौन सा माना जाय ?

4.7 विरोध के तीन प्रकार हैं—

एक परस्पर परिहार–स्थिति–लक्षण, दूसरा सहानवस्थान और तीसरा वध्यघातक, इन धर्मों का परस्पर–परिहार–स्थिति लक्षण विरोध मानने से तो इन दोनों का एक जगह अस्तित्व ही सिद्ध होगा, क्योंकि यह आम्रफल में रूप और रस की तरह विद्यमान दो धर्मों का ही होता है, इसमें तो बात केवल इतनी ही है कि एक धर्म दूसरे धर्मरूप नहीं हो जाता, न कि यह कि ये धर्म एक स्थान पर नहीं रहते। अत: इनके मानने से तो कोई लाभ नहीं हो सकता।

वध्यघातक विरोध भी यहाँ घटित नहीं होता, यह तो सर्प और नेवले की तरह निर्बल और सबल का हुआ करता है। प्रस्तुत दोनों धर्मों में इस बात का अभाव है। अत: यहाँ इस विरोध को भी स्थान नहीं। सहानवस्थान विरोध से तात्पर्य एक स्थान पर दो या अधिक के न रहने से है। यदि प्रस्तुत धर्म भी सदसद् नित्यानित्य—एक पदार्थ में न रहते होते तब ही इस बात की आशंका हो सकती थी। इन धर्मों का एक ही पदार्थ में सद्भाव पूर्व ही प्रमाणित किया जा चुका है, अत: इन धर्मों के सम्बन्ध में इस विरोध का भी स्थान नहीं है।

विरोध के अभाव में इस दृष्टि से भी असंभवता की बात उपस्थित नहीं होती है, अत: स्पष्ट है कि अनेकान्त के सम्बन्ध में शंकाराचार्य जी की इस आपत्ति में कुछ भी तथ्य नहीं है।

संशय वहाँ होता है जहाँ दो धर्मों या दो पदार्थों में से किसी एक के भी सम्बन्ध में निश्चित न हो, किन्तु यहाँ इस प्रकार की परिस्थिति नहीं है। यहाँ तो दोनों की बातों का निश्चय है—एक दृष्टि से पदार्थ से सत् का और दूसरी दृष्टि से उसके असत् का, इस ही प्रकार नित्यानित्यत्व का। यहाँ तो इस प्रकार की प्रतीति होती है कि पदार्थ सत् भी है और असत् भी है, किन्तु संशय इससे विपरीत हुआ करता है, संशय में तो इस ढंग की प्रतीति होती है कि पदार्थ सत् है या असत् है। पदार्थ सत् भी है और असत् भी है, और पदार्थ सत् है या असत् इन दोनों प्रतीतियों में महान अन्तर है—पहिली निश्चय रूप है और दूसरी अनिश्चय रूप। अत: अनेकान्त के सम्बन्ध में शंकराचार्य जी की संशयवाली आपत्ति भी मिथ्या है।

स्वामी शंकराचार्य के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी इसके सम्बन्ध में आपत्तियाँ उपस्थित की हैं। इन सबकी आपत्तियों को यदि संग्रहरूप से कहें तो यों कहना चाहिये कि **अनेकान्त–विरोधी विद्वानों** ने इसके सम्बन्ध में **निम्नलिखित दूषण उपस्थित किये हैं**—

(1) संशय, (2) विरोध, (3) व्यतिकर, (4) सङ्कर, (5) वैय्यधिकरण, (6) उभयदोष, (7) अनवस्था और (8) अभाव।

4.8 अनेकांत के संबंध में तथाकथित दूषणों का युक्ति संगत निराकरण—

इनमें से पहले दो के सम्बन्ध में तो प्रकाश डाला जा चुका है।

व्यतिकर से तात्पर्य एक–दूसरे का एक–दूसरे में चला जाना है, कहा भी जाया करता है कि तुम पर मेरी वस्तु चली

गई है और मुझ पर तुम्हारी आ गई है। अनेक धर्मात्मक वस्तु के अनेक धर्मों में यदि इस प्रकार का आदान-प्रदान होता, एक धर्म की बातें दूसरे में और दूसरे की उसमें आ जाती होतीं तब तो प्रस्तुत तत्त्व में इस दूषण की सम्भावना की जा सकती थी।

अनेकान्त अनेक धर्मों का समुदाय–स्वरूप है, किन्तु उसके सम्पूर्ण धर्म अपने-अपने रूप में ही रहते हैं, एक-दूसरे में एक-दूसरे का गमन-आगमन नहीं होता, स्वयं गुण को तो निर्गुण माना गया है, अतः प्रकट है कि अनेकान्त के सम्बन्ध में व्यतिकर की बात बिल्कुल मिथ्या है। यही बात शंकर के सम्बन्ध में है, शंकर–दोष की संभावना भी उस ही समय हो सकती थी जबकि सब धर्म एक रूप हो जाते होते, नित्य–अनित्यत्व और सत्–असत् आदि में कोई अन्तर ही न रहता होता।

व्यतिकर की समीक्षा करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि अनेकान्त का हर एक धर्म अपने रूप में ही रहता है। ऐसी परिस्थिति में यह बात कैसे मानी जा सकती है कि इन सब धर्मों का एकीकरण भी हो जाया करता है। अतः शंकर की बाधा भी निराधार है। पदार्थ को अनेक धर्मात्मक मानकर भी धर्मों को यदि भिन्न–आधार स्वीकार किया गया होता तब तो यह दूषण आ सकता था। यहाँ तो सब धर्मों का एक ही आधार है, अतः वैय्यधिकरण की बात भी मिथ्या है।

निरपेक्ष सत्त्व को और असत्व को या भेद और अभेद को स्वीकार नहीं किया गया, और न ऐसी प्रतीति ही होती है। अतः निरपेक्ष सत्त्व और असत्त्व के पक्ष में जो दूषण आ सकते थे उनको यहाँ स्थान नहीं है। अतः अनेकान्त के सम्बन्ध में उभय दोष की बात भी मिथ्या है।

जिस दृष्टि से धर्मों में भेद माना जाता है उस ही दृष्टि से यदि अभेद भी माना जाता और इस ही प्रकार अभेदवाली दृष्टि से भेद भी, तब तो कहीं भी रुकावट नहीं आ सकती थी और इस प्रकार अनवस्था दूषण आ सकता था, किन्तु वस्तुस्थिति इससे विपरीत है। यहाँ तो जिस दृष्टि से भेद है उससे भेद ही है, इस ही प्रकार जिससे अभेद है उससे अभेद ही है। यहाँ तो अनवस्था की कल्पना को ही स्थान नहीं है, अतः इसके सम्बन्ध में अनवस्था दूषण की बात भी मिथ्या है।

अनेकान्त के सम्बन्ध में ये सब दूषण घटित हो जाते तब यह बात कही जा सकती थी कि अनेकान्त ठीक नहीं बैठता, अतः इसका अभाव ही मानना चाहिए। किन्तु परिस्थिति बिल्कुल विपरीत है। यहाँ तो एक भी दूषण तथ्यपूर्ण प्रमाणित नहीं हुआ है और इसकी प्रतीति निर्बाधित हो रही है, अतः इसके सम्बन्ध में अभाव की बात भी मिथ्या है। इन सब बातों के बल पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि जिसने भी अनेकान्त के खण्डन के लिए प्रयत्न किया है वह ही इसमें असफल रहा है।

4.9 स्याद्वाद—

वस्तु अनेक धर्मात्मक है, यह तो अब एक स्वयंसिद्ध बात है; इस अनेकात्मक वस्तु का किसी धर्म विशेष की दृष्टि से कथन करना स्याद्वाद है। दृष्टान्त के लिए यों समझियेगा कि एक मनुष्य है जो चाचा, मामा, पिता और भाई आदि है, किन्तु फिर भी उसको किसी खास समय किसी सम्बन्ध विशेष से ही पुकारा जाता है। उसका भानजा ही उसको मामा कह सकता है, या यों कहियेगा कि भानजे के सम्बन्ध से वह मामा है; इसी प्रकार पुत्र के सम्बन्ध से पिता, पिता के सम्बन्ध से पुत्र, और भतीजे के सम्बन्ध से वह चाचा है। यदि किसी समय इसको पिता, चाचा, मामा और भाई इनमें से किसी एक नाम से पुकारा जाता है तो इसका यह तात्पर्य होता है कि उसमें अनेक सम्बन्ध हैं, किन्तु फिर भी उसको अमुक सम्बन्ध की दृष्टि से ही उल्लेख किया जा रहा है। इसी का नाम स्यात् (दृष्टि विशेष से) वाद (कथन करना) स्याद्वाद है। यही बात जगत के सम्पूर्ण पदार्थों में घटित करनी चाहिये। जगत में जब–जब जिस–जिस पदार्थ को खास–खास धर्म की दृष्टि से वर्णन किया जाता है वह सब स्याद्वाद है। सिद्धात्मा को मुक्त, पुद्गल को मूर्त, आत्मा को चेतन, वस्तु को सत् , किसी को छोटा, किसी को बड़ा, किसी को ज्ञानवान, किसी को धनवान, किसी को निर्धन, किसी को

जाता, किसी को आता, किसी को रूपवान, किसी को कुरूप आदि जितने भी वर्णन किये जाते हैं ये सब किसी न किसी खास गुण की दृष्टि से हैं। अतः यह सब कथन स्याद्वाद है। दृष्टि विशेष को छोड़ दिया जाय और इस प्रकार के कथनों को एकान्ततः समझ लिया जाय तो फिर वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। सिद्धात्मा ही है, इसी को यदि एकान्ततः मुक्त मान लिया जाय तो फिर इनको ज्ञान से भी युक्त मानना पड़ेगा, और ऐसा करने पर मुक्त और संसारीपने की बात तो दूर रही, वह आत्मा ही न रह सकेगी। अतः इसको किसी दृष्टि विशेष से ही मुक्त मानना पड़ता है। इसी को यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो यही अमुक है। इसी प्रकार पुद्गल को भी केवल रूपादि की दृष्टि से मूर्त बतलाया जाता है, उसमें अन्य ऐसे भी गुण हैं जो इस प्रकार के नहीं हैं। अतः यदि इसको दूसरी दृष्टि से विवेचन किया जाय तो फिर इसको मूर्त्त नहीं कह सकते। इसी प्रकार शेष बातों के सम्बन्ध में घटित कर लेना चाहिये। इसी दृष्टि विशेष को व्यक्त करने के लिए शब्द के साथ 'कथंचित्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। कहीं इस प्रकार के शब्द का प्रयोग नहीं होता, किन्तु फिर भी उससे दृष्टि विशेष को दूर नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म रीति से पर्यालोकन से तो प्रत्येक शब्द ही इस ढंग का प्रतीत होता है। जितने भी संज्ञा शब्द हैं वे सब धातुओं से बने हैं, तथा क्रियावाचक शब्द का नाम धातु है। क्रिया गुण में होती है, अतः संज्ञा शब्द भी गुण का ही कथन करेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक शब्द ही स्याद्वाद रूप ठहरता है। ऐसी अवस्था में यदि किसी शब्द के साथ कथंचित् शब्द का प्रयोग न किया जाय तब भी यह दृष्टि स्वयं समझ लेना चाहिये।

4.10 सप्तभंगी—

वस्तु में परस्पर विरोधी दो धर्मों की दृष्टि से अस्ति, नास्ति, उभय, अनुभय, अस्ति अनुभय, नास्तिअनुभय, और अस्तिनास्ति अनुभय—ये सात धर्म हैं। सिद्धात्मा कर्मों से रहित है, अतः वह मुक्त है। यही सिद्धात्मा ज्ञानादिक गुणों से सहित है अतः अमुक्त भी है। जिस समय मुक्त है, उस ही समय अमुक्त भी है क्योंकि इसकी कर्मरहित अवस्था और ज्ञानसहित अवस्था में समय–भेद नहीं है। यह तो हर समय उभयरूप है।

मुक्त और अमुक्त सिद्धान्त को एक साथ नहीं कह सकते, जब मुक्त कहेंगे तब अमुक्त अंश छूट जाता है और जब अमुक्त कहते हैं, तब मुक्तांश छूट जाता है। ऐसा कोई भी उपाय नहीं जिससे इसको एक साथ उभयरूप कहा जा सके। अतः इस दृष्टि से यह अवक्तव्य है। इसी प्रकार अवक्तव्य के समय अमुक्त और अवक्तव्य भी है। इसकी अवक्तव्य अवस्था में इसको मुक्त और अमुक्त भी रहता है। अतः यह उभय और अनुभय दोनों रूप भी है।

इसी प्रकार नित्य–अनित्य, भिन्न–अभिन्न, एक–अनेक और सत्–असत् आदि में घटित कर लेना चाहिये। इसी प्रकार इनसे अधिक धर्मों का अस्तित्व ठीक नहीं बैठता, अतः वस्तु में किसी भी बात के विधि–प्रतिषेध रूप से इस प्रकार सात ही धर्म माने गये हैं, ये सातों ही बातें किसी न किसी दृष्टि विशेष से ही हैं। अतः इनके वर्णन का नाम भी स्याद्वाद है। ये सात हैं अतः इनके वर्णन के स्याद्वाद भी सात ही हो सकते हैं। इन्हीं सात स्याद्वादों का नाम **सप्तभंगी** है। यदि इसी को दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि इस प्रकार के सप्त स्याद्वाद या सप्तभंगी एक ही बात है। इसके दो भेद हैं—एक प्रमाण सप्तभंगी और दूसरा नय सप्तभंगी, जहाँ एक गुण के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का कथन किया जाता है वहाँ **प्रमाण सप्तभंगी** होती है; जैसे वस्तु सत् है, वस्तु में अनेक गुण हैं, या यों कहियेगा कि अनेक गुणों का समुदाय ही वस्तु है इन्हीं में से एक गुण सत् भी है। जब सत् गुण के द्वारा उससे अभिन्न देश समस्त समुदाय का कथन किया जाता है और इसके आधार से विधि–प्रतिषेध स्वरूप सप्तभंगी की कल्पना होती है, उस समय यह 'प्रमाण सप्तभंगी' कहलाता है।

जिस समय किसी गुण विशेष के द्वारा उस ही गुण का कथन किया जाता है उस समय '**नय सप्तभंगी**' कहलाती है। जैसे वस्तु में सत् है। यहाँ सत् से तात्पर्य वस्तु से नहीं है, किन्तु वस्तु के एक गुण से है। अतः यह उससे भिन्न है। इसके आधार से जो सप्तभंगी की कल्पना होती है वह नय सप्तभंगी कहलाती है।

इस ही को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस सप्तभंग का आधार प्रमाण ज्ञान है वह प्रमाण सप्तभंगी है, और जिसका आधार नय ज्ञान है वह 'नय सप्तभंगी' है।

इससे प्रगट है कि स्याद्वाद और सप्तभंगी में अंश और अंशी का सम्बन्ध है। स्याद्वाद अंश है और सप्तभंगी अंशी है। स्याद्वाद और सप्तभंगी ये शब्दरूप हैं अतः वाचक है। अनेकान्त पदार्थ-स्वरूप है, अतः वाच्य है। अतः **स्याद्वाद, सप्तभंगी और अनेकान्त में वाच्य-वाचक का सम्बन्ध है।**

4.11 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-पदार्थ के सामान्य गुण कितने हैं ?

(क) छह ☐
(ख) आठ ☐
(ग) सात ☐

प्रश्न 2-स्वर्ण रूप में.....घट रूप में.....और टुकड़े रूप में.....होता है ?

(क) नित्यता, नाश, उत्पाद ☐
(ख) नाश, सोना, उत्पाद ☐
(ग) उत्पाद, नित्यता, नाश ☐

प्रश्न 3-नय ज्ञान को क्या कहा जाता है ?

(क) सप्तभंगी ☐
(ख) नय सप्तभंगी ☐
(ग) प्रमाण सप्त भंगी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-सप्त धर्म कौन से हैं ? उनके नाम व परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 2-विरोध कितने प्रकार के होते हैं ? नाम लिखिए ?

प्रश्न 3-पदार्थ के विशेष गुण कौन-कौन से हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-अनेकांतवाद पर तथा कथित दूषणों का युक्ति संगत निराकरण किस प्रकार किया गया है ? लिखिए ?

इकाई–3 जैनदर्शन में ज्योतिष विद्या

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) जैनागम में ज्योतिष

(2) भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त

(3) नक्षत्रों के कार्य एवं नामाक्षर में छिपा रहस्य

(4) मुहूर्त विचार

पाठ 1—जैनागम में ज्योतिष

1.1 मनुष्य में सोचने-समझने की योग्यता है उसके फलस्वरूप उसे अपने विषय की चिन्ता ने अनादिकाल से सताया है। वर्तमान की चिन्ताओं के अतिरिक्त उसे इस बात की बड़ी जिज्ञासा रही है कि भविष्य में उसका क्या होने वाला है? आने वाले कल की बात आज जान लेने के लिये वह इतना आतुर हुआ है कि उसका नाना प्रकार के आधारों से भविष्य का अनुमान करना स्वाभाविक ही है।

भारतवर्ष का ज्योतिष शास्त्र भी बहुत प्राचीन है, संस्कृत तथा प्राकृत में इस विषय के अनेकों ग्रंथ पाये जाते हैं। ज्योतिष शास्त्र के मुख्य भेद हैं। गणित और फलित। गणित ज्योतिष विज्ञानात्मक है जिसके द्वारा ग्रहों की गति और स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर काल गणना में उसका उपयोग किया जाता है। ग्रहों की स्थिति व गति से जो शुभ-अशुभ फल का निरूपण किया जाता है उसे फलित ज्योतिष कहते हैं।

फलित ज्योतिष का एक अंग है अष्टांगनिमित्त। इसमें शरीर के तिल, मसा आदि व्यंजनों, हाथ-पैर आदि अंगों, ध्वनियों व स्वरों, भूमि के रंग-रूप, वस्त्र-शस्त्रादिक के छिद्रों, ग्रह-नक्षत्रों के उदय-अस्त, शंख, चक्र, कलश आदि लक्षणों तथा स्वप्न में देखी गई वस्तुओं व घटनाओं का विचार कर शुभाशुभरूप भविष्य फल कहा जाता है।

जैन परम्परा के अनुसार ज्ञात होता है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व कर्मभूमि के प्रारम्भ में प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति के समय में जब मनुष्यों को सर्वप्रथम सूर्य और चन्द्रमा दिखलायी पड़े तो वे इनसे सशंकित हुए और अपनी उत्कण्ठा शान्त करने के लिये प्रतिश्रुति नामक कुलकर (मनु) के पास गए। मनु ने ही सौर जगत सम्बन्धी सारी जानकारी बतलाई और ये ही सौर जगत की ज्ञातव्य बातें ज्योतिष शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुईं। आगमिक परम्परा अविच्छिन्न रूप से अनादि होने पर भी इस युग में ज्योतिष शास्त्र की नींव का इतिहास यहीं से आरम्भ होता है। सौर जगत के सिद्धान्तों के आधार पर गणित और फलित ज्योतिष का विकास प्रतिश्रुति मनु के सहस्रों वर्ष के बाद हुआ तथा यह ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति के आधार पर भावी फलाफलों का निरूपण भी उसी समय से होने लगा।

1.1.1 ज्योतिष के मुख्य तीन भेद-

सिद्धांत, संहिता तथा होरा।

संहिता ग्रंथों में भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, गृहोपकरण, गृहप्रवेश, जलाशय निर्माण, मांगलिक कार्यों के मुहूर्त, उल्कापात वृष्टि, ग्रहों के उदयास्त का फल, ग्रहाचार का फल, शकुन विचार, निमित्त एवं ग्रहण फल आदि बातों का विचार किया जाता है।

'होरा' इसकी उत्पत्ति, अहोरात्र शब्द से है, आदि अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'त्र' का लोप कर देने से होरा शब्द बन जाता है। 'होरा' शास्त्र में जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए फलाफल का निरूपण, जातक की उत्पत्ति के समय नक्षत्र, तिथि, योग, करण आदि का फल, ग्रहों के व राशियों के वर्ण, स्वभाव, गुण, आकार-प्रकार

आदि बातों का प्रतिपादन बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। जन्मकुण्डली का फलादेश कहना तो इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। इसमें परस्पर तात्कालिक साहचर्यादि सम्बन्ध से फल विशेष शुभाशुभ रूप में परिणत हो जाता है, जिसका प्रभाव पृथ्वी स्थित प्राणियों पर भी पूर्ण रूप से पड़ता है। इस शास्त्र में देह, पराक्रम, सुख, सुत, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, भाग्य, राज्य, पद, लाभ और व्यय इन बारह भावों का वर्णन रहता है। जन्म-नक्षत्र और जन्म-लग्न से फलादेश का वर्णन होरा शास्त्र में पाया जाता है।

1.1.2 जैन ज्योतिष का विकास–

जैनागम की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र का विकास विद्यानुवाद और परिकर्मों से हुआ है। समस्त 'गणित सिद्धांत' ज्योतिष परिकर्मों में अंकित है। अष्टांग महानिमित्त का विवेचन विद्यानुवाद में किया गया है। जैन समाज के मुख्य सिद्धांत ग्रंथ षट्खण्डागम-धवला टीका में रौद्र, श्वेत, मैत्र दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य वरुण, अर्यमान और भाग्य ये पन्द्रह मुहूर्त आये हैं। मुहूर्तों की नामावली वीरसेन स्वामी की अपनी नहीं है, किन्तु पूर्व परम्परा से आगत श्लोकों को उन्होंने उद्धृत किया है। अतः मुहूर्त चर्चा प्राचीन है।

नक्षत्र वर्णन प्रणाली का संहिता-शास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहा भी है कि घनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल एवं उत्तराषाढ़ा ये नक्षत्र कुलसंज्ञक, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा एवं पूर्वाषाढ़ा ये नक्षत्र उपकुल संज्ञक और अभिजित्, शतभिषा, आर्द्रा एवं अनुराधा कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया है। श्रवण मास के घनिष्ठा श्रावण और अभिजित, भाद्रपद मास के उत्तराभाद्रपद-पूर्वाभाद्रपद और शतभिषा, आसोज मास के अश्विनी और रेवती, कार्तिक मास के कृतिका और भरणी, मार्गशीर्ष के मृगशिरा और रोहिणी, पौष मास के पुष्य, पुनर्वसु और आर्द्रा, माघ मास के मघा और आश्लेषा, फाल्गुनी, चैत्र मास के चित्रा और हस्त, वैशाख मास के विशाखा और स्वाति, ज्येष्ठ मास के ज्येष्ठा, मूल और अनुराधा एवं आषाढ़ मास के उत्तराषाढ़ा और पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र बताये गये हैं। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक, दूसरा उपकुल संज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है।

सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरण्डक अंगविज्जा, गणितसार संग्रह, लोकविजय, केवलज्ञान हीरा, ज्योतिष प्रकाश, रिष्ट समुच्चय, जातक तिलक, केवलज्ञान प्रश्नचूड़ामणि, भद्रबाहु संहिता, मेघ महोदधि, मानसागरी, सामुद्रिक शास्त्र, करलक्खण आदि जैन ज्योतिष के सैकड़ों ग्रंथ उपलब्ध हैं।

जैनाचार्यों ने ज्योतिष को दो भागों में विभक्त किया है—एक गणित सिद्धान्त तथा दूसरा फलित सिद्धांत। गणित भाग में ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, फल, व्यास, परिधि आदि का प्रतिपादन किया है, साथ ही आकाशमंडल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब कैसा सम्बन्ध होता है, इसका ज्ञान गणित प्रक्रिया से ही संभव है। आचार्यों ने ज्योतिर्लोकाधिकार नामक एक अधिकार पृथक् देकर ज्योतिषी देवों के रूप, रंग, आकृति, भ्रमणमार्ग आदि का विवेचन किया है, यों तो बीजगणित, रेखागणित, प्रतिभागणित, पंचांग निर्माणगणित, जन्मपत्री निर्माण गणित, ग्रहयुति उदयास्त सम्बन्धी गणित आदि का निरूपण किया है। फलित सिद्धान्त में तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, ग्रहयोग जातक के जन्मकालीन ग्रहों का फल, मुहूर्त, समय शुद्धि आदि विषयों का परिज्ञान करने के लिये वर्ष प्रबोध, लग्न विचार और ज्योतिष रत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना आचार्यों ने की। फलित विषय के विस्तार में अष्टांगनिमित्त ज्ञान भी शामिल है। निमित्तज्ञान संहिता विषय के अन्तर्गत आता है। प्रश्नशास्त्र और सामुद्रिक शास्त्र का समावेश भी संहिता शास्त्र में किया है।

1.2 अष्टांग निमित्त–

जिन लक्षणों को देखकर भूत और भविष्य में घटित हुई और होने वाली घटनाओं का निरूपण किया जाता है। कारक और सूचक वस्तु को सम्पन्न कराने में सहायक होते हैं उसे कारक निमित्तक कहते हैं, दूसरा है सूचक निमित्त जिससे कार्य की सूचना मिलती है। ज्योतिषशास्त्र में सूचक निमित्तों की विशेषताओं पर विचार किया गया है तथा प्रतिपाद्य विषयसूचक निमित्त ही हैं। प्रत्येक घटना के घटित होने के पहले प्रकृति में विकार उत्पन्न होता है। ग्रह कर्मफल के अभिव्यंज्यक हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि आठ कर्म तथा मोहनीय के दर्शन और चारित्रमोह के भेदों के कारण कर्मों के प्रधान 8 भेद आगम में बताये गये हैं। नव ग्रह इन्हीं कर्म फलों की सूचना देते हैं। किसी भी जातक की जन्म कुण्डली की ग्रह स्थिति के साथ गोचर ग्रह की स्थिति समन्वयकर उक्त बातें सहज कही जा सकती हैं अतः अभिचारी सूचक निमित्तों का विवेचन किया गया है। इन्हीं सूचक निमित्तों के संहिता ग्रंथों में आठ भेद किये गये हैं—व्यंजन, अंग, स्वर भौम, छन्न, अंतरिक्ष, लक्षण एवं स्वप्न।

1.2.1 व्यंजन निमित्त–

तिल, मस्सा आदि देखकर शुभाशुभ का निरूपण करना व्यंजन निमित्तज्ञान है। सामान्य पुरुष के शरीर में दाहिनी ओर तिल, मस्सा, लहसुन शुभ समझा जाता है और स्त्री के शरीर में इन्हीं व्यञ्जनों का बाईं ओर होना शुभ माना जाता है। पुरुष की हथेली में तिल होने से उसके भाग्य की वृद्धि होती है और पदतल में होने से राज्य मान्यता प्राप्त होती है। पितृरेखा पर तिल होने से विष द्वारा कष्ट है, वाम पार्श्व या भौहों में तिल के होने से कार्य नाश और आशाएं समाप्त हो जाती हैं, नेत्र के कोने में तिल होने से व्यक्ति शास्त्रविनीत होता है, गले में तिल का रहना दुःख का सूचक है, कान पर तिल होने से यश तथा भाग्य की वृद्धि होती है। नितम्ब में तिल होने से अधिक सन्तान प्राप्त होती है, दाहिनी जांघ का तिल धनी होने का सूचक है, बायी जांघ पर तिल दरिद्र और रोगी होने की सूचना देता है। दाहिने पैर में तिल होने से मनुष्य ज्ञानी होता है तथा अपने जीवन काल में व्रती जीवन व्यतीत करता है। दाहिनी बाहु में तिल होने से दृढ़ शरीर, धैर्यशाली एवं बायीं बाहु में तिल होने से व्यक्ति कठोर प्रकृति वाला, क्रोधी और विश्वासघातक होता है।

यदि नारियों के बायें कान, कपोल, कण्ठ, हाथ में तिल हो तो पुत्रवान होती है, छाती में तिल होने से बुद्धिमान रहती है, हृदय में तिल रहने से सौभाग्यवती होती है। नारी के नाक पर तिल, मसा आदि हों तो उसको वैधव्य जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पीठ में तिल आदि का चिन्ह सुलक्षणा, पतिपरायण, सौभाग्यदायिनी होता हैं बायीं भुजा में रहने से स्वेच्छाचारिणी, असत्यभाषिणी होती है। नाभि के बायें भाग में तिल रहने से चंचलता और नाभि के दाहिने भाग में तिल होने से सुलक्षणा होती हैं।

तिल 3 रंग के होते हैं। लाल रंग के उत्तम फल वाले, काले रंग के मध्यम फल वाले और नीले रंग के अशुभ फल वाले होते हैं। मस्सों, चिन्हों और लहसुनों का शुभाशुभ फल भी तिलों के समान ही समझना चाहिए। निमित्तशास्त्र में व्यंजनों का विचार विस्तारपूर्वक किया गया है।

1.2.2 अंगनिमित्त ज्ञान—

हाथ, पांव, ललाट, मस्तक और वक्षस्थल आदि शरीर के अंगों को देखकर शुभाशुभ फल का निरूपण करना अंग निमित्त है। नासिका, नेत्र, दन्त, ललाट, मस्तक तथा वक्षस्थल में छह अवयव उन्नत होने से मनुष्य सुलक्षणी होता है। करतल, पदतल, नयनप्रान्त, नश्व, तालु, अधर, ओष्ठ और जिव्हा, ये सात अंग लाल हों तो शुभप्रद हैं। जिसकी भुजाएं लम्बी होती हैं वह व्यक्ति श्रेष्ठ होता है। जिसका हृदय विस्तीर्ण है वह धन-धान्य से युक्त तथा पूजनीय होता है। जिस व्यक्ति का नयनप्रान्त लाल होता है वह अतुल धन-धान्य का स्वामी होता है। जिसकी हथेली चिकनी और मुलायम हो वह ऐश्वर्य का भोग करता है। जिसके पैर का तलुवा लाल हो वह सवारी आदि का उपभोग सदा करता है। पैर के तलुवों का चिकना होना शुभ माना गया है, जिस मानव की जिह्वा इतनी लम्बी हो जो नाक का अग्रभाग स्पर्श कर ले तो वह

योगी या सन्यासी जीवन व्यतीत करेगा, जिसके दांत विरल हों उसको अन्य दूसरे व्यक्ति का धन प्राप्त होता है। ओठों पर विचार करते हुए आचार्यों ने कहा है कि भोंडे ओंठ वाला व्यक्ति मूर्ख अर्थात् जड़बुद्धि वाला होता है तथा आर्थिक रूप से कष्ट पाता है। पतले ओंठ वाला धनी तो होता है किन्तु कंजूसी स्वभाव का होता है। सरस, सुन्दर और आभायुक्त पतले ओंठ होने पर धनी, सुखी और सर्वप्रिय होता है। रुक्ष ओठ अजीर्ण, ज्वर रोग एवं दारिद्र्य को प्रगट करते हैं। दाँतों के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि चमकीले दांतवाला व्यक्ति कार्यशील और उत्साही होता है, छोटे दांत वाला विचारवान या बुद्धिमान होता है। जिस मुख में ये दांत स्वभावतः खुले हों, स्वच्छ हों, आभायुक्त हों तो व्यक्ति में शील, सौजन्यता तथा नम्रता का गुण अवश्य होता है।

गर्दन के पिछले भाग को पिछला मस्तक तथा अगले भाग को कण्ठ कहते हैं। पिछले मस्तक में सुन्दर गठाव हो तो व्यक्ति का स्वावलम्बन और स्वाभिमान प्रगट होता है, गर्दन सीधी दृढ़ और भारी होने से व्यक्ति विचारशील, श्रेष्ठ राजकर्मचारी या न्यायाधीश होता है।

मस्तक की बनावट पर 4 बातों का मुख्य रूप से निरूपण किया है—नसजाल, विस्तार, आभा तथा बनावट।

मस्तक के नसजाल से विद्या, विचार और प्रतिभा का परिज्ञान होता है, विचारशील मानव के माथे पर सिकुड़न और ग्रंथियाँ देखी जाती हैं, रेखाविहीन चिकना मस्तक प्रमाद, अज्ञान और लापरवाही का सूचक है।

मस्तक नीचे की ओर चौड़ा और ऊपर की ओर छोटा हो तो वह झक्की होता है नीचे चपटे और चौड़े माथे में विचार तथा कार्यशील कल्पना की कमी रहती है। चौड़ा और ढालू मस्तक चालाक, चतुर एवं पेट के मलीन होते हैं। उन्नत ललाट वाले विद्वान होते हैं, चौकोन मस्तक के ऊपरी भाग में गोलाई हो तो वह हठीला और दृढ़ होता है। ऊंचा–सीधा और आभापूर्ण ललाट लेखकों, कवियों, राजनैतिक नेताओं और अर्थशास्त्रियों का होता है। आभा चमक को कहते हैं। आभा के रहने से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। जिसके मस्तक में तेज नहीं, वह दुखी रहता है। बनावट में विद्या और धार्मिकता के माप का पता चलता है, अच्छी सुन्दर बनावट से सुखी, सम्पन्न और बेढंगी बनावट से उत्तम गुणों का अभाव होता है।

1.2.3 स्वर निमित्त–

प्राणियों की अचेतन वस्तुओं के शब्द को सुनकर शुभाशुभ का निरूपण करना स्वर निमित्त ज्ञान कहलाता है। इस निमित्त में काक, उल्लू, बिल्ली, कुत्ता आदि के शब्दों को कठोर फल देने वाला माना गया जैसे—उल्लू का दिन में बोलना अशुभ माना जाता है। रात्रि में कठोर शब्द करे तो भय प्राप्ति, अनिष्टसूचक। मधुर शब्द करे तो कार्य सिद्धि, सम्मान, लाभ की सूचना समझना चाहिए। हाथी, मोर, बिल्ली, गाय, भैंस, शृगाल आदि के स्वर का भी फल भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। अचेतन पदार्थों की आवाज आना जैसे चिरिचिरि, चिलि चिलि, कीतु कीतु, चच आदि का भी फल आगम ज्योतिष ग्रंथों में पाया जाता है।

1.2.4 भौम निमित्त–

भूति के रंग, चिकनाहट, रूखेपन आदि के द्वारा शुभ–अशुभ का ज्ञान करना भौम निमित्त कहलाता है। इस ज्ञान से देवालय निर्माण, जलाशय स्थल, गृहनिर्माण आदि योग्य भूमि की जानकारी मिलती है। भूमि के रूप, रस, गंध और स्पर्श द्वारा इसकी शुभ–अशुभ की सूचना मिलती है।

जैसे जिस स्थान की मिट्टी पीतवर्ण की हो तथा उसमें से मधु जैसी गंध निकलती हो तो वहां जल निकलता है, नीले रंग की मिट्टी हो तो नीचे खारा पानी, कपोत रंग की मिट्टी भी खारे जल के स्रोत की सूचना देती है। पीतवर्णी दूध के समान गंध वाली मिट्टी मीठे जल की सूचना देती है परन्तु एक बात का ध्यान अवश्य होना चाहिये कि मिट्टी चिकनी हो, रूक्ष मिट्टी में जल का अभाव होता है। धूम्र वर्ण की मिट्टी गहराई पर जल मिलने की सम्भावना की द्योतक है।

1.2.5 छिन्न निमित्त–

कपड़ा, आसन, शस्त्र आदि को छिदा हुआ देखकर उसके फल का निरूपण करना छिन्न निमित्त है। जैसे—नये वस्त्र में स्याही, गोबर, कीचड़, तेल, घी लग जावे या वस्त्र जल जाय, फट जाए, कट जाए तो इसके भी शुभाशुभ फल का ज्ञान करना चाहिए। जैसे नया वस्त्र पहनते ही फट जाए तो समझना चाहिये वस्त्र के स्वामी को असाध्य बीमारी होती है या मृत्यु होती है। वस्त्र के जलते समय वस्त्र में मेंढ़क, उल्लू, काक, गधा, ऊंट, सर्प आदि के आकार का होना धन विनाश का सूचक है, अपमान तथा तिरस्कार की भी सूचना देता है तथा छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, कलश, तोरण आदि के चिन्ह बनने से लक्ष्मी की वृद्धि, सम्मान तथा सभी प्रकार के अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। सिर के ऊपर के भाग, टोपी, पगड़ी जल जाने से अति ही उत्कृष्ट कष्टदायक फल मिलता है। रविवार, मंगलवार, शनिवार को वस्त्र कटने, जलने या फटने से कष्ट का सामना करना पड़ता है।

1.2.6 अन्तरिक्ष निमित्त–

ग्रह-नक्षत्रों के उदयास्त का निरूपण करना अन्तरिक्ष निमित्त है। शुक्र, बुध, मंगल, गुरु और शनि इन पाँच ग्रहों के उदयास्त द्वारा ही शुभाशुभ का निरूपण किया गया है या उदय-अस्त के समय इसकी आकृति आदि के द्वारा शुभ-अशुभ फल का निरूपण किया जाता है। यतः सूर्य और चन्द्रमा का उदयास्त प्रतिदिन होता है अतः उन ग्रहों में इसकी आवश्यकता नहीं रहती, तथापि सूर्य उदय-अस्त के समय के रंगों को देखकर उसकी प्ररूपणा की गई है या उदय-अस्त के समय इसकी आकृति आदि के द्वारा शुभ-अशुभ की सूचना मिलती रहती है। ग्रहों के अस्तोदय के समय मार्गी वक्री का विचार करना चाहिये। ग्रहों की विभिन्न जातियों के अनुसार शुभाशुभ फल का निरूपण करना अन्तरिक्ष निमित्त का कार्य हैं।

1.2.7 लक्षण निमित्त–

स्वस्तिक, कलश, शंख, चक्र, पद्म, मछली, हल, ध्वजा, मन्दिर, सूर्य, चन्द्रमा, धनुष, हाथी, घोड़ा, लक्ष्मी, वीणा, माला, त्रिशूल, कमंडलु, सिंहासन, कल्पवृक्ष, सरोवर, कच्छप, शीशा, तोरण, त्रिकोण, षट्कोण आदि चिन्हों के द्वारा, हस्त, पैर, मस्तक की रेखाओं द्वारा शुभाशुभ का निरूपण करना लक्षण निमित्त है। मनुष्य लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, जय-पराजय, स्वास्थ्य एवं अस्वास्थ्य, रेखाओं के बल से प्राप्त करता है। इस प्रकार लक्षण निमित्तसम्बन्धी ग्रंथों का अवलोकन करके उसके फलादेश को जानना चाहिए।

1.2.8 स्वप्न निमित्त–

स्वप्न के द्वारा शुभाशुभ का निरूपण करना भी निमित्त ज्ञान का अंग है दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज इन सात प्रकार के स्वप्नों में से भाविक स्वप्न का फल यथार्थ निकलता है। स्वप्नों के द्वारा आगामी शुभाशुभ की सूचना मिल जाती है। यह स्वप्न निमित्त है।

1.3 निमित्तज्ञान से संबंधित प्रश्न—

प्रश्नशास्त्र निमित्तज्ञान का ही एक अंग है। इसमें धातु, मूल, जीव, नष्ट, मुष्ठि, लाभ, हानि, रोग, मृत्यु, भोजन, शयन, नदियों की बाढ़, अतिवृष्टि, फसल, जय, पराजय, लाभालाभ, विवाह, सन्तान, यश एवं जीवन के विभिन्न आवश्यक प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। जैनाचार्यों ने अनेकों ग्रंथ लिखे हैं, जिसमें मुख्य केवलज्ञान प्रश्नचूड़ामणि, केवल प्रश्नावलि आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

भूत-भविष्य वर्तमान के शुभाशुभ दृष्टि, पांच मार्ग, चार केन्द्र, बलाबल, आसन, छत्र, वर्ण, उदयबल, अस्तबल, क्षेत्र, नर, नारी, नपुंसक, मृग तथा मनुष्यादिक के रूप, किरण, योजना, आयु, रस एवं उदय आदि की परीक्षा करके फल का निरूपण करना चाहिये। प्रश्न निमित्त का विचार तीन प्रकार से ज्योतिष ग्रंथों में किया गया है। प्रश्नाक्षर, प्रश्नलग्न और स्वर विज्ञान। प्रश्नाक्षर का आधार मनोविज्ञान है अतः विभिन्न परिस्थितियों के आधीन मानव मन की भीतरी तह

कृष्णपक्ष की पंचमी और शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, मार्गशीर्ष में दोनों पक्षों की सप्तमी और अष्टमी, पौष में दोनों पक्षों की चतुर्थी और शुक्लपक्ष की तृतीया मास शून्य संज्ञक हैं। मास शून्य तिथियों में कार्य करने से सफलता प्राप्त नहीं होती।

2.1.6 सिद्धा तिथियाँ—

मंगलवार को 3/8/13, बुधवार को 2/7/12, बृहस्पतिवार को 5/10/15, शुक्रवार को 1/6/11 एवं शनिवार को 4/9/14 तिथियाँ सिद्धि देने वाली सिद्धासंज्ञक हैं। इन तिथियों में किया गया कार्य सिद्धिप्रदायक होता है।

2.1.7 दग्धा, विष और हुताशन संज्ञक तिथियाँ—

रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी दग्धा संज्ञक; रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी विष संज्ञक एवं रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को एकादशी हुताशन संज्ञक हैं। नामानुसार इन तिथियों में काम करने से विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

दग्धा-विष-हुताशनयोगसंज्ञाबोधक चक्र

वार	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
दग्धा संज्ञक	12	11	5	3	6	8	9
विष संज्ञक	4	6	7	2	8	9	7
हुताशनसंज्ञक	12	6	7	8	9	10	11

2.2 नक्षत्र—

कई ताराओं के समुदाय को नक्षत्र कहते हैं। आकाश मण्डल में जो असंख्यात तारिकाओं से कहीं अश्व, शकट, सर्प, हाथ आदि के आकार बन जाते हैं, वे ही नक्षत्र कहलाते हैं। जिस प्रकार लोक व्यवहार में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी मीलों या कोसों में नापी जाती है, उसी प्रकार आकाश मण्डल की दूरी नक्षत्रों से ज्ञात की जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे कोई पूछे कि अमुक घटना सड़क पर कहाँ घटी, तो यही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक स्थान से इतने कोस या मील चलने पर, उसी प्रकार अमुक नक्षत्र में। समस्त आकाश मण्डल की दूरी नक्षत्रों से ज्ञात की जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे कोई पूछे कि अमुक घटना सड़क पर कहाँ घटी, तो यही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक स्थान से इतने कोस या मील चलने पर, उसी प्रकार अमुक ग्रह आकाश में कहाँ है, तो इस प्रश्न का भी वही उत्तर दिया जायेगा कि अमुम नक्षत्र में। समस्त आकाश मण्डल को ज्योतिषशास्त्र ने 27 भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग का नाम एक-एक नक्षत्र रखा है। सूक्ष्मता से समझाने के लिए प्रत्येक नक्षत्र के भी चार भाग किए गए हैं, जो चरण कहलाते हैं। 27 नक्षत्रों के नाम निम्न हैं—1. अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृत्तिका, 4 रोहिणी, 5. मृगशिरा, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. आश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वाफाल्गुनी, 12. उत्तराफाल्गुनी, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाति, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. ज्येष्ठा, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढ़ा, 21. उत्तराषाढ़ा, 22. श्रवण, 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वाभाद्रपद, 26. उत्तराभाद्रपद, 27. रेवती।

अभिजित् को भी 28वाँ नक्षत्र माना गया है। ज्योतिर्विदों का अभिमत है कि उत्तराषाढ़ा की आखिरी 15 घटियाँ और श्रवण के प्रारम्भ की चार घटियाँ, इस प्रकार 19 घटियों के मान वाला अभिजित् नक्षत्र होता है। यह समस्त कार्यों में शुभ माना गया है।

2.2.1 नक्षत्रों के स्वामी—

अश्विनी का अश्विनीकुमार, भरणी का काल, कृत्तिका का अग्नि, रोहिणी का ब्रह्मा, मृगशिरा का चन्द्रमा, आर्द्रा का रुद्र, पुनर्वसु का अदिति, पुष्य का बृहस्पति, आश्लेषा का सर्प, मघा का पितर, पूर्वाफाल्गुनी का भग, उत्तराफाल्गुनी का अर्यमा, हस्त का सूर्य, चित्रा का विश्वकर्मा, स्वाति का पवन, विशाखा का शुक्राग्नि, अनुराधा का मित्र, ज्येष्ठा का इन्द्र, मूल का निर्ऋति, पूर्वाषाढ़ा का जल, उत्तराषाढ़ा का विश्वेदेव, श्रवण का विष्णु, घनिष्ठा का वसु, शतभिषा का वरुण, पूर्वाभाद्रपद का अजैकपाद, उत्तराभाद्रपद का अहिर्बुध्न्य, रेवती का पूषा एवं अभिजित् का ब्रह्मा स्वामी है। नक्षत्रों का फलादेश भी स्वामियों के स्वभाव-गुण के अनुसार जानना चाहिए।

2.2.2 पंचक संज्ञक—

धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती-इन नक्षत्रों में पंचक दोष माना जाता है।

2.2.3 मूल संज्ञक—

ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, मूल, मघा और अश्विनी, ये नक्षत्र मूलसंज्ञक हैं। इनमें यदि बालक उत्पन्न होता है तो 27 दिन के पश्चात् जब वही नक्षत्र आ जाता है तब शान्ति करायी जाती है। इन नक्षत्रों में ज्येष्ठा और मूल गण्डान्त मूलसंज्ञक तथा आश्लेषा सर्पमूलसंज्ञक हैं।

2.2.4 नक्षत्रों की अन्य संज्ञा—

ध्रुव संज्ञक—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी ध्रुवसंज्ञक हैं।

चर संज्ञक—स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा चर या चलसंज्ञक हैं।

उग्र संज्ञक—पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मघा व भरणी उग्र संज्ञक हैं।

मिश्र संज्ञक—विशाखा और कृत्तिका मिश्रसंज्ञक हैं।

लघु संज्ञक—हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् क्षिप्र या लघुसंज्ञक हैं।

मृदु संज्ञक—मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्रसंज्ञक हैं।

तीक्ष्ण संज्ञक—मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुणसंज्ञक हैं।

अधोमुख संज्ञक—मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा अधोमुखसंज्ञक हैं। इनमें कुआँ या नींव खोदना शुभ माना जाता है।

ऊर्ध्वमुख संज्ञक—आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा ऊर्ध्वमुख संज्ञक हैं।

तिर्यङ्मुख संज्ञक—अनुराधा, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी तिर्यङ्मुख संज्ञक हैं।

दग्ध संज्ञक—रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा एवं शनिवार को रेवती दग्ध संज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में शुभ कार्य करना वर्जित है।

2.2.5 मासशून्य संज्ञक—

चैत्र में रोहिणी और अश्विनी; वैशाख में चित्रा और स्वाति; ज्येष्ठ में उत्तराषाढ़ा और पुष्य; आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनी और धनिष्ठा, श्रवण में उत्तराषाढ़ा और श्रवण; भाद्रपद में शतभिषा और रेवती; आश्विन में पूर्वाभाद्रपद, कार्तिक में कृत्तिका और मघा; मार्गशीर्ष में चित्रा और विशाखा; पौष में आर्द्रा, अश्विनी और हस्त; माघ में श्रवण और मूल एवं फाल्गुन में भरणी और ज्येष्ठा मास शून्य नक्षत्र हैं।

कार्य की सिद्धि में नक्षत्रों की संज्ञाओं का फल प्राप्त होता है।

2.3 नक्षत्रों के चरणाक्षर—

चू चे चो ला = अश्विनी, ली लू ले लो = भरणी, आ ई उ ए = कृत्तिका, ओ वा वी वू = रोहिणी, वे वो का की =

मृगशिर, कू घ ङ छ = आर्द्रा, के को हा ही = पुनर्वसु, हू हे हो डा = पुष्य, डी डू डे डो = आश्लेषा, मा मी मू मे = मघा, मो टा टी टू = पूर्वाफाल्गुनी, टे टो पा पी = उत्तराफाल्गुनी, पू ष ण ठ = हस्त, पे पो रा री = चित्रा, रू रे रो ता = स्वाति, ती तू ते तो = विशाखा, ना नी नू ने = अनुराधा, नो या यी यू = ज्येष्ठा, ये यो भा भी = मूल, भू धा फा ढा = पूर्वाषाढ़ा, भे भो जा जी = उत्तराषाढ़ा, खी खू खे खो = श्रवण, गा गी गू गे = धनिष्ठा, गो सा सी सू = शतभिषा, से सो दा दी = पूर्वाभाद्रपद, दू थ झ ञ = उत्तराभाद्रपद, दे दो चा ची = रेवती।

2.4 योग–

सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़कर तथा कलाएँ बनाकर 800 का भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह अवगत किया जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कलाएँ बीत गयी हैं। शेष को 800 में से घटाने पर वर्तमान योग की गम्य कलाएँ आती हैं। इन गत या गम्य कलाओं को 60 से गुणा कर सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति के योग से भाग देने पर वर्तमान योग की गत और गम्य घटिकाएँ आती हैं। अभिप्राय यह है कि जब अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिलकर 800 कलाएँ आगे चल चुकते हैं तब एक योग बीतता है, जब 1600 कलाएँ आगे चलते हैं तब दो; इसी प्रकार जब दोनों 12 राशियाँ—21600 कलाएँ अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब 27 योग बीतते हैं।

27 योगों के नाम ये हैं—1. विष्कम्भ, 2. प्रीति, 3. आयुष्मान, 4. सौभाग्य, 5. शोभन, 6. अतिगण्ड, 7. सुकर्मा, 8. धृति, 9. शूल, 10, गण्ड, 11. वृद्धि , 12. ध्रुव, 13. व्याघात, 14. हर्षण, 15. वज्र, 16. सिद्धि, 17. व्यतीपात, 18. वरीयान् , 19. परिघ, 20. शिव, 21. सिद्ध, 22. साध्य 23. शुभ, 24. शुक्ल, 25. ब्रह्म, 26. ऐन्द्र, 27. वैधृति।

2.4.1 योगों के स्वामी—

विष्कम्भ का स्वामी यम, प्रीति का विष्णु, आयुष्मान् का चन्द्रमा, सौभाग्य का ब्रह्मा, शोभन का बृहस्पति, अतिगण्ड का चन्द्रमा, सुकर्मा का इन्द्र, धृति का जल, शूल का सर्प, गण्ड का अग्नि, वृद्धि का सूर्य, ध्रुव का भूमि, व्याघात का वायु, हर्षण का भग, वज्र का वरुण, सिद्धि का गणेश, व्यतीपात का रुद्र, वरीयान् का कुबेर, परिघ का विश्वकर्मा, शिव का मित्र, सिद्ध का कार्तिकेय, साध्य की सावित्री, शुभ की लक्ष्मी, शुक्ल की पार्वती, ब्रह्मा का अश्विनीकुमार, ऐन्द्र का पितर एवं वैधृति की दिति है।

2.5 करण—

तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। 11 करणों के नाम ये हैं—1. बव, 2. बालव, 3. कौलव, 4. तैतिल, 5. गर, 6. वणिज, 7. विष्टि, 8. शकुनि, 9. चतुष्पद, 10. नाग, 11. किंस्तुघ्न। इन करणों में पहले के 7 करण चरसंज्ञक और अन्तिम 4 करण स्थिरसंज्ञक हैं।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के अन्तिम अर्द्धभाग में 'शकुनि' नामक करण रहता है। फिर अमावस्या के पहले अर्द्धभाग में चतुष्पद तथा उत्तरार्द्ध में 'नाग' करण होता है। फिर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के अर्द्धभाग में किंस्तुघ्न' करण आता है। तत्पश्चात् क्रमशः अन्य करण आते हैं और इन सबकी निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है।

2.5.1 करणों के स्वामी—

बव का इन्द्र, बालव का ब्रह्मा, कौलव का सूर्य, तैतिल का सूर्य, गर का पृथ्वी, वणिज का लक्ष्मी, विष्टि का यम, शकुनि का कलियुग, चतुष्पद का रुद्र, नाग का सर्प एवं किंस्तुघ्न का वायु है।

विष्टि करण का नाम भद्रा है, प्रत्येक पंचांग में भद्रा के आरम्भ और अन्त का समय दिया रहता है। भद्रा में प्रत्येक शुभकर्म करना वर्जित है।

2.6 वार—

जिस दिन की प्रथम होरा का जो ग्रह स्वामी है, उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार रहता है। अभिप्राय यह है कि ज्योतिषशास्त्र में शनि, बृहस्पति, मंगल, रवि, शुक्र, बुध और चन्द्रमा—ये ग्रह एक दूसरे से नीचे-नीचे माने गये हैं। अर्थात् सबसे ऊपर शनि, उससे नीचे बृहस्पति उससे नीचे मंगल, मंगल के नीचे रवि इत्यादि क्रम से ग्रहों की कक्षाएँ हैं। एक दिन में 24 होराएँ होती हैं—एक–एक घण्टे की एक–एक होरा होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घण्टे का दूसरा नाम होरा है। प्रत्येक होरा का स्वामी अधःकक्षाक्रम से एक–एक ग्रह होता है। सृष्टि आरम्भ में सबसे पहले सूर्य दिखलाई पड़ता है इसलिए यह पहली होरा का स्वामी माना जाता है अतएव पहले वार का नाम आदित्यवार या रविवार है। इसके अनन्तर उस दिन की दूसरी होरा का स्वामी उसके पास वाला शुक्र, तीसरी का बुध, चौथी का चन्द्रमा, पांचवीं का शनि, छठी का बृहस्पति, सातवीं का मंगल, आठवीं का रवि, नवीं का शुक्र, दसवीं का बुध, ग्यारहवीं का चन्द्रमा, बारहवीं का शनि, 13वीं का बृहस्पति, 14वीं का मंगल, 15वीं का रवि, 16वीं का शुक्र, 17वीं का बुध, 18वीं का चन्द्रमा, 19वीं का शनि, 20वीं का बृहस्पति, 21वीं का मंगल, 22वीं का रवि, 23वीं का शुक्र और 24वीं का बुध स्वामी होता है। पश्चात् दूसरे दिन की पहली होरा का स्वामी चन्द्रमा पड़ता है अतः दूसरा वार सोमवार या चन्द्रवार माना जाता है। इसी प्रकार तीसरे दिन की पहली होरा का स्वामी मंगल, चौथे दिन की पहली होरा का स्वामी बुध, 5वें दिन की पहली होरा का स्वामी बृहस्पति, छठे दिन की पहली होरा का स्वामी शुक्र, एवं 7वें दिन की पहली होरा का स्वामी शनि होता है। इसीलिए क्रमशः रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि–ये सात वार माने जाते हैं।

2.6.1 वार संज्ञाएँ—

बृहस्पति, चन्द्र, बुध, और शुक्र—ये वार सौम्यसंज्ञक एवं मंगल, रवि और शनि—ये वार क्रूरसंज्ञक माने गये हैं। सौम्यसंज्ञक वारों में शुभ कार्य करना अच्छा माना जाता है।

रविवार स्थिर, सोमवार चर, मंगलवार उग्र, बुधवार सम, गुरुवार लघु, शुक्रवार मृदु एवं शनिवार तीक्ष्णसंज्ञक हैं। शल्यक्रिया के लिए शनिवार उत्तम माना गया है। विद्यारम्भ के लिए गुरुवार और वाणिज्यारम्भ के लिए बुधवार प्रशस्त माना गया है।

2.7 राशियों का परिचय—

आकाश में स्थित भचक्र के 360 अंश अथवा 108 भाग होते हैं। समस्त भचक्र 12 राशियों में विभक्त है अतः 30 अंश अथवा 9 भाग की एक राशि होती है।

मेष—पुरुष जाति, चरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, पूर्व दिशा की मालिक, मस्तक का बोध कराने वाली, पृष्ठोदय, उग्र प्रकृति, लाल–पीले वर्ण वाली, कान्तिहीन, क्षत्रिय वर्ण, सभी समान अंग वाली और अल्प सन्तति है। यह पित्त प्रकृतिकारक है, इसका प्राकृतिक स्वभाव साहसी, अभिमानी और मित्रों पर कृपा रखने वाला है।

वृष—स्त्री राशि, स्थिरसंज्ञक, भूमितत्त्व, शीतल स्वभाव, कान्तिरहित, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, वातप्रकृति, रात्रिबली, चार चरण वाली, श्वेत वर्ण, महाशब्दकारी, विषमोदयी, मध्यम सन्तति, शुभकारक, वैश्यवर्ण और शिथिल शरीर है। यह अर्द्धजल राशि कहलाती है। इसका प्राकृतिक स्वभाव स्वार्थी, समझ-बूझकर काम करने वाली और सांसारिक कार्यों में दक्ष होती है। इससे कण्ठ, मुख और कपोलों का विचार किया जाता है।

मिथुन–पश्चिम दिशा की स्वामिनी, वायुतत्त्व, तोते के समान हरित वर्ण वाली, पुरुष राशि, द्विस्वभाव, विषमोदयी, उष्ण, शूद्रवर्ण, महाशब्दकारी, चिकनी, दिनबली, मध्यम सन्तति और शिथिल शरीर है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विद्याध्ययनी और शिल्पी है। इससे हाथ, शरीर के कन्धों और बाहुओं का विचार किया जाता है।

कर्क—चर, स्त्री जाति, सौम्य और कफ प्रकृति, जलचारी, समोदयी, रात्रिबली, उत्तर दिशा की स्वामिनी, रक्त–धवल मिश्रितवर्ण, बहुचरण एवं सन्तान वाली है। इसका प्राकृतिक स्वभाव सांसारिक उन्नति में प्रयत्नशीलता, लज्जा, कार्यस्थैर्य और समयानुयायिता का सूचक है। इससे पेट, वक्षःस्थल और गुर्दे का विचार किया जाता है।

सिंह—पुरुष जाति, स्थिर संज्ञक, अग्नितत्त्व, दिनबली, पित्त प्रकृति, पीत वर्ण, उष्ण स्वभाव, पूर्व दिशा की स्वामिनी, पुष्ट शरीर, क्षत्रिय वर्ण, अल्पसन्तति, भ्रमणप्रिय और निर्जल राशि है। इसका प्राकृतिक स्वरूप मेष राशि जैसा है पर तो भी इसमें स्वातन्त्र्य प्रेम और उदारता विशेष रूप से वर्तमान है। इससे हृदय का विचार किया जाता है।

कन्या—पिंगल वर्ण, स्त्री जाति, द्विस्वभाव, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, रात्रिबली, वायु और शीत प्रकृति, पृथ्वीतत्त्व और अल्प सन्तान वाली है। इसका प्राकृतिक स्वभाव मिथनु जैसा है पर विशेषता इतनी है कि अपनी उन्नति और मान पर पूर्ण ध्यान रखने की यह कोशिश करती है। इससे पेट का विचार किया जाता है।

तुला—पुरुष जाति, चरसंज्ञक, वायुतत्त्व, पश्चिमी दिशा की स्वामिनी, अल्प सन्तान वाली, श्यामवर्ण, शीर्षोदयी, शूद्रसंज्ञक, दिनबली, क्रूर स्वभाव और पाद जल राशि है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, ज्ञानप्रिय, कार्य सम्पादक और राजनीतिज्ञ है। इससे नाभि के नीचे के अंगों का विचार किया जाता है।

वृश्चिक—स्थिर संज्ञक, शुभ्रवर्ण स्त्री जाति, जलतत्त्व, उत्तर दिशा की स्वामिनी, रात्रिबली, कफ प्रकृति, बहुसन्तति, ब्राह्मण वर्ण और अर्द्ध जलराशि है। इसका प्राकृतिक स्वभाव दम्भी, हठी, दृढ़प्रतिज्ञ, स्पष्टवादी और निर्मल है। इससे शरीर के कद एवं जननेन्द्रिय का विचार किया जाता है।

धनु—पुरुष जाति, कांचन वर्ण, द्विस्वभाव, क्रूरसंज्ञक, पित्त प्रकृति, दिनबली, पूर्व दिशा की स्वामिनी, दृढ़ शरीर, अग्नितत्त्व, क्षत्रिय वर्ण, अल्प सन्तति एवं अर्द्ध जलराशि है। इसका प्राकृतिक स्वभाव अधिकारप्रिय, करुणामय और मर्यादा का इच्छुक है। इससे पैरों की सन्धि तथा जंघाओं का विचार किया जाता है।

मकर—चरसंज्ञक, स्त्री जाति, पृथ्वीतत्त्व, वात प्रकृति, पिंगल वर्ण, रात्रिबली, वैश्यवर्ण, शिथिल शरीर और दक्षिण दिशा की स्वामिनी है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उच्च दशाभिलाषी है। इससे घुटनों का विचार किया जाता है।

कुम्भ—पुरुष जाति, स्थिर संज्ञक, वायुतत्त्व, विचित्र वर्ण शीर्षोदय, अर्द्धजल, त्रिदोष प्रकृति, दिनबली, पश्चिम दिशा की स्वामिनी, उष्ण स्वभाव, शूद्र वर्ण, क्रूर एवं मध्यम सन्तान वाली है। इसका प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, शान्तचित्त, धर्मवीर और नवीन बातों का आविष्कारक है। इससे पेट के भीतरी भागों का विचार किया जाता है।

मीन—द्विस्वभाव, स्त्री जाति, कफ प्रकृति, जलतत्त्व, रात्रिबली, विप्र वर्ण, उत्तर दिशा की स्वामिनी और पिंगल रंग है। इसका प्राकृतिक स्वभाव उत्तर, दयालु और दानशील है। यह सम्पूर्ण जलराशि है। इससे पैरों का विचार किया जाता है।

2.8 अक्षरानुसार राशिज्ञान—

1. मेष	= चू चे चो ला ली लू ले लो आ	आ ला
2. वृष	= ई उ ए ओ वा वी वू वे वो	उ वा
3. मिथुन	= का की कू घ ङ छ के को हा	का छा
4. कर्क	= ही हू हे हो डा डी डू डे डो	डा हा
5. सिंह	= मा मी मू मे मो टा टी टू टे	मा टा
6. कन्या	= टो पा पी पू ष ण ठ पे पो	पा ठा
7. तुला	= रा री रू रे रो ता ती तू ते	रा ता
8. वृश्चिक	= तो ना नी नू ने नो या यी यू	नो या

9. धनु	= ये यो भा भी भू धा फा ढा भे	भू धा फा ढा
10. मकर	= भो जा जी खी खू खे खो गा गी	खा जा
11. कुम्भ	= गू गे गो सा सी सू से सो दा	गो सा
12. मीन	= दी दू थ झ ञ दे दो चा ची	दा चा

(राशिज्ञान करने की संक्षिप्त अक्षरविधि उपर्युक्त है)

2.8.1 राशि स्वरूप का प्रयोजन—

उपर्युक्त बारह राशियों का जैसा स्वरूप बतलाया है, इन राशियों में उत्पन्न पुरुष और स्त्रियों का स्वभाव भी प्रायः वैसा ही होता है। जन्मकुण्डली में राशि और ग्रहों के स्वरूप के समन्वय पर से ही फलाफल का विचार किया जाता है। दो व्यक्तियों की या वर-कन्या की शत्रुता और मित्रता अथवा पारस्परिक स्वभाव मेल के लिए भी राशि स्वरूप उपयोगी है।

2.8.2 शत्रुता और मित्रता की विधि—

पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व वाली राशियों के व्यक्तियों में तथा अग्नितत्त्व और वायुतत्त्व वाली राशियों के व्यक्तियों में परस्पर मित्रता रहती है। पृथ्वी और अग्नितत्त्व, जल और अग्नितत्त्व एवं जल और वायुतत्त्व वाली राशियों के व्यक्तियों में शत्रुता रहती है।

2.8.3 राशियों के स्वामी—

मेष और वृश्चिक का मंगल, वृष और तुला का शुक्र, कन्या और मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, मीन और धनु का बृहस्पति, मकर और कुम्भ का शनि, कन्या का राहु एवं मिथुन का केतु है।

2.8.4 शून्यसंज्ञक राशियाँ—

चैत्र में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ़ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या आश्विन में वृश्चिक, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर एवं फाल्गुन में सिंह शून्यसंज्ञक हैं।

2.8.5 राशियों का अंग-विभाग—

द्वादश राशियाँ काल-पुरुष का अंग मानी गयी हैं। मेष को सिर में, वृष को मुख में, मिथुन को स्तनमध्य में, कर्क को हृदय में, सिंह को उदर में, कन्या को कमर में, तुला को पेडू में, वृश्चिक को लिंग में, धनु को जंघा में, मकर को दोनों घुटनों में, कुम्भ को दोनों जाँघों में एवं मीन को दोनों पैरों में माना है।

2.9 आवश्यक परिभाषाएँ—

60 प्रतिपल	= 1 विपल	60 प्रतिविकला	= 1 विकला
60 विपल	= 1 पल	60 विकला	= 1 कला
60 पल	= 1 घटी	60 कला	= 1 अंश
24 मिनट	= 1 घटी या दण्ड	30 अंश	= 1 राशि
2-1/2 पल	= 1 मिनट	12 राशि	= 1 भगण
2-1/2 विपल	= 1 सेकेण्ड	8 यव	= 1 अंगुल
2-1/2 घटी	= 1 घण्टा	24 अंगुल	= 1 हाथ
60 घटी	= एक अहोरात्र	4 हाथ	= 1 दण्ड या बाँस
		2000 बाँस	= 1 कोश

2.10 ग्रहों का निसर्ग–मैत्री विचार—

सूर्य के चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति मित्र; शुक्र और शनि शत्रु एवं बुध सम है। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र; मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि सम हैं। मंगल के सूर्य, चन्द्रमा एवं बृहस्पति मित्र; बुध शत्रु, शुक्र और शनि सम हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र; चन्द्रमा शत्रु एवं मंगल, बृहस्पति और शनि सम हैं। शुक्र के बुध, शनि मित्र; सूर्य, चन्द्रमा शत्रु और मंगल, बृहस्पति सम हैं। शनि के बुध और शुक्र मित्र; सूर्य, चन्द्रमा और मंगल शत्रु एवं बृहस्पति सम हैं।

निसर्ग मैत्री बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र, मंगल, गुरु	रवि, बुध	रवि, गुरु चन्द्र	सूर्य, शुक्र	बुध शनि	बुध शनि	बुध, शुक्र
शत्रु	शुक्र, शनि	×	बुध	चन्द्र	बुध, शुक्र	सूर्य चन्द्र	सूर्य, चन्द्र मंगल
सम (उदासीन)	बुध	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि	शुक्र शनि	मंगल, गुरु, शनि	शनि	मंगल गुरु	गुरु

तात्कालिक मैत्री विचार—जो ग्रह जिस स्थान में रहता है, वह उससे दूसरे, तीसरे, चौथे, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें भाव के ग्रहों के साथ मित्रता रखता है—तात्कालिक मित्र होता है और अन्य स्थानों—1, 5, 6, 7, 8, 9 के ग्रह शत्रु होते हैं।

जन्मपत्री बनाते समय निसर्ग मैत्री चक्र लिखने के अनन्तर जन्मलग्न कुण्डली के ग्रहों का उपर्युक्त नियम के अनुसार तात्कालिक मैत्री चक्र भी लिखना चाहिए।

पंचधा मैत्री विचार–नैसर्गिक और तात्कालिक मैत्री इन दोनों के सम्मिश्रण से पांच प्रकार के मित्र, शत्रु होते हैं— 1. अतिमित्र, 2. अतिशत्रु 3. मित्र, 4. शत्रु और 5. उदासीन सम।

तात्कालिक और नैसर्गिक दोनों जगह मित्र होने से अतिमित्र, दोनों जगह शत्रु होने से अतिशत्रु, एक में मित्र और दूसरे में सम होने से मित्र, एक में सम और दूसरे में शत्रु होने से शत्रु एवं एक में शत्रु और दूसरे में मित्र होने से सम-उदासीन ग्रह होते हैं।

2.11 सूर्यादि ग्रहों के द्वारा विचारणीय विषय—

1. सूर्य से—पिता, आत्मा, प्रताप, आरोग्यता, आसक्ति व लक्ष्मी का विचार करें।
2. चन्द्रमा से—मन, बुद्धि, राजा की प्रसन्नता, माता और धन का विचार करें।
3. मंगल से—पराक्रम, रोग, गुण, भाई, भूमि, शत्रु और जाति का विचार करें।
4. बुध से—विद्या, बन्धु, विवेक, मामा, मित्र और वचन का विचार करें।
5. बृहस्पति से—बुद्धि, शरीर पुष्टि, पुत्र और ज्ञान का विचार करें।
6. शुक्र से—स्त्री, वाहन, भूषण, कामदेव, व्यापार और सुख का विचार करें।
7. शनि स—आयु, जीवन, मृत्युकरण, विपत् और सम्पत् का विचार करें।
8. राहु से—पितामह (पिता का पिता) का विचार करें।
9. केतु से—नाना (माता का पिता) का विचार करें।

2.11.1 द्वादश भाव कारक ग्रह—

सूर्य लग्न भाव का, बृहस्पति धन का, मंगल सहज का, चन्द्र और बुध शुभ का, बृहस्पति पुत्र का, शनि और मंगल शत्रु का, शुक्र जाया का, शनि मृत्यु का, सूर्य और बृहस्पति धर्म का, बृहस्पति, सूर्य, बुध और शनि कर्म का, बृहस्पति लाभ का एवं शनि व्यय भाव का कारक है।

कारक ज्ञान चक्र

भाव	लग्न 1	धन 2	सहज 3	सुख 4	पुत्र 5	शत्रु 6	जाया 7	मृत्यु 8	धर्म 9	कर्म 10	लाभ 11	व्यय 12
कारक ग्रह	सूर्य	गुरु	मंगल	चन्द्र बुध	गुरु	शनि मंगल	शुक्र	शनि	सूर्य गुरु	सूर्यबुध गुरुशनि	गुरु	शनि

2.11.2 बल-बुद्धि विचार—

सूर्य से शनि, शनि से मंगल, मंगल से बृहस्पति, बृहस्पति से चन्द्रमा, चन्द्रमा से शुक्र, शुक्र से बुध एवं बुध से चन्द्रमा का बल बढ़ता है। अर्थात् सूर्य के साथ शनि का बल, शनि के साथ मंगल का बल, मंगल के साथ गुरु का बल, गुरु के साथ चन्द्रमा का बल, चन्द्रमा के साथ शुक्र का बल और शुक्र के साथ बुध का बल बढ़ाता है।

2.12 ग्रहों के छह प्रकार के बल—

स्थानबल, दिग्बल, कालबल, नैसर्गिकबल, चेष्टाबल और दृग्बल—ये छह प्रकार के बल हैं। यद्यपि पूर्व में ग्रहों के बलाबल का विचार गणित प्रक्रिया द्वारा किया जा चुका है, तथापि फलित ज्ञान के लिए इन बलों को जान लेना आवश्यक है।

स्थानबल—जो ग्रह उच्च, स्वगृही, मित्रगृही, मूल-त्रिकोणस्थ, स्व-नवांशस्थ अथवा द्रेष्काणस्थ होता है, वह स्थानबली कहलाता है। चन्द्रमा शुक्र समराशि में और अन्य ग्रह विषमराशि में बली होते हैं।

दिग्बल—बुध और गुरु लग्न में रहने से, शुक्र और चन्द्रमा चतुर्थ में रहने से, शनि सप्तम में रहने से एवं सूर्य और मंगल दशम स्थान में रहने से दिग्बली होते हैं। यतः लग्न पूर्व, दशम दक्षिण, सप्तम पश्चिम और चतुर्थ भाव उत्तर दिशा में होते हैं। इसी कारण उन स्थानों में ग्रहों का रहना दिग्बल कहलाता है।

कालबल—रात में जन्म होने पर चन्द्र, शनि और मंगल व दिन में जन्म होने पर सूर्य, बुध और शुक्र कालबली होते हैं। मतान्तर से बुध को सर्वदा कालबली माना जाता है।

नैसर्गिकबल—शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, व सूर्य उत्तरोत्तर बली होते हैं।

चेष्टाबल—मकर से मिथुन पर्यन्त किसी राशि में रहने से सूर्य और चन्द्रमा तथा मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होते हैं।

दृग्बल—शुभ ग्रहों से दृष्ट ग्रह दृग्बली होते हैं।

बलवान् ग्रह अपने स्वभाव के अनुसार जिस भाव में रहता है, उस भाव का फल देता है।

2.13 ग्रहों का स्थानबल—

सूर्य—अपने उच्चराशि, द्रेष्काण, होरा, रविवार, नवांश, उत्तरायण, मध्याह्न, राशि का प्रथम पहर, मित्र के नवांश एवं दशम भाव में बली होता है।

चन्द्रमा—कर्कराशि, वृषराशि, दिन–द्रेष्काल, निजी–होरा, स्वनवांश, राशि के अन्त में शुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट, रात्रि, चतुर्थ भाव और दक्षिणायन में बली होता है।

मंगल—मंगलवार, स्वनवांश, स्व–द्रेष्काण, मीन, वृश्चिक, कुम्भ, मकर, मेष राशि की रात्रि, वक्री, दक्षिण दिशा में राशि की आदि में बली होता है। दशम भाव में कर्क राशि में रहने पर भी बली माना जाता है।

बुध—कन्या और मिथुन राशि, बुधवार, अपने वर्ग, धनु राशि, रविवार के अतिरिक्त अन्य दिन एवं उत्तरायण में बली होता है। यदि राशि के मध्य का होकर लग्न में स्थित हो तो सदा यश और बल की वृद्धि करता है।

बृहस्पति—मीन, वृश्चिक, धन और कर्क राशि, स्ववर्ग, गुरुवार, मध्यदिन, उत्तरायण, राशि का मध्य एवं कुम्भ में बली होता है। नीचस्थ होने पर भी लग्न, चतुर्थ और दशम भाव में स्थित होने पर धन, यश और सुख प्रदान करता है।

शुक्र—उच्चराशि (मीन) स्ववर्ग, शुक्रवार, राशि का मध्य, षष्ठ, द्वादश, तृतीय और चतुर्थ स्थान में स्थित, अपराह्न, चन्द्रमा के साथ एवं वक्री, शुक्र बली माना जाता है।

शनि—तुला, मकर और कुम्भराशि, सप्तम भाव, दक्षिणायन, स्वद्रेष्काण, शनिवार, अपनी दशा, भुक्ति एवं राशि के अन्त में रहने पर बली माना जाता है। कृष्णपक्ष में वक्री हो तो समस्त राशि में बलवान् होता है।

राहु—मेष, वृश्चिक, कुम्भ, कन्या, वृष और कर्क राशि एवं दशम स्थान में बलवान होता है।

केतु—मीन, वृष और धनु राशि एवं उत्पात में केतु बली होता है।

सूर्य के साथ चन्द्रमा, लग्न से द्वितीय भाव में मंगल, चतुर्थ भाव में बुध, पंचम में बृहस्पति, षष्ठ में शुक्र एवं सप्तम में शनि निष्फल माना जाता है।

2.14 ग्रहों की दृष्टि—

सभी ग्रह अपने स्थान से तीसरे और दसवें भाव को एक चरण दृष्टि से, पांचवें और नवें भाव को दो चरण दृष्टि से, चौथे और आठवें भाव को तीन चरण दृष्टि से एवं सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं किन्तु मंगल चौथे और आठवें भाव को, गुरु पाँचवें और नवें भाव को एवं शनि तीसरे और दसवें भाव को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

2.14.1 ग्रहों के उच्च और मूलत्रिकोण का विचार—

सूर्य का मेष के 10 अंश पर, चन्द्रमा का वृष के 3 अंश पर, मंगल का मकर के 28 अंश पर, बुध का कन्या के 15 अंश पर, बृहस्पति का कर्क के 5 अंश पर, शुक्र का मीन के 27 अंश पर और शनि का तुला के 20 अंश पर परमोच्च होता है। प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से सप्तम राशि में इन्हीं अंशों पर नीच का होता है। राहु वृष राशि में उच्च और वृश्चिक राशि में नीच एवं केतु वृश्चिक राशि में उच्च और वृष राशि में नीच का होता है।

उच्चग्रह की अपेक्षा मूलत्रिकोण में ग्रहों का प्रभाव कम पड़ता है, लेकिन स्वक्षेत्री–अपनी राशि में रहने की अपेक्षा मूलत्रिकोण बली होता है। पहले लिखा गया है कि सूर्य सिंह में स्वक्षेत्री हैं–सिंह का स्वामी है, परन्तु सिंह के 1 अंश से 20 अंश तक सूर्य का मूल त्रिकोण और 21 से 30 अंश तक स्वक्षेत्र कहलाता है। जैसे किसी का जन्मकालीन सूर्य सिंह के 15 वें अंश पर है तो यह मूलत्रिकोण का कहलायेगा, यदि यही सूर्य 22वें अंश पर है तो स्वक्षेत्री कहलाता है। चन्द्रमा का वृषराशि के 3 अंश तक परमोच्च है और इसी राशि के 4 अंश से 30 अंश तक मूलत्रिकोण है। मंगल का मेष के 18 अंश तक मूलत्रिकोण है, और इससे आगे स्वक्षेत्र है। बुध का कन्या के 15 अंश तक उच्च 16 अंश में 20 अंश तक मूल त्रिकोण और 21 से 30 अंश तक स्वक्षेत्र है। गुरु का धनराशि के 1 अंश से 13 अंश तक मूलत्रिकोण और 14 से 30 अंश तक स्वगृह होता है। शुक्र का तुला के 1 अंश से 10 अंश तक मूलत्रिकोण और 11 से 30 अंश तक स्वक्षेत्र है। शनि का कुम्भ के 1 अंश से 20 अंश तक मूलत्रिकोण और 21 से 30 अंश तक स्वक्षेत्र है। राहु का वृष में उच्च, मेष में स्वगृह और कर्क में मूलत्रिकोण है।

2.14.2 द्वादश भावों की संज्ञाएं एवं स्थानों का परिचय—

जन्मकुण्डली के द्वादश भाव हैं। यहाँ द्वादश भावों की संज्ञाएँ और उनसे विचारणीय बातों का उल्लेख किया जाता है। केन्द्र 1/4/7/10, पणफर 2/5/8/11, आपोक्लिम 3/6/9/12, त्रिकोण 5/9, उपचय 3/6/10/11, चतुरस्र 4/8, मारक 2/7, नेत्रत्रिक संज्ञक 6/8/12 स्थान हैं।

प्रथम भाव के नाम—आत्मा, शरीर, लग्न, होरा, देह, वपु, कल्प, मूर्ति, अंग, तनु, उदय, आद्य, प्रथम, केन्द्र, कण्टक और चतुष्टय हैं।

विचारणीय बातें—रूप, चिह्न, जाति, आयु, सुख, दुख, विवेक, शील, मस्तिष्क, स्वभाव, आकृति आदि हैं। इसका कारके रवि है, इसमें मिथुन, कन्या, तुला और कुम्भ राशियाँ बलवान् मानी जाती हैं। लग्नेश की स्थिति के बलाबलानुसार कार्यकुशलता, जातीय उन्नति-अवनति का ज्ञान किया जाता है।

द्वितीय भाव के नाम—पणफर, द्रव्य, स्व, वित्त, कोश, अर्थ, कुटुम्ब और धन हैं।

विचारणीय बातें—कुल, मित्र, आँख, कान, नाक, स्वर, सौन्दर्य, गान, प्रेम, सुखभोग, सत्यभाषण, संचित पूँजी (सोना, चाँदी, मणि, माणिक्य आदि), क्रय एवं विक्रय आदि हैं।

तृतीय भाव के नाम—आपोक्लिम, उपचय, पराक्रम, सहज, भ्रातृ और दुश्चिक्य हैं।

विचारणीय बातें-नौकर—चाकर, सहोदर, पराक्रम, आभूषण, दासकर्म, साहस, आयुष्य, शौर्य, धैर्य, दमा, खाँसी, क्षय, श्वास, गायन, योगाभ्यास आदि हैं।

चतुर्थ भाव के नाम—केन्द्र, कण्टक, सुख, पाताल, तुर्य, हिबुक, गृह, सुहृद्, वाहन, यान, अम्बु, बन्धु, नीर आदि हैं।

विचारणीय बातें—मातृ-पितृ सुख, गृह, ग्राम, चतुष्पद, मित्र, शान्ति, अन्तःकरण की स्थिति, मकान, सम्पत्ति, बाग-बगीचा, पेट के रोग, यकृत, दया, औदार्य, परोपकार, कपट, छल एवं निधि हैं। इस स्थान में कर्क, मीन और मकर राशि का उत्तरार्ध बलवान् होता है। चन्द्रमा और बुध इस स्थान के कारक हैं, यह स्थान माता का है।

पंचम भाव के नाम—पंचम, सुत, तनुज, पणफर, त्रिकोण, बुद्धि, विद्या, आत्मज और वाणी हैं।

विचारणीय बातें—बुद्धि, प्रबन्ध, सन्तान, विद्या, विनय, नीति, व्यवस्था, देवभक्ति, मातुल-सुख, नौकरी छूटना, धन मिलने के उपाय, अनायास बहुत धन-प्राप्ति, जठराग्नि, गर्भाशय, हाथ का यश, मूत्रपिण्ड एवं बस्ती हैं। इसका कारक गुरु है।

षष्ठ भाव के नाम—आपोक्लिम, उपचय, त्रिक, शत्रु, रिपु, द्वेष, क्षत, वैरी, रोग और नष्ट हैं।

विचारणीय बातें—मामा की स्थिति, शत्रु, चिन्ता, शंका, जमींदारी, रोग, पीड़ा, व्रणादिक, गुदास्थान एवं यश आदि हैं। इसके कारक शनि और मंगल हैं।

सप्तम भाव के नाम—केन्द्र, मदन, सौभाग्य, जामित्र और काम हैं।

विचारणीय बातें—स्त्री, मृत्यु, मदन-पीड़ा, स्वास्थ्य, कामचिन्ता, मैथुन, अंगविभाग, जननेन्द्रिय, विवाह, व्यापार, झगड़े एवं बवासीर रोग आदि हैं। इसमें वृश्चिक राशि बलवान् होती है।

अष्टम भाव के नाम—पणफर, चतुरस्र, त्रिक, आयु, रन्ध्र और जीवन हैं।

विचारणीय बातें—व्याधि, आयु, जीवन, मरण, मृत्यु के कारण, मानसिक चिन्ता, समुद्र यात्रा, ऋण का होना, उतरना, लिंग, योनि, अण्कोष आदि के रोग एवं संकट प्रभृति हैं। इस स्थान का कारक शनि है।

नवम भाव के नाम—धर्म, पुण्य, भाग्य और त्रिकोण हैं।

विचारणीय बातें—मानसिक वृत्ति, भाग्योदय, शील, विद्या, तप, धर्म, प्रवास, तीर्थयात्रा, पिता का सुख एवं दान

आदि हैं। इसके कारक रवि और गुरु हैं।

दशम भाव के नाम—व्यापार, आस्पद, मान, आज्ञा, कर्म, व्योम, गगन, मध्य, केन्द्र, स्व और नभ हैं।

विचारणीय बातें—राज्य, मान, प्रतिष्ठा, नौकरी, पिता, प्रभुता, व्यापार, अधिकार, ऐश्वर्य–भोग, कीर्तिलाभ एवं नेतृत्व आदि हैं। इसमें मेष, सिंह, वृष, मकर का पूर्वार्द्ध एवं धन का उत्तरार्द्ध बलवान् होता है। इसके कारक रवि, बुध, गुरु एवं शनि हैं।

एकादश भाव के नाम—पणफर, उपचय, लाभ, उत्तम और आय हैं।

विचारणीय बातें—गज, अश्व, रत्न, मांगलिक कार्य, मोटर, पालकी, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि हैं। इसका कारक गुरु है।

द्वादश भाव के नाम–रिष्फ, व्यय, त्रिक, अन्तिम और प्रान्त्य हैं।

विचारणीय बातें–हानि, दान, व्यय, दण्ड, व्यसन एवं रोग आदि हैं। इस स्थान का कारक शनि है।

2.14.3 फल प्रतिपादन के लिए कतिपय नियम—

जिस भाव में जो राशि हो, उस राशि का स्वामी ही उस भाव का स्वामी या भावेश कहलाता है। छठे, आठवें और बारहवें भाव के स्वामी जिन भावों-स्थानों में रहते हैं, अनिष्टकारक होते हैं। किसी भाव का स्वामी स्वगृही हो तो उस स्थान का फल अच्छा होता है। ग्यारहवें भाव में सभी ग्रह शुभ फलदायक होते हैं। किसी भाव का स्वामी पापग्रह हो और वह लग्न से तृतीय स्थान में पड़े तो अच्छा होता है किन्तु जिस भाव का स्वामी शुभ ग्रह हो और वह तीसरे स्थान में पड़े तो मध्यम फल देता है। जिस भाव में शुभ ग्रह रहता है, उस भाव का फल उत्तम और जिसमें पापग्रह रहता है, उस भाव के फल का ह्रास होता है।

2.15 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-भारतीय ज्योतिष में फलित सिद्धान्त के कितने भेद किए हैं ?

(क) दो ☐ (ख) पाँच ☐ (ग) तीन ☐

प्रश्न 2-अमावस्या के तीन भेदों में से-

(क) कुहू ☐ (ख) स्वर ☐ (ग) व्यंजन ☐

प्रश्न 3-ज्योतिष शास्त्र में तिथियों की गणना कहाँ से प्रारंभ होती है ?

(क) पूर्णिमा से ☐ (ख) एकादशी से ☐ (ग) शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-तिथियों के स्वामी कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 2-ज्योतिष शास्त्र में 27 नक्षत्रों के नाम क्या-क्या हैं ?

प्रश्न 3-करण किसे कहते हैं ? उनके भेद कितने हैं, नाम बताइए ?

प्रश्न 4-ग्रहों के छह प्रकार के बलों के नाम बताते हुए किन्हीं दो की परिभाषा बताओ ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-योग की परिभाषा बताइए ? योगों के नाम बताते हुए योगों के स्वामी कौन-कौन से हैं, बताइए ?

पाठ 3—नक्षत्रों के कार्य एवं नामाक्षर में छिपा रहस्य

3.1 नक्षत्र—

सम्पूर्ण आकाश मण्डल को 27 नक्षत्र तथा 12 राशियों में बांटा गया है अतः आकाशमण्डल के 27वें भाग को 'नक्षत्र' तथा 12 वें भाग को राशि कहा जाता है। इस नियमानुसार 2–1/4 नक्षत्र की एक राशि होती है।

चन्द्रमा की 1 कला 1 तिथि की परिचायक होती है। 1 कला अथवा 1 तिथि की समयावधि के 60वें भाग को 1 'विकला' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में 60 विकला की 1 कला होती है। अस्तु, 60 कला का 1 अंश तथा 30 अंश की 1 राशि होती है। इस नियम से 12 राशियों के 360 अंश होते हैं तथा 1 नक्षत्र 13 अंश 20 कला का होता है। एक दिन-रात में 24 घण्टे अथवा 60 घटी होती हैं अतः 1 नक्षत्र 60 घटी अर्थात् लगभग 24 घण्टे का होता है।

उक्त नियम से यह स्पष्ट हो जाता है कि नक्षत्र तथा राशि आकाशमण्डल की दूरी नापने के मान हैं।

3.1.1 नक्षत्रों के नाम—

नक्षत्रों की कुल संख्या 27 है, उनके नाम क्रमशः निम्नानुसार हैं—

1. अश्विनी	2. भरणी	3. कृत्तिका
4. रोहिणी	5. मृगशिरा	6. आर्द्रा
7. पुनर्वसु	8. पुष्य	9. आश्लेषा
10. मघा	11. पूर्वाफाल्गुनी	12. उत्तराफाल्गुनी
13. हस्त	14. चित्रा	15. स्वाती
16. विशाखा	17. अनुराधा	18. ज्येष्ठा
19. मूल	20. पूर्वाषाढ़ा	21. उत्तराषाढ़ा
22. श्रवण	23. धनिष्ठा	24. शतभिषा
25. पूर्वाभाद्रपद	26. उत्तराभाद्रपद	27. रेवती

उक्त नक्षत्रों के अतिरिक्त 'अभिजित' नामक एक अट्ठाईसवाँ नक्षत्र भी माना जाता है। यह नक्षत्र अन्य नक्षत्रों की भाँति 13 अंश 20 कला का नहीं होता अपितु उत्तराषाढ़ा नक्षत्र की अन्तिम 15 घटी तथा श्रवण नक्षत्र को प्रारम्भिक 4 घटी, इस प्रकार कुल 19 घटी 'अभिजित, नामक नक्षत्र का मान है। अभिजित नक्षत्र के कारण उत्तराषाढ़ा नक्षत्र 45 घटी का तथा श्रवण नक्षत्र 53 घटी का रह जाता है।

'अभिजित नक्षत्र को सभी कार्यों के लिए प्रशस्त माना जाता है।

3.1.2 नक्षत्रों के स्वामी देवता—

विभिन्न नक्षत्रों के स्वामी विभिन्न देवता माने गये हैं, उनके विषय में निम्नानुसार समझ लेना चाहिए।

क्र.	नक्षत्र	नक्षत्र स्वामी
1.	अश्विनी	अश्विनीकुमार
2.	भरणी	काल
3.	कृत्तिका	अग्नि
4.	रोहिणी	ब्रह्मा
5.	मृगशिरा	चन्द्रमा
6.	आर्द्रा	रुद्र
7.	पुनर्वसु	अदिति

8.	पुष्य	वृहस्पति
9.	अश्लेषा	सर्प
10.	मघा	पितर
11.	पूर्वाफाल्गुनी	भग
12.	उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा
13.	हस्त	सूर्य
14.	चित्रा	विश्वकर्मा
15.	स्वाती	पवन
16.	विशाखा	शक्राग्नि
17.	अनुराधा	मित्र
18.	ज्येष्ठा	इन्द्र
19.	मूल	निर्च्छति
20.	पूर्वाषाढ़ा	जल
21.	उत्तराषाढ़ा	विश्वदेवा
22.	श्रवण	विष्णु
23.	धनिष्ठा	वसु
24.	शतभिषा	वरुण
25.	पूर्वाभाद्रपद	अजैकवाद
26.	उत्तराभाद्रपद	अहिर्बुध्न्य
27.	रेवती	पूषा
28.	अभिजित	ब्रह्मा

3.2 नक्षत्रों के स्वामी ग्रह—

कौन सा ग्रह किन-किन नक्षत्रों का स्वामी है, इसे निम्नानुसार समझना चाहिए।

नक्षत्र	स्वामी ग्रह	विंशोत्तरी महादशा अवधि (वर्षों में)
कृत्तिका, उत्तराफाल्गुन, उत्तराषाढ़ा।	सूर्य	6
रोहिणी, हस्त, श्रवण।	चन्द्र	10
मृगशिरा, चित्रा, घनिष्ठा	मंगल	7
अश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती।	बुध	17
पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वाभाद्रपद।	गुरु	16
भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा।	शुक्र	20
पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्रपद।	शनि	19
आर्द्रा, स्वाती, शतभिषा।	राहु	18
अश्विनी, मघा, मूल।	केतु	7

उपरोक्त सारणी के आधार पर निश्चित गणितीय सूत्रों से महादशाए अंतर्दशाए प्रत्यंतर दशाए सूक्ष्म दशा और प्राण दषा का सही निर्धारण कर उस व्यक्ति के सम्बन्ध में अनुकूल प्रतिकूल समय को ज्ञात किया जा सकता है। ग्रहों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने और अनुकूल प्रभाव को वृद्धिगत करने के लिए ईश्वर आराधनाएँ, मंत्र आराधनाएँ, अनुष्ठान आदि किये जाने चाहिए ताकि प्रतिकूल समय में भी परिणामों में समता बनी रहे। ज्योतिष को ज्योतिशास्त्र भी कहा जाता है। यह ऐसा विज्ञान है जो प्रकाश देने में व्यक्ति के भविष्य में झांकने में सहायक बनता है। सही समय अर्थात् मुहूर्त का निर्धारण कर यदि कार्य प्रारम्भ किया जाए तो उसकी पूर्णता और सफलता निश्चित हो जाती है। ज्योतिषीय फलित तभी सही बैठते हैं जबकि ज्योतिषशास्त्र का पूर्ण ज्ञान हो और ज्योतिषीय नियमों के आधार पर ही नि:स्वार्थ भाव से गणना की जाए।

3.3 नक्षत्रों के गण भेद—

सात्विक, राजस तथा तामस भेद से नक्षत्र तीन प्रकार के होते हैं। कौन सा नक्षत्र किस गुण वाला है, इसे निम्नानुसार समझ लेना चाहिए—

3.3.1 सात्विक नक्षत्र—

(1) पुनर्वसु (2) विशाखा (3) पूर्वाभाद्रपद
(4) आश्लेषा (5) ज्येष्ठा (6) रेवती

3.3.2 राजस नक्षत्र—

(1) कृत्तिका (2) उत्तराफाल्गुनी (3) उत्तराषाढ़ा (4) रोहिणी
(5) शतभिषा (6) मृगशिरा (7) चित्रा (8) धनिष्ठा
(9) पुष्य (10) अनुराधा (11) उत्तराभाद्रपद

3.3.3 तामस नक्षत्र—

(1) अश्विनी (2) मघा (3) मूल (4) आर्द्रा
(5) स्वाती (6) शतभिषा (7) मृगशिरा (8) चित्रा
(9) धनिष्ठा (10) पुष्य (11) अनुराधा (12) उत्तराभाद्रपद।

3.4 नक्षत्रों के लिंग भेद—

पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुसंकलिंग के भेद से भी नक्षत्र तीन प्रकार के होते हैं। कौन सा नक्षत्र किस लिंग का है, इसे निम्नानुसार समझना चाहिए।

3.4.1 पुल्लिंग नक्षत्र—

(1) अश्विनी (2) पुनर्वसु (3) पुष्य (4) हस्त
(5) अनुराधा (6) श्रवण (7) पूर्वाभाद्रपद एवं (8) उत्तराभाद्रपद

3.4.2 स्त्रीलिंग नक्षत्र—

(1) भरणी (2) कृत्तिका (3) रोहिणी (4) हस्त
(5) आश्लेषा (6) मघा (7) पूर्वाफाल्गुनी (8) उत्तराफाल्गुनी
(9) चित्रा (10) स्वाती (11) विशाखा (12) ज्येष्ठा
(13) पूर्वाषाढ़ा (14) उत्तराषाढ़ा (15) धनिष्ठा (16) रेवती

3.4.3 नपुंसकलिंग नक्षत्र—

(1) मृगशिरा, (2) मूल एवं (3) शतभिषा

3.5 नक्षत्रों की विभिन्न संज्ञाएँ—

गुण एवं लिंग भेद के अतिरिक्त नक्षत्रों की और भी अनेक संज्ञाएँ हैं, किन संज्ञाओं के अन्तर्गत कौन-कौन से नक्षत्र आते हैं, इन्हें निम्नानुसार समझ लेना चाहिए—

स्थिर अथवा ध्रुव संज्ञक नक्षत्र—

1. रोहिणी, 2. उत्तराफाल्गुनी, 3. उत्तराषाढ़ा, 4. उत्तराभाद्रपद। इनमें स्थिर कार्यों को करना प्रशस्त कहा गया है।

चर संज्ञक नक्षत्र—

1. स्वाती, 2. पुनर्वसु, 3. श्रवण, 4. धनिष्ठा, 5. शतभिषा। इनमें यात्रा आदि चर कार्य शुभ माने गये हैं।

क्रूर अथवा उग्र संज्ञक नक्षत्र—

1. अश्विनी, 2. हस्त, 3. पुष्य एवं 4. अभिजित्। इनमें विद्यारम्भ तथा क्रय-विक्रय आदि कार्य प्रशस्त कहे गये हैं।

क्षिप्र तथा लघु संज्ञक नक्षत्र—

1. अश्विनी, 2. ज्येष्ठा, 3. आर्द्रा एवं 4. आश्लेषा। इनमें तीक्ष्ण कर्मों को करना शुभ है।

मृदु एवं मैत्रीसंज्ञक नक्षत्र—

1. मृगशिरा, 2. रेवती, 3. चित्रा एवं 4. अनुराधा। इनमें नवीन वस्त्र धारण, संगीत आदि कार्य शुभ माने गये हैं।

मित्र संज्ञक नक्षत्र—

1. विशाखा एवं 2. कृत्तिका, इनमें होम आदि कार्य प्रशस्त कहे गये हैं।

अधोमुखसंज्ञक नक्षत्र—

1. मूल, 2. आश्लेषा, 3. विशाखा, 4. कृत्तिका 5. पूर्वाफाल्गुनी, 6. पूर्वाषाढ़ा, 7. पूर्वाभाद्रपद, 8. भरणी एवं 9. मघा। इनमें कुआँ तथा नींव खोदना आदि कार्य प्रशस्त कहे गये हैं।

ऊर्ध्वमुख संज्ञक नक्षत्र—

1. आर्द्रा, 2. पुष्य, 3. श्रवण, 4. धनिष्ठा, 5. शतभिषा। इनमें गृह निर्माण आदि कार्य प्रशस्त माने गये हैं।

तिर्यङ्मुखसंज्ञक नक्षत्र—

1. अनुराधा, 2. हस्त, 3. स्वाति, 4. पुनर्वसु, 5. ज्येष्ठा एवं 6. अश्विनी। इनमें यात्रा तथा क्रय-विक्रय आदि कार्य प्रशस्त कहे गये हैं।

पंचकसंज्ञक नक्षत्र—

1. धनिष्ठा, 2. शतभिषा, 3. पूर्वाभाद्रपद, 4. उत्तराभाद्रपद एवं 5. रेवती। इनमें शुभ कार्य करना वर्जित कहा गया है।

3.5.1 मूलसंज्ञक नक्षत्र—

1. ज्येष्ठा, 2. आश्लेषा, 3. रेवती, 4. मूल, 5. मघा एवं 6. अश्विनी। इन नक्षत्रों में यदि बालक का जन्म हो तो 27वें दिन फिर उसी नक्षत्र के आने पर 'मूलशान्ति' कराने का विधान है। इनमें ज्येष्ठा तथा मूल, ये दो नक्षत्र 'गण्डान्त मूल' संज्ञक हैं तथा आश्लेषा 'सर्वमूल' संज्ञक है।

3.5.2 दग्धसंज्ञक नक्षत्र—

निम्नलिखित दिनों में सम्बोधित नक्षत्र 'दग्ध' संज्ञक माने गये हैं। इनमें शुभ कार्य करना वर्जित है।

1. रविवार को भरणी।
2. सोमवार को चित्रा।

3. मंगलवार को उत्तराषाढ़ा।
4. बुधवार को धनिष्ठा।
5. गुरुवार को उत्तराफाल्गुनी।
6. शुक्रवार को ज्येष्ठा।
7. शनिवार को रेवती।

3.5.3 मास शून्य संज्ञक नक्षत्र—

निम्नलिखित मासों में सम्बन्धित नक्षत्र 'मास शून्य' संज्ञक कहे गये हैं। इनमें भी शुभ कार्य करना वर्जित हैं

1. चैत्र में – रोहिणी
2. वैशाख में – चित्रा और स्वाति।
3. ज्येष्ठ में – उत्तराषाढ़ा और पुष्य।
4. आषाढ़ में – पूर्वाफाल्गुनी और धनिष्ठा।
5. श्रावण में – उत्तराषाढ़ा और श्रवण।
6. भाद्रपद में – शतभिषा और रेवती।
7. अश्विनी में – पूर्वाभाद्रपद।
8. कार्तिक में – कृत्तिका और मघा।
9. मार्गशीर्ष में – चित्रा और विशाखा।
10. पौष में – आर्द्रा, अश्विनी और हस्त।
11. माघ में – श्रवण और मूल।
12. फाल्गुन में – भरणी और ज्येष्ठा।

3.6 नक्षत्र विचार—

3.6.1 शुभाशुभ नक्षत्र—

रोहिणी, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, और स्वाति ये अति शुभ नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रों में शुभ कार्य करें। तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल और शतभिषा ये मध्यम नक्षत्र हैं। इनमें साधारण कर्म करना चाहिए। भरणी, कृत्तिका, मघा और आश्लेषा इन नक्षत्रों में उग्र कार्य एवं दुष्ट कार्य होते हैं।

3.6.2 पंचक नक्षत्र—

समस्त शुभ कार्य, गृह प्रवेश कार्य, दक्षिण दिशा की यात्रा, प्रेत कर्म, वस्त्र धारण, तृण संचय, लकड़ी काटना, गृहारंभादि कर्म करना पूर्णरूप से त्याज्य है।

3.6.3 पुष्य नक्षत्र—

सभी प्रकार के दोष एवं अशुभ का परिहार नक्षत्रों का राजा पुष्य है। चाहे चन्द्र क्षीण हो, तारा बल भी न हो। तिथि ठीक न हो, योग भी ठीक नहीं हो, तो पुष्य नक्षत्र होने से यह दोष भी नहीं लगता है। यहाँ तक कि अष्टम चन्द्रमा का दोष भी पुष्य हर लेता है। मुहूर्त्त दीपिका के अनुसार तो किसी भी प्रकार का दोष व्याप्त नहीं होता, यदि मुहूर्त्त में पुष्य नक्षत्र हो। परन्तु विवाह आदि में पुष्य नक्षत्र वर्ज्य है।

रवि पुष्य को मंत्र सिद्धि, औषधि प्रयोग के लिए अतिशुभ माना गया है। गुरुपुष्य को व्यापारिक कार्यों के लिए श्रेष्ठतम है। शुक्र का पुष्य उत्पातकारक, विघ्नकर्ता है। सोम, मंगल, बुध, शनि को पुष्य श्रेष्ठ है। नवमी गुरु को पुष्य विषकारक है। ज्येष्ठ मास में पुष्य व्यर्थ है। मार्गशीर्ष में पुष्य हानिप्रद है।

3.6.4 अन्य नक्षत्र—

जन्म नक्षत्र—जन्म के समय जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र में अन्नप्राशन, उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, यात्रादि में निषेध है। जन्म नक्षत्र से 25वां और 27वां नक्षत्र भी शुभ कर्म के लिए निषेध है।

ध्रुव-स्थिर नक्षत्र कृत्य—स्थिर कार्य करना तथा गृहकार्य, बीज बोना, बाग लगाना और शांत्यादि कर्म ध्रुव एवं स्थिर संज्ञक नक्षत्र में करें।

चर-चल नक्षत्र कृत्य—रेल, मोटरगाड़ी, हाथी, घोड़ा आदि पर सवारी करना और फुलवारी लगाना और यात्रादि कर्म चर तथा चल संज्ञक नक्षत्र में करे।

क्रूर-उग्र नक्षत्र कृत्य—आग लगाना, क्रूर कर्म करना, विष, शस्त्रादि कर्म क्रूर व उग्र संज्ञक नक्षत्र में करने से शुभ है।

लघु नक्षत्र कृत्य—बाजार का कार्य, शास्त्र आदि का ज्ञान, आभूषण बनवाना, दुकान का काम, चित्रकारी, गाना बजाना कार्य क्षिप्र व लघु संज्ञक नक्षत्र में करें।

मिश्र-साधारण नक्षत्र कृत्य—अग्नि होम, शुभाशुभ मिला कार्य मिश्र एवं साधारण संज्ञक नक्षत्र में करें।

मृदु-मैत्र नक्षत्र कृत्य—नृत्य-गान कर्म, वस्त्र पहनना आदि, स्त्री के साथ क्रीड़ा व मित्र कार्य, आभूषण पहनना कर्म मृदु व मैत्र नक्षत्र में करें।

तीक्ष्ण-दारुण नक्षत्र कृत्य—अभिचार (मरण कर्म), उग्र कर्म, तोड़फोड़ आदि कर्म, तीक्ष्ण व दारुण नक्षत्र में करें।

ऊर्ध्वमुख नक्षत्र कृत्य—वृक्ष लगाना, वाणिज्य करना, वाहन लेना, यंत्रादि लेने के कार्य तिर्यङ्मुख नक्षत्र में करें।

3.7 नक्षत्र	इन नक्षत्रों में करने योग्य कर्म
अश्विनी	वस्त्र, उपनयन, क्षौर, सीमंत, आभूषण, स्थापना, गज, स्त्री, कृषि कर्म।
भरणी	बावड़ी, कुँआ, तालाब आदि विष शत्रादि उग्र एवं दारुण कर्म, गणित, धरोहर वस्तु रखना।
कृत्तिका	अस्त्र-शस्त्र, उग्र कर्म, मिलाप, विग्रह, दारुणकर्म, संग्राम, औषधि आदि कर्म।
रोहिणी	सीमंत, विवाह, वस्त्र, भूषण, स्थिर कर्म, अश्व ऊँट के कृत्य।
मृगशिरा	प्रतिष्ठा, आभूषण, विवाह, सीमंत, क्षौर, वास्तु कृत्य, यात्रा, गज, अश्व, ऊँट के कृत्य।
आर्द्रा	ध्वजा, तोरण, संग्राम, दीवाल, संधि, विग्रह, अस्त्र-शस्त्र कर्म, वैर रसादि कर्म।
पुनर्वसु	प्रतिष्ठा, सवारी, सीमंत, वस्त्र, वास्तु उपनयन, धान्य भक्षण।
पुष्य	विवाह के अतिरिक्त समस्त शुभ कृत्य।
आश्लेषा	झूठ व्यसन, द्यूत, औषधि, संग्राम, विवाद व्यापार।
मघा	कृषि, व्यापार, गौ, अन्न, विवाह, नृत्य, गीत, संग्राम, विक्रय।

3.8 क्षयमास और मलमास में वर्जित कृत्य—

घर, बगीचा, बावड़ी, तालाब, कुआँ आदि बनाने का प्रारम्भ, प्रतिष्ठा करना, नवीन व्रत ग्रहण, उद्यापन, वधू प्रवेश, प्रथम बार दाढ़ी बनवाना, बालक का संस्कार करना, देव-देवी प्रतिष्ठा करना। मंत्र लेना-देना, शिष्यत्व स्वीकार करना, जनेऊ धारण करना, विवाह, मुण्डन करना, तीर्थयात्रा करना, सन्यास लेना, राजदर्शन, राज्याभिषेक आदि शुभ कर्म क्षयमास और मलमास में निषेध है।

3.9 नामाक्षर में छिपा व्यक्तित्व और भविष्य—

यूं तो भविष्य एवं व्यक्तित्त्व जानने की कई विधियाँ हैं। जैसे—किसी के लिए जन्मकुंडली जरूरी है तो किसी के लिए अंकों का अध्ययन। किसी के लिए रेखाओं का ज्ञान जरूरी है तो किसी के लिए कुछ। सभी के लिए पूर्ण जानकारी एवं गहरा अनुभव चाहिए लेकिन नाम के प्रथम अक्षर द्वारा भी किसी जातक के भविष्य एवं उसके व्यक्तित्व में झांका जा सकता है और वह भी बिना किसी गूढ़ विद्या के।

जितना हम स्वयं के बारे में जानने की इच्छा रखते हैं उतनी ही उत्सुकता हम अपने मित्र–शत्रु या आसपास के लोगों के बारे में जानने की भी करते हैं। बिना ज्योतिष ज्ञान के, बिना जन्म विवरण के किसी कुंडली, अंक या रेखाओं आदि का सहारा लिए बिना भी नामाक्षर द्वारा इस गुत्थी को सुलझाया जा सकता है।

3.9.1 ए—जिनका नाम 'ए' अक्षर से शुरू होता है वह लोग आत्मविश्वासी, मेहनती, दयावान, अच्छे विचारों वाले तथा भावना प्रधान होते हैं। उनका भावुक स्वभाव ही इनके उत्थान और पतन का कारण बनता है। इनके इसी स्वभाव के कारण लोग इनका फायदा उठाते हैं। आप सदा दूसरों की भलाई के लिए तत्पर रहेंगे। आपको जीवन में मान–सम्मान अवश्य मिलेगा।

ऐसे व्यक्ति श्रेष्ठ विचारक तथा सद्गुण सम्पन्न होते हैं। चंचल प्रकृति होने के साथ–साथ दूसरों के दुख–दर्द में भागीदार होते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज को प्रेममय, मधुर तथा सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

इनमें अनेक सद्गुण छिपे होते हैं। यह तेजस्वी व यशस्वी होते हैं। ऐसे लोगों में तीव्रता के साथ आगे बढ़ने की रहस्यमयी शक्ति होती है। ये समाज में कुछ बड़ा पद प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं और कुछ ऐसा काम करना चाहते हैं, जो अब तक किसी ने नहीं किया हो। इनका विकास अपने जन्मस्थान से हटकर होता है। यह जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रथम पंक्ति में रहना पसंद करते हैं। ऐसे जातक अपना भविष्य, अपना भाग्य एवं अपना घर खुद ही बनाते हैं। इनके परिजनों का सहयोग इन्हें कम ही मिलता है पर ये दूसरे लोगों को अपने आश्रय में आने का पूर्ण अवसर देते हैं।

3.9.2 बी—जिनका नाम 'बी' अक्षर से आरंभ होता है ऐसे जातक सदा सतर्क तथा कदम फूंक–फूंक के रखने वाले होते हैं। यह जो भी कार्य करते हैं सदा उसमें अपना लाभ देखते हैं। ऐसे जातक अंतर्मुखी होते हैं, सदा अपनी बातों एवं विचारों को अपने भीतर छिपा के रखते हैं। इनका सम्पर्क छोटे–बड़े सभी लोगों से होता है परन्तु यह उनसे मिलने जुलने का दायरा सीमित ही रखते हैं।

ऐसे व्यक्ति विचारों की गहराई में डूबे रहते हैं। वाद–विवाद में पड़ना इन्हें अच्छा नहीं लगता। तर्क को महत्त्व नहीं देते, इनकी मित्र मंडली सीमित होती है। किसी भी विषय में इनका स्वयं का निर्णय होता है। कुछ शंकालु होने के कारण चौकन्ने रहते हैं। कभी–कभी स्वार्थ तथा हीन भावनाओं के भी शिकार हो जाते हैं।

इन जातकों का व्यक्तित्त्व आकर्षक होता है तथा इनकी आंखें चमकीली होती हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः दिमाग की तुलना में दिल से काम लेते हैं तथा भावुक होते हैं। भावुक होने के साथ–साथ ये तुनकमिजाजी एवं उग्र स्वभाव के होते हैं। एक बार जो निश्चय कर लेते हैं, बदलते नहीं। समाज में, जाति में, ये सच्चे शिक्षक व मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। देशप्रेम, जातिप्रेम एवं समाजप्रेम की भावना इनमें कूट–कूट कर भरी होती है। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी होते हैं तथा कार्य करने की विलक्षण शक्ति इनमें अंतर्गर्भित होती है।

3.9.3 सी—जिनका नाम 'सी' अक्षर से आरम्भ होता है ऐसे जातक बड़ी विचित्र प्रकार की मानसिक स्थिति वाले होते हैं। इनका मन किसी न किसी योजना से घिरा रहता है। ये दृढ़ संकल्पी, दूरदर्शी, महत्त्वाकांक्षी, विभिन्न मार्गों पर चलने वाले, साहसी, दयालु एवं जिद्दी स्वभाव के होते हैं। यदि यह किसी काम को करने की ठान लें तो करके ही दम लेते हैं। इसलिए इन्हें चाहिए कि यह सोच–समझकर विचारपूर्वक किसी कार्य को शुरू करें तथा भावावेश में न कोई

वचन दें, न ही कोई बात करें।

ऐसे व्यक्ति धुन के पक्के होते हैं। जिस कार्य में हाथ डालेंगे उसमें तल्लीनता से जुट जायेंगे तथा पूरा करके ही छोड़ेंगे। वादा निभाना ये जानते हैं। इनकी बात पत्थर की लकीर होती है, ये अन्तर्मुखी होते हैं। इनका मस्तिष्क निरन्तर क्रियाशील रहता है, कोई न कोई योजना प्लान ये बनाते रहते हैं।

ऐसे लोग रहस्यवादी होते हैं तथा धीमी गति से कार्य करना पसंद करते हैं। इन पर सोहबत का असर शीघ्र पड़ता है तथा अपने आपको परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुरंगी एवं अनेक प्रकार के कार्यों में हाथ डालने वाले होते हैं। साहस इनमें कूट-कूट कर भरा होता है। ऐसे जातक अपूर्व महत्त्वाकांक्षी एवं कुछ गर्म स्वभाव के होते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने पेट में कोई भी रहस्य छिपाकर नहीं रख सकते। ऐसे व्यक्ति धैर्यशाली होते हैं तथा कठिनाई के क्षणों में विचलित नहीं होते। इस नामाक्षर वाले व्यक्ति अपने ऊपर किए गए उपकार को कभी नहीं भूलते। ये अंतर्मुखी होते हैं। ऐसे लोग दूसरों की बातों पर विश्वास नहीं करते। अपने क्रोध एवं मनोभावों को दूसरे पर प्रकट नहीं होने देते। अंदर ही अंदर योजना बनाते हैं।

3.9.4 डी—जिन जातकों का नाम 'डी' अक्षर से शुरू होता है वह कुशल प्रशासक, मेधावी, विद्वान एवं अच्छे मार्गदर्शक होते हैं। अपने परिणाम एवं वाणी के बल पर अपने काम निकलवा लेते हैं। ऐसे जातक नपा-तुला बोलते हैं और जो बोलते हैं वह उत्साह दिलाने वाला होता है। यह अपने लक्ष्य के प्रति वफादार होते हैं तथा उसे पाने के लिए किसी भी प्रकार की बाधा या परिस्थिति से नहीं घबराते। ऐसे जातकों को अपने मान-सम्मान की बड़ी फिक्र होती है और यदि कोई इनका अपमान कर दे तो यह तिलमिला उठते हैं।

ऐसे व्यक्ति कम बोलने वाले, मिष्टभाषी होते हैं। अपने विचारों पर अडिग बने रहते हैं। प्रबल आत्मविश्वासी वचन के पक्के, जिम्मेदार व्यक्ति होते हैं। मान प्रतिष्ठा को बहुत महत्त्व देते हैं। अगर मान-प्रतिष्ठा प्राण देकर भी बनी रह सके तो ये चूकते नहीं। सफल प्रशासक, कुशल नेता, कर्मठ एवं त्यागी होते हैं।

ऐसे जातक अत्यधिक मिलनसार होते हैं तथा आत्मविश्वास इनमें कूट-कूट कर भरा होता है। ऐसे जातक विनम्रता का दिखावा करते हैं परन्तु आचरण एवं व्यवहार में भिन्नता होती है। ऐसे लोग किसी भी बात पर सहज विश्वास नहीं करते तथा न ही किसी के अंधे भक्त होते हैं। ये कहने को तो सब की हाँ-में-हाँ मिलाते हैं परन्तु करते वही हैं जो इनका दिल चाहता है। ऐसे जातक कूटनीति एवं राजनीति के प्रकांड पंडित होते हैं। ये अपने मान-सम्मान को ठेस न पहुँचे, इसका पूरा ध्यान रखते हैं। ये अपने विपरीत लिंगी के सहयोग से आगे बढ़ते हैं।

3.9.5 इ—जिन जातकों का नाम 'इ' अक्षर से शुरू होता है वह मौलिक विचारों वाले, अपनी छवि अलग बनाने वाले, अपने लक्ष्य के प्रति निरन्तर क्रियाशील रहने वाले होते हैं। इन्हें भीड़ से हटकर काम करना अच्छा लगता है, भले ही काम कितना भी जोखिम पूर्ण हो। नई-नई योजना बनाना तथा योजनाबद्ध तरीके से काम करना इन्हें खूब आता है। यह स्पष्ट वक्ता, निडर और साहसी होते हैं तथा सच्ची और खरी बात कहने में पीछे नहीं हटते।

ये बहिर्मुखी होते हैं। व्यवहारकुशलता की इनमें कमी होती है। किस समय, किस को क्या बोलना है इसका ध्यान न रखकर मुंह पर ही खरी-खोटी कह देते हैं। ये अधिक बोलने के कारण वाचाल और गप्पी समझे जाते हैं। ये नवीनता को जीवन में प्रमुखता देते हैं। कार्य हो, विचार हो या योजनाएँ हों, हर क्षेत्र में नवीनता इन्हें प्रिय होती है।

ऐसे जातक अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों ही प्रतिभा के धनी होते हैं। ये किसी भी बात को गुप्त नहीं रख सकते, इनमें धैर्य की बड़ी कमी पाई जाती है। पुरानी पद्धतियों, रीति-रिवाज एवं दकियानूसी ख्याल इन्हें पसंद नहीं। ऐसे व्यक्ति प्राय: समूह के साथ रहना पसंद करते हैं। यह शारीरिक श्रम की अपेक्षा मानसिक श्रम में विश्वास रखते हैं। ऐसे लोग यात्राएं बहुत करते हैं।

3.9.6 एफ—जिन जातकों का नाम 'एफ' अक्षर से शुरू होता है वह सच्चे, ईमानदार, उदार तथा परोपकारी होते हैं। इन्हें दूसरों की सेवा करना अच्छा लगता है। यह अपनी हर जिम्मेदारी सुचारू रूप से पूर्ण व्यवस्था के साथ निभाते हैं। समाज एवं परिवार की बुराइयों को दूर करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है। इन्हें रहस्यमयी, पुरानी, ऐतिहासिक वस्तुएं तथा संबंधित विषय खूब भाते हैं। देर-सबेर समाज में अपना विशेष स्थान अवश्य बनाते हैं।

ऐसे जातक घरेलू कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं। परिवार को सुचारू रूप से कैसे चलाया जा सकता है, कोई इनसे सीखे। इनका जीवन एक तरह से समाज और परिवार की धरोहर होता है। ये सच्चे प्रेमी, ईमानदार, मधुर व्यवहारी एवं परोपकारी होते हैं।

इनमें नेतृत्व शक्ति की प्रमुखता होती है। ऐसे जातक रहस्यवादी, जटिल व्यक्तित्व के धनी होते हैं। इनके जीवन में इतने अधिक परिवर्तन होते हैं कि कौन-सी घटना कब घट जाएगी, इसका आभास नहीं होता है। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण भौतिकवादी होता है। ये अपने भाग्य पर ज्यादा विश्वास नहीं रखते। इनकी प्रतिभा अंतर्मुखी होती है। ये लोग सांसारिक भोग-विलास में लिप्त होते हुए भी, उच्च श्रेणी के दार्शनिक, सत्य वक्ता व योगी हो सकते हैं। या तो ऐसे लोग बहुत अधिक बोलेंगे या एकदम चुप्पी साधे हुए अतिगंभीर स्वभाव वाले होंगे। इनके गुस्से का सामना अच्छे-अच्छे हिम्मत वाले व्यक्ति भी नहीं कर पाते। जीवन का व्यवहारिक ज्ञान जितना अधिक इन्हें होता है उतना दूसरों को नहीं। ऐसे जातक सेवाभावी होते हैं, नौकरी से इनको घृणा नहीं होती। इन लोगों में बाहरी प्रेम प्रदर्शन की आदत नहीं होती, इस कारण बहुत से लोग इन्हें कठोर समझते हैं परन्तु वास्तव में ये ऐसे होते नहीं हैं।

3.9.7 जी—जिन जातकों का नाम 'जी' अक्षर से शुरू होता है वह बहुत ही संयम और आत्मविश्वास से भरे होते हैं। सात्विकता, सत्यता एवं दूरदर्शिता इनके विशेष गुण होते हैं। इनके व्यक्तित्त्व में गजब का आकर्षण होता है, खासकर इनकी वाणी और वार्तालाप का ढंग लोगों को न केवल आकर्षित करता है बल्कि लोग इनके बताए मार्गों एवं सिद्धान्तों का पालन भी करते हैं। यह किसी भी कार्य को शुरू करने से पहले उसकी पूर्ण योजना बनाते हैं फिर काम को अंजाम देते हैं। यह उसूलों, कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को प्राथमिकता देते हैं।

इनके व्यक्तित्त्व में कुछ ऐसा आकर्षण और विशेषता होती है कि लोग इनकी तरफ खिंचे चले आते हैं। शत्रु भी शत्रुता भूल जाता है और मित्रता करने को आतुर दिखाई देता है। ये आडम्बरों को परे रखकर जीवनयापन करते हैं। सादगी, शिष्टता के पुजारी, नवीन सभ्यता के जन्मदाता कहे जाते हैं। हर कार्य योजनाबद्ध करने का इनका स्वभाव होता है।

ये लोग दूसरों के गुप्त रहस्य को पचाने की शक्ति रखते हैं एवं मूलतः परोपकारी होते हैं। ऐसे जातक योजनाबद्ध तरीके से काम करना पसंद करते हैं। सफलता, सादगी, सच्चाई एवं शिष्टता इनके जीवन के मूलभूत गुण होते हैं। ये बहुत ही गहरे विचारों वाले गंभीर स्वभाव के व्यक्ति होते हैं तथा हमेशा कोई न कोई विषय को लेकर सोचते रहते हैं। लड़ाई, तर्क, वाद-विवाद में इनकी रुचि बिल्कुल नहीं होती। ऐसे व्यक्ति कुछ हद तक आत्मकेन्द्रित व डरपोक होते हैं। इनका व्यक्तित्त्व बहुमुखी होता है। इनके आमदनी के जरिए तीन-चार प्रकार के होते हैं।

3.9.8 एच—जिन जातकों का नाम 'एच' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह बहुत ही महत्वाकांक्षी, काल्पनिक एवं ऊँचे-ऊँचे ख्वाब देखने वाले होते हैं। अपने मतलब या लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। जरूरत से ज्यादा चतुर एवं नीतिप्रिय होते हैं। संग्रह करना और योजनाएँ बनाना इन्हें अच्छा लगता है। ऐसे लोग परिश्रम से बचते हैं परन्तु प्रदर्शन ऐसा करते हैं कि इनसे ज्यादा कोई मेहनती नहीं। यह स्वयं को तत्काल बदलने का गुण भी जानते हैं। यह दिखने में प्रभावशाली और प्रिय होते हैं।

ऐसे व्यक्ति पक्के स्वार्थी, लालची, चापलूस तथा आवश्यकता से अधिक होशियार एवं समझदार होते हैं। ये 'काम कम और बातें अधिक' वाली उक्ति पर विश्वास करते हैं। श्रम करने की अपेक्षा ये श्रम करने का दिखावा-अधिक करते

रहते हैं। अपने से अधिक किसी को भी अकलमंद नहीं समझते। कुछ ऐसा दिखावा-ढोंग रखेंगे कि देखने वाला इन्हें कार्य में व्यस्त देखे।

यह जरूरत से ज्यादा समझदार होते हैं परन्तु अपने स्वार्थ में ज्यादा उलझे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रबल महत्त्वाकांक्षी होते हैं तथा येन-केन प्रकारेण उन्नति की ओर आगे बढ़ना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति धन बल से युक्त, कविहृदय, संगीत प्रेमी और कोमल हृदय के कामुक मनोवृत्ति वाले जातक होते हैं। ऐसे जातक तीव्र बुद्धिशाली होते हैं तथा अक्ल के मामले में किसी अन्य व्यक्ति पर ज्यादा विश्वास नहीं करते। ऐसे जातक वाकपटु होते हैं तथा बातों-ही-बातों में दूसरे व्यक्ति को मोहित करके अपना काम निकालने में दक्ष होते हैं।

3.9.9 आई—जिन जातकों का नाम 'आई' अक्षर से आरंभ होता है वह बुद्धिमान और समझदार होते हैं। इनके अंदर सदा कुछ करने का जुनून रहता है। यह कभी भी खाली नहीं बैठते। अपनी ऊर्जा को किसी न किसी रचना का हिस्सा बनाते रहते हैं। इन्हें अधूरा ज्ञान, अधूरी बात कतई पसंद नहीं। हर चीज पर पूर्ण अधिकार की इच्छा रखने वाले आत्मविश्वासी एवं तेजस्वी होते हैं। इनकी आवाज व बोलने का प्रवाह लोगों को खूब भाता है। अपनी इसी विशेषता के चलते यह जीवन में विशेष सफलताएँ प्राप्त करते हैं।

ये अपने जीवन में 'आराम हराम है' की कहावत को प्रधानता देते हैं और सच्चे, कर्मठ तथा श्रमिक कहलाए जाते हैं। किसी भी कार्य को पूरी लगन और तत्परता से पूर्ण करते हैं। आलसी व्यक्तियों एवं आलस्य से इन्हें घृणा होती है। ये अनावश्यक बातें नहीं करते। जो कुछ कहेंगे वह ठोस तथा प्रामाणिक होगा।

इनमें अकेले आगे बढ़ते रहने की अद्वितीय प्रतिभा होती है। ये चुनौतियों को स्वीकार करते हैं एवं साहस के साथ-साथ प्रतिकूल परिस्थितियों से मुकाबला करने में माहिर होते हैं। आप लोगों में सहनशक्ति उत्तम कोटि की होती है। जीवनी शक्ति जितनी आप लोगों में है, उतनी अन्य लोगों में कम ही पाई जाती है। ऐसे जातक अपने कार्य में कम-से-कम हस्तक्षेप चाहते हैं। इन्हें आगे बढ़ते रहना ही पसन्द होता है। अस्त-व्यस्तता, फूहड़पन व शिथिलता आपको पसंद नहीं। ये लोग खाली बैठ ही नहीं सकते क्योंकि खाली समय इन्हें काटने को दौड़ता है। ऐसे लोगों का जीवन व्यष्टि के लिए न होकर समष्टि के लिए होता है।

3.9.10 जे—जिन जातकों का नाम 'ज' अक्षर से आरंभ होता है वह प्रतिभाशाली, खुले विचारों वाले, दूरदर्शी होते हैं। ज्ञान की बात करना तथा ज्ञान इकट्ठा करना दोनों में इनकी रुचि होती है। इनके साफ-साफ और सच कहने की सुनने की, आदत के कारण इन्हें जीवन में बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनकी योजनाएँ भी इन्हीं की तरह अद्‌भुत होती हैं। इनका संग साथ सभी को भाता है लेकिन यह दूसरों को बहुत सोच-समझकर चुनते हैं या पसंद करते हैं।

ये उदार प्रकृति, विशाल हृदय, स्वतंत्र विचारों के धनी होते हैं। छोटी-मोटी बातों पर ध्यान नहीं देते। मौलिकता इनके जीवन का सच्चा गुण होता है। खरी-खोटी ये कह नहीं सकते।

ऐसे जातकों में विकास की शक्ति छिपी होती है तथा यह विशाल हृदय के जातक होते हैं। यह सोच-समझकर निर्णय लेते हैं तथा मन में अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। ऐसे जातक उन्मुक्त विचारों वाले होते हैं, संकीर्णता इन्हें पसंद नहीं होती, त्याग एवं नेतृत्व शक्ति की भावना भी इनमें विशेष होती है। यह भी देखा गया है कि जीवन की अंतिम अवस्था में पहुँचते-पहुँचते इन्हें संसार से विरक्ति हो जाती है और कई बार ये वैराग्य धारण कर गृहस्थ में रहते हुए भी जल में कमल की तरह निर्लिप्ति, निर्विकार होकर त्यागी हो जाते हैं।

3.9.11 के—जिन जातकों का नाम 'के' अक्षर से आरंभ होता है उनका अधिकतर जीवन संघर्ष में ही बीत जाता है। इन्हें छोटी-छोटी चीजों के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है। ऐसे लोग एक जगह व एक स्थिति में ज्यादा देर तक

टिककर नहीं बैठ सकते। इन्हें दूसरों पर न तो विश्वास करना आता है न ही विश्वास जीतना। इनकी लापरवाही ही इनके लिए मुसीबत बन जाती है। इन्हें चाहिए कि जीवन को संजीदगी से लें तथा भीतर स्थिरता पैदा करें।

इनके जीवन में उत्थान-पतन, उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। ये प्रत्येक कार्य, बात का नकारात्मक पक्ष देखते हैं और इसीलिए प्रायः निराशावादी हो जाते हैं। जीवन के प्रति इन्हें कोई खास लगाव नहीं होता।

ऐसे व्यक्ति का मस्तिष्क ऊर्वरक होता है पर इनका जीवन काफी संघर्षमय होता है। ऐसे व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को संदेह व शंका की दृष्टि से देखते हैं। हसमुख एवं मिलनसारिता इनके जीवन के प्रमुख अंग हैं। शत्रु को परास्त करने में भी इनका कोई मुकाबला नहीं। इनमें लोगों को आंदोलित करने की एक विशेष शक्ति छिपी होती है। ऐसे जातक सच्चे मित्र साबित होते हैं तथा अंतिम दम तक जी-जान से दोस्ती निभाते हैं। यह लोग प्रायः दृढ़ विचारों वाले नहीं होते। एक बात के विषय में पक्का विचार करते हैं, पुनः उसमें परिवर्तन कर देते हैं और फिर दूसरी कोई नई योजना बनाने लगते हैं। धैर्य और अध्यवसाय की कमी के कारण जिस बात पर विचार करते हैं उसे पूरा नहीं करते। इनमें आत्मविश्वास की बड़ी कमी होती है, थोड़ी-सी निराशा से उदासीन हो जाते हैं।

3.9.12 एल—जिन जातकों का नाम 'एल' अक्षर से होता है वह उच्च विचारों वाले, व्यवस्थित एवं अनुशासनप्रिय होते हैं तथा हर कार्य योजना के तहत करते हैं। यह दार्शनिक विचारधारा वाले गंभीर प्रवृत्ति के होते हैं। अपनी महत्त्वाकांक्षा एवं स्वाभिमान के प्रति बड़े सतर्क रहते हैं। इन्हें जीवन में रुकना या पीछे मुड़ना पसंद नहीं होता। इनका गूढ़विद्या एवं अध्यात्म आदि में विशेष रुझान होता है। इनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार में विशेष प्रकार की शालीनता होती है। ऐसे जातक धुन के पक्के व कई विशेष उपलब्धियाँ लिए होते हैं।

यह दार्शनिक, भावुक एवं दयालु होते हैं। ये श्रेष्ठ विचारक एवं न्यायी होते हैं। इनका लक्ष्य मात्र उन्नति करना, आगे बढ़ना होता है। इनके विचार सुलझे हुए होते हैं। प्रत्येक कार्य योजनाबद्ध करते हैं। ऐसे व्यक्ति रिजर्व नेचर के होते हैं। विद्वानों एवं श्रेष्ठजनों की संगति पसंद करते हैं।

ऐसे जातक भावुक, परोपकारी एवं दार्शनिक मनोवृत्ति वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति विद्याध्ययन में विशेष रुचि रखते हैं। संघर्षशील प्रवृत्ति इनके जीवन की निजी विशेषता कही जा सकती है। ऐसे लोग वाद-विवाद एवं बौद्धिक स्पर्धा में सदैव बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। यदि यह व्यक्तिगत राग-द्वेष से लिप्त न हों तो ये बहुत बड़े लेखक, दार्शनिक व समाज चिंतक साबित हो सकते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वाभिमानी होते हैं। इनको क्रोध शीघ्र आता है। जल्दी बोलना, अकाट्य तर्क प्रस्तुत करना, अपनी लेखनी या वाणी से दूसरों को वशीभूत करना इनकी निजी विशेषता कही जा सकती है। इनकी आजीविका का साधन अध्ययन-अध्यापन, लेखन-प्रकाशन, अन्वेषण, अनुसंधान, शोध-कार्य, राजनीति व धार्मिक सामाजिक क्रिया-कलापों के इर्द-गिर्द होता है। रुपयों-पैसों का इनके जीवन में खास महत्त्व नहीं होता, ये सैद्धान्तिक जीवन जीना पसन्द करते हैं। ये नैतिक मूल्यों पर आधारित आदर्श जीवन जीना चाहते हैं तथा चरित्र की उज्ज्वलता पर विशेष ध्यान देते हैं।

3.9.13 एम—जिन जातकों का नाम 'एम' अक्षर से प्रारंभ होता है वह सादगीपसंद होते हैं तथा जरूरत से ज्यादा ही सभ्य सुसंस्कृत एवं उच्च विचार वाले होते हैं। इनका यही स्वभाव इनके लिए कई बार रुकावट बन जाता है तथा कभी व्यवहारिक जीवन नहीं जीने देता। इनके जीवन में उत्थान कम पतन अधिक होते हैं तथा जीवन घटनाओं से भरा होता है। ऐसे जातक स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं तथा यही सिद्ध करने की कोशिश भी करते हैं। इन्हें लोगों से यह शिकायत रहती है कि वह इन्हें नहीं समझ पाते।

कार्य कोई भी हो, कैसा भी क्षेत्र हो ये प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता की चोटी पर पहुँचे दिखाई देंगे। ये सज्जन, सदाचारी, सभ्य-सुसंस्कृत होते हैं। पवित्र विचारों वाले ये जातक सदा जीवन के प्रेमी होते हैं। कभी-कभी सादगी इनके

जीवन का अभिशाप बन जाती है। ये गोपनीयता पर काफी जोर देते हैं। यह खरी-खरी कहने में भी अग्रणी रहते हैं।

ऐसे व्यक्ति आसानी से किसी को मित्र नहीं बनाते परन्तु बनाते हैं तो अपनी ओर से जीवन भर उस रिश्ते को निभाते हैं। ऐसे जातक जीवन को क्षणभंगुर मानते हैं। इनका व्यक्तित्त्व रहस्यमयी होता है। इनका स्वभाव विचार, कल्पनाशक्ति, कार्य करने की शैली सब कुछ प्रभावशाली होती है। मित्र बनाने की कला में निपुण होते हैं। आप मित्र बनाएंगे भी परन्तु वह मित्र जिन्हें आप धीरे-धीरे चाहने लगेंगे वह आपसे द्वेष करने लगेंगे। कभी-कभी धैर्य की कमी आपको संकट में डाल सकती है परन्तु धीमी गति की जिंदगी आपको पसंद नहीं। ऐसे जातक तेजस्वी होते हैं। यह अपनी आलोचना को बर्दाश्त नहीं कर पाते। ऐसे जातक कोई भी कार्य को बहुत ही तेजी से निपटाकर वाहवाही लूटना चाहते हैं। इन्हें बड़प्पन के प्रदर्शन का शौक होता है तथा बिना मांगे सलाह दे बैठते हैं, यह इनकी सबसे गंभीर कमजोरी है। जब ये त्याग पर उतर जाते हैं तो इनसे बड़ा त्यागी कोई नहीं होता।

3.9.14 एन—जिन जातकों का नाम 'एन' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह सुलझे हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करने वाले जिम्मेदार लोग होते हैं लेकिन इन्हें जीवन यापन करने के लिए भयंकर संघर्ष करना पड़ता है। कार्यों में विघ्न इनके भीतर प्रबल साहस को जन्म देता है जिसके कारण यह बिना रुके अपने लक्ष्य के प्रति लगातार अग्रसर रहते हैं। अद्भुत प्रतिभाशाली अपने धुन के पक्के होते हैं तथा दोस्त बनाने और दोस्ती निभाने में सबसे आगे होते हैं। ऐसे लोग निःस्वार्थ भाव से सेवा करते हैं तथा शुद्ध एवं सरल जीवन जीना पसंद करते हैं।

यह प्रभावशाली व्यक्तित्त्व लिए होते हैं जिसके कारण यह अपरिचित से अपरिचित मनुष्य को भी मित्र बना लेते हैं। ये संघर्षरत रहकर कठिनाइयाँ झेलते हैं। अपने व्यक्तित्व की महानता एवं परिश्रमी प्रवृत्ति के कारण अन्त में सफलता प्राप्त कर ही लेते हैं।

ऐसे जातकों के जीवन में कोई भी काम आसानी से संपन्न नहीं होता। ये अनजान से अनजान व्यक्ति को फौरन मित्र बना लेते हैं। एक बार मित्र बना लेने के बाद प्रयास करते हैं कि उनकी मित्रता जीवनपर्यंत निभ जाय। इनका जीवन व्यस्त होता है और इनका व्यस्त जीवन कई बार परेशानी का कारण बन जाता है। विघ्न-बाधाओं को झेलने में ये बड़े माहिर होते हैं। दर्द सहते हैं पर मुंह से उफ तक नहीं निकालते। ऐसे जातक अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एड़ी से चोटी का जोर लगा देते हैं।

3.9.15 ओ—जिन जातकों का जन्म 'ओ' अक्षर से प्रारम्भ होता है उनके जीवन में अचानक और जबर्दस्त उत्थान-पतन होता है। ऐसे जातक बहुत ही साहसी और निडर होते हैं, हारने या टूटने के बाद भी पुनः संभलने व उठने का दम रखते हैं। यह अपने जीवन को व्यर्थ गंवाना नहीं चाहते इसलिए सदा कुछ ऐसा करना चाहते हैं जो किसी ने न किया हो। सच तो यह है इन्हें साधारण स्थिति या कार्य से संतोष भी प्राप्त नहीं होता। यह सबका ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करने की इच्छा रखते हैं। इनको सीमा में बांधना मुश्किल है। यह सदा अपने से उच्च विद्वान आदि से ही सम्पर्क साधना पसन्द करते हैं।

इनमें आकस्मिक रूप से ऊपर उठने की तीव्र इच्छा बनी रहती है। इनके जीवन का उत्तरार्द्ध-पूर्वार्द्ध की अपेक्षा अधिक सुखी एवं सम्पन्न होता है। हिम्मत हारना ये जानते ही नहीं। निरन्तर उतार-चढ़ाव इनके जीवन में बने रहते हैं। विचित्रता के प्रतिनिधि इन जातकों के काफी तादाद में मित्र होते हैं परन्तु विरोधी एवं शत्रुओं की भी कमी नहीं होती।

ऐसे जातक वैज्ञानिक बुद्धिसम्पन्न होते हुए भी आत्म केन्द्रित होते हैं। ऐसे जातक पूर्णतः रहस्यवादी एवं आध्यात्मिक होते हैं। इनमें अपनी आत्मप्रशंसा व दूसरों पर हावी होने की प्रवृत्ति होती है। ये किसी अन्य की प्रशंसा सहन नहीं कर पाते।

3.9.16 पी—जिन साधकों का जन्म 'पी' अक्षर से प्रारम्भ होता है यह परोपकारी, दयालु, धार्मिक एवं कोमल हृदय वाले होते हैं। यह किसी दूसरे को परेशान नहीं देख सकते। इन्हें सदा शांत एवं प्राकृतिक हरा-भरा वातावरण भाता

है। यह बहुत ही संतुलित एवं आत्मनियन्त्रित होते हैं। इनका जीवन मंदगति से चलता है। यह भले ही कितने कष्ट में हों लेकिन सदा स्वयं को खुश व संतुष्ट दिखाते हैं। न किसी की बुराई करते हैं न किसी की बुराई सुनते हैं। इनके जीवन में कोई न कोई उथल-पुथल चलती ही रहती है। इनमें क्रोध व हिंसा की प्रवृत्ति कम ही पाई जाती है तथा इनमें गजब की सहनशक्ति देखी जाती है।

ऐसे जातक अपने हृदय में अनेक रहस्यों को छुपाए हुए होते हैं। ये दयालु प्रकृति के, दूसरों के सुख-दुख में शामिल होने वाले होते हैं। कितनी भी कठिनाइयाँ हों, दुख-तकलीफ हों, इनके मस्तिष्क पर विशाद की रेखा नहीं खिंचती। ये श्रेष्ठता के प्रतीक, सच्चे कर्मठ होते हैं।

ऐसे व्यक्ति के जीवन की आधी आयु संपन्नता के साथ एवं आधी आयु विपन्नता के साथ बीतती है। ऐसे जातक परम बुद्धिजीवी होते हैं, स्वतंत्र व्यवसाय या व्यापार इन्हें पसन्द होता है। यह दयालु प्रकृति के, दूसरों के सुख-दुख में हिस्सा लेने वाले, आशावादी होते हैं तथा शत्रु के प्रति विनम्र एवं क्षमाशील होते हैं। ऐसे जातकों पर सोहबत का असर ज्यादा होता है। ये अतिभावुक हो जाते हैं तथा भावनाओं में बहकर कई बार सिद्धान्त एवं यथार्थ को भूल जाते हैं।

3.9.17 क्यू—जिन जातकों का नाम 'क्यू' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह बड़े ही तेजस्वी एवं प्रभावशाली होते हैं। इनका स्वभाव बादशाह की तरह स्वतन्त्र व निर्बाध होता है। यह अच्छे प्रशासक होते हैं तथा अपने पद एवं परिस्थितियों को बड़ी कुशलता के साथ निभाते हैं। इनके विचार, सिद्धान्त, लक्ष्य और कल्पना बहुत ही ऊँचे होते हैं। स्वभाव में जल्दबाजी एवं घमंड इनके कई काम व सम्बन्ध बिगाड़ देते हैं।

यह अपने सिद्धान्तों के पक्के और इनके पीछे जीते-मरते हैं। ये श्रेष्ठ विचारक होते हैं, जो कुछ विचार कर लेते हैं उसी पर स्थिर रहते हैं। ये सच्चे ईमानदार एवं सहृदयी होते हैं। शांति, गंभीरता एवं भावुकता इनके जीवन के विशेष अंग हैं। उतावलापन इनमें नहीं होता। जहां किसी के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते वहां ये भी नहीं चाहते कि कोई इनके कार्य में हस्तक्षेप करे।

ऐसे जातक आत्मसंयमी होते हैं। इनका जीवन काफी व्यवस्थित रहता है। ये शत्रु होकर मित्र भी बन जाते हैं पर हृदय में गांठ रखते हैं अतः ऐसे लोगों से बचकर रहने में ही समझदारी है। ये जो कुछ कहते हैं, उसे कर दिखाते हैं। किसी के सहयोग के बिना इनकी संकल्पशक्ति एवं मानसिक विकास आधा-अधूरा रहता है।

3.9.18 आर—जिन जातकों का नाम 'आर' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह बड़े ही गुणी, हुनरवान और चतुर होते हैं। यह अपनी बातों से किसी को भी अपना बनाकर अपना काम निकलवाना अच्छी तरह जानते हैं। यह बिना किसी प्रशिक्षण के किसी दूसरे के गुणों को चुराने में निपुण होते हैं। यह दूसरे से ज्यादा स्वयं को प्रेम करते हैं इसलिए अपने स्वास्थ्य का भी बेहद ख्याल रखते हैं। प्रारम्भिक काल से ज्यादा उसके बाद का समय इनके लिए अधिक हितकर होता है जिसमें इन्हें मान-सम्मान एवं सुख वैभव भी प्राप्त होता है। ऐसे जातक एक साथ मन में कई विचार एवं लक्ष्य रखते हैं जिसके कारण कई बार इन्हें हानि भी होती है।

यह जातक श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी, प्रभावशाली, मधुरभाषी होते हैं। अपने उच्चाधिकारी अथवा किसी से कार्य बना लेना इनके बायें हाथ का खेल है। जैसे-जैसे इनकी आयु बढ़ती है वैसे-वैसे ये जीवन में मान-प्रतिष्ठा, पद, इज्जत-सम्मान में अधिकाधिक वृद्धि कर लेते हैं। ये पक्के स्वार्थी होते हैं। स्वार्थ साधन के पश्चात् प्रत्युपकार करने में भी ये कभी पीछे नहीं रहते। दूसरों को परख लेने की इनमें अद्भुत कला होती है। ये परिश्रमी और लगनशील होते हैं।

ऐसे जातक श्रेष्ठतम व्यक्तित्त्व के धनी, आकर्षक, सौम्य, मधुर एवं मिष्टभाषी होते हैं। ऐसे व्यक्ति शांतिप्रिय होते हुए भी अपनी आलोचना नहीं सह पाते। यह गुणग्राही प्रकृति के धैर्यवान एवं मिलनसार होते हैं। उतावलापन इन्हें पसन्द नहीं होता।

3.9.19 एस—जिन जातकों का नाम का 'एस' अक्षर से शुरू होता है वह बहुत ही मिलनसार, बहिर्मुखी, हसमुख, विलक्षण एवं विभिन्न प्रतिभाओं के धनी होते हैं। इनके मिलने-जुलने वालों का दायरा बहुत बड़ा होता है। यह तीव्र बुद्धि वाले तथा समझदार होते हैं। यह प्यार और नफरत दोनों ही बड़ी संजीदगी से निभाते हैं। इन्हें निर्णय लेने में वक्त लगता है। यह बहुत ही वफादार और सुलझे हुए व्यक्ति होते हैं। आत्मचिंतन, अभ्यास, शोध, लेखन तथा रहस्यमयी जीवन को जीना आदि इन्हें अच्छा लगता है। यह हर तरह के सामूहिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

ये हसमुख, विनोदी प्रकृति के होते हैं। ये अपनी जिम्मेदारी के प्रति निष्ठावान होते हैं। अपने उच्च पदाधिकारी और मालिक के प्रति पूर्ण रूप से वफादार होते हैं। खुद कष्ट सहकर अन्यों को सुख देना इन्हें अच्छा लगता है। लोकप्रियता पाने का लोभ ये छोड़ नहीं सकते। ज्यादा से ज्यादा जन-सम्पर्क बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। धन अर्जित करने की अपेक्षा ये विद्या ज्ञान एवं अनुभव अर्जित करना अधिक पसन्द करते हैं।

यह अक्षर वैराग्य का भी प्रतीक है। ऐसे जातक का व्यक्तित्त्व खुला हुआ होता है तथा ये पक्ष-विपक्ष दोनों बात धैर्यपूर्वक सुनते हैं तथा प्राय: मिलनसार होते हैं। सामूहिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों में बड़े उत्साह के साथ बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं। ऐसे व्यक्ति को पूर्वाभास शीघ्र होता है। ऐसे व्यक्ति सत्य के लिए, अपने सिद्धान्तों की रक्षा हेतु जान पर भी खेल जाते हैं। इनको किताबी ज्ञान के अलावा अनुभवों का ज्ञान अधिक होता है। यह अपने क्षेत्र के स्वयंभू नेता होते हैं। इनका पारिवारिक जीवन प्राय: कलहपूर्ण होता है।

3.10.20 टी—जिन जातकों का नाम 'टी' अक्षर से होता है वह ऊर्जावान, शक्ति का भंडार होते हैं तथा अपने आपमें इन्हें पूर्ण विश्वास होता है। यह संतोषी व दृढ़संकल्पी होते हैं तथा तरह-तरह की योजनाओं में खोए रहते हैं। यह अपने अच्छे कार्यों एवं सुख के दिनों में सबको भागीदार बनाते हैं परन्तु अपने गम व कष्ट अकेले ही सहते हैं। इनकी कल्पनाशक्ति, प्रबन्ध शक्ति एवं कार्य करने की प्रणाली गजब की होती है। इन्हें भगवान में खास विश्वास होता है इसलिए यह प्रकृति हो या देश सभी के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रकट करते हैं। ऐसे जातक निष्काम कर्मयोगी और ईमानदार होते हैं तथा एक अच्छा सुखपूर्ण जीवन जीते हैं।

यह स्वतन्त्र एवं त्वरित निर्णय वाले होते हैं। कोई कुछ भी कहे, सुनते सबकी हैं परन्तु करते वहीं हैं जो ये चाहते हैं, ये आत्मविश्वासी होते हैं। अपनी उन्नति के लिए ये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। किसी गलत तरीके से उन्नति लाभ करना इन्हें पसन्द नहीं होता।

यह छोटे से छोटा काम करने में भी नहीं हिचकते। यह स्वतन्त्रता प्रिय होते हैं। यह समाज में अपनी पहचान अलग से बनाते हैं। ऐसे जातक न्यायप्रिय होते हैं एवं दिव्य शक्ति से ओत-प्रोत होते हैं। ऐसे जातक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी होते हैं तथा चहुंमुखी विकास करते हैं। इनका विश्वास काम करते रहने में है, फल की चिंता यह कम करते हैं। शत्रु के रूप में खतरनाक एवं मित्र के रूप में परम हितैषी होते हैं।

3.9.21 यू—जिन जातकों का नाम 'यू' अक्षर से आरम्भ होता है। वह प्रखर बुद्धि वाले तथा नए विचारों वाले खुले मिजाज के होते हैं। साधारण लोगों की तुलना में इन लोगों का मस्तिष्क कुछ अधिक ही तीव्रता एवं विचित्रता से काम करता है। ऐसे लोगों को चाहिए कि अपने विचारों एवं योजनाओं को गुप्त रखें वरना काम बनने से पहले बिगड़ सकता है। ऐसे जातक सदा नई-नई खोज में लगे रहते हैं तथा नवीनता के प्रति ही आकर्षित होते हैं। इन्हें सच और साफ कह देने की आदत होती है तथा अपने भाग्य एवं भविष्य की कोई चिंता नहीं होती।

यह सुलझे विचारों के धनी होते हैं। सत्य की खोज के लिए ये प्राणाहुति तक दे सकते हैं। रूढ़िवादिता को ये पंसद नहीं करते, जीवन के हर क्षेत्र में सबसे अलग-थलग इनके विचार होते हैं। व्यवहार अपनी आयु से आगे का रहता है। भेद को अन्तर्मन में छिपाकर रखना कोई इनसे सीखे। भविष्य की ये चिन्ता खुद नहीं करते, ईश्वर अर्पण कर देते हैं।

ऐसे व्यक्ति दूसरों की गुप्त बातों को पचाने की पूर्ण शक्ति रखते हैं। यह बहुत गहरे होते हैं। इनमें समर्पण की भावना कुछ विशेष रहती है। इनके विचार, सोचने की शैली, आम आदमी से हट कर होती है। भविष्य की चिंता यह नहीं करते और सब कुछ ईश्वर एवं भाग्य पर छोड़ देते हैं। यह लोग नाजुक मिजाज के श्रृंगारप्रिय होते हैं। यह शारीरिक श्रम के बजाय मानसिक श्रम में ज्यादा विश्वास रखते हैं।

3.9.22 वी—जिन जातकों का नाम 'वी' अक्षर से आरम्भ होता है वह तेजस्वी, आलस्य से दूर स्फूर्ति वाले एवं शक्तिसम्पन्न होते हैं, यह न केवल अपना आदर-सत्कार एवं मान-सम्मान आदि विशेष रूप से चाहते बल्कि दूसरों के भी आदर-सत्कार एवं मान-सम्मान का विशेष ख्याल रहते हैं। यह सदा ऊपर उठने की कोशिश में प्रयत्नशील रहते हैं। महत्वाकांक्षाओं से परिपूर्ण यह लोग चाहते हैं कि लोग इनकी व इनके कार्य की चर्चा करें। जीतना इनका जुनून होता है तो हारना इन्हें मृत्युतुल्य लगता है। सोच-समझकर बोलने वाले यह जातक बहुत ही सहनशील एवं संवेदनशील भी होते हैं। अपने आपको सदा श्रेष्ठ या सही समझने का अहम भाव इनको कई बार नुकसान में भी डाल देता है।

यह जहाँ अपने मान, प्रतिष्ठा सम्मान की रक्षा करते हैं वहाँ दूसरों के मान-सम्मान को भी ठेस नहीं पहुँचाते। जो कुछ ये कर देते हैं या कर रहे होते हैं लोग उसकी हृदय से सराहना करते हैं। इनका समझाने का एक विशेष ढंग होता है जिससे लोग प्रभावित होते हैं।

यह धन और पद प्राप्ति के लिए बहुत ही संघर्ष करते हैं। यह सारी दुनिया की चिंता रखते हैं। जानकारी का इनके पास भंडार होता है इसलिए यह कुशल पत्रकार, जनसंपर्क अधिकारी, नेता एवं मंत्री साबित हो सकते हैं। ऐसे जातकों का मस्तिष्क ऊर्वरक होता है, कल्पनाशक्ति अति तीव्र होती है। यह जी जान से दूसरों का सम्मान करते हैं तथा बदले में ऐसा ही चाहते हैं। यह प्रेम के भूखे होते हैं, कोई इनसे प्रेम के दो मीठे बोल बोलकर इनका सब कुछ ले सकता है। पर अपने शत्रु को परास्त करने की जबर्दस्त क्षमता रखते हैं।

3.9.23 डब्ल्यू—जिन जातकों का नाम 'डब्ल्यू' अक्षर से आरम्भ होता है वह अदम्य उत्साह, साहस एवं शक्ति के प्रतीक होते हैं। जोखिम उठाना एवं खतरों से खेलना इन्हें खूब भाता है। यह अपने साहस की परीक्षा स्वयं ही लेते रहते हैं तथा हर आने वाली परिस्थिति के लिए अपने आपको तैयार करते रहते हैं। ऐसे लोगों को एक जगह पर टिकना पसन्द नहीं होता। इन्हें रोमांच भरी यात्राएँ आकर्षित करती हैं। कभी खाली मत बैठो, सदा कुछ न कुछ करते रहो यही इनके जीवन का मूल मंत्र होता है। ऐसे लोग यदि अपनी जिद पर आ जाएं तो असंभव को भी संभव बना देते हैं।

यह परिश्रमी, धैर्यवान तथा कर्मठता के प्रतीक माने जाते हैं। ये जोखिम भरे कार्य करने में हिचकिचाते नहीं अपितु आनन्द का अनुभव करते हैं। ये बेहद फुर्तीले होते हैं। आलस्य इनसे दूर भागता है। हर क्षण, हर बात, हर कार्य को चुनौती के रूप में मानकर लेते हैं। ये किसी से हार नहीं मानते, किसी के सामने झुकना पसन्द नहीं करते।

ऐसे जातक रति-क्रिया, काम शास्त्र के पंडित होते हैं। संसार में अधिक सुख भोगने की, ऐश्वर्यशाली प्रसाधनों को प्रयोग करने की इनमें रुचि होती है। ऐसे लोगों को श्रृंगारप्रिय व साफ-सुथरे रहने की आदत होती है। इन्हें गुप्तचरी का बहुत शौक रहता है तथा दूसरों के रहस्य के बारे में जानने को यह आतुर रहते हैं। ऐसे लोग जरूरत से ज्यादा आशावादी होते हैं। ऐसे लोगों की उठक-बैठक अपने से ऊँचे लोगों के बीच हुआ करती है। यह बहुत फुर्तीले होते हैं तथा आलस्य इनके पास फटकता भी नहीं है। असंभव कार्य करने के लिए यह जूझ पड़ते हैं। इनके गुप्त शत्रु बहुत होते हैं।

3.9.24 एक्स—जिन जातकों का नाम 'एक्स' अक्षर से आरम्भ होता है वह बहुत ही विचित्र एवं अस्थिर बुद्धि वाले होते हैं। अपनी जिम्मेदारियों से भागने वाले,मस्त, आलसी एवं लापरवाह प्रवृत्ति के होते हैं। दिखावा करना, डींग मारना इनकी आदत होती है। दूसरों का काम बिगाड़ना या उसमें विघ्न डालना इनका स्वभाव होता है। कई बार तो यह

अपने बिछाये जाल में खुद ही फंस जाते हैं। समय को कभी महत्त्व न देने की वजह से अधिकतर इन्हें हार या असफलता का मुख देखना पड़ता है। वास्तविकता से ये कोसों दूर रहते हैं, लापरवाह तथा आलस्य से इनकी घनिष्ठ मित्रता होती है।

ऐसे व्यक्ति के जीवन में दिक्कतें बहुत आती हैं और वह सदा असमंजस की स्थिति में रहते हैं। यह कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। व्यावहारिक जीवन में ऐसे जातक ज्यादा सफल नहीं कहलाते। किसी भी बात पर दृढ़ रहना इनके स्वभाव में नहीं है।

3.9.25 वाई—जिन जातकों का नाम 'वाई' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह गम्भीर और विचित्र विचारों वाले व्यक्ति होते हैं। संसार तथा समाज से अलग-थलक अपने सिद्धान्त खुद बनाने वाले तथा उसी का अनुसरण करने वाले होते हैं। इनको व इनकी कार्यप्रणाली को सरलता से नहीं समझा जा सकता। चिंतन-मनन, भक्ति-उपासना का शौक इन्हें एकांत या जंगल की ओर उकसाता है। इनका यही शौक इन्हें एक दिन संसार से विरक्त कर देता है।

यह एक प्रकार से आत्मकेन्द्रित लोग होते हैं जो अपने आप में खोए हुए मस्त रहते हैं। ये किसी एक विचार-सिद्धान्त पर अडिग नहीं रहते, विचारों में परिवर्तन करते रहते हैं। वास्तविकता से दूर रहकर ये स्वप्न संसार में विचरते रहते हैं।

ऐसे जातक तेजस्वी किंतु आत्मकेन्द्रित होते हैं एवं अपने कार्य में मस्त रहते हैं। यह देश-काल की परिस्थिति को देखकर एवं मौके की नजाकत को समझकर गिरगिट के समान अपना रंग बदलते रहते हैं।

3.9.26 जेड—जिन जातकों का नाम 'जेड' अक्षर से प्रारम्भ होता है वह बड़े ही जिद्दी एवं क्रोधी स्वभाव के होते हैं। बुद्धि होते हुए भी मूर्खों जैसी हरकतें करते हैं। अपनी शत्रुता को या बदले की भावना को लंबे समय तक खींचते हैं। इन्हें लड़ना या मुकाबला करना खूब भाता है। यह नीतियाँ बनाने में निपुण होते हैं। दूसरों की अपेक्षा इनमें अधिक साहस होता है। अपने अपमान को यह जिन्दगी भर नहीं भूलते तथा उसका बदला लेकर ही दम लेते हैं। अपने जीवन में स्वयं को इतना लाभ नहीं मिलता जितना दूसरों को इनसे मिलता है, दूसरों के लिए भाग्यशाली साबित होते हैं।

ये तुनकमिजाज व जल्दबाज होते हैं। स्वार्थी तथा जिद्दी होते हैं परन्तु कूटनीति के क्षेत्र में माहिर होते हैं। इनके मित्र कम शत्रु अधिक होते हैं।

ऐसे व्यक्ति प्रतिपल कुछ न कुछ सोचते रहते हैं। खाली समय इनको काटने को दौड़ता है। प्राचीन परम्परा व रूढ़िगत मान्यताओं की ओर इनका रुझान नहीं होता। यह लोग मूलतः अपने हर्ष व क्रोध को छिपा नहीं पाते।

3.10 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-अट्ठाईसवें नक्षत्र का नाम क्या है ?

(क) पुनर्वसु ☐
(ख) धनिष्ठा ☐
(ग) अभिजित ☐

प्रश्न 2-रोहिणी नक्षत्र के नक्षत्र स्वामी कौन हैं ?

(क) चन्द्रमा ☐
(ख) अदिति ☐
(ग) ब्रह्मा ☐

प्रश्न 3-तामस नक्षत्र के कितने भेद हैं ?

(क) 8 ☐
(ख) 10 ☐
(ग) 12 ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-कौन सा ग्रह किन-किन नक्षत्रों का स्वामी है ?

प्रश्न 2-नक्षत्रों के गणभेद कौन-कौन से होते हैं ? तीनों नक्षत्रों में से राजस नक्षत्र के नाम बताइए ?

प्रश्न 3-नक्षत्रों के लिंग भेद बताते हुए स्त्रीलिंग नक्षत्र के नाम बताइए ?

प्रश्न 4-क्षयमास और मलमास में वर्जित कृत्य कौन-कौन से हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-ए.सी.आई.पी. एवं एम. अक्षर से जिन जातकों का नाम प्रारंभ होता है, उनके व्यक्तित्व को किस प्रकार का बताया गया है ?

पाठ 4–मुहूर्त विचार

4.1 शुभ समय (मुहूर्त)

प्राचीन काल से ही प्रत्येक मांगलिक कार्य के लिए शुभ समय का विचार किया जाता रहा है क्योंकि समय का प्रभाव जड़ और चेतन सभी प्रकार के पदार्थों पर पड़ता है इसीलिए हमारे आचार्यों ने गर्भाधानादि अन्यान्य संस्कार व प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, यात्रा आदि सभी मांगलिक कार्यों के लिए मुहूर्त का आश्रय लेना आवश्यक बतलाया है। अतएव नीचे प्रमुख आवश्यक मुहूर्त दिये जाते हैं—

4.1.1 सूतिका स्नान मुहूर्त—रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाति, अश्विनी और अनुराधा नक्षत्रों में रवि, मंगल और बृहस्पतिवारों में प्रसूता स्त्री को स्नान कराना शुभ है। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा नक्षत्रों में, बुध और शनि वारों में एवं अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथियों में प्रसूता स्त्री को स्नान कराना वर्जित है।

विशेष—प्रत्येक शुभ कार्य में व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति नामक योग, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, अधिकमास, कुलिक, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ और वज्र के आदि की तीन-तीन घटियाँ, परिघ योग का पूर्वार्द्ध, शूलयोग की पाँच घटियाँ, गण्ड और अतिगण्ड की छह-छह घटियाँ एवं व्याघात योग की नौ घटियाँ त्याज्य हैं।

4.1.2 स्तन-पान मुहूर्त—अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रेवती नक्षत्रों; सोम, बुध, गुरु व शुक्र वारों में तथा शुभ लग्नों में स्तनपान कराना चाहिए।

4.1.3 जातकर्म और नामकर्म मुहूर्त—यदि किसी कारणवश जन्मकाल में जातकर्म नहीं किया गया हो तो अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पौर्णमासी, सूर्यसंक्रान्ति तथा चतुर्थी और नवमी छोड़ अन्य तिथियों में; सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारों में, जन्मकाल से ग्यारहवें या बारहवें दिन में; मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में जातकर्म और नामकर्म करना शुभ है। जैन मान्यता के अनुसार नामकर्म जन्मदिन से 45 दिन तक किया जा सकता है।

4.1.4 दोलारोहण मुहूर्त—रेवती, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी नक्षत्रों में तथा सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारों में पहले-पहल बालक को पालने में झुलाना शुभ है।

4.1.5 भूम्युपवेशन मुहूर्त—रोहिणी, मृगशिर, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा व उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में; चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी को छोड़ शेष तिथियों में और सोम, बुध, गुरु व शुक्रवारों में बालक को भूमि पर बैठाना शुभ है।

4.1.6 बालक को बाहर निकालने का मुहूर्त—अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्रों में; द्वितीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियों में एवं सोम, बुध, शुक्र और रवि वारों में बालक का पहले-पहले घर से बाहर निकालना शुभ है।

4.2 अन्नप्राशन मुहूर्त—

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, अष्टमी, अमावस्या और द्वादशी तिथि को छोड़ अन्य तिथियों में; जन्मराशि अथवा जन्मलग्न से आठवीं राशि, आठवाँ नवांश, मीन, मेष और वृश्चिक को छोड़ अन्य लग्नों में; तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और

शतभिषा नक्षत्रों में, छठे मास से लेकर सम मास में अर्थात् छठे, आठवें, दसवें इत्यादि मासों में बालकों का और पाँचवें मास से लेकर विषम मासों में अर्थात् पाँचवें, सातवें, नवें इत्यादि मासों में कन्याओं का अन्नप्राशन शुभ होता है। परन्तु अन्नप्राशन शुक्लपक्ष में दोपहर के पूर्व करना चाहिए।

4.2.1 अन्नप्राशन के लिए लग्न शुद्धि—लग्न से पहले, तीसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें और नौवें स्थान में शुभग्रह हों; दसवें स्थान में कोई ग्रह न हो; तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पापग्रह हों और छठे तथा आठवें स्थान को छोड़ अन्य स्थानों में चन्द्रमा स्थित हो ऐसे लग्न में अन्नप्राशन शुभ होता है।

4.2.2 अन्नप्राशन मुहूर्त—

नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी, अभिजित् पुनर्वसु, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगशिर।
वार	सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र
तिथि	2/3/5/7/10/13/15
लग्न	2/3/4/5/6/7/8/9/10/11
लग्नशुद्धि	शुभग्रह 1/3/4/5/7/9 में; पापग्रह 3/6/11 स्थानों में शुभ हैं

4.3 कर्णवेध मुहूर्त—

चैत्र, पौष, आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक, जन्ममास, रिक्तातिथि (4/9/14), सम वर्ष और जन्मतारा को छोड़कर जन्म से छठे, सातवें, आठवें महीने में अथवा बारहवें या सोलहवें दिन, सोमवार, बुध, गुरु, शुक्र में और श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् नक्षत्रों में बालक का कर्णवेध शुभ होता है।

4.3.1 कर्णवेध मुहूर्त चक्र-

नक्षत्र	श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	1/2/3/5/6/7/10/11/12/13/15
लग्न	2/3/4/6/7/9/12
लग्नशुद्धि	शुभग्रह 1/3/4/5/7/9/10/11 स्थानों में, पापग्रह 3/6/11 स्थानों में शुभ होते हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो। यदि गुरु लग्न में हो तो विशेष उत्तम होता है।

4.4 चूड़ाकर्म (मुण्डन) मुहूर्त—

जन्म से तीसरे, पाँचवें, सातवें इत्यादि विषम वर्षों में; अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, अमावस्या, पूर्णमासी और सूर्य-संक्रान्ति को छोड़ अन्य तिथियों में; चैत्र महीने को छोड़ उत्तरायण में; सोम, बुध, शुक्र और बृहस्पतिवारों में; शुभ ग्रहों के लग्न अथवा नवांश में; जिसका मुण्डन कराना हो उसके जन्मलग्न अथवा जन्मराशि

से आठवीं राशि को छोड़कर अन्य लग्न व राशि में, लग्न से आठवें स्थान में शुक्र को छोड़ अन्य ग्रहों के न रहते; ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में; लग्न में तृतीय एकादश और षष्ठ स्थान में पापग्रहों के रहते मुण्डन कराना शुभ है।

4.5 मुण्डन मुहूर्त चक्र—

नक्षत्र	ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् , स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा।
वार	सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र
तिथि	2/3/5/7/10/11/13
लग्न	2/3/4/6/9/12
लग्नशुद्धि	शुभग्रह 1/2/4/5/7/9/10 स्थानों में शुभ होते हैं। पाप ग्रह 3/6/11 में शुभ हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो।

4.6 अक्षरारम्भ मुहूर्त—

जन्म से पाँचवे वर्ष में; एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी और तृतीया तिथि में; उत्तरायण में; हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाति, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा और अनुराधा नक्षत्र में; मेष, मकर, तुला और कर्क को छोड़ अन्य लग्न में बालक को अक्षरारम्भ कराना शुभ है।

अक्षरारम्भ मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाति, रेवती, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा
वार	सोम, बुध, शुक्र, शनि
लग्न	2/3/6/12 लग्नों में परन्तु अष्टम में कोई ग्रह न हो।

4.7 विद्यारम्भ मुहूर्त—

मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी), पुष्य, आश्लेषा नक्षत्रों में; रवि, गुरु, शुक्र इन वारों में; षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया इन तिथियों में और लग्न से नौवें, पाँचवें, पहले, चौथे, सातवें, दसवें स्थान में शुभग्रहों के रहने पर विद्यारम्भ करना शुभ है। किसी-किसी आचार्य के मत से तीनों उत्तरा, रेवती और अनुराधा में भी विद्यारम्भ करना शुभ कहा गया है।

4.8 वाग्दान मुहूर्त—

उत्तराषाढ़ा, स्वाति, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका, रोहिणी, रेवती, मूल, मृगशिरा, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में वाग्दान करना शुभ है।

4.8.1 विवाह मुहूर्त—मूल, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी इन नक्षत्रों में और ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़ इन महीनों में विवाह करना शुभ है।

विवाह में कन्या के लिए गुरुबल, वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए।

प्रत्येक पचांग में विवाह के मुहूर्त लिखे रहते हैं। इनमें शुभसूचक खड़ी रेखाएँ और अशुभसूचक टेढ़ी रेखाएँ होती हैं। ज्योतिष में दस दोष बताये गये हैं, जिस विवाह के मुहूर्त में जितने दोष नहीं होते हैं उतनी ही खड़ी रेखाएँ होती हैं और दोषसूचक टेढ़ी रेखाएँ मानी जाती हैं। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त दस रेखाओं का होता है, मध्यम सात-आठ रेखाओं का और जघन्य पाँच रेखाओं का होता है। इससे कम रेखाओं के मुहूर्त को निन्द्य कहते हैं।

विवाह के गुरुबल विचार—बृहस्पति कन्या की राशि से नवम, पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ; दशम, तृतीय, षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह के सूर्यबल विचार—सूर्य वर की राशि से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश राशि में शुभ; प्रथम, द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह में चन्द्रबल विचार—चन्द्रमा वर और कन्या की राशि में तीसरा, छठा, सातवाँ दसवाँ, ग्यारहवाँ शुभ; पहला, दूसरा, पाँचवाँ, नौवाँ दान देने से शुभ और चौथा, आठवाँ, बारहवाँ अशुभ होता है।

विवाह में अन्धादि लग्न व उनका फल—दिन में तुला और वृश्चिक; राशि में तुला और मकर बधिर हैं तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या, मिथुन, कर्क अन्धसंज्ञक हैं। दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन लग्न पंगु होते हैं। किसी-किसी आचार्य के मत से धनु, तुला, वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर हैं; मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे हैं; सिंह, मेष, वृष ये लग्न दिन में अंधे हैं और मकर, कुम्भ, मीन ये लग्न प्रातःकाल तथा सायंकाल में कुबड़े होते हैं। यदि विवाह बधिर लग्न में हो तो वर-कन्या दरिद्र; दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा; रात्रान्ध लग्न में हो तो सन्तति मरण; पंगु में हो तो धन-नाश होता है।

विवाह के शुभ लग्न—तुला, मिथुन, कन्या, वृष व धनु लग्न शुभ हैं, अन्य मध्यम हैं।

4.8.2 लग्न शुद्धि—लग्न से बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और क्रूर ग्रह अच्छे नहीं होते। लग्नेश, शुक्र, चन्द्रमा छठे और आठवें में शुभ नहीं होते। लग्नेश और सौम्य ग्रह आठवें में अच्छे नहीं होते हैं और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

4.9 ग्रहों का बल—

प्रथम, चौथे, पाँचवें, नौवें और दसवें स्थान में स्थित बृहस्पति सब दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा वर्गोत्तम लग्न में स्थित नवांश दोषों को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पाँचवे, नौवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में हो तो दो सौ दोषों को दूर करता है। यदि इन्हीं स्थानों में बृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

4.10 वधूप्रवेश मुहूर्त—

विवाह के दिन में 16 दिन के भीतर नव, सात, पाँच दिन में वधू प्रवेश शुभ है। यदि किसी कारण से 16 दिन के भीतर वधू प्रवेश न हो तो विषम मास, विषय दिन और विषम वर्ष में वधू प्रवेश करना चाहिए।

तीनों उत्तरा (उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा), रोहिणी, अश्विनी, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाति नक्षत्र में; रिक्ता (4/9/14) को छोड़ शुभ तिथियों में और रवि, मंगल, बुध छोड़ शेष वारों में वधूप्रवेश करना शुभ है।

4.11 द्विरागमन मुहूर्त—

विषम (1/3/5/7) वर्षों में; कुम्भ, वृश्चिक, मेष राशियों के सूर्य में; गुरु, शुक्र, चन्द्र इन वारों में; मिथुन, मीन, कन्या, तुला, वृष इन लग्नों में और अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रों में द्विरागमन शुभ है। द्विरागमन में सम्मुख शुक्र त्याज्य है। रेवती नक्षत्र के आदि से मृगशिरा के अन्त तक चन्द्रमा के रहने से शुक्र अन्ध माना जताा है। इन दिनों में द्विरागमन होने से दोष नहीं होता। शुक्र का दक्षिण भाग में रहना भी अशुभ है।

4.11.1 द्विरागमन मुहूर्त चक्र

समय	1/3/5/7/9 विवाह के बाद इन वर्षों में कुम्भ, वृश्चिक, मेष के सूर्य में
नक्षत्र	अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा
वार और तिथि	बुध, बृहस्पति, शुक्र, सोम, 1/2/3/5/7/10/11/12/13/15 तिथियों में
लग्न और	2/3/6/7/12 लग्नों में; लग्न से 1/2/3/5/7/10/11 स्थानों में शुभग्रह और 3/6/11 में पापग्रह
उनकी शुद्धि	शुभ होते हैं।

4.12 यात्रा मुहूर्त—

अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम; रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य हैं। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गई हैं। यात्रा के लिए वारशूल, नक्षत्रशूल, दिक्शूल, चन्द्रवास और राशि से चन्द्रमा का विचार करना आवश्यक है। कहा भी गया है :

''दिशाशूल ले आओ वामें, राहु योगिनी पीठ
सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट''

4.12.1 यात्रा मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा उत्तम हैं। रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा मध्यम हैं। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति, विशाखा निन्द्य हैं।
तिथि	2 / 3 / 5 / 7 / 10 / 11 / 13

4.13 वारशूल और नक्षत्रशूल—

ज्येष्ठा नक्षत्र, सोमवार तथा शनिवार को पूर्व; पूर्वाभाद्रपद और गुरुवार को दक्षिण; शुक्रवार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम और मंगल तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए। यात्रा में चन्द्रमा का विचार अवश्य करना चाहिए। दिशाओं में चन्द्रमा का वास निम्न प्रकार से जाना जाता है।

4.13.1 चन्द्रमा विचार—मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में; वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में; तुला, मिथुन व कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में; कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

4.13.2 चन्द्रफल—सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख-सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक-सन्ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धननाश करने वाला होता है।

चन्द्रवास चक्र

पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर	पूर्व	प्रात:काल	पूर्व	चन्द्र, शनि
मेष	मिथुन	वृष	कर्क	पश्चिम	सायंकाल	दक्षिण	गुरु
सिंह	तुला	कन्या	वृश्चिक	दक्षिण	मध्याह्नकाल	पश्चिम	सूर्य, शुक्र
धनु	कुम्भ	मकर	मीन	उत्तर	अर्धरात्रि	उत्तर	मंगल, बुध

समयशूलचक्र

दिक्शूलचक्र

योगिनीचक्र

दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
तिथि	9/1	3/11	13/5	12/4	14/6	15/7	10/2	30/8

1.14 गृहारम्भमुहूर्त—

मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, हस्त, स्वाति, रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा तिथियों में गृहारम्भ श्रेष्ठ होता है।

4.14.1 गृहारम्भ मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, हस्त, स्वाति, रोहिणी, रेवती
वार	चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि
तिथि	2/3/5/7/10/11/13/15
मास	वैशाख, श्रावण, माघ, पौष, फाल्गुन
लग्न	2/3/5/6/8/9/11/12
लग्नशुद्धि	शुभग्रह लग्न में 1/4/7/10/5/9 स्थानों में एवं पापग्रह 3/6/11 स्थानों में शुभ होते हैं। 8/12 स्थान में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए।

4.15 नींव खोदने के लिए दिशा का विचार—

देवालय, जलाशय और घर बनाते समय नींव खोदने के लिए दिशा का विचार करना आवश्यक होता है। देवालय की नींव खुदवाने के समय मीन, मेष और वृष का सूर्य हो तो राहु का मुख ईशानकोण में; मिथुन, कर्क और सिंह में सूर्य हो तो राहु का मुख वायव्यकोण में; कन्या, तुला और वृश्चिक में सूर्य हो तो नैऋत्यकोण में एवं धनु, मकर और कुम्भ में सूर्य हो तो आग्नेयकोण में राहु का मुख रहता है। गृह बनवाना हो तो सिंह, कन्या और तुला के सूर्य में राहु का मुख ईशान-कोण में; वृश्चिक, धनु और मकर के सूर्य में राहु का मुख वायव्यकोण में; कुम्भ, मीन और मेष राशि के सूर्य में राहु का मुख नैऋत्यकोण में एवं वृष, मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में राहु का मुख आग्नेयकोण में रहता है। जलाशय-कुआँ, तालाब खुदवाने के समय मकर, कुम्भ और मीन राशि के सूर्य में राहु का मुख ईशानकोण में; मेष, वृष और मिथुन के सूर्य में राहु का मुख वायव्यकोण में; कर्क, सिंह और कन्या के सूर्य में राहु का मुख नैर्ऋत्यकोण में एवं तुला,

वृश्चिक और धनु के सूर्य में राहु का मुख आग्नेयकोण में रहता है। नींव या जलाशय आदि खोदते समय मुख भाग को छोड़कर पृष्ठ भाग से खोदना शुभ होता है।

4.15.1 राहुचक्र

राहु	ईशान (पूर्व-उत्तर)	वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	आग्नेय (पूर्व-दक्षिण)	शुभ
देवालया रम्भ	मीन, मेष, वृष	मिथुन, कर्क, सिंह	कन्या, तुला, वृश्चिक	धनु, मकर, कुम्भ	सूर्य स्थिति
गृहारम्भ	सिंह, कन्या तुला	वृश्चिक, धनु मकर	कुम्भ, मीन, मेष	वृष, मिथुन, कर्क	सूर्य स्थिति
जलाशया रम्भ	मकर, कुम्भ, मीन आग्नेय	मेष, वृष, मिथुन ईशान	कर्क, सिंह, कन्या वायव्य	तुला, वृश्चिक, धनु नैऋत्य	सूर्य स्थिति
राहु	(पूर्व और दक्षिण का मध्य)	(पूर्व और उत्तर का मध्य)	(उत्तर और पश्चिम का मध्य)	(दक्षिण और पश्चिम का मध्य)	पृष्ठ

4.16 गृहारम्भ में वृषवास्तु चक्र—

गृह निर्माण करते समय शुभाशुभत्व अवगत करने के लिए बैल के आकार का चक्र बनाना चाहिए। सूर्य के नक्षत्र से तीन नक्षत्र उस चक्र के सिर में स्थापित करे। यदि उन तीन नक्षत्रों में घर का आरम्भ किया जाये तो घर में आग लगती है। उनसे आगे के चार नक्षत्र उस चक्र के अगले पैरों पर स्थापित करे। इन नक्षत्रों में घर का आरम्भ होने पर घर में शून्यता रहती है। उनसे आगे के चार नक्षत्र पिछले पैरों पर स्थापित करे। इन नक्षत्रों में गृहारम्भ होने से घर बहुत दिनों तक स्थिर रहता है। उनसे आगे के तीन नक्षत्र पीठ पर स्थापित करे। इन नक्षत्रों में गृहारम्भ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इससे आगे के चार नक्षत्र दक्षिण कुक्षि में स्थापित करे। इन नक्षत्रों में गृह बनाने से दरिद्रता रहती है। आगे के तीन नक्षत्र मुख में स्थापित करे। इन नक्षत्रों में घर बनवाने से सर्वदा रोग, पीड़ा और भय व्याप्त रहता है।

4.16.1 वृषवास्तु चक्र

वृषभ के अंग	सिर	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	दक्षिणकुक्षि	पुच्छ	वामकुक्षि	मुख
नक्षत्र	3	4	4	3	4	3	4	3
फल	दाह	शून्य	स्थिरता	लक्ष्मी	लाभ	स्वामी नाश	दारिद्र्य	सर्वदा पीड़ा

गृहारम्भ विचार—घर बनाने का आरम्भ करने के लिए सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्र अशुभ, आगे के ग्यारह शुभ और इससे आगे के दस नक्षत्र अशुभ माने गये हैं। इस गणना में अभिजित् भी सम्मिलित है।

4.16.3 गृहारम्भ चक्र

सूर्य नक्षत्र से	7	11	10
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ

4.16.4 घर के लिए दरवाजे का विचार—कुम्भ राशि के सूर्य के रहते फाल्गुन महीने में; कर्क और सिंह राशि के सूर्य के रहते श्रावण महीने तथा मकर राशि में सूर्य के रहते पौष महीने में घर बनवाएँ तो उस घर का दरवाजा पूर्व या पश्चिम दिशा में शुभ होता है। मेष व वृष राशि में सूर्य के रहते वैशाख महीने में तथा तुला व वृश्चिक राशि में सूर्य रहते अगहन (मगशिर) महीने में घर बनवायें तो उसका दरवाजा उत्तर या दक्षिण दिशा में शुभ होता है।

पूर्णमासी से लेकर कृष्णाष्टमी पर्यन्त पूर्व दिशा में, कृष्ण पक्ष की नवमी से लेकर चतुर्दशी पर्यंत उत्तर दिशा में, अमावस्या से लेकर शुक्लाष्टमी पर्यंत पश्चिम दिशा में और शुक्लपक्ष की नवमी से शुक्लपक्ष की चतुर्दशी पर्यंत दक्षिण दिशा में बनाया हुआ घर का द्वार शुभ नहीं होता। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और द्वादशी में बनाया हुआ द्वार शुभ होता है। दरवाजे का निर्माण शुक्लपक्ष में करने से शुभफल और कृष्णपक्ष में करने से अनिष्टफल होता है। कृष्णपक्ष में द्वार का निर्माण करने से चोरी होने की आशंका सर्वदा बनी रहती है।

जिस नक्षत्र में सूर्य स्थित हो उससे चार नक्षत्र सिर-उत्तमांग में स्थापित करे। इन नक्षत्रों में घर का दरवाजा लगाया जाए तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् आगे के आठ नक्षत्र चारों कोनों में स्थापित करना चाहिए। इन नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से घर उजाड़ हो जाता है। इसके पश्चात् आगे के आठ नक्षत्र शाखा-बाजुओं में स्थापित करना चाहिए। इन नक्षत्रों में घर का दरवाजा लगाने से सुख, सम्पत्ति और वैभव की प्राप्ति होती है। इसके आगे के तीन नक्षत्र देहली में और उससे आगे के चार नक्षत्र मध्य में स्थापित करने चाहिए। देहली वाले नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से स्वामी का मरण और मध्य वाले नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

4.16.5 द्वारचक्र

सिर	कोण	बाजू	देहली	मध्य
4	8	8	3	4
लक्ष्मी	उजाड़	सौख्य	स्वामिमरण	सुख-सम्पत्ति

4.16.6 गृहारम्भ में निषिद्धकाल—गृहारम्भकाल में यदि सूर्य निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो घर के स्वामी का मरण; यदि चन्द्रमा अस्त या नीच स्थान में हो अथवा निर्बल हो तो उसकी स्त्री का मरण होता है। यदि बृहस्पति निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो सुख का नाश; यदि शुक्र निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो धन का नाश होता है। गृहारम्भकाल में चन्द्रमा का नक्षत्र या वास्तु का नक्षत्र घर के आगे पड़ता हो तो उस घर में स्वामी की स्थिति नहीं होती और पीछे पड़ता हो तो उस घर में चोरी होती है। जिस नक्षत्र में चन्द्रमा स्थित हो, वह चन्द्र नक्षत्र कहलाता है।

4.16.7 गृह की आयु—जिस गृह के निर्माण के समय बृहस्पति लग्न में, सूर्य छठे स्थान में, बुध सातवें स्थान में, शुक्र चतुर्थ स्थान में और शनि तीसरे स्थान में स्थित हो तो उस घर की आयु सौ वर्ष की होती है। जिस घर के आरम्भ में शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे स्थान में, मंगल छठे स्थान में और बृहस्पति पाँचवें स्थान में स्थित हो तो उसकी आयु दो सौ वर्ष होती है। जिसके आरम्भकाल में शुक्र लग्न में, बुध दशम में, सूर्य एकादश में और बृहस्पति केन्द्र में हो उस घर की आयु एक सौ पच्चीस वर्ष होती है। उच्चराशि का गुरु केन्द्र में स्थित हो और अन्य ग्रह पूर्ववत् स्थित हों तो तीन सौ वर्ष की आयु होती है। गुरु, शुक्र, चन्द्रमा और बुध उच्चराशि के होकर चतुर्थभाव में शुभ ग्रहों से दृष्ट हों तो घर की आयु दो सौ वर्ष से अधिक होती है। शुक्र मूलत्रिकोण या उच्चराशि का होकर चतुर्थ भाव में अवस्थित हो तो गृहस्वामी सुखी और सन्तुष्ट रहता है तथा घर सौ वर्षों से अधिक काल तक सुदृढ़ बना रहता है। जिस घर के आरम्भ में बृहस्पति चतुर्थ स्थान में, चन्द्रमा दसवें स्थान में और मंगल-शनि एकादश स्थान में स्थित हों तो उस घर की आयु अस्सी वर्ष की होती है।

जिस गृह के आरम्भ में कोई भी ग्रह शत्रु के नवांश में स्थित होकर लग्न, सप्तम या दशम में स्थित हो तो वह घर एक–दो वर्षों में ही दूसरे के हाथ में बेच दिया जाता है।

4.16.8 पिण्डसाधन तथा आय–वार–आयु आदि विचार—गृहपति के हाथ प्रमाण घर की लम्बाई और चौड़ाई को गुणा कर गृहपिण्ड निकाल लेना चाहिए। इस पिण्ड को नौ स्थानों में स्थापित कर क्रमशः 1, 2, 6, 8, 3, 8, 8 और 8 से गुणा कर गुणनफल में 8, 7, 9, 12, 8, 27, 15, 27 और 120 का भाग देने पर शेष क्रमशः आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु होते हैं। यदि बहुत ऋण और अल्प द्रव्य हो तो गृह अशुभ होता है। गृह की आयु भी उक्त क्रमानुसार जानी जा सकती है।

4.17 चक्र का विवरण—

इस चक्र द्वारा आय, वार, अंश, धन (द्रव्य), ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु निकालने का उद्देश्य यह है कि विषम आय वाला गृह शुभ और सम आय वाला दुख देने वाला होता है। सूर्य और मंगल के वार, राशि अंशवाले घर में अग्नि का भय रहता है। अतः ये त्याज्य और अन्य ग्रहों के वार, राशि और अंश ग्रहण करने योग्य हैं। इसी प्रकार अधिक धन और न्यून ऋणवाला घर शुभ तथा न्यून धन (द्रव्य) और अधिक ऋणवाला घर अशुभ होता है। नक्षत्र जानने का प्रयोजन यह है कि मकान के नक्षत्र से गृहारम्भ के दिन नक्षत्र तक तथा स्वामी के नक्षत्र तक जिनकी जितनी संख्या हो, उसमें नौ का भाग देने से यदि 1/3/5/7 शेष रहें तो मकान अशुभ और यदि 2/4/6/8/0 शेष रहे तो मकान शुभ होता है। तिथि का प्रयोजन शुभाशुभत्व की जानकारी प्राप्त करना है। यदि चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और अमावस्या इनमें से कोई तिथि आती हो तो गृह अशुभ होता है। शेष तिथियों के आने पर घर को शुभ समझा जाता है। योग के सम्बन्ध में भी यह ध्यान रखना चाहिए कि अतिगण्ड, शूल, विष्कम्भ, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात और वैधृति नितान्त अशुभ हैं। शेष योग प्रायः शुभ हैं। आयु का तात्पर्य स्पष्ट है कि अधिक दिन रहने वाला मकान शुभ और कम दिन रहने वाला अशुभ होता है।

स्वामी के नक्षत्र से विचार करने का अभिप्राय यह है कि स्वामी तथा घर का यदि एक ही नक्षत्र हो तो मृत्यु होती है, परन्तु यदि राशि एक न हो तो यह दोष नहीं आता है। यहाँ नाड़ी वेध को दोषकारक नहीं माना गया है।

इस संदर्भ में राशि ज्ञात करने की विधि यह है कि अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र की मेष राशि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी की सिंह राशि तथा मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा की धनु राशि होती है और शेष नक्षत्रों में उचित क्रम से नौ राशियों की अवस्था अवगम कर लेनी चाहिए।

आय, वार, नक्षत्र, तिथि और योग में क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, गाय, गर्दभ, हस्ति और काक; रवि, सोम, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि; अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती; प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा–अमावस्या एवं विषकम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान् , परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति अवगत करना चाहिए। पिण्ड द्वारा घर का शुभाशुभत्व पूर्णतया जाना जा सकता है।

4.18 गृह निर्माण के लिए सप्तसकार योग—

शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंहलग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमी तिथि, शुभयोग और श्रावण मास में गृहनिर्माण करने से हाथी,

घोड़ा, धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के साथ पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि होती है। उक्त योग सप्तसकार योग कहलाता है। इसमें गृह निर्माण करने का उत्तम फल बताया गया है। गृह-निर्माण प्रायः शुक्लपक्ष में श्रेष्ठ होता है, कृष्णपक्ष में गृह-निर्माण करने से चोरी का भय रहता है। श्रावण, वैशाख और मगशिर के महीने गृह निर्माण के लिए उत्तम माने गये हैं।

4.18.1 शल्य शोधन—गृह निर्माण की भूमि को शुद्ध कर लेना आवश्यक है अतः सर्वप्रथम उस भूमि—गृह निर्माण वाली भूमि से शल्य—हड्डी को निकालकर बाहर कर देना चाहिए। शल्य अवगत करने की विधि ज्योतिष शास्त्र में कई प्रकार से बतलायी गयी है। गृह निर्माण करने वाला व्यक्ति जब सामने आए और प्रश्न करे तो उसके प्रश्नाक्षरों की संख्या को दूना कर लेना चाहिए। मात्राओं को चार से गुणा कर पूर्वोक्त गुणनफल में जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में नौ का भाग देने से विषम—1/3/5/7 शेष रहे तो शल्य-हड्डी भूमि में रहती है और सम—2/4/6/8 शेष रहे तो भूमि निःशल्य—अस्थिरहित होती है। प्रश्नाक्षरों के लिए पुष्प, देव, नदी एवं फल का नाम पूछना चाहिए।

शल्य का अस्तित्व रहने पर यदि प्रश्नाक्षरों में पहला अक्षर व हो तो शल्य पूर्व भाग में होता है। पूर्व भाग में भी नौवाँ भाग समझना चाहिए। इस भूमि में डेढ़ हाथ खोदने से मनुष्य की अस्थि प्राप्त होती है। **कवर्ग** के अन्तर रहने से अग्निकोण में दो हाथ नीचे गधे की अस्थि निकलती है। **चवर्ग** के अक्षर रहने पर दक्षिण में कमर भर भूमि खोदने पर मनुष्य का शल्य रहता है। **तवर्ग** के प्रश्नाक्षर होने से नैर्ऋत्य कोण में कुत्ते का शल्य डेढ़ हाथ नीचे निकलता है। **स्वर** वर्ण प्रश्नाक्षर होने पर पश्चिम भाग में डेढ़ हाथ नीचे बच्चे की अस्थि निकलती है। **ह** प्रश्नाक्षर रहने पर वायव्य कोण में चार हाथ नीचे खोदने पर केश, कपाल, अस्थि, रोम आदि पदार्थ मिलते हैं। **श** प्रश्नाक्षर होने से उत्तर में एक हाथ नीचे खोदने से ब्राह्मण का शल्य उपलब्ध होता है। **पवर्ग** के प्रश्नाक्षर होने से ईशान कोण में डेढ़ हाथ नीचे खोदने पर गाय की अस्थियाँ मिलती हैं। **य** प्रश्नाक्षर होने पर मध्य भाग में छाती भर जमीन खोदने पर भस्म, लोहा, कपास आदि पदार्थ मिलते हैं। मतान्तर से **ह य प** वर्ण प्रश्नाक्षर होने से मध्य भाग में शल्य उपलब्ध होता है।

शल्योद्धार के सम्बन्ध में विशेष जानकारी अहिबलचक्र के द्वारा प्राप्त करनी चाहिए। भूमि की श्रेष्ठता अवगत करने के लिए सन्ध्या समय एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा गड्ढा खोदकर जल से भर देना चाहिए। प्रातःकाल उस गड्ढे में जल शेष रह जाय तो शुभ, निर्जल चौकोर भूमि दिखाई पड़े तो मध्यम और निर्जल फटा हुआ गड्ढा मिले तो जमीन को अशुभ समझना चाहिए। इस विधि को देश-काल के अनुसार ही प्रयोग में लाना श्रेयस्कर होता है।

4.18.2 नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त—उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती नक्षत्रों में, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तिथियों में गृहप्रवेश करना शुभ है।

4.18.3 नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती
वार	चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि
तिथि	2/3/5/6/7/10/11/12/13
लग्न	2/5/8/11 उत्तम हैं। 3/6/9/12 मध्यम हैं।
लग्नशुद्धि	लग्न से 1/2/3/5/7/9/10/11 स्थानों में शुभग्रह शुभ होते हैं। 3/6/11 स्थानों में पापग्रह शुभ होते हैं। 4/8 स्थानों में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए।

4.18.4 जीर्ण गृहप्रवेश मुहूर्त—शतभिषा, पुष्य, स्वाति, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, नक्षत्रों में; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तिथियों में जीर्ण गृहप्रवेश करना शुभ है।

4.18.5 जीर्ण गृहप्रवेश मुहूर्त चक्र

नक्षत्र	शतभिषा, पुष्य, स्वाति, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी।
वार	चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि
तिथि	2/3/5/6/7/10/11/12/13
मास	कार्तिक, मार्गशीर्ष, श्रावण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ

4.19 शान्तिक और पौष्टिक कार्य का मुहूर्त—

अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, अनुराधा, मघा नक्षत्रों में; रिक्त (4/9/14), अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में और रवि, मंगल, शनि वारों को छोड़ शेष वारों में शान्तिक और पौष्टिक कार्य करना शुभ है।

4.19.1 शान्तिक और पौष्टिक कार्य के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा पुनर्वसु, स्वाति, अनुराधा, मघा।
वार	चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	2/3/5/7/10/11/12/13

4.20 कुआं खुदवाने का मुहूर्त—

हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिरा, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों में; बुध, गुरु, शुक्र, वारों में और रिक्ता (4/9/14) छोड़ सभी तिथियों में शुभ होता है।

4.20.1 कुआँ खुदवाने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य मृगशिरा, पूर्वाषाढ़ा
वार	बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	2/3/5/7/10/11/12/13/15

4.21 दुकान करने का मुहूर्त—

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, अश्विनी, नक्षत्रों में तथा शुक्र, बुध, गुरु, सोम वारों में व रिक्ता (4/9/14), अमावस्या को छोड़ शेष तिथियों में दुकान करना शुभ है।

4.21.1 दुकान करने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, अश्विनी
वार	शुक्र, गुरु, बुध, सोम
तिथि	2/3/5/7/10/11/12/13

4.22 बड़े-बड़े व्यापार करने का मुहूर्त—

हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, चित्रा नक्षत्रों में; शुक्र, बुध, गुरु वारों में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी तिथियों में बड़े-बड़े व्यापार सम्बन्धी कारोबार करना शुभ है।

4.22.1 बड़े-बड़े व्यापार करने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, चित्रा
वार	बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	2/3/5/7/11/13

4.22.2 राजा से मिलने का मुहूर्त—श्रवण, घनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिरा, पुष्य, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाति नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवारों में राजा से मिलना शुभ है।

4.22.3 बगीचा लगाने का मुहूर्त—शतभिषा, विशाखा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य नक्षत्रों में तथा शुक्र, सोम, बुध, गुरु वारों में बगीचा लगाना शुभ है।

4.22.4 रोगमुक्त होने पर स्नान करने का मुहूर्त—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, रेवती नक्षत्रों को छोड़ शेष नक्षत्रों में; रवि, मंगल, गुरु वारों में और रिक्तादि तिथियों में रोगी को स्नान कराना शुभ है।

4.22.5 नौकरी करने का मुहूर्त—हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य नक्षत्रों में; बुध, गुरु, शुक्र, रवि वारों में और शुभ तिथियों में नौकरी शुभ है।

4.23 मुकदमा दायर करने का मुहूर्त—

ज्येष्ठा, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा नक्षत्रों में; तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, पंचमी, दशमी, पूर्णमासी तिथियों में और रवि, बुध, गुरु, शुक्र वारों में मुकदमा दायर करना शुभ है।

4.23.1 मुकदमा दायर करने के मुहूर्त का चक्र

नक्षत्र	ज्येष्ठा, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा
वार	रवि, बुध, गुरु, शुक्र
तिथि	3/5/8/10/13/15
लग्न	3/6/7/8/11
लग्नशुद्धि	सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, ये ग्रह 1/4/7/10 स्थानों में और पापग्रह 3/6/11 स्थानों में शुभ होते हैं परन्तु अष्टम में कोई ग्रह नहीं होना चाहिए।

4.24 औषध बनाने का मुहूर्त—

हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, पुनर्वसु, स्वाति, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा-इन नक्षत्रों में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र-इन वारों में औषधि निर्माण करना शुभ है।

4.25 मन्दिर निर्माण का मुहूर्त—

पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, पुनर्वसु, विशाखा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा और रोहिणी नक्षत्रों में; सोम, बुध, गुरु, शुक्र और रविवारों में एवं द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथियों में मन्दिर–निर्माण करना शुभ है।

4.25.1 मन्दिर निर्माण के मुहूर्त का चक्र

मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, पौष (मतान्तर से)
नक्षत्र	पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, पुनर्वसु, विशाखा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, रोहिणी
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र, रवि
तिथि	2/3/5/7/11/12/13

4.25.2 प्रतिमा निर्माण का मुहुर्त—पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, मृगशिरा, रेवती और अनुराधा–इन नक्षत्रों में; सोम, गुरु और शुक्र इन वारों में एवं द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी इन तिथियों में प्रतिमा निर्माण करना शुभ है।

4.25.3 प्रतिष्ठा मुहूर्त—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों में; सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और पंचमी इन तिथियों में प्रतिष्ठा करना शुभ है। प्रतिष्ठा के लिए स्थिरसंज्ञक राशियाँ लग्न के लिए शुभ बताई गई है।

4.25.4 प्रतिष्ठा मुहूर्त का चक्र

समय	उत्तरायण में; बृहस्पति, शुक्र और मंगल के बलवान् होने पर
तिथि	शुक्लपक्ष की 1/2/5/10/13/15 और कृष्णपक्ष की 1/2/5 मतान्तर से शुक्लपक्ष की 7/11
नक्षत्र	पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, रेवती, रोहिणी, अश्विनी, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा पुनर्वसु। मतान्तर से चित्रा, स्वाति, भरणी, मूल (आवश्यक होने पर)
वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
लग्नशुद्धि	2/3/5/6/8/9/11/12 लग्न राशियाँ–शुभग्रह 1/4/7/5/9/10 में शुभ हैं और पापग्रह 3/6/11 में शुभ हैं। अष्टम में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

4.25.5 मन्त्र सिद्ध करने का मुहूर्त—उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिरा नक्षत्रों में; रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र वारों में, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा तिथियों में यन्त्र-मन्त्र सिद्ध करना शुभ होता है।

4.25.6 सर्वारम्भ मुहूर्त—लग्न से बारहवाँ और आठवाँ स्थान शुद्ध हो और कोई ग्रह नहीं हो तथा जन्मलग्न व जन्मराशि से तीसरा, छठा, दसवाँ, ग्यारहवाँ लग्न हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभग्रह युक्त हों; चन्द्रमा जन्मलग्न व जन्मराशि से तीसरे, छठे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में हो तो सभी कार्य प्रारम्भ करना शुभ होता है।

4.25.7 मण्डप बनाने का मुहूर्त—सोम, बुध, गुरु और शुक्र वारों 2/5/7/11/12/13 तिथियों में एवं मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में मण्डप बनाना शुभ है।

4.25.8 होमाहुति का मुहूर्त—सूर्य जिस नक्षत्र में स्थित हो उसमें तीन-तीन नक्षत्रों का एक-एक त्रिक होता है, ऐसे सत्ताईस नक्षत्रों के नौ त्रिक होते हैं। इनमें पहला सूर्य का, दूसरा बुध का, तीसरा शुक्र का, चौथा शनैश्चर का, पाँचवाँ चन्द्रमा का, छठा मंगल का, सातवाँ बृहस्पति का, आठवाँ राहु का और नौवाँ केतु का त्रिक होता है। होम के दिन का नक्षत्र जिसके त्रिक में पड़े उसी ग्रह के अनुसार फल समझना चाहिए। रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ग्रहों के त्रिक में हवन करना वर्जित है।

4.25.9 अग्निवास और उसका फल—शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अभीष्ट तिथि तक गिनने से जितनी संख्या हो उसमें एक और जोड़े; फिर रविवार से लेकर इष्टवार तक गिनने से जितनी संख्या हो, उसको भी उसी में जोड़े। जोड़ने से जो राशि आए उसमें 4 का भाग दे। यदि तीन अथवा शून्य शेष रहे तो अग्नि का वास पृथ्वी में होता है, यह होम करने के लिए उत्तम होता है। एक शेष में अग्नि का वास आकाश में होता है, इसका फल प्राणों को नाश करने वाला बताया गया है और दो शेष में अग्नि का वास पाताल में होता है, इसका फल अर्थनाशक कहा गया है।

4.26 धार्मिक कार्यों में मुहूर्त की अनिवार्यता क्यों ?—

मानव जीवन की सभी क्रियायें व्यवहारकाल के निमित्त से होती है। यह व्यवहार काल—"**मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयोनृलोके तत्कृत कालविभागः**" सूत्र के अनुसार होता है। यह कालविभाग शुभ रूप और अशुभ रूप भी होता है। शुभ काल में किये गये कार्य सिद्धि को प्राप्त होते हैं और अशुभ काल में किये गये कार्यों में विघ्न-बाधा होती है। सभी कार्यों में शुभाशुभ काल का निर्धारण करना मुहूर्त है। इसे ज्योतिष शास्त्र से जाना जाता है।

4.27 ज्योतिषशास्त्र और उसका उद्देश्य—

जैनागम की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र का विकास विद्यानुवादांग और परिकर्म से हुआ है। ज्योतिष शास्त्र का नाम ज्योति शास्त्र भी है अर्थात् प्रकाश देने वाला या प्रकाश के संबंध में बतलाने वाला शास्त्र, इससे संसार का मर्म, जीवन-मरण का रहस्य और सुख-दुःख के संबंध में पूर्ण प्रकाश मिलता है। सुख और दुःख के भाव ही मानव जीवन को गतिशील बनाते हैं, इन भावों की उत्पत्ति बाह्य और आंतरिक जगत की संवेदनाओं से होती है इसलिए मानवजीवन अनेक समस्याओं का समूह और उन्नति, अवनति, आत्मविकास और हास के विभिन्न रहस्यों का पिटारा है। ज्योतिषशास्त्र आत्मिक, अनात्मिक भावों, रहस्यों को व्यक्त करने के साथ-साथ इनका प्रत्यक्षीकरण कर देता है। यह जीवन का विश्लेषण करने वाला शास्त्र है। प्राकृतिक पदार्थों के अणु-अणु का परिशीलन एवं विश्लेषण करना भी इस शास्त्र का लक्ष्य है—सांसारिक समस्त व्यापार दिक्, देश और काल इन तीन से भी परिचालित है। इन तीन के ज्ञान बिना व्यवहारपरक जीवन की कोई भी क्रिया सम्यक् प्रकार से सम्पादित नहीं की जा सकती है अतः सुचारू रूप से दैनिक कार्यों का संचालन करना ज्योतिष का व्यवहारिक उद्देश्य है। सूर्यादि आकाशीय पिंडों की गति किरण, प्रकृति का अध्ययन करके उसका प्रभाव प्राणी जगत पर क्या पड़ता है आदि का वर्णन ज्योतिषशास्त्र में होता है।

4.27.1 जैनाचार्यों ने ज्योतिष को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया है :

(1) गणित सिद्धान्त (2) फलित सिद्धान्त।

4.27.2 गणित सिद्धान्त—इसमें ग्रहों की गति, स्थिति, वक्री, मार्गी, मध्यफल, मन्दफल, सूक्ष्मफल, कुज्या, त्रिज्या, बाण, चाप, परिधि, फल एवं केन्द्रफल का प्रतिपादन किया है। आकाशमण्डल में विकीर्णित तारिकाओं का ग्रहों के साथ कब, कैसा संबंध होता है इसका ज्ञान भी गणित प्रक्रिया से ही संभव है। जैनाचार्यों ने भौगोलिक ग्रंथों में

ज्योतिर्लोकाधिकार नामक एक पृथक अधिकार देकर ज्योतिषी देवों के रूप, रंग, आकृति एवं भ्रमण मार्ग आदि का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त पाटीगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, गोलीय रेखागणित, चापीय एवं वक्रीय त्रिकोणमिति, प्रतिभा गणित, श्रृंगोन्नति गणित, पंचांग निर्माण गणित, जन्मपत्र निर्माणगणित, ग्रहयुति, उदयास्त संबंधी गणित का निरूपण भी इसके अन्तर्गत किया गया है।

4.27.3 फलित सिद्धांत—इसमें तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, ग्रह स्वरूप, ग्रहयोग, जातक के जन्मकालीन ग्रहों का फल, मुहूर्त, समयशुद्धि, दिक्शुद्धि, देशशुद्धि आदि का परिज्ञान किया जाता है। इस विषय को प्रतिपादन करने वाले अनेक ग्रंथ हैं, यथा—वर्ष प्रबोध, ग्रहभाव प्रकाश, बड़ा जातक, प्रश्न शतक, प्रश्न चतुर्विंशतिका, लग्न विचार, ज्योतिष रत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना जैनाचार्यों ने की है। फलित विषय के विस्तार में अष्टांगनिमित्त भी शामिल है।

4.28 मुहूर्त—

एक दिन रात में 30 मुहूर्त होते हैं। एक मुहूर्त में 3773 उच्छ्वास होते हैं।

एक परमाणु के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर मन्दगति से जाने का काल एक समय है।

असंख्यात समय की = एक आवली,

संख्यात आवली = 2880/3773 सेकेन्ड = एक उच्छ्वास

7 उछ्वास = 5 (185/539) सेकेन्ड = एक स्तोक

7 स्तोक = 37 (31/77) सेकेन्ड = एक लव

38-1/2 लव = 24 मिनट = एक घड़ी

2 घड़ी = एक मुहूर्त

30 मुहूर्त = एक दिन रात

ग्रह और नक्षत्रों की गति एवं स्थिति के अनुसार शुभ-अशुभ समय की गणना की जाती है।

धवला पुस्तक 4 पृष्ठ 314 पर **मुहूर्तों के नाम** इस प्रकार हैं—

(1) रौद्र (2) श्वेत (3) मैत्र (4) सारभट (5) दैत्य (6) वैशेचन (7) वैश्वदेव (8) अभिजित (9) रोहण (10) बल (11) विजय (12) नैऋत्य (13) वारुण (14) अर्यनम् (15) भाग्य, ये पन्द्रह मुहूर्त दिन में होते हैं।

(1) सावित्र (2) धुर्य (3) दात्रक (4) यम (5) वायु (6) हुताशन (7) भानु (8) वैजयन्त (9) सिद्धार्थ (10) सिद्धसेन (11) विक्षोम (12) योग्य (13) पुष्पदन्त (14) सुगन्धर्व (15) अरूण ये पन्द्रह मुहूर्त रात्रि में माने गये हैं। तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, चन्द्रमास, सूर्यमास, ग्रहण, अयन, ग्रहों के उदय-अस्त, दैनिक लग्नादि का विचार कर जो श्रेष्ठ समय निकाला जाता है वह मुहूर्त कहा जाता है। मुहूर्त का प्रभाव कार्यकलापों पर पड़ता है। कार्यसिद्धि के लिए मुहूर्त सबल कारण बनता है। मुहूर्त में किये गये कार्यों में उत्साह, लाभ एवं सफलता मिलती है। सदोष मुहूर्त में किये गये कार्य में विघ्नबाधा, असफलता, कष्ट आदि प्राप्त होते हैं।

4.28.1 मुहूर्त शोधन—शुभ मुहूर्त देखने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए ;

(1) वार—सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार आदि शुभ वार हों।

(2) तिथि—तिथि शुभ हो। क्षय एवं अधिक तिथि न हो।

(3) नक्षत्र—शुभ नक्षत्र हो।

(4) मास—मलमास, अधिकमास, क्षयमास न हो, शुभ मास हो।

(5) पक्ष—शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष की पंचमी तक शुक्ल पक्ष होता है। 13 दिन का पक्ष न हो।

(6) अयन—उत्तरायण, दक्षिणायन का विचार करें।

(7) अग्निवास—हवन के समय अग्निवास का विचार जरूरी है।

4.28.2 मुहूर्त की अनिवार्यता—आत्मा के साथ कार्मण और तैजस शरीर का अनादिकाल से संबंध है। औदारिक शरीर के साथ ये भी मानव के बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्त्व को प्रभावित करते हैं। मानव के तैजसिक, मानसिक और पौद्गलिक परिवेश को ग्रह, नक्षत्र प्रभावित करते हैं। मानव इन सबसे जुड़ा हुआ है अतः इनसे प्रभावित होता है और अपने भाव, विचार और क्रिया द्वारा इन्हें प्रभावित करता है। शरीर प्रमाण रहने वाला आत्मा अपनी चैतन्य क्रियाओं द्वारा अपना कार्य करता है। मनुष्य के इस व्यक्तित्त्व को बाह्य और आंतरिक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(1) अपने पूर्व जन्म के निश्चित प्रकार के विचार, भाव और क्रियाओं की ओर झुकाव प्राप्त करता है तथा इस जीवन के अनुभवों के द्वारा अपने व्यक्तित्त्व का विकास करता है।

(2) अपने अनेक बाह्य व्यक्तियों की स्मृतियों, अनुभवों और प्रवृत्तियों का संश्लेषण अपने में रखता है।

बाह्य और आंतरिक इन दोनों व्यक्तित्त्व संबंधी चेतना के ज्योतिष में विचार, अनुभव और क्रिया ये तीन रूप माने गये हैं। इससे भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीनों में जगत का संचालन होता है।

ग्रह, नक्षत्र आदि के परिभ्रमण, परिवर्तन एवं संयोग बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्त्व को प्रभावित करते हैं अतः शुभ ग्रह, शुभ नक्षत्र एवं शुभ दिन आदि का निर्णय करके शुभ मुहूर्त का निर्धारण करके कार्य करना चाहिए।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तु की आंतरिक रचना सौर मण्डल से मिलती-जुलती बताते हैं। प्रत्येक पदार्थ की सूक्ष्म रचना का आधार परमाणु है, यह परमाणु सौर जगत के समान आकार-प्रकार वाला है। इसके मध्य में एक धन विद्युत का बिन्दु है जिसे केन्द्र कहते हैं। इसका व्यास एक इंच के 10 लाखवें भाग का भी दस लाखवां भाग बताया गया है। परमाणु के जीवन का सार इसी केन्द्र में बसता है। इस केन्द्र के चारों ओर अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं और ये केन्द्र वाले धन विद्युत्कण के साथ मिलने का उपक्रम करते रहते हैं, इस प्रकार के अनंत परमाणुओं के समाहार का एकत्रस्वरूप हमारा शरीर है। सौर जगत में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एवं तारे आदि का भ्रमण करने का नियम जो कार्य करता है वे ही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित ग्रहों के भ्रमण करने में भी काम करते हैं। ये व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक रूप से भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिकता को प्रभावित करते हैं।

4.29 ग्रह और उनका प्रभाव—

(1) गुरु—बाह्य व्यक्तित्व के प्रथम रूप का प्रतीक है। यह प्राणी के शरीर का रक्त संचालन और उसमें रहने वाले कीटाणुओं की चेतना से संबंध रखता है। इससे व्यक्ति के बाह्य में व्यापार, कार्य और वे स्थान और व्यक्ति जिनका संबंध धर्म एवं कानून से है, इसका विचार किया जाता है। यह मनोभाव, उदारता, शक्ति, भक्ति, व्यवस्था, बुद्धि आदि का प्रतिनिधित्व होता है।

(2) मंगल—इससे इन्द्रिय ज्ञान, आनंदेच्छा, उत्तेजना, संवेदनाजन्य आवेग आदि का विचार किया जाता है। साहस, बहादुरी, दृढ़ता, आत्मविश्वास आदि विचारों का विवेचन होता है।

(3) चन्द्रमा—मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनशील भावों का प्रतिनिधित्व होता है। यह संवेदना, आंतरिक इच्छा, कल्पना सतर्कता आदि पर प्रभाव डालता है।

(4) शुक्र—निःस्वार्थ प्रेम, भ्रातृत्व भावना एवं सूक्ष्म चेतनाओं को प्रभावित करते हैं। इससे सौन्दर्य ज्ञान, आराम, आनंद विशेष, प्रेम, स्वच्छता, कार्य क्षमता आदि का विचार करते हैं।

(5) बुध—यह आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है। इसके द्वारा निर्णयात्मक बुद्धि, वस्तु परीक्षण, समझ, बुद्धिमानी, गंभीरता आदि का विचार किया जाता है। यह स्मरण शक्ति, खण्डन-मण्डन शक्ति, तर्क आदि का द्योतक है।

(6) सूर्य—यह पूर्ण इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, सदाचार, जीवन की उन्नति एवं विवाह का द्योतन करता है। यह प्रभुता, ऐश्वर्य, प्रेम, उदारता महत्त्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण, विचार और भावनाओं के संतुलन का प्रतीक है।

(7) शनि–यह जीवन के विचार कार्यों, विचार स्वातंत्र्य, नायकत्व, मननशीलता, कार्यपरायणता, आत्मसंयम, धैर्य, दृढ़ता, सतर्कता आदि का प्रतीक है।

इस प्रकार सौर जगत मानव जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करता है।

जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है उनकी किरणें अमृतमय, जिनमें रजोगुण अधिक रहता है उनकी उभयगुण मिश्रित किरणें, जिनमें तमोगुण अधिक रहता है उनकी विषमय किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है उनकी गुणहीन किरणें मानी गई हैं। ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है।

आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सौम्य ग्रह अपनी गति से जहाँ-जहाँ जाते हैं उनकी किरणें भूमण्डल के उन-उन प्रदेशों पर पड़कर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य, बुद्धि आदि पर अपना सौम्य प्रभाव डालती हैं। विषम किरणों वाले क्रूर ग्रह बुरा प्रभाव डालते हैं। मिश्रित रश्मि ग्रहों के प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मियों के ग्रहों का प्रभाव अकिंचित्कर होता है।

4.30 ग्रहों के अनुसार जातक का स्वभाव—

जन्म के समय जिन-जिन रश्मि वाले ग्रहों की प्रधानता होती है जातक का स्वभाव वैसा ही होता है।

अमृतमयी रश्मियों के प्रभाव में जन्म लेने वाला—पूर्ण बुद्धि, सत्यवादी अप्रमादी, स्वाध्यायशील, जितेन्द्रीय एवं सच्चरित्र होता है।

रजोगुणाधिक्य मिश्रित रश्मियों के प्रभाव में जन्म लेने वाला—मध्य बुद्धि, तेजस्वी, शूरवीर, प्रतापी एवं निर्भय होता है।

अल्पगुण वाली रश्मियों के प्रभाव में जन्म लेने वाला—उदासीन बुद्धि, व्यवसायकुशल, पुरुषार्थी एवं सम्पत्ति वाला होता है।

तमोगुणाधिक्य रश्मियों के प्रभाव में जन्म लेने वाला—विवेकशून्य, दुर्बुद्धि, व्यसनी, सेवावृत्ति एवं हीनाचरण वाले होते हैं। ज्योतिष की यह व्यवस्था वंश परम्परा से भिन्न है। हीन वर्ण में भी जन्मा व्यक्ति ग्रहों की रश्मियों में प्रभाव से उच्च वर्ण रूप कार्य करता है।

मानव जिस नक्षत्र, ग्रह, वातावरण के तत्व प्रभाव में उत्पन्न एवं पोषित होता है उसी तत्त्व की विशेषता रहती है। ग्रहों की स्थिति की विलक्षणता के कारण अन्य तत्त्वों का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता है। देशकृत ग्रहों का संस्कार इस बात का द्योतक है कि स्थान विशेष के वातावरण में उत्पन्न एवं पुष्ट होने वाला प्राणी उस स्थान पर पड़ने वाली ग्रह रश्मियों को अपनी निजी विशेषता के कारण अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्में व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति एवं विलक्षण शरीर अवयव वाला होता है। ग्रह रश्मियों का प्रभाव केवल मानव पर ही नहीं बल्कि वन्य, स्थलज एवं उद्भिज्ज आदि पर भी अवश्य पड़ता है, कर्मोदय भी द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा से उदय में आता है।

4.31 ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त—

समय विधान की जो मर्मप्रधान व्यवस्था है उसका रहस्य इतना ही है कि गगनगामी ग्रह, नक्षत्रों की अमृत-विष एवं अन्य उभय गुण वाली रश्मियों का प्रभाव सदा एक सा नहीं रहता है। गति की विलक्षणता के कारण किसी समय में

ऐसे नक्षत्र या ग्रहों का वातावरण रहता है जो अपने गुण और तत्त्वों की विशेषता के कारण किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए उपयुक्त हो सकते हैं अतएव विभिन्न कार्यों के लिए मुहूर्त शोधन अन्ध श्रद्धा या विश्वास की चीज नहीं किन्तु विज्ञानसम्मत रहस्यपूर्ण है, इसके लिए कुशल परीक्षण होना आवश्यक है।

4.31.1 क्या ग्रह सुख-दुःखकारक हैं—ग्रह फलाफल के नियामक नहीं किन्तु सूचक हैं। ग्रह किसी को सुख-दुःख नहीं देते बल्कि आने वाले सुख-दुःख की सूचना देते हैं। विपरीत वातावरण के होने पर रश्मियों के प्रभाव को अन्यथा भी किया जा सकता है। ग्रहों के द्वारा प्राप्त शुभाशुभ सूचना, ग्रहों की गति एवं उनकी विष और अमृतरश्मियों से मिलती है। इस सूचना कार्यादि का सदुपयोग किया जाए तो उसको शुभ रूप किया जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र विधायक नहीं, सूचक है। तिथियों की नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा तथा पक्षरन्ध्र, मास शून्य, सिद्धा, दग्धा, विष और हुताशन संज्ञा है। इसी प्रकार नक्षत्रों की पंचक, मूल, ध्रुव, चर, उग्र, मिश्र, लघु, मृदु, तीक्ष्ण, अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यङ्मुख, दग्ध, मास शून्य आदि संज्ञायें हैं। ये अपने नाम के अनुसार स्वभाव वाले होते हैं। इनके समय में इनकी संज्ञानुसार कार्य सिद्ध होते हैं।

ग्रहों के स्वभाव और गुणों के द्वारा अन्वय, व्यतिरेक रूप कार्य-कारणजन्य अनुमान से अपने भावी सुख-दुःख प्रभृति को पहले से जानकर अपने कार्यों के प्रति सजग रहना चाहिए, जिससे आगामी दुःख को सुख रूप में परिणत किया जा सके। यदि ग्रहों का फल अनिवार्य रूप से भोगना ही पड़े और पुरुषार्थ को व्यर्थ माने तो जीवन में मुक्ति लाभ नहीं हो सकेगा। भविष्य को अवगत कर अपने कर्त्तव्यों द्वारा अपने अनुकूल बनाने के लिए ज्योतिष प्रेरणा देता है। यही प्रेरणा प्राणियों के लिए दुःखविघातक और पुरुषार्थसाधक होती है।

4.32 धार्मिक कार्यों में मुहूर्त—

धार्मिक कार्य पुण्यसंचय, भावविशुद्धि कर्म निर्जरा आदि के प्रमुख साधन होते हैं। इनमें मन, वचन, काय की शुद्धि प्रशस्तता एवं अनुकूलता अनिवार्य होती है। इसके लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक होता है अतः ग्रह, नक्षत्रों की गति, स्वभाव, स्थिति आदि का विचार कर उनके अनुकूल समय का चयन किया जाता है जिससे धार्मिक कार्यों का सानंद संचालन एवं समापन होता है।

धार्मिक कार्य को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) श्रमण के कार्य में मुहूर्त

(2) श्रावक के कार्यों में मुहूर्त

4.32.1 श्रमण के कार्य में मुहूर्त—महाव्रती की चर्या में मुहूर्त का विशद वर्णन प्राप्त है। दीक्षा संस्कार से लेकर समाधिमरण और अन्तिम संस्कार तक अनेक प्रकार से मुहूर्तों के अनुसार किये जाते हैं।

दीक्षा मूहूर्त, केशलौंच मुहूर्त, विहार मुहूर्त, चातुर्मास स्थापन एवं निष्ठापन मुहूर्त, स्वाध्याय मुहूर्त, ग्रंथ लेखन मुहूर्त, समाधिमरण-सल्लेखना ग्रहण मुहूर्त, अंतिम संस्कार मुहूर्त आदि।

4.32.2 दीक्षा मूहूर्त—अश्विनी, रोहिणी, रेवती, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा इन नक्षत्रों में, रविवार, सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार इन दिनों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन तिथियों में, चैत्र, बैसाख, कार्तिक, मार्गशीर्ष माघ एवं फाल्गुन महीनों में शुभ योग एवं शुभ लग्न में दीक्षा देने से शुभ होता है। साधक चारित्र में दृढ़ रहता है।

आर्यिका दीक्षा, क्षुल्लिका दीक्षा आदि के भी मूहूर्तों का उल्लेख प्राप्त है।

4.32.3 केशलौंच मुहूर्त—भरणी, कृतिका, मघा, विशाखा नक्षत्र छोड़कर, रिक्त तिथियाँ छोड़कर एवं मंगलवार और शनिवार छोड़कर शेष दिनों में केशलोंच करना शुभ है।

4.32.4 विहार मुहूर्त—अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्र, 2, 3, 5, 7, 10, 11, 13 तिथियों एवं सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार शुभ दिन हैं। यात्रा अर्थात् विहार में वारशूल, नक्षत्रशूल,

चन्द्रवास, योगनी, समयशूल आदि देखकर चलना चाहिए।

चातुर्मास स्थापन एवं निष्ठापन मुहूर्त–आषाढ़ मास की चतुर्दशी से श्रावण कृष्णा पंचमी तक शुभ नक्षत्र, शुभ तिथि, दिन एवं शुभ लग्न चातुर्मास स्थापना एवं कार्तिक शुक्ला द्वितीया से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक शुभ मुहूर्त में चातुर्मास निष्ठापन करें।

4.33 ग्रंथ लेखन मुहूर्त—

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पुष्य, रेवती, अश्विनी, मृगशिरा धनिष्ठा, शतभिषा नक्षत्रों में धर्म ग्रंथ लिखना प्रारम्भ करें।

4.33.1 स्वाध्याय मुहूर्त—पर्व के दिनों में, नंदीश्वर के श्रेष्ठ दिनों में, सूर्य ग्रहण-चन्द्र ग्रहण के समय सिद्धान्त ग्रंथों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अष्टमी को स्वाध्याय करने से गुरु और शिष्य का वियोग होता है, पूर्णमासी के दिन किया गया अध्ययन कलह, चतुर्दशी और अमावस्या के दिन किया गया अध्ययन विघ्न को करता है। कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या के दिन अध्ययन करने से विद्या और उपवास विधि का विनाश होता है।

मध्याह्न में किया गया अध्ययन जिनरूप को नष्ट करता है, दोनों संध्या कालों का अध्ययन व्याधि को करता है तथा मध्यरात्रि में अध्ययन से द्वेष उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त तीव्र दुःख से युक्त और रोते हुए प्राणियों को देखने या समीप में होने पर मेघों की गर्जना व बिजली के चमकने पर और अतिवृष्टि के साथ उल्कापात होने पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अंगपूर्व, वस्तुप्राभृत रूप सूत्र, गणधर कथित, श्रुतकेवली कथित, अभिन्नदशपूर्व कथित ये चार प्रकार के सूत्र काल शुद्धि के बिना नहीं पढ़ना चाहिए। सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओं का स्वरूप कहने वाला ग्रंथ, सत्रह प्रकार के मरण को वर्णन करने वाला ग्रंथ, पंच संग्रह, स्तोत्र ग्रंथ, आहारादि के त्याग का उपदेश करने वाला ग्रंथ, सामायिक आदि आवश्यकों को कहने वाला ग्रंथ, महापुरुषों के चरित्र को वर्णन करने वाला ग्रंथ कालशुद्धि आदि न होने पर भी पढ़ना चाहिए।

4.34 सल्लेखना ग्रहण मुहूर्त—

समाधिमरण के समय मूहूर्त अवश्य देखना चाहिए। इससे समाधि सानंद एवं सफलतापूर्वक सम्पन्न होती है, आचार्यों ने इसका विशद वर्णन किया है। अश्विनी नक्षत्र के समय क्षपक ने संस्तर ग्रहण किया तो स्वाती नक्षत्र में उसका समाधिमरण होगा, भरणी नक्षत्र वाले का रेवती में, कृतिका वाले का उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पर मरण होगा। रोहिणी नक्षत्र वाले का श्रवण में, मृगशिरा का पूर्वाफाल्गुनी में, आर्द्रा का आर्द्रा में, पुनर्वसु का अश्विनी में, पुष्य का मृगशिरा में, आश्लेषा का चित्रा में, स्वाती का रेवती में, विशाखा का आश्लेषा में, अनुराधा का पूर्वाभाद्रपद में, मूल का ज्येष्ठा में, पूर्वाषाढ़ा का मृगशिर में, उत्तराषाढ़ा का भाद्रपद में, श्रवण का उत्तराभाद्रपद में, धनिष्ठा का धनिष्ठा में, शतभिषा का ज्येष्ठा में, पूर्वाभाद्रपद का पुनर्वसु में, उत्तराभाद्रपद का, उसी दिन एवं रेवती नक्षत्र पर संस्तर ग्रहण करने पर मघा नक्षत्र में मरण होगा और मूल में सल्लेखना ग्रहण करने पर ज्येष्ठा नक्षत्र में मरण होता है। रोग उत्पन्न के नक्षत्र ज्ञान से रोग समाप्ति का भी ज्ञान होता है यदि आश्लेषा नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो अधिक दिन तक, मघा में उत्पन्न हो तो एक माह तक, पूर्वाफाल्गुनी में उत्पन्न हो तो सात दिन तक और उत्तराफाल्गुनी में रोग हो तो इक्कीस दिन तक रोगी बीमार रहता है। अश्विनी में हो तो 10 दिन, भरणी में बहुत दिन, कृतिका में 7 दिन, रोहिणी में 5 दिन, मृगशिरा में 10 दिन, आर्द्रा में अधिक दिन, पुनर्वसु में 15 दिन, पुष्य में 10 दिन, हस्त में 11 दिन, चित्रा में 1 दिन, स्वाती में 7 दिन, विशाखा में 10 दिन, अनुराधा में 20 दिन, ज्येष्ठा में एक दिन, मूल में 24 दिन, पूर्वाषाढ़ा में एक दिन, उत्तराषाढ़ा में 10 दिन, श्रवण में 5 दिन, धनिष्ठा में 15 दिन, शतभिषा में 20 दिन, पूर्वाभाद्रपद में बहुत दिन, उत्तराभाद्रपद में, 20 दिन और रेवती नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो 21 दिन तक रोगी पीड़ित रहता है।

4.34.1 अन्तिम संस्कार के समय मुहूर्त दर्शन—आराधनायुक्त क्षपक के मरण से संघ पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह जानने के लिए किस नक्षत्र में मरण हुआ है यह जानना आवश्यक है। अल्प नक्षत्र में यदि क्षपक का मरण होता है तो सबका कल्याण होता है, यदि मध्यम नक्षत्र में मरण होता है तो शेष साधुओं में से एक का मरण होता है, यदि महानक्षत्र में मरण होता है तो दो का मरण होता है, जो पन्द्रह मुहूर्त तक रहते हैं वे शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाती, अश्लेषा, ज्येष्ठा अल्प नक्षत्र हैं जो तीस मुहूर्त तक रहते हैं, ऐसे अश्विनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद और रेवती, विशाखा ये महानक्षत्र है। संघ की रक्षा के लिए अशुभ मुहूर्त का निराकरण करना उचित है।

4.35 श्रावक के कार्यों में मुहूर्त—

श्रावक निरन्तर धार्मिक कार्य करता है, उसके लिए ग्रंथों में अनेक मुहूर्त दिये गये हैं। श्रावक धार्मिक कार्यों द्वारा अपने परिणाम विशुद्ध करता है उसके लिए अनुकूल वातावरण होना आवश्यक है। इन कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं होना चाहिए जिससे अशुभ कर्मों का बंध न हो।

4.35.1 श्रावक के धार्मिक कार्यों के अनेक मुहूर्त होते हैं–

शान्ति कर्म, पौष्टिक, कर्म, विधान, अनुष्ठान, प्रतिष्ठा, मंदिर निर्माण, प्रतिमा निर्माण एवं जीर्णोद्धार मुहूर्त।

(1) शान्ति कर्म एवं पौष्टिक कर्म—इन कार्यों के लिए शुभ, दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ तिथि, शुभ चन्द्रमा एवं शुभ योग अवश्य देख लेना चाहिए जिससे कार्य निर्विघ्न सानंद सम्पन्न हो।

(2) विधान—विधान प्रारंभ करने के पूर्व ध्वजारोहण का मुहूर्त और अन्त में अग्निवास देखना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(3) अनुष्ठान—इसमें विधि-विधानपूर्वक जाप एवं हवन किया जाता है इसके लिए शुभ दिन, नक्षत्र, तिथि एवं शुभ योग अवश्य देखना चाहिए। हवन के लिए अग्निवास मुहूर्त का देखना अत्यन्त अनिवार्य होता है।

(4) प्रतिष्ठा—जैनदर्शन में प्रतिष्ठा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इनके अनेक स्वतंत्र ग्रंथ हैं। सभी आचार्यों/ लेखकों ने सर्वप्रथम शुद्ध मुहूर्त का कथन किया है। प्रतिष्ठा के अनेक भेद हैं—पंचकल्याणक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, मंदिर प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, मनस्तम्भ प्रतिष्ठा, जिनवाणी प्रतिष्ठा, मंत्र प्रतिष्ठा, माला प्रतिष्ठा आदि। इन सबके मुहूर्त प्रतिष्ठा ग्रंथों में उल्लिखित हैं। वर्षाकाल के बिना सर्वकाल सराहने योग्य है, उस समय राजा, मंत्री, आचार्य, प्रतिष्ठापक की मृत्यु न हो और रोग, महामारी, शत्रुभय एवं पीड़ा नहीं हो, भूकम्प, दिग्दाह, स्वचक्र, परचक्र का भय, लुटेरों का भय एवं उपद्रव के समय प्रतिष्ठा नहीं करना चाहिए।

4.35.2 मंदिर निर्माण मुहूर्त—मार्गशीर्ष आदि पाँच शुभ महीनों में और उत्तरायण सूर्य में व्यतिपातादि योग रहित शुभ दिन में जिनालय मंदिर प्रारंभ करें। अधोमुख नक्षत्र में नींव खोदें, ऊर्ध्वमुख नक्षत्र में शिलान्यास करें, तिर्यङ्मुख नक्षत्र में कपाटदान और मृदु नक्षत्र में गृह प्रवेश करें।

4.35.3 प्रतिमा निर्माण मुहूर्त—तीनों उत्तरा, पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा नक्षत्रों एवं सोम, गुरु, शुक्र दिनों में प्रतिमा निर्माण श्रेष्ठ है।

प्रतिष्ठा मुहूर्त—पाँच प्रकार की तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण से शुद्ध दिन में लग्न शुद्धि प्रमुख है। मंगल और शनिवार छोड़कर सभी वार संस्थापन में श्रेष्ठ हैं। अमावस्या के बिना अमृतसिद्धि योग में, रिक्ता तिथि में योगशुद्धि हो तो कार्य शुभ करें, पूर्णिमा और सिद्धयोग भी होय तब भी एकादशी वर्जित है। जिस तिथि में जिनेन्द्र का कल्याण हो वह तिथि कल्याणक हेतु श्रेष्ठ है।

उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, रेवती इनमें शुभयोग हो तो ग्राह्य है और मघा, स्वाती, भरणी, मूल भी कदाचित् आवश्यक कार्य में अंगीकार किया है।

मंदिर प्रतिष्ठा, मानस्तंभ प्रतिष्ठा में भी यही मुहूर्त ग्राह्य हैं। श्रावकों के अन्य गृहस्थी संबंधी अनेक मुहूर्तों का कथन ज्योतिष ग्रंथों में मिलता है। इससे स्पष्ट है कि श्रावक और श्रमण को बिना मुहूर्त कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रायः सभी प्रतिष्ठा ग्रंथों में मुहूर्त का कथन अवश्य किया है।

4.35.4 व्रतग्रहण मुहूर्त—मानव जीवन के उत्थान का प्रथम सोपान व्रत ग्रहण करना है, इसके लिए भी आचार्यों ने दिन, तिथि, माह, नक्षत्र आदि को निश्चित कर व्रत करने का निर्देश दिया है।

(1) दिन की अपेक्षा वाले व्रत—दिन के आधार से किये जाने वाले व्रत, जैसे—दुःखहरण धर्मचक्र, जिनगुण सम्पत्ति, सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुति कल्याणक, चन्द्रकल्याणक, रविव्रत आदि।

(2) तिथि की अपेक्षा वाले व्रत—तिथि के आधार से किये जाने वाले व्रत, जैसे—सुखचिन्तामणि भावना, पंचविंशति भावना, णमोकार पञ्चविंशति भावना आदि।

(3) दैवसिक व्रत—जो दिन में किये जाते हैं जैसे—रत्नावली, मुक्तावली, कनकावली आदि।

(4) नैशिक व्रत—जो रात्रि में किये जाते हैं जैसे—आकाश पंचमी, नक्षत्र माला, जिनरात्रि आदि।

(5) मासावधि वाले व्रत—एक माह की अवधि वाले व्रत जैसे—षोडशकारण, मेघमाला आदि।

(6) नक्षत्र की अपेक्षा वाले व्रत—जो नक्षत्र के आधार से किये जाते हैं, जैसे—रोहणी व्रत आदि।

मुहूर्तों का शुभाशुभ समस्त मानव जीवन के प्रत्येक रहस्यों का विवेचन करता है और प्रतीकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उसे प्रकट करता है। जिस प्रकार दीपक अंधकार में रखी वस्तु को दिखलाता है उसी प्रकार ज्योति विज्ञान मानव के कार्यों का शुभाशुभ दिखलाता है। आकाशीय ग्रह नक्षत्रों की गति, स्थिति, उदय, अस्त का प्रभाव सभी दृश्य एवं अदृश्यमान पर पड़ता है। उसकी रश्मियों का प्रभाव शरीर, बुद्धि एवं मन पर पड़ता है अतः सभी धार्मिक एवं लौकिक कार्यों में शुभ ग्रह, नक्षत्रों का तिथि के साथ योग, लग्न आदि की शुद्धि का विचार किया जाता है जिससे शुभ ग्रहादिकों से मन प्रशस्त, बुद्धि विवेक विशुद्ध रहते हैं, जो कार्यसिद्धि एवं परिणामशुद्धि के कारक होते हैं। शुभ मुहूर्त के अभाव में मन और बुद्धि विकृत होने से अस्थिरता, क्रोधादि विकारी भाव के उत्पन्न होने से अशुभकर्म बंध एवं कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती है। इस कारण से आगम ग्रंथों में धार्मिक कार्यों के करने के लिए आचार्यों ने मुहूर्त में ही कार्य करने का निर्देश दिया है। ग्रह, नक्षत्र की स्थिति के प्रभाव में जन्म लेने वाले पर भी उसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है, वह उसी प्रकृति का सृजन करता है। तीर्थंकरादि महापुरुषों का जन्म भी शुभ लग्न एवं ग्रहों की शुभ स्थिति में हुआ है, जिसके कारण उनका जीवन उन्नतिशील बना है। भगवान आदिनाथ के जन्म के समय शुभयोग थे। हनुमान के जन्म समय ग्रह शुभ स्थिति में थे, उनका जीवन मंगलमय रहा तथा उन ग्रहों का प्रभाव उनके जीवन में भी रहा। देवों ने अयोध्या नगरी की रचना कर महाराजा नाभिराय और मरुदेवी को शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में पुण्याहवाचन करके प्रवेश कराया। देवों के द्वारा भी शुभ मुहूर्त आदि का उल्लेख प्रमाणित करता है कि किसी भी धार्मिक कार्यों में शुभ मुहूर्त अवश्य देखना चाहिए क्योंकि ग्रह नक्षत्र आदि की रश्मियों का प्रभाव प्रत्येक वस्तु पर पड़ता है। ये रश्मियाँ कार्य को प्रभावित करती हैं अतः शुभ योग अवश्य देखना चाहिए। अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि ग्रहों का प्रभाव भूमंडल पर व भूमण्डलवासियों पर पड़ता है। ग्रह, नक्षत्रों का वायुमण्डल में भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ने से ओले, वर्षा, बिजली, वज्रपात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि उल्कापातादि होते हैं। सूर्य, चन्द्रमा का प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है। सूर्य जब रोहणी नक्षत्र में आता है तब बहुत गर्मी होती है। मृगशिरा में आने से ठंडक आ जाती है। आर्द्रा में आने से वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। सूर्य उदय से रोगाणु उत्पन्न नहीं होते, अस्त होने पर पुनः उत्पन्न होने लगते हैं। चन्द्रमा के प्रभाव से पूर्णिमा एवं अमावस्या से समुद्र के अन्दर ज्वार-भाटा होते रहते हैं अतः न्याय, तर्क, वैज्ञानिक, ज्योतिष एवं आगमिक सिद्धांतों द्वारा यह सिद्ध होता है कि ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव भूमण्डल के प्रत्येक पदार्थ पर पड़ता है। ग्रह, नक्षत्र आदि की शुभाशुभ स्थिति का शुभाशुभ प्रभाव होता है इससे धार्मिक कार्यों में शुभ मुहूर्त अवश्य देखा जाता है जो हमारे भावों को विशुद्ध बनाकर कार्य सिद्धि में कारण बनता है।

4.36 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-जड़ और चेतन सभी प्रकार के पदार्थों पर किसका प्रभाव पड़ता है ?

(क) समय का ☐
(ख) खान-पान का ☐
(ग) स्वास्थ्य का ☐

प्रश्न 2-जैन मान्यता के अनुसार नामकर्म जन्मदिन से कितने दिन तक किया जा सकता है ?

(क) 27 दिन ☐
(ख) 45 दिन ☐
(ग) 40 दिन ☐

प्रश्न 3-कन्याओं का अन्नप्राशन किन मासों में शुभ रहता है ?

(क) पाँचवें, सातवें और नवें मास में ☐
(ख) छठे, आठवें और दसवें मास में ☐
(ग) तीसरे, चौथे, पाँचवें मास में ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-बालक के विद्यारंभ का क्या मुहूर्त बताया है ?

प्रश्न 2-गृहनिर्माण के लिए सप्त सकार योग कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 3-ज्योतिष शास्त्र का विकास कहाँ से हुआ तथा इसके उद्देश्य क्या हैं ?

प्रश्न 4-षट्खण्डागम की धवला पुस्तक चार में मुहूर्तों के कितने और कौन-कौन से नाम हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-धार्मिक कार्यों में मुहूर्त को कितने भागों में विभक्त किया है ? भेदों को बताते हुए श्रमण के कार्य में मुहूर्त का विस्तृत विवेचन कीजिए ?

इकाई–4 जैन वास्तु विद्या

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) वास्तु शिल्प

(2) वास्तु नियमानुसार भवन निर्माण की रूपरेखा

(3) जिनमंदिर निर्माण हेतु वास्तु नियम

(4) वास्तु से संबधित कतिपय प्रमुख ज्ञातव्य विषय

(5) जिन प्रतिमा और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

पाठ 1–वास्तु शिल्प

1.1 वास्तु शिल्प का अर्थ क्या है ?

मंदिर एवं मकान आदि के विधिवत् निर्माण का नाम है—वास्तु एवं शिल्प। वास्तु एवं शिल्प का अर्थ है, बनाने की कला। मकान या मंदिर को शास्त्रोक्त विधि से बनाने की कला का वर्णन जिनमें हो, वे वास्तु शिल्प संबंधी शास्त्र कहलाते हैं। यूँ तो प्राचीन काल से ही युग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने इस धरती पर मानव को कर्मभूमि की जीवन जीने की कला के अन्तर्गत षट् क्रियाएँ (असि–मसि–कृषि–विद्या–वाणिज्य एवं शिल्प) सिखाई थीं। उसमें शिल्पकला के अन्तर्गत मंदिर–मकान आदि सब कुछ बनाने की विधि थी, उसी विधि के अनुसार उनके निर्माण होते चले आ रहे हैं, फिर भी वर्तमान में वास्तु शिल्प का प्रचलन कुछ अधिक ही हो गया है।

1.1.1 जैनधर्म के अनुसार वास्तु का महत्त्व—

जैनाचार्यों ने प्रतिष्ठा ग्रंथों में जिनमंदिर के निर्माण का वर्णन करते हुए लिखा है—

जैन चैत्यालयं चैत्यमुतनिर्मापयन् शुभम्।
वांछन् स्वस्य नृपादेश्च, वास्तुशास्त्रं न लंघयेत्।।10।। (प्रतिष्ठा सारोद्धार)

अर्थात् अपना स्वयं का हित चाहने वाले को तथा साथ में राजा का कल्याण चाहने वाले को जिनमंदिर, जिनप्रतिमा और उनके उपकरण आदि वास्तुशास्त्रों के अनुसार ही बनाने चाहिए। वास्तुशास्त्र के नियमों का किंचित् भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए। जैसा कि कहा भी है—

प्रासादो मण्डपश्चैव, विना शास्त्रेण यः कृतः।
विपरीतं विभागेषु, योऽन्यथा विनिवेशयेत्।।
विपरीतं फलं तस्य, अरिष्टं तु प्रजायते।
आयु-र्नाशो मनस्तापः, पुत्र-नाशः कुलक्षयः।।

शास्त्रप्रमाण के बिना यदि देवालय, मण्डप, गृह, दुकान और तल भाग आदि का विभाग किया जाएगा तो उसका फल विपरीत ही मिलेगा, अरिष्ट होगा, असमय में आयु का नाश होगा, पुत्रनाश, कुल क्षय और मनस्ताप होगा। शिल्पशास्त्रियों ने कहा है कि—

अशास्त्रं मन्दिरं कृत्वा, प्रजा–राजा–गृहं तथा।
तद्गृह–मशुभं ज्ञेयं, श्रेयस्तत्र न विद्यते।।

अर्थात् शास्त्रविधि से रहित देवमन्दिर, राजा एवं प्रजा आदि किसी के भी घर बनाये जायेंगे तो वे गृह अशुभ ही जानना। उस घर में निवास करना श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

वसुनन्दी जैसे महान् आचार्यों ने और पं. आशाधरजी जैसे विद्वानों ने भी प्रतिष्ठाशास्त्र लिखे हैं, जिनमें यथाशक्य शिल्पविज्ञान, प्रतिमा विज्ञान एवं मुहूर्त आदि का विषय भी दिया गया है, आचारसारग्रंथ के कर्ता श्री वीरनन्दी स्वामी ने तो शिल्प संहिता नाम का पूरा ग्रंथ ही लिखा है।

1.1.2 मनुष्य द्वारा सुख-शांति एवं आत्मकल्याणार्थ जिनमंदिर का निर्माण—

मनुष्य अपनी सुख–शान्ति के प्रयोजन के लिए गृहों का और आत्मकल्याण की सिद्धि के लिए मन्दिरों का निर्माण कराते हैं।

शिल्पविज्ञों ने कहा भी है कि—

आलयं सर्व–भूतानां, विजयाय जितात्मनाम्।
धर्मार्थ–काम–मोक्षाणां, प्राप्ति–हेतुश्च कामदः।।

जिनालय प्राणी के आश्रय के स्थान हैं। जितेन्द्रिय महापुरुषों की कीर्ति तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के कारणभूत और सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आत्मशान्ति प्रदान करने में यही आयतन प्रमुख है, अतः इसका निर्माण कार्य और प्रतिष्ठा कार्य शास्त्रानुकूल ही होना चाहिए।

'वत्थुविज्जं' अर्थात् वास्तु विद्या का लेखन, पठन–पाठन एवं प्रकाशन अनेक विद्वानों ने और शिल्पज्ञों ने अनेक प्रकार से किया है। भवन के लिए भूमिचयन, शल्यशोधन, भवन निर्माण के दिशागत निर्देश, भवन निर्माण मुहूर्त, भवनों के प्रकार, अशुभ गृहों के लक्षण और फल, चौदह प्रकार के वेधों के लक्षण, गृहों का द्वार विवेचन, घर में कौन सा स्थान कहाँ है ? अर्थात् पानी, रसोई, बैठक, पूजास्थान, अध्ययन स्थान, तिजोरी स्थान कहाँ तथा किस दिशा में होने चाहिए, आदि विषय अनेक वास्तुशास्त्रों में बहुत अच्छे ढंग से समझाये गये हैं। घर ही नहीं व्यवसाय स्थल, दुकान तथा विद्यालय आदि को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है। साथ ही अशुभ ग्रहों के दोष के निवारण हेतु परिहार बताकर पीड़ित लोगों को एक नई आशा प्रदान की है।

देवपूजा के लिए जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, वीतरागी दिगम्बर गुरुओं के धर्मोपदेश हेतु प्रवचन हाल, स्वाध्याय के निमित्त सरस्वती भवन अपने निवास और मुनिराजों आदि के आहारदान के लिए उत्तम गृह का निर्माण गृहस्थ के कर्त्तव्यों में सम्मिलित है। अपने न्यायोपार्जित अर्थ के सदुपयोग और शुद्ध आहार–विहार के ये उत्कृष्ट साधन हैं।

मंदिर और भवन निर्माण में जो भूमि खनन एवं शिलान्यास की विधि शुभ मुहूर्त में की जाती है, उसका एक उदाहरण स्मरणीय है। अयोध्या तीर्थंकर ऋषभदेव आदि अनेक तीर्थंकरों की जन्मभूमि शाश्वत तीर्थ है। वहाँ मुगलकाल में एक दिगम्बर जैन मंदिर के स्थान में मस्जिद का निर्माण करा दिया गया था। कालान्तर में वहाँ के हाकिम के पास जाकर एक दिगम्बर जैन कार्यकर्ता ने निवेदन किया कि "इस मस्जिद के स्थान पर पहले दिगम्बर जैन मंदिर था। उसके प्रमाणस्वरूप जमीन के नीचे नींव में पूजा सामग्री विद्यमान है।" हाकिम ने भूमि खुदवाकर जब वह पूजा सामग्री देखी तो तत्काल उस स्थान पर जिनमंदिर निर्माण की आज्ञा दे दी। आज भी हम शिलान्यास में ताम्रकलश, दीपक आदि नींव में रखते हैं। प्रशस्तियंत्र भी वहाँ स्थापित करते हैं।

आध्यात्मिक शान्ति के लिए मंदिर एवं भौतिक सुरक्षा हेतु गृह आदि की निर्माण कला 'वास्तुविद्या" है।

1.1.3 आचार्य श्री वीरसेन स्वामी 'वास्तुविद्या' के सम्बन्ध में लिखते हैं

"वत्थुविज्जं भूमि संबंधिणमण्णं पि सुहासुहं कारणं वण्णेदि।" अर्थात् वास्तुविद्या (जहाँ वास्तु का निर्माण किया जाना है), उस भूमि से सम्बन्धित तथा अन्य (वास्तु निर्माण विधि आदि से सम्बन्धित) शुभ एवं अशुभ का तथा उसके (शुभाशुभ के) कारणों का वर्णन करती है। अन्यत्र कोशग्रंथों में भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि—**"वास्तुनो गृह–भूमिविद्या वास्तुविद्या। वास्तुशास्त्रप्रसिद्धे गुण–दोष विज्ञान रूपे कलाभेदे।"**

(अभिधान राजेन्द्रकोश) अर्थ—वास्तु अर्थात् भवन और भूमि दोनों से सम्बन्ध रखने वाली विद्या वास्तुविद्या है। इसमें वास्तुशास्त्र के अनुसार वास्तु के गुणों और दोषों का विशेष ज्ञान कराया जाता है। यह बहत्तर कलाओ का भेद मानी गयी है। 'हलायुधकोश' में भी कहा गया है कि—"**वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्यो गृहादौ विघ्ननाशनम्।**" अर्थात् संक्षेपतः वास्तुविद्या का अर्थ घर आदि में विघ्नों का निवारण करने वाली विद्या या कला विशेष ही है। जैनग्रंथों में मूलतः वास्तुशास्त्रीय नियम-उपनियमों का निर्माण जिनमंदिर की दृष्टि से हुआ है, जिसे नवदेवताओं में परिगणित किया गया है तथा जिसके लिये चैत्यालय, चैत्यगृह आदि संज्ञाओं का प्रयोग भी प्राप्त होता है।

चूँकि गृहस्थजन घर में रहते हैं अतः उनकी सद्बुद्धि बनी रहे, धर्मकार्यों में रुचि—प्रवृत्ति रहे, बाह्य अनुकूलता भी रहे (ताकि परिणाम न बिगड़ें) साथ ही उनका स्वयं का, उनके परिजनों का ग्राम–नगर–राष्ट्र आदि का भी भला हो, इस दृष्टिकोण से घर–मकान आदि सांसारिक प्रयोजन से निर्मित भवनों को भी वास्तुशास्त्र के अनुसार बनवाने की प्रेरणा दी गयी है। सद्गृहस्थ को 'सागार' या 'गृहवासी' कहा गया है, फिर भी उसे धर्मात्मा माना गया है। "भरतजी घर में वैरागी" जैसे वाक्यों में भी घर में रहकर भी वैराग्यभाव के पोषण का कथन है। अब यदि घर ही अशुभ होगा, गलत ढंग से निर्मित होगा तो उसमें निराकुलतापूर्वक धर्मध्यान एवं संयम–वैराग्य आदि के प्रशस्त कार्य कैसे संभव हो सकेंगे ? संभवतः इसी दृष्टि से 'घर' को भी शास्त्र की मर्यादा के अनुसार शुभकारक बनाने के लिये वास्तुशास्त्र में सांसारिक उपयोग के भवनों की भूमि एवं निर्माण कार्य संबंधी नियमावली भी बतायी गयी है।

संभवतः इसीलिये आचार्य श्री उग्रादित्य ने 'कल्याण कारक ग्रंथ' (7/18) में कहा—"**तत्रादितो वैश्मविधानमेव, निगद्यते वास्तु विचारयुक्तम्।**" अर्थ—मकान आदि के निर्माण में (अन्य समस्त सामग्री–सहायकों–साधनों आदि के विचार से पूर्व) सर्वप्रथम वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से (भूमिपरीक्षण, भवन निर्माण योजना आदि का) विचार करने का विधान किया गया है। आचार्यदेव पुनः कहते हैं—"**प्रशस्त दिग्देशकृतं प्रधानमाशागतायां प्रविभक्तभागम्।**" अर्थ—प्रशस्त (शुभ) दिशा एवं प्रशस्त क्षेत्र में वास्तुशास्त्रीय विधि से भवन निर्माण करना चाहिये। उसमें भी जो प्रधान दिशा का श्रेष्ठ भाग है, उसी में विधिवत् निर्माण कार्य होना चाहिये।

1.1.4 धवला में भी कहा है—

'धवला' जैसे विशाल 'जैनतत्वज्ञान कोश' ग्रंथ में भी 'वास्तु' अथवा वास्तु विद्या को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है तथा वास्तु के विभिन्न अंगों के बारे में अनेक प्रकरणवशात् उल्लेख वहाँ प्राप्त होता है। यथा (1) "**जिणगिहादीणं रक्खणट्ठप्पासेसु ठविद ओलित्तीओ 'पागार' णाम**" अर्थात् जिनमंदिर आदि भवनों की रक्षा के लिए उनके चारों पार्श्वों में जो भीत (दीवार) बनायी जाती है, उसे 'प्राकार' या 'परकोटा कहते हैं। (2) "**वंदणमालबंधणट्ठं पुरदोट्ठविद-रुक्खविसेसा 'तोरण' णाम।**" अर्थात् वंदनवार बाँधने के लिए द्वार के आगे (दोनों ओर) जो वृक्ष विशेष लगाये जाते हैं, उन्हें 'तोरण' कहा गया है। इन दो उल्लेखों से स्पष्ट है कि जिनमंदिर आदि भवनों के चारों ओर परकोटा होना चाहिए तथा इनके द्वारों पर मंगलस्वरूप 'तोरण' एवं 'वंदनवार' आदि की व्यवस्था होनी चाहिये। ज्ञातव्य है कि ये सभी वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से शुभकारक वस्तुयें मानी गयी हैं। 'वास्तुविद्या के इतने व्यापक महत्व एवं लोकोपयोगित्व को दृष्टिगत रखते हुये पंडितप्रवर श्री आशाधरसूरि ने प्रतिष्ठाचार्य को अनेक विषयों के साथ 'वास्तुशास्त्र' का विशेषज्ञ होना भी अनिवार्य बतलाया है—"**श्रावकाध्ययन–ज्योति–वास्तुशास्त्र पुराणवित्**" अर्थात् प्रतिष्ठाचार्य को श्रावकाचार, ज्योतिषशास्त्र, वास्तुशास्त्र और पुराणग्रंथों का जानकार विशेषज्ञ होना चाहिये। आचार्य भद्रबाहुकृत 'भद्रबाहुसंहिता' में तो 'वास्तुशास्त्र' के ज्ञान को ज्योतिष से भी महनीय प्रतिपादित किया है—"**ज्योतिषं केवलं कालं, वास्तु दिव्येन्द्रसम्पदा।**" अर्थात् ज्योतिष शास्त्र तो मात्र काल सम्बन्धी ही कथन करता है किन्तु वास्तुशास्त्र के अनुपालन से इन्द्र सदृश दिव्य सुख–साधन को प्राप्त होते हैं।

1.2 वास्तु विद्या का महत्व वास्तु—

विद्या का अर्थ है "भवन निर्माण की कला।" इसी को प्राकृतभाषा में 'वत्थु विज्जा', कहते हैं। धर्म, ज्योतिष, पूजापाठ आदि ने मिलकर वास्तुविद्या को अध्यात्म से जोड़ दिया, जिससे उसका प्रचार एक आचार संहिता की भाँति हुआ है। उससे समाज की आस्था जुड़ी है। यही कारण है कि वास्तुविद्या अतीत की वस्तु होते हुये भी वर्तमान की वस्तु उससे कहीं अधिक हो गई है। वास्तु विद्या के प्रति आकर्षण प्राचीनकाल से अब तक बढ़ता ही रहा है। वर्तमान गगनचुंबी भवनों, समुद्राकार बाँधों आदि के निर्माण के वर्तमान सिद्धान्त मूलरूप में वे ही हैं, जो आरम्भ से प्रचलित रहे हैं। लगता है, वास्तु–विद्या के प्राचीन सिद्धान्तों पर प्राचीनकाल में उतना व्यापक निर्माण नहीं हो सका, जितना आज हो रहा है। आज यह विद्या 'साइंस ऑफ आर्किटेक्चर' के रूप में एक स्वतन्त्र विषय बन चुकी है। कई विश्वविद्यालयों में इस विद्या के अध्यापन के लिए स्वतन्त्र विभाग और महाविद्यालय स्थापित किए गए हैं। इस विषय पर उच्चतम स्तर पर शोधकार्य भी हो रहे हैं। वैज्ञानिक सुविधाओं और औद्योगिक आवश्यकताओं ने वास्तुविद्या का एक अत्याधुनिक रूप विकसित किया है। इस विद्या के अप्रत्याशित चमत्कारों की प्रतीक्षा सहजभाव से की जाने लगी है, यही वास्तु विद्या के महत्व का प्रमाण है।

1.2.1 निर्माण कार्य—

प्राचीन और आधुनिक मानव जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति इस क्षेत्र में भी प्रबल क्रान्ति हुई है। प्राचीन परम्पराओं का स्थान अब नई–नई शैलियाँ और निर्माण विधियाँ ले चुकी हैं। निर्माण की सामग्री भी अब आधुनिकतम आविष्कारों से पूरी तरह प्रभावित है। पत्थर का प्रयोग अब सजावट तक सीमित रह गया है। लकड़ी का स्थान प्लास्टिक आदि कृत्रिम पदार्थ लेते जा रहे हैं। सुन्दरता और सुविधा–सम्पन्नता के नए कीर्तिमान स्थापित हो चुके हैं। ज्योतिष, मंत्र, तंत्र आदि पर आधारित वास्तुविद्या के बदले रेखागणित, मौसम विज्ञान, समाज विज्ञान आदि को मान्यता मिल रही है। जनसंख्या के दबाव ने निर्माताओं को कम से कम भूमि पर अधिक से अधिक आवास गृह जुटाने को विवश कर दिया है इसलिए गगनचुंबी भवन खड़े किए जा रहे हैं। विशाल–विस्तृत कॉलोनियां और नगर बसाए जा रहे हैं। उद्योग नगरियों का विकास सर्वत्र हो रहा है, आधुनिकतम कारखाने लगाए जा रहे हैं। सार्वजनिक सुविधाओं के साधन जुटाए जा रहे हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक स्थानों के निर्माण की भी यही स्थिति है। पर्यावरण को सन्तुलित बनाए रखने के लिए वृक्षारोपण और उद्यान निर्माण को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। आकर्षक पर्यटन स्थल अस्तित्व में आ रहे हैं। पशु–पक्षियों के लिए अभयारण्यों का विकास हो रहा है।

परन्तु परम संतोष का विषय है कि भवन निर्माण कला के इस प्रबल परिवर्तन के युग में भी प्राचीन वास्तु विद्या का स्मरण किया जाता है। धर्म और वास्तु विद्या के भूले-बिसरे सम्बन्ध पुनः स्थापित किए जाने लगे हैं। अनेक निर्माता, आर्किटेक्ट और वास्तुविज्ञ प्राचीन वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों का सहारा ले रहे हैं। अनेकानेक गृहस्थ और उद्योगपति अपने भवनों और मकानों का वास्तु विद्या के अनुरूप सुधार कराते देखे जा सकते हैं। इस मान्यता पर लोगों का विश्वास आज भी है कि दिशा बदलने से दशा बदल सकती है।

1.3 'वास्तु' शब्द का अर्थ—

'वास्तु' शब्द संस्कृत की 'वस्' क्रिया से बना है, जिसका अर्थ है 'रहना। मनुष्यों, देवों और पशु–पक्षियों के उपयोग के लिए मिट्टी, लकड़ी, पत्थर आदि से बनाया स्थान वास्तु है। संस्कृत का वसति और कन्नड़ का 'बसदि'शब्द भी वास्तु के अर्थ में ही है। हिन्दी का 'बस्ती' शब्द भी वास्तु से सम्बद्ध है परन्तु वह ग्राम, नगर आदि के अर्थ में प्रचलित हो गया है। तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य श्री उमास्वामी ने सोना–चाँदी, धन–धान्य, दासी–दास, कुप्य–भाण्ड से भी पहले क्षेत्र

और वास्तु को स्थान देकर वास्तु विद्या को दो हजार वर्ष पहले जो दिया था, वह आज भी विद्यमान है। 'वास्तु' और 'स्थापत्य' शब्दों की एकरूपता 'वास्तु' का ही अर्थ देने वाला संस्कृत शब्द है 'स्थापत्य'। वह 'स्था' क्रिया से बना है, जिसका अर्थ है——रहना, ठहरना, टिकना आदि। इसके लिए अंग्रेजी में 'आर्किटेक्चर' और उर्दू में 'इमारत' शब्द हैं। चार उपवेदों में से एक का नाम है——'स्थापत्य–वेद, 'हिन्दी शब्दसागर' के अनुसार इसे विश्वकर्मा ने 'अथर्ववेद' से निकाला था।

1.3.1 वास्तु विद्या और 'कला' की समानता——

द्वादशांग जिनवाणी के बारहवें अंग 'दृष्टिवाद' के अन्तर्गत चौदह पूर्वों में क्रियाविशाल नामक तेरहवें पूर्व में विविध कलाओं और विधाओं का समावेश है, जिनमें 'वास्तु विद्या' भी एक है। समवायांग सूत्र के अनुसार चौंसठ कलाओं में छप्पनवीं से इकसठवीं तक की छह कलाएँ वास्तव में वास्तुविद्या की ही विभिन्न शाखाएँ हैं। उनके नाम हैं स्कंधावारमान (सैन्य शिविरों की लंबाई–चौड़ाई), नगर मान, स्कंधावार निवेश, वास्तु निवेश और नगर निवेश। कालान्तर में वास्तुविद्या एक स्वतंत्र विषय बन गई, तब भी ये छहों रूप कलाओं में सम्मिलित बने रहे। विद्याओं और कलाओं में कई दृष्टियों से समानता है, दोनों की अधिष्ठात्री देवी 'सरस्वती' है, जिसका एक नाम है 'ब्राह्मी' तीर्थंकर ऋषभनाथ की ज्येष्ठ पुत्री का नाम भी ब्राह्मी था, उसने लिपि विद्या का प्रवर्तन किया था। उस सरस्वती और इस ब्राह्मी में और भी कई बातों में एकरूपता है अतः कहा जा सकता है कि वास्तु विद्या का प्रवर्तन ब्राह्मी से हुआ था।'

1.3.2 वास्तु विद्या अतीत पर विहंगम दृष्टि——

मनुष्य की तीन मौलिक आवश्यकताएँ हैं : रोटी, कपड़ा और मकान। यह कथन इतिहास, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की दृष्टि से है। मनोविज्ञान की दृष्टि से पाँचवीं शताब्दी में आचार्य श्री पूज्यपाद ने 'इष्टोपदेश' में लिखा था "जो जहाँ रह रहा हो, वह वहीं रम जाता है, वह जहाँ रम जाता है, वहाँ से कहीं और नहीं जाना चाहता।

उनसे भी पूर्व प्रथम शती ई. में आचार्य श्री समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में दान के जो चार प्रकार बताए थे, उनमें एक आवास भी है, यह धार्मिक दृष्टि है। प्राकृतिक गुफाओं को काट–छाँटकर वनवासी साधुओं के रहने योग्य बनाने की परम्परा इसीलिए चली। दक्षिण भारत में, विशेषतः कर्नाटक में मंदिरों के साथ मुनि–वास बनाने की प्रथा आज भी है इसीलिए वहाँ मन्दिर को 'बसदि (बसति)' कहते हैं। आवास के धार्मिक महत्व से मन्दिर स्थापत्य का विकास हुआ होगा। दसवीं शताब्दी में आचार्य श्री वीरसेन ने 'षट्खण्डागम' की अपनी 'धवला' नामक टीका में संकेत किया था कि "वास्तु विद्या में भूमि के सन्दर्भ में शुभाशुभ फलों का विधान होता है। पौराणिक आख्यानों से स्थापत्य के आकार–प्रकार में विविधता आई। इसमें सहायता की 'लोक–विद्या (कॉस्मोलाजी) ने, जिसमें मध्यलोक, नन्दीश्वर–द्वीप जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, विदेह क्षेत्र, मेरु पर्वत आदि की अद्‌भुत अपूर्व रचनाओं के विस्तृत वर्णन हैं।

1.3.3 वास्तु के सम्बन्ध में श्री उमास्वामी श्रावकाचार में उल्लेख——

श्री उमास्वामी आचार्य ने अपने श्रावकाचार में अनेकानेक विषयों के अन्तर्गत वास्तु के सम्बन्ध में श्लोक नं. 112–113 में कहा है——

पूर्वस्यां श्रीगृहं कार्यं आग्नेया तु महानसम्।
शयनं दक्षिणस्या तु नैऋत्यामायुधादिकम्।।112।।
भुक्तिक्रिया पश्चिमस्यां वायव्ये धनसंग्रहः।
उत्तरस्यां जलस्थानमैशान्यां दैवसद्‌गृहम्।।113।।

अर्थ——श्रावक को अपने घर के विभाग इस प्रकार बनाने चाहिए——"पूर्व दिशा की ओर शोभागृह (बैठक का कमरा), आग्नेय दिशा में रसोईघर, दक्षिण दिशा में शयन करने का स्थान, नैऋत्य दिशा में आयुधशाला, पश्चिम दिशा में

भोजनगृह, वायव्य दिशा में धन संग्रह करने का घर, उत्तर दिशा में जल स्थान (परण्डा) और ईशान दिशा में देवस्थान बनाना चाहिये।" इसी प्रकार इसमें गृहचैत्यालय बनाने का पूरा नियम बताया है—

गृहे प्रविशता वामभागे शल्यविवर्जिते।
देवतावसरं कुर्यात्सार्द्धहस्तोर्द्ध भूमिके।।98।।
नीचैर्भूमिस्थितं कुर्याद्देवतावासं यदि।
नीचैर्नीचैस्तोवश्यं संतत्यापि समं भवेत्।।99।।

अर्थात् गृह में प्रवेश करते समय जिस दिशा में अपना बायां अंग हो, घर के उसी भाग में चैत्यालय बनवाना चाहिये। चैत्यालय शल्य रहित उत्तम भूमि में बनवाना चाहिये अर्थात् जिस भूमि में हड्डी आदि किसी मलिन पदार्थ के रहने का संदेह न हो ऐसे स्थान में चैत्यालय बनना चाहिये। उस चैत्यालय में वेदी की ऊँचाई डेढ़ हाथ होनी चाहिये। यदि वेदी की ऊँचाई डेढ़ हाथ से कम होती है तो वह बनवाने वाला अपनी संतति के साथ ही नीचता को प्राप्त होगा। अर्थात् वेदी की ऊँचाई डेढ़ हाथ होनी चाहिये। इससे न तो ऊँची होनी चाहिये और न नीची होनी चाहिये। आजकल कुछ स्थानों पर वास्तुशिल्प के नाम पर अनेक प्राचीन शिखरबन्द मंदिरों को पूरा तोड़कर धराशायी किया जा रहा है जो पापबंध का कारण है।

1.4 घर का वास्तु कैसा हो—

आज के इस भागदौड़ की जिन्दगी में इन्सान का सबसे बड़ा और सबसे सुन्दर सपना होता है कि उसका एक छोटा सा, प्यारा सा अपना एक घर। बहुत बार ऐसा होता है कि अपनी जिन्दगी की पूरी कमाई लगाने के बावजूद उसकी जिन्दगी की शाम होने तक वो दो, तीन कमरे का ही मकान बना पाता है लेकिन उसी छोटे से, प्यारे से अपने घर में अगर उसे सुख, शांति, समृद्धि मिले तो उसका मन बाग-बाग हो उठता है। इस तरह सोचना ये एक सहज (Normal) बात है। कुछ लोगों को तो ये सुख मिल पाता है पर कुछ लोग इन खुशियों से कोसों दूर दिखाई देते हैं। कोई गलती न होते हुए भी ईमानदारी से पूरी कोशिश करने के बावजूद उन्हें यह खुशी नहीं मिल पाती। ऐसे समय हमारी कहीं कोई गलती हो रही है क्या, हम कहीं पर चूक रहे हैं क्या, ये बात मन में आना भी सहज है। हमें हमारे इन सवालों का जवाब मिल सकता है। हमारे प्यारे से घर में जहाँ हमने सपने देखें, जिस घर को, वास्तु को हमने अपने हाथों से संजोया उस वास्तु में किसी प्रकार की त्रुटी रह गई हो तो जिसके बदलाव से हमारा जीवन एक नई मंजिल की ओर अपने कदम बढ़ा सकता है। हमारी एक छोटी सी कोशिश, एक छोटा सा बदलाव हमारी पूरी जिन्दगी का रूप पलटकर रख सकता है। वास्तु नियमों के परिपालन से परिवार में सुख, शान्ति एवं समृद्धि होगी।

1.4.1 मनुष्य के जीवन पर कार्य करने वाले तीन घटक बातें—

दैनिक जीवन में हम भाग्य को गाड़ी, पुरुषार्थ को ड्राइवर तथा वास्तु को सड़क की संज्ञा दे सकते हैं। इसमें से गाड़ी (भाग्य) खराब हो तो कितना भी बढ़िया ड्राइवर हो और कितनी भी बढ़िया सड़क हो, सब बेकार है। यदि गाड़ी बढ़िया हो (भाग्य) सड़क भी अच्छी हो (वास्तु), ड्राइवर (पुरुषार्थ) दोनों बढ़िया हों और सड़क (वास्तु) खराब हो तो यात्रा जैसे-तैसे सम्पन्न हो जावेगी परन्तु विपरीत हवा, खराब मार्ग, गड्ढे, कीचड़ आदि के कारण यात्रा के समय व तकलीफों में बढ़ोत्तरी होगी और कभी-कभी व्यक्ति गंतव्य तक पहुँच नहीं पाता और यदि पहुँच भी गया तो यात्रा के कटु अनुभव उसके आनन्द को समाप्त कर देंगे इसलिए तो हमारे जीवन पर सबसे ज्यादा परिणाम हमारे भाग्य और पुरुषार्थ से होते हैं। उसके बाद नंबर आता है निसर्ग मतलब वास्तु का। गणितीय भाषा में सोचे तो भाग्य–40% निसर्ग (वास्तु) 20% इसमें भी सोचे तो प्रकृति के हाथ में 10% होते हैं और 10% वास्तु (हमारे) हाथ में। इन 10% (प्रतिशत)

में तीन भाग होते हैं । (1) **Outer** 3.3% बाहरी (2) **Construction** 3.3% बांधकाम (3) **Inner Placement** 3.3% अंतर्गत रचना। हमारे आसपास की सृष्टि में व्यक्ति को अनेक मुश्किलों से बचाव के लिए हमारे ऋषि, मुनियों ने वास्तुशास्त्र का सृजन करके हम पर बड़ा उपकार किया है। जैन तथा वैदिक ग्रंथों की शृंखला में वास्तुशास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। प्रत्येक स्थान के वातावरण, पर्यावरण का बढ़ा स्थायी एवं अस्थायी रूप से रहने वाले लोगों का प्रभाव पड़ता है। मनुष्य अपने निवास के लिए, कारोबार के लिए भवन निर्माण करता है तो उसको वास्तुशास्त्र के द्वारा मर्यादित किया गया है। वास्तु शास्त्र का उद्देश्य मनुष्य को कल्याण मार्ग में लगाना है। वास्तु शब्द का अर्थ है— निवास करना, रहना। जिस जगह पर हम निवास करते हैं उसे वास्तु कहते हैं। वास्तुशास्त्र-यह मनुष्य को मिला हुआ एक अनमोल तोहफा है। वास्तु शास्त्र यह पूरी तरह से निसर्ग से बना हुआ है, निसर्ग में स्थित दृश्य-अदृश्य, चेतन-अचेतन, ये सब इस ब्रह्माण्ड को बनाने वाले विश्वनिर्माता के अंग हैं। भवन निर्माण का अपना विज्ञान होता है, जिसे वास्तुशास्त्र कहा जाता है। वास्तु किसी भी भवन निर्माण का आधार है। भवन निर्माण के दौरान प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिक स्तर जैसे कि प्लाट खरीदने से लेकर अंत तक, भवन में प्रवेश तक वास्तुशास्त्र के नियमों का अनुकरण करना चाहिए। प्रत्येक चीज वास्तु के सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए क्योंकि वास्तु सिर्फ एक शब्द न होकर एक संपूर्ण विज्ञान है। मानव जीवन प्रकृति के कुछ निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों के अनुरूप संचालित होता है। हम जितना आधुनिक होते जा रहे हैं, उतना ही हम हमारे प्राचीन वेदों एवं शास्त्रों से दूर जा रहे हैं और इसी कारण हमें जीवन में हर दिन नित्य नई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वास्तु कोई धर्म विशेष या केवल एक शब्द मात्र नहीं है अपितु संपूर्ण विज्ञान है जो हमें यह बताता है कि भवन की दिशा क्या होनी चाहिए, साथ ही और भी आंतरिक बातें बताता है। वास्तु में यह देखा जाता है कि किस तरह भवन पर ब्रह्माण्ड में फैली चुम्बकीय ऊर्जा का सकारात्मक और लाभदायी प्रभाव रहेगा।

1.4.2 वास्तुशास्त्र पूर्णतः दिशाओं पर आधारित है—

चार दिशा और चार उपदिशा है, उपदिशाओं में प्रबल एनर्जी होने की वजह से वास्तु उपदिशा पर ज्यादा काम करती है। वास्तुशास्त्र एक संपूर्ण सत्य है उसी प्रकार एक सद्भावना भी है। जिस प्रकार किसी विद्युत प्लग का करंट किसी को लगता है तो किसी को सिर्फ चुणचुण होती है, तो किसी को झटका लगकर नीचे गिर जाता है, तो किसी को वह करंट (झटका) लगकर उसकी जान निकल जाती है। इसी प्रकार वास्तु की त्रुटिओं का प्रभाव तो जरूर होता है। वह किस व्यक्ति पर कितना असर होगा ये नहीं जान पाते

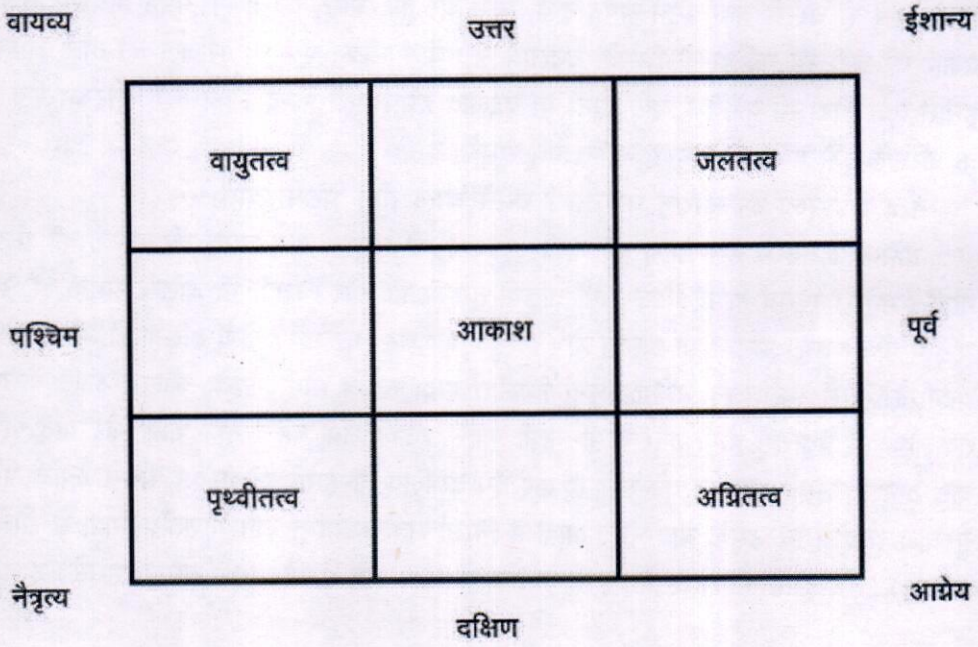

क्योंकि हर इंसान का अपना भाग्य, पुरुषार्थ होता है और उसी प्रकार उसे फल मिलता है इसलिए झटका तो लगेगा, पर उस झटके का प्रभाव किस पर कितना होगा यह उस व्यक्ति के अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। उपरोक्त पूरा ज्ञान हमारे ऋषि, मुनियों ने कई ग्रंथों में लिख रखा है। उसमें मयमतम्, समरा, गण, सूत्र, मनुष्यालय, चंद्रिका, मानसार आदि ग्रंथ संस्कृत में हैं। इनमें से कई ग्रंथों का हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। इन सबमें मयमतम् सर्वतोपरि मानना उचित होगा। वृक्षार्युवेद में कई प्रकार की वनस्पतियों का जिक्र किया गया है, कौन-कौन से वृक्ष हमारे आसपास हो या न हो, इसका पूरा विवेचन इस ग्रंथ में हमें प्राप्त हो सकता है।

1.4.2 यह संसार पंच तत्त्व से बना है—

और प्रत्येक प्राणी के जीवन में भी इन पांच तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें से एक की भी कमी जीवन को कष्टप्रद बना देती है। ये पांच तत्त्व हैं—अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश। हमारा मतलब एक मनुष्य के शरीर में ये पंच तत्त्व मौजूद हैं इसलिए निसर्ग में किसी भी प्रकार की कोई हलचल होती है तो उसका सीधा असर मनुष्य पर, उसके जीवन पर होता है। वास्तु में भी उसका (पंचतत्त्वों का) उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान है जितना अन्य स्थानों पर।

इस प्रकार ऊपर दिखाए गए तख्ते की वजह से हमें यह पता चलता है कि हमारे वास्तु विज्ञान में इन पंचतत्त्व का स्थान किस दिशा में कहाँ पर हैं। वास्तु विज्ञान पाँचों तत्वों के अत्यन्त सक्षम (Powerful) प्रभाव पर नियन्त्रण करने का काम करता है। इन पंच तत्वों में से किसी भी तत्व का अपना स्थान (जगह) बदलने से निसर्ग का समतोल या उससे हमारा जो संतुलन है वह बिगड़ने की पूरी संभावना हो सकती है। यह पंचतत्व हमारे प्रकृति के महत्वपूर्ण घटक हैं। वास्तुशास्त्र हमें प्रकृति के साथ तालमेल कर जीवन व्यतीत करना सिखाता है। अगर कहें कि वास्तुशास्त्र एक जीवनशैली है तो गलत नहीं होगा।

1.4.4 सूरज हमारी ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत है—

अतः हमारे वास्तु का निर्माण सूरज की परिक्रमा को ध्यान में रखकर होगा तो अत्यंत उपयुक्त रहेगा। सूरज में सात प्रकार के रंग तथा आठ प्रकार की किरणें (Rays)होती हैं। उनमें सात रंग दिखाई देने वाले होते हैं तथा आठ किरणें (Rays) अदृश्य होती हैं। इंद्रधनुष के सात रंग (Vibgyor) यानी जामुनी, (Voilet) गहरा नीला (Indigo), आसमानी (Sky Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange), तथा लाल (Red). आठ अदृश्य किरणें होती हैं। (Ultra Voilet Rays, Infra Red Rays Alfa Rays, Bita Rays, X Rays, Gyama Rays & Cosmic Rays.) दृश्य सात रंगो में से लाल रंग में इन्फ्रा रेड किरणें अधिक होती हैं। और जामुनी रंग में अल्ट्रा वॉयलेट किरणें अधिक होती है। दिशाएँ आठ होती हैं सूरज पूरब में उदित होकर पश्चिम में अस्त होता है अतः उसकी परिक्रमा मे ईशान, पूरब, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम दिशाएँ आती है। सूरज की परिक्रमा वर्ष में 6 महीने उत्तरायन, 6 महीने दक्षिणायन होती है । जिससे पूरब दिशा में सूर्योदय की जगह कुछ बदलती है। सूरज की पहली किरण वास्तु के ईशान कोण पर पड़ती है अतः ईशान कोण में कम से कम निर्माण कार्य करना चाहिए ताकि वह

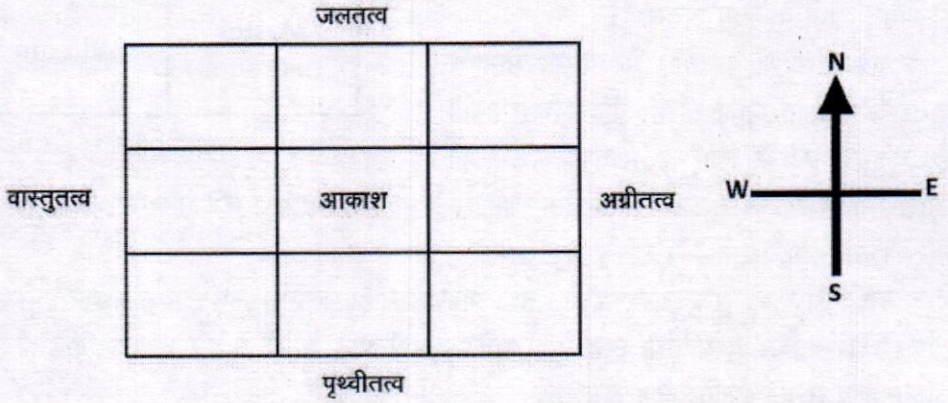

सूरज की लाभदायक किरणें हमारी वास्तु में पहुंचने में बाधक ना बने तथा दक्षिण-पश्चिम में निर्माण कार्य अधिक भारी और ऊंचा होना चाहिए ताकि संध्याकालीन प्रखर सूरज की नुकसानदायक किरणों से हम बचते रहें इसलिए ईशान दिशा को अधिक खुला पवित्र रखने का तथा नैऋत्य दिशा को बंद रखने का दिशानिर्देश है । सुबह 3 से 6 बजे तक के समय को ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है। इस समय वातावरण में जब (ओझोन वायु) कार्यान्वित रहता है । यह किरणें हमारे लिए बहुत अच्छी रहती हैं। यह समय अध्ययन के लिए बहुत शुभ होता है। साधु संत इसी समय में साधना करते हैं। हर दिन इस समय ध्यान, पढ़ाई, देवपूजा करने वालों को देवपुरूष के समान दर्जा मिलता है। हर वास्तु के ब्रह्म स्थान में (Cosmic Rays) कार्यान्वित रहती है। इस रेंज में बहुत ताकत होती है। सबसे ज्यादा पॉजिटिव एनर्जी प्रदान करने की ताकत इसमें है इसलिए हमारी वास्तु का ब्रह्मस्थान हमेशा खुला एवं साफ-सुथरा होना चाहिए । ब्रह्मस्थान निर्मिती का स्थान है। हर अच्छी बात का, हर कार्य का उदगम इसी पवित्र स्थान से होता है। प्रात: 8 से 10/11 के समय में इन्फ्रा रेड रेज सूर्य से अधिक मात्रा में निकलती है, यह रेज हमारे वास्तु के पूरब तथा आग्नेय भाग में पड़ती है। शास्त्रों के अनुसार हमारा खाना इस समय में बनना चाहिए क्योंकि इस समय में निर्जंतुकीकरण खाना बनता है इसलिए जैन साधु अपना आहार इसी समय में करते हैं। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। सूरज अपनी परिक्रमा लगाते हुए दोपहर में दक्षिण दिशा में रहता है। दोपहर में सूरज की किरणें ज्यादा तेजपुंज हो जाती है जिसे हमारा शरीर भी कभी कभी सहन नही कर पाता। सूरज शाम होते-होते नैऋत्य से होते हुए पश्चिम में जाकर अस्त हो जाता है इसलिए दक्षिण दिशा में अधिक बांधकाम होना चाहिए।

1.4.5 शयनकक्ष तथा सोने का तरीका—

सामान्यत: मनुष्य का शयनकक्ष नैऋत्य, दक्षिण तथा पश्चिम भाग में हो। अविवाहित पुत्र का कक्ष आग्नेय भाग में उत्तम तथा पुत्रियों का वायव्य दिशा में उत्तम, ईशान भाग में बुजुर्ग लोगों का शयनकक्ष उत्तम, ईशान भाग में नवविवाहितों का कक्ष गलत माना गया है। शयनकक्ष में सोते समय हमेशा सर दीवार से सटाकर सोना चाहिए। सर के पास (Electric Points) तथा पानी न हो। पैर धोकर और पोछकर ही सोना चाहिए।

पूर्व की ओर पैर करके सोने से नींद कम आती है, ज्ञान की प्राप्ति होती है, हलकी सी चिंता रहती है। बच्चों के लिए उत्तम।

उत्तर दिशा की ओर पैर करके सोने से स्वास्थ्य लाभ तथा आर्थिक लाभ की संभावना रहती है। विवाहित लोगों के लिए उत्तम है।

पश्चिम दिशा की ओर पैर करके सोने से शरीर की थकान निकलती है, नींद अच्छी आती है। बुजुर्ग लोगों के लिए उत्तम तथा दक्षिण की ओर समाधिमरण के समय पैर कर देना चाहिए। अन्य समय दक्षिण की ओर पैर करके सोना निषिद्ध है।

N

Guest Bedroom	●	X
Bedroom	X	●
Master Bedroom	Bedroom	Children Bedroom

W E

S

1.4.6 अध्ययन—

अध्ययन कक्ष पूरब, उत्तर, ईशान तथा पश्चिम मध्य उत्तम। इनमें अध्ययन करते समय दक्षिण तथा पश्चिम की दीवार को सटाकर पूरब तथा उत्तरमुखी बैठें। अपनी पीठ के पीछे द्वार अथवा खिड़की न हो मतलब गड्ढा न हो। अध्ययन कक्ष का ईशान कोण खाली हो।

1.4.7 भोजन —

पैरों में जूते चप्पल पहनकर अध्ययन तथा भोजन न करें। भोजन करते समय पूर्व तथा उत्तरमुखी भोजन करें, मौनपूर्वक आहार ग्रहण करें। दक्षिणमुखी कभी भोजन न करें। टी.वी. के सामने बैठकर भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। भोजन करने से पहले हाथ-पैर तथा मुंह धोकर फिर भोजन करें ।

1.4.8 गृह चैत्यालय —

जैनों का गृह चैत्यालय मूर्तियाँ होने पर वायव्य में पूर्वमुखी तथा नैऋत्य में उत्तरमुखी माना गया है। गृह चैत्यालय के बारे में निम्न तीन बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

भगवान का मुख पूरब या उत्तर दिशा में हो। भगवान की दृष्टि घर पर हो तथा भगवान का सीधा हाथ घर की ओर हो।

उपरोक्त नियमों का ध्यान रखते हुए वायव्य में पूरबमुखी और नैऋत्य में उत्तरमुखी ही उत्तम है। दक्षिण मध्य तथा पश्चिम मध्य में भी चैत्यालय बनाया जाता है। चैत्यालय में वेदी छोड़कर तीन कटनी हो और पहली कटनी पर सिंहासन पर श्रीजी विराजमान हों। चैत्यालय में परिक्रमा न हो। चैत्यालय में ध्वजदंड न हो, शिखर न हो, कलश न हो। चैत्यालय में मूर्ति ज्यादातर पद्मासन हो। चैत्यालय की मूर्ति घर के पुरुष के ग्यारह अंगुल प्रमाण से ऊँची न हो। इनमें पाँच, सात, नौ अंगुल प्रमाण मूर्ति उत्तम मानी गई है। ग्यारह अंगुल से ऊँची प्रतिमा मंदिरजी में होती है। चैत्यालय में की दीवार से लगकर संडास-बाथरूम की दीवार न हो या ऊपर या नीचे भी न हो । चैत्यालय में ऊपर बेडरूम, पानी की टंकी न हो। इन सब बातों का ध्यान करने पर ईशान भाग में गृह चैत्यालय नहीं आता है ।

1.4.9 तिजोरी / अलमारी

अलमारी तथा तिजोरी घर के अंदर हमेशा पश्चिम तथा दक्षिण दीवार से लगकर पूरब तथा उत्तरमुखी खुलने वाली होनी चाहिए । घर के (exact) चार कोने में अर्थात् आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान में कभी तिजोरी नहीं होना चाहिए। घर के उत्तर भाग में दक्षिण की दीवार से लगकर तिजोरी तथा उसके सन्मुख पावदान, खिड़की (Ventilator) हो तो उत्तम मानी गई है । अपनी आवश्यकतानुसार धनसंचय ऐसी तिजोरी में रहता है। पूरब दीवार की ओर अलमारी पश्चिममुखी हो तो धन जाता रहता है, नुकसान होता है लेकिन ऐसी तिजोरी बैंक वालों के लिए ज्यादा फायदा करती है, इससे उनका धन लोगों को कर्जा देने पर ज्यादा मात्रा में उपयुक्त होता है जिससे बैंक का लाभ ही होता है । अलमारी पर लक्ष्मी स्वास्तिक निकालना कुंकुम रोली से फायदा होता है । कम से कम साल मे चार बार इसे दोहराना चाहिए (मुहूर्त : दशहरा, दीवाली, चैत सुदी एकम् (गुडीपाडवा), आखातीज (अक्षयतृतीया)। ऐसी तिजोरी में आइना नहीं होना चाहिए । तिजोरी/अलमारी बेड से सटाकर न रखें / तिजोरी के सामने दरवाजा न हो ।

1.4.10 आइना (Mirror) —

आइना हमेशा परावर्तित करने की क्षमता रखता है ? याने परावर्तन। सामान्यत: पूरब दिशा ज्ञान, उत्तर दिशा धन, पश्चिम दिशा खर्चा, दक्षिण दिशा (हानि) से संबंधित मानी गई है इसलिए पूरब तथा उत्तर दिशा में प्रतिबिम्ब reflection नहीं होना चाहिए अतएव आइने हमेशा पूरब तथा उत्तर दीवार को हों जिससे वो दक्षिण-पश्चिम को reflect करे। यहांपर विशेषत: इस बात को समझें कि अलमारी/तिजोरी हमेशा दक्षिण-पश्चिम की दीवार की ओर होती है और आइने पूरब और उत्तर की दीवार में अत: ये दोनो एक दूसरे से विपरीत हैं। आइना सही दिशा में होने के बावजूद भी पलंग के सन्मुख तथा दरवाजे के सन्मुख न हो ।

1.4.11 ढाल (उतार) —

ढाल अर्थात् झुकाव/जिसकी ओर झुकेंगे उस दिशा के अनुकूल तथा प्रतिकूल परिणाम हमें प्राप्त होते हैं इसलिए पूरब, उत्तर एवं ईशान की ओर जमीन का ढाल होना चाहिए। अन्य किसी भी दिशा में ढाल हो या गड्ढे हों तो उसके

विपरीत परिणाम यजमान के ऊपर आने की संभावना होती है इसलिए दक्षिण-पश्चिम में पहाड़ी हो, टीला हो, ऊँची इमारतें हों तो फायदा होता है। यही बात पूरब-उत्तर में आने से प्रतिकूलता आती है। पूरब-उत्तर में नदी, तालाब, बावड़ी, खाई, कुआँ आदि होने से तथा खुलापन होने से अनुकूलता की चरमसीमा हो जाती है। यही बात दक्षिण-पश्चिम में घातक-प्रतिकूल बन जाती है। मंदिर वास्तु तथा गृह वास्तु में हल्का सा फर्क होता है बाकी सब नियम एक ही होते हैं।

1.5 घर में पूजा का स्थान कहाँ होना चाहिए ?—

जीव एवं प्रकृति दोनों ही प्रगतिशील हैं। प्रकृति एवं जीव अपनी पृथकता का अनुभव करते हैं मगर क्रियाएँ प्रकृति एवं जीव के शरीर से अपने आप होती रहती हैं। हर धर्म में सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत पूजन स्थल का निर्माण किया जाता है। स्थान का अभाव होने के कारण व्यक्ति सार्वजनिक पूजा स्थल का निर्माण तो कर रहा है मगर व्यक्तिगत पूजा स्थल अपने निवास स्थान पर ही बना लेता है। पूजा क्या है ? पूजा क्यों करनी चाहिए ? पूजा कैसे करनी चाहिए ? अपने निवासस्थान पर पूजा का स्थान कहाँ होना चाहिए ? विश्व में अलग-अलग पंथ हैं, अलग-अलग विधियाँ हैं। इन सब बातों को सूक्ष्म रूप में बताने का प्रयास किया जा रहा है।

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यञ्च समान।।

1.5.1 पूजा क्या है—परमपिता परमात्मा अलग-अलग धर्म में अलग-अलग नामों से पूजे जाते हैं। सनातन धर्म वाले परमात्मा को ब्रह्मरुप में मानते हैं। जैन मतावलंबी सिद्ध के रूप में मानते हैं। इस्लाम को मानने वाले अल्लाह के नाम से इबादत करते हैं। क्रिश्चियन गॉड के नाम से याद करते हैं। सभी सम्प्रदाय वालों की मान्यता एक ही है इनका कोई आकार नहीं है निराकार हैं, विश्वव्यापी हैं।

1.5.2 घर में पूजा का स्थान—अपने घर, बंगले, कोठी या फ्लैट में पूजास्थल का उपयुक्त स्थान ईशान कोण माना गया है। ईशान कोण का मतलब ईश्वर का स्थान। सद्बुद्धि का स्थान, शांति का स्थान। सकारात्मक ऊर्जाओं को प्राप्त करने का स्थान। नारद-पुराण में ईशान कोण गुरु बृहस्पति की दिशा मानी गयी है। सुजान पुरुषों को ईशान कोण में परमात्मा के लिए पूजन का स्थान बनाना चाहिए। पूजन का स्थान बनाते समय विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। उस स्थान का निर्माण भारी-भरकम पत्थरों से न बनायें। अच्छे वृक्ष की लकड़ी से निर्माण करावें। पूजा स्थान के अगल-बगल, ऊपर-नीचे लैट्रीन (बाथरुम) का स्थान न हो। परमात्मा के स्वरूप की प्रतिमा को उत्तर या पूर्व मुखी रखने का निर्देश शास्त्रों में मिलता है एवं प्रचलन में भी यही देखने को मिल रहा है। नारद पुराण में पश्चिम की ओर मुँह करके प्रतिमा रखने को श्रेष्ठ बताया है।

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करगुहाः पूर्वापरास्याः शुभाः।
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखौ शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा।
चामुण्डाग्रहमातरो धनतिर्द्धैमातुरो भैरवो व देवो,
दक्षिणदिङ्मुखः कपिवरा नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत् ।।

(वास्तुराजवल्लभे)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय की पूर्व अथवा पश्चिम मुख स्थापना करें अथवा शिव, जिन, विष्णु, ब्रह्मा इनका मुख किसी भी दिशा में किया जा सकता है। सूर्यादि ग्रह, चामुण्डा, मातृगण, कुबेर, गणेश, भैरव की स्थापना दक्षिण मुख तथा हनुमान जी की नैऋत्य मुख स्थापना करें। पुराणों के कथनानुसार सूर्योदय से 90 मिनट पहले का समय ब्रह्म मुहूर्त कहलाता है। ऐसी मान्यता है—रात्रि में चाँद और तारों से निकलने वाला अमृत पृथ्वी पर परत के रूप में फैल जाता है, इस समय शिक्षा, धर्म कार्य, स्वास्थ्य, दान, देव पूजन के लिए अति उत्तम है। स्वास्थ्य की दृष्टि से

भी उत्तम माना गया है। पूजा करने का श्रेष्ठ समय ब्रह्म मुहूर्त बताया गया है।

पूजन स्थान पर प्रवेश करने के लिए एवं पूजन करने के लिए शरीर और वस्त्र की शुद्धता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। शरीर पर धूल लगी हुई हो, कपड़े भी धूल से सने हुए हों तो आध्यात्मिक ऊर्जाओं को ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न होगी। पूजन स्थल में प्रवेश करने के लिए शरीर एवं वस्त्र की शुद्धता जरूरी है। पूजन के स्थान पर नंगे पैर खड़े होकर या जमीन पर बैठकर पूजा करने से हमारे शरीर में उत्पन्न आध्यात्मिक तरंगें भूमि के संपर्क से भूमि में समा जाती हैं। आसन पर ही खड़े होकर या बैठकर पूजा करनी चाहिए। पूजन की दो पद्धतियाँ अनादिकाल से प्रचलित हैं—एक द्रव्य पूजन एवं भाव पूजन। भाव पूजन और मानसिक पूजन एक ही शब्द के पर्यायवाची शब्द हैं। पूजन करते समय परमात्मा के समक्ष सम्मानपूर्वक जो द्रव्य चढ़ाया जाता है वह द्रव्य या सामग्री अच्छी होनी चाहिए। सामर्थ्य न होने पर सामग्री कम लायें मगर उत्तम गुण वाली लायें। समय एवं आर्थिक परिस्थितियाँ साथ न दें उस परिस्थिति में भाव पूजन (मानसिक पूजन) भाव सहित कर लेना ही श्रेष्ठ है। परमात्मा के लिए आपके द्वारा चढ़ाये गये नैवेद्य, दीप, धूप, फल, फूल इत्यादि से अधिक आपके भाव, श्रद्धा–समर्पण का अधिक महत्त्व है इसलिए कहा गया है—भाव पावन आचरो। ईशान कोण में पूजन एवं मंत्रों आदि का उच्चारण घंटे की आवाज, शंख ध्वनि, दीपक–कपूर के द्वारा आहुतियाँ इत्यादि क्रियाओं से उस भवन के वातावरण में सकारात्मक ऊर्जाओं की उत्पत्ति होने लगती है। जहाँ सकारात्मक भाव होते हैं वहाँ शांति और समृद्धि होती है। पूजन करने से आदमी का आत्मबल मजबूत होता है। आत्मबल एवं सकारात्मक सोच आपके जीवन को आगे बढ़ाने में निरन्तर सहायक होता है। आत्मबल धार्मिक शक्ति, सकारात्मक ऊर्जाएँ एवं सकारात्मक सोच आपको मंजिल तक पहुँचाने में सहायक होती है। समय–समय क्या करता है, समय यूँ ही निकल जायेगा कुछ समय निकाल ले परमात्म के लिए, वो तेरे काम आयेगा

1.6 वास्तु और दिशायें—

वर्तमान युग में जबकि देश में वास्तुशास्त्र का महत्व बढ़ रहा है सभी का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना आवश्यक है कि तीर्थंकर ऋषभदेव सर्वप्रथम सबसे प्रमुख वास्तुशास्त्र के प्रणेता थे। भगवान आदिब्रह्मा ने इस पर जानकारी प्रदान कर विश्व को कल्याण के मार्ग दिये हैं। दिशाओं एवं उपदिशाओं के घटने और बढ़ने से क्या लाभ या हानि हो सकती है इसकी जानकारी देने का प्रयास आपको लाभान्वित करेगा।

1.6.1 साउथ ईस्ट (अग्नि कोण)—साउथ ईस्ट बढ़ने से और पूर्व अग्नि में मुख्य द्वार होने से भवन, फ्लैट में रहने वाले सदस्यों के शरीर में अग्नि का प्रभाव बढ़ जाता है। रक्त जाति की बीमारियाँ, ब्लडप्रेशर, शुगर, पेट में अम्ल पित्त, हृदय रोग, लकवा आदि बीमारियाँ आने की संभावना होती है। अग्नि कोण का नीचा, कुआँ, गड्ढा, बोरिंग होने से घर में बीमारियों का आगमन, कोर्ट मुकदमे में पैसा खर्च होना, घर में अशांति, मातृशक्ति का घर से ज्यादा बाहर विचरण करना, पुरुषों में पुरुषत्व की कमी आना, चरित्र दूषित होना इत्यादि। **उपचार**—अग्नि कोण को ईशान के बराबर करें। मुख्य द्वार पूर्वी अग्नि से हटाकर अन्य स्थान पर ले जायें, कुआं, गड्ढा या सेप्टिक टैंक बंद करवा देवें। भूखण्ड का लेवल ईशान से ऊँचा एवं नैऋत्य से नीचा रखें। अग्नि कोण में किचन ले आवें। खाना बनाते समय मुँह पूर्व की तरफ होना चाहिए।

1.6.2 साउथ वेस्ट (नैऋत्य कोण)—साउथ वेस्ट का घटना और बढ़ना दोनों ही अनुचित है। वास्तु पुरुष के पैर नैऋत्य कोण में रहते हैं। अगर किसी के पैर छोटे कर दिये जाएं या एक छोटा एवं एक बड़ा कर दिया जाय तो उनके जीवनयापन करने में कितनी परेशानी है यह जिसने अनुभव किया वही बता सकता है। मुख्य रूप से कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का जीवन असंतुलित रहेगा। इसका आकार सदैव 90 डिग्री में होना ही सर्वश्रेष्ठ है। **उपचार**—भूखण्ड, भवन या फ्लैट के नैऋत्य कोण को ऊँचा रखें। कुँआ, बोरिंग या सेप्टिक टैंक को बन्द कर स्थान परिवर्तन करें। सबसे पहले मुख्य द्वार का स्थान परिवर्तन करें। संशोधन करने से ही आपको सुख एवं समृद्धि की प्राप्ति होगी।

1.6.3 नार्थ वेस्ट (वायव्य कोण)——नार्थ वेस्ट के बढ़ने या घटने पर, उत्तरी वायव्य कोण को बढ़ाने से ईशान कोण घट जाता है। उस भूखण्ड भवन या फ्लैट में रहने वाले घर से बाहर पलायन करने का प्रयास करते हैं। पैसे की कमी आती है। घर में नये बच्चे पैदा होते हैं वहाँ लड़कियाँ ही ज्यादा होती हैं, अगर लड़का होता है तो उसके पोलियोग्रस्त होने की संभावना रहती है। भूखण्ड को ईशान से ऊँचा और अग्नि से नीचा रखें। सेप्टिक टैंक के लिए वायव्य कोण उपयुक्त स्थान है। इस कोण में कुआं, बोरिंग न करें। बढ़े हुये उत्तरीय वायव्य कोण को घटाकर ईशान के बराबर ले आना चाहिए। कुआं, बोरिंग तत्काल बन्द कर देना चाहिए इत्यादि।

1.6.4 नार्थ ईस्ट (ईशान कोण)——नार्थ ईस्ट का बढ़ना सुख–समृद्धि का द्योतक है। पूर्वी ईशान बढ़ने से यशकीर्ति बढ़ती है। उत्तरी ईशान बढ़ने से चौतरफी धन एवं यश कीर्ति बढ़ती हैं। यह देव स्थान है। ये कोण भूखण्ड का सबसे महत्त्वपूर्ण कोण होता है। इस कोण को स्वच्छ सुन्दर रूप से सजाकर रखना चाहिए। नार्थ ईस्ट का कटना हर तरह की विपत्तियों को निमंत्रण देने का संकेत है। भूखण्ड के इस अंग में वास्तु पुरुष का सिर होता है। किसी मनुष्य का सिर निकाल दिया जाय या उसका छेदन–भेदन कर दिया जाए तो वह शरीर मृत समान हो जाता है। **उपचार**——ईशान कोण को 90 डिग्री या बढ़ा हुआ कर लें। इन सब बातों को ध्यान में रख करके संशोधन कर ऐश्वर्य–सुख–समृद्धि अपने घर में आने की दावत दें। नार्थ ईस्ट की दिशाएँ अगर वास्तु अनुकूल मिल जाती हैं तो अन्य दिशाओं के उत्पात को अपने बल से शीतलता लाने में सहायक हो जाती हैं।

जैन वास्तु शास्त्र में 'ईशान दिशा' (उत्तर पूर्व) को अत्यधिक महत्व दिया गया है——

पं. श्री आशाधर सूरि लिखते हैं——**''पूर्वैशान विदिग्भागे शान्त्यर्थं जगतामिहं''** अन्यत्र भी कहा गया है—— **''उत्तर–पुव्वा पुज्जा।''** इसकी टीका में स्पष्ट किया गया है कि **''उत्तर पूर्वा च लोके पूज्या।''** अर्थात् लोकदृष्टि से उत्तरपूर्व दिशा–ईशानकोण को पूज्य माना गया है।

1.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-विघ्नों का निवारण करने वाली कौन सी कला है ?

(क) शास्त्र ☐ (ख) ज्ञान ☐ (ग) वास्तु विद्या ☐

प्रश्न 2-उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा को क्या कहते हैं ?

(क) नैऋत्य ☐ (ख) वायव्य ☐ (ग) ईशान ☐

प्रश्न 3-गणित की भाषा में भाग्य को कितना प्रतिशत माना है ?

(क) 20 प्रतिशत ☐ (ख) 40 प्रतिशत ☐ (ग) 10 प्रतिशत ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-वास्तु-विद्या और कला की समानता कैसे सिद्ध होती है ? लिखिए ?

प्रश्न 2-मनुष्य की तीन मौलिक आवश्यकताएँ कौन सी हैं ? और इसके विषय इष्टोपदेश में क्या कहा है ?

प्रश्न 3-आचार्य वीरसेन स्वामी ने वास्तु-विद्या के संबंध में क्या महत्व बताया है ? लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन वास्तुशास्त्र में ईशान दिशा को अत्यधिक महत्त्व क्यों दिया गया है ? विस्तृत विवेचन कीजिए।

पाठ 2—वास्तु नियमानुसार भवन निर्माण की रूपरेखा

2.1 भूमि के चयन में दिशा का महत्त्व—

"दिशा बदलते ही दशा बदलती है"—यह कथन कई दृष्टियों से सार्थक है। वास्तु-विद्या में भी दिशा या डायरेक्शन का बड़ा महत्त्व है। दिशाओं और उनके अधिष्ठाता देवों के नाम स्वस्तिकाकार दिशा-सूचक यंत्र में द्रष्टव्य हैं।

अधिष्ठाता का मतलब है—व्यावहारिक प्रधान; जो आज के महंत, निदेशक और सुपरिटेंडेंट का मिला-जुला रूप होता है। प्रत्येक दिशा का एक अधिष्ठाता देव होता है—यह पौराणिक मान्यता है। इस मान्यता में इतिहास और विज्ञान की अपेक्षा श्रद्धा का भाव अधिक है। वास्तु-विद्या में अधिष्ठाता देवों की प्रकृति देखकर ही यह निर्धारित किया गया है कि किस दिशा में क्या बनाया जाए ? जैसे—आग्नेय अर्थात् दक्षिण-पूर्व दिशा रसोईघर के लिए निर्धारित की गयी है ताकि गर्मियों में दक्षिण-पश्चिम दिशा से चलने वाली हवा उसमें आग न भड़का सके।

2.1.1 दिशा का प्रकृति से तालमेल—

प्रत्येक दिशा और विदिशा का प्रकृति के किसी एक रूप से विशेष संबंध है : उत्तर और ईशान का जल से; पूर्व और आग्नेय का अग्नि से, दक्षिण और नैऋत्य का पृथ्वी से; पश्चिम और वायव्य का वायु से इसलिए भवन या कक्ष (कमरा) के उपयोग का तालमेल उसकी दिशा के प्रभावक तत्त्व से बैठाया जाए ताकि प्रकृति उस उपयोग में साधक बने, बाधक नहीं। प्रकृति का साधक बनना ही 'शुभयोग' या 'इष्टसिद्धि' है और बाधक बनना ही 'अशुभयोग' या 'अनिष्टसिद्धि' है।

2.1. 2 शांतिदाई ऐशान दिशा—

प्रकृति-चक्र का प्रस्थान-बिंदु है ऐशान। उसका प्रभावक तत्त्व है जल, जो शांति का प्रतीक है, इसीलिए ऐशान दिशा शांतिदायक है। इस दिशा का अधिष्ठाता है 'ईशान', जिसे शांतिप्रदायक माना गया है। जैनदर्शन में 'तीर्थंकर' शब्द भी 'शांतिप्रदायक' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। धर्म-चक्र के इन प्रवर्तकों का स्थान, देवालय, इसीलिए ऐशान दिशा में बनाया जाता है।

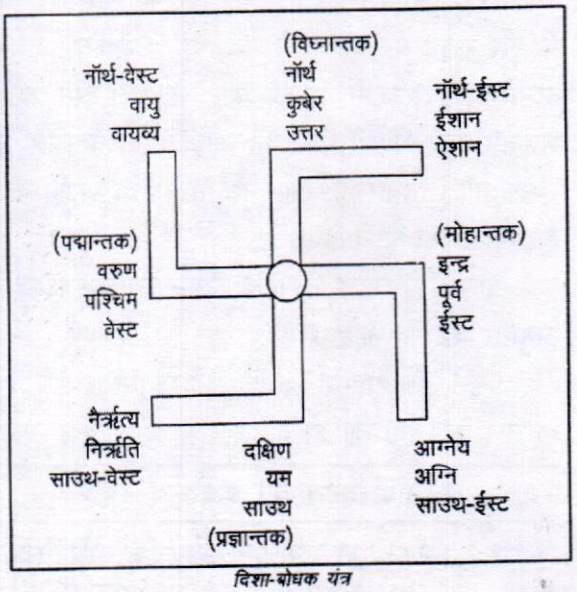

दिशा-बोधक यंत्र

जल-संसाधन और उससे लगे हुए देवालय या पूजा-कक्ष के लिए ऐशान (उत्तर-पूर्व) का विधान है; क्योंकि पूर्व से उदित होते हुए सूर्य की किरणें जल को शुद्ध बनाए रखती हैं और स्नान तथा पूजा के लिए उपस्थित लोगों का तन-बदन प्रफुल्लित कर देती हैं, उन्हें विटामिन 'डी' भी देती हैं।

प्रकृति का सबसे बड़ा वरदान सूर्य है। उनका स्वागत करने के लिए ही मानो पूर्व या पूर्वोत्तर में सिंह-द्वार, प्रवेश-द्वार, अन्य द्वार तथा बहुत-सी खिड़कियाँ बनाने का विधान है। 'पूर्वोत्तर' यानी 'ऐशान' दिशा में भूमि (ग्राउंड लेवल) दक्षिण-पश्चिम की अपेक्षा नीची रखी जाए, ताकि सूर्य की किरणें अधिक-से-अधिक मात्रा में गृह प्रवेश करके वातावरण को प्रदूषण से मुक्त कर सकें।

वास्तव में प्रकृति का चक्र ही दक्षिणावर्त है, सूर्य का भ्रमण इसका सबसे बड़ा प्रमाण है, उसी के अनुकरण पर घड़ी चलती है, बिजली का पंखा चलता है; चक्कर काटने वाली हर चीज दक्षिणावर्त चलती है, जब तक कि कोई विशेष व्यवस्था न की गई हो।

इसीलिए प्राय: सभी शुभ कार्य ऐशान दिशा में उन्मुख होकर करने से सफल होते हैं, उदाहरण के लिए चक्रवर्ती की विजय-यात्रा इसी दिशा से आरंभ होती है; इष्टदेव की परिक्रमा इसी दिशा से दक्षिण-पूर्व होते हुए आगे बढ़ती है इसीलिए दक्षिणावर्त परिक्रमा को 'प्रदक्षिणा' भी कहते हैं।

दिशाओं के संबंध में व्यावहारिक नियम—

ऐशान की भाँति अन्य दिशाओं के संदर्भ में भी जो नियम या चेतावनी या परामर्श हैं, वे सभी या तो प्रकृति को ध्यान में रखकर हैं या लोक-व्यवहार की रक्षा के लिए हैं इसलिए उनका पालन यथासंभव अवश्य किया जाए। उनके पालन से कोई हानि होती दिखे तो उनके पालन से होने वाले लाभ और हानि की तुलना कर ली जाए और लाभ की मात्रा अधिक दिखे तो उनका पालन किया जाता रहे। इन नियमों की व्यवहारिकता के कुछ उदाहरण आगे वर्णित हैं।

घर में द्वार यथासंभव आमने-सामने हों ताकि कड़ी, (लिंटर) और छत ढालने में असुविधा से बचा जा सके। सीढ़ियाँ या जीने का द्वार उत्तर या दक्षिण की ओर हो तो अशुभ फल देगा; शौचालय (लेट्रिन) का द्वार पूर्व में हो तो हानिकारक होगा इत्यादि।

2.2 शेषनाग-चक्र—

भूमि पर प्रस्तावित निर्माण और उसके विभिन्न भागों की दिशा पर तो विचार किया ही गया है, यह भी विचार किया गया है कि निर्माण किस दिशा से शुरू किया जाए। उदाहरण के लिए शेषनाग चक्र के अनुसार नींव आदि के लिए भूमि की खुदाई उस स्थान से शुरू नहीं की जाए, जहाँ नाग का अस्तित्व हो। यहाँ 'नाग' या 'शेषनाग' का कथन मात्र प्रतीकात्मक है। जैसे कि नाग के सिर भाग पर पैर रखने पर वह हानि नहीं पहुँचा सकता, जबकि अन्य कहीं पैर रखने पर वह काट लेता है। इसी प्रकाश शेषनाग चक्र में भी नाग की आकृति के अनुसार उन स्थलों को छोड़कर ही 'खात' के नियमों के पालन करते हुए खुदाई करानी चाहिए।

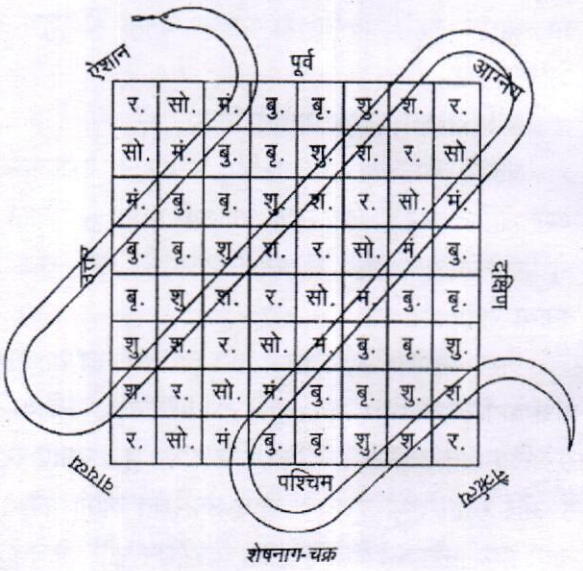

शेषनाग-चक्र

वास्तव में 'खात' के लिये नियम ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पालना चाहिए।

इससे ज्ञात होता है कि दिशाओं के निर्धारण में ज्योतिष की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है; यही कारण है कि वास्तुविद्या के ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान भी आवश्यक माना गया है।

2.3 निर्माण कार्य की रूपरेखा—

2.3.1 लेआउट प्लान : रेखाचित्र और नक्शा—

कार्यक्रम के अनुसार मकान या मंदिर का लेआउट प्लान और नक्शा बना लिया जाए। 'लेआउट' यानी पद-विन्यास के रेखांकन में वास्तु-विद्या के साथ ज्योतिष, गणित, लोक-व्यवहार आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। वास्तु-विद्या में ऐसी कई परम्पराएँ प्रचलित हैं, यथा—शेषनाग-चक्र, वास्तुपुरुष-मंडल, वृषवास्तु-चक्र आदि।

इन विभिन्न चक्रों के माध्यम से निम्नलिखित इक्कीस अंगों के शुभ-अशुभ फल पर विचार किया जाए; क्षेत्रफल,

आय, नक्षत्र, गण, दिशा, वैर, व्यय, तारा, नाडी, राशि, स्वामी, गृहनाम, अंश, लग्न, तिथि, वार, करण, योग, वर्ग, तत्त्व और आयु।

ये सब वास्तव में नुस्खे या फार्मूले हैं जिनसे यह जाना जाता है कि गृहस्वामी, स्थपति आदि मकान या मंदिर का कौन-सा भाग कहाँ, कब, किस तरह बनाएँ ताकि उन्हें अशुभ नहीं बल्कि शुभ फल मिले। ये नुस्खे आवश्यकता पड़ने पर निर्णायक भूमिका भी निभाते हैं।

ये नुस्खे गूढ हैं और आधुनिक निर्माताओं को अव्यावहारिक भी लग सकते हैं; तथापि इनकी उपयोगिता है क्योंकि 1. इन्हें वास्तु-विद्या के आचार्यों ने लंबे अनुभव के आधार पर लिखा है, 2. इनमें ज्योतिष, गणित आदि का समावेश है जो वैज्ञानिक विद्याएँ हैं, 3. इनके पालन से शुभ फल और उल्लंघन से अशुभ फल मिलते हुए देखे गए हैं, 4. 'वत्थु-सार-पयरण' में विशेष रूप से लिखा है कि "जैसे कन्या और वर की कुंडली का मिलान किया जाता है वैसे ही गृहस्वामी और गृह-भूमि की राशि आदि का मिलान भी किया जाना चाहिए।" इनका पालन करते हुए भी आधुनिक वैज्ञानिक रीति-नीति अपनाई जा सकती है।

2.3.2 वास्तु-पुरुष मंडल—

वास्तुपुरुष-मंडल से मकान या मंदिर के अधिष्ठान (चौकी), स्तंभ, प्रस्तार, कर्ण, स्तूपी, शिखर आदि भागों की आनुपातिक संयोजना में सहायता मिलती है। इससे संकेत मिलता है कि वास्तु-पुरुष के केश, मस्तक, हृदय, नाभि आदि मर्म-स्थान जहाँ पडते हों, वहाँ स्तंभ नहीं बनाया जाए।

मकान या मंदिर की भूमि (मंडल) पर पेट के बल (अधोमुख) या पीठ के बल (ऊर्ध्व-मुख) एक विशेष मुद्रा में लेटे हुए रेखांकित पुरुष—'वास्तु-पुरुष' की परिकल्पना का मूलस्रोत शोध का विषय है परन्तु उससे बहुत पहले 'लोकपुरुष' की अनूठी परिकल्पना जैनशास्त्रकार लिपिबद्ध कर चुके थे। 'पुराण-पुरुष' के रूप में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ किंवा आदि-ब्रह्मा की प्रसिद्धि समूचे भारतीय साहित्य में है। 'कालपुरुष', 'तुलापुरुष', लौहपुरुष', 'महापुरुष' आदि की परिकल्पनाएँ भी उल्लेखनीय हैं।

2.3.3 आयादि-षड्वर्ग (वस्थु-सार-पयरण से)—

आय, नक्षत्र, राशि, व्यय, अंश और तारा—ये छह मुद्दे ही 'आयादि-षड्वर्ग' हैं। 'विश्वकर्म-प्रकाश' नामक ग्रंथ की व्यवस्था इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है; "जिस घर की लंबाई ग्यारह हाथ से अधिक बत्तीस हाथ तक हो; उसमें आयादि का विचार करना चाहिए। जो घर इससे अधिक लंबा हो, टूटा-फूटा हो, घास-फूस का बना हो; उसमें आयादि का विचार अनावश्यक है।" 'वत्थुसार-पयरण' में एक उदाहरण देकर कहा गया है कि "जिस प्रकार वधू और वर में परस्पर प्रेम-प्रीति होनी चाहिए; उसी प्रकार गृह और गृहस्वामी के नक्षत्र, राशि आदि का मिलान अत्यन्त आवश्यक है।"

प्रस्तावित भूमि की अंगुलों (लगभग एक इंच) में लंबाई से चौड़ाई का गुणा करके गुणनफल में आठ का भाग दिया जाए क्योंकि 'आय' आठ प्रकार के होते हैं। भाग देने पर जो संख्या शेष बचे उसी के क्रमांक का आय उस भूमि का माना जाए। जैसे भूमि की लंबाई 177 अंगुल × चौड़ाई 127 अंगुल = 22479 अंगुल क्षेत्रफल; जिसमें 8 का भाग देने पर 7 शेष बचे इसलिए सातवें क्रमांक का आय-'गज' (हाथी) माना जाए। आठ आय और उनकी दिशाएँ हैं; ध्वज-पूर्व, धूम्र-आग्नेय, सिंह-दक्षिण, श्वान-नैर्ऋत्य, वृष-पश्चिम, खर-वायव्य, गज-उत्तर, कौआ-ऐशान। इन आयों में ध्वज, सिंह, गज और वृष 'आय' शुभ हैं, शेष चारों अशुभ हैं।

उक्त गुणनफल में नक्षत्रों की संख्या 'सत्ताईस' का भाग देने पर जो शेष बचे, उसके क्रमांक का नक्षत्र समझा जाए। उदाहरण के लिए उक्त गुणनफल 22479 में 27 का भाग देने पर 12 शेष बचे इसलिए बारहवें क्रमांक का नक्षत्र 'उत्तरा-फाल्गुनी' माना जाए।

नक्षत्र के संदर्भ में जो क्रमांक आए, उसमें चार का गुणा करने पर आए गुणनफल में संख्या नौ का भाग दिया जाए; जो लब्धि (भागफल) आए वह उसके क्रमांक की राशि मानी जाए। उदाहरण के लिए उपर्युक्त नक्षत्र का क्रमांक (12 × 4 = 48 ÷ 9 लब्धि हुई 5; इसलिए पाँचवें क्रमाक की राशि सिंह हुई।

नक्षत्र के संदर्भ में आए क्रमांक 12 में व्ययों की संख्या 8 का भाग देने पर शेष बचा 4; इसलिए चौथा व्यय 'क्षय' माना जाए। व्यय की यह संख्या, 4 उपर्युक्त आय की संख्या 7 से कम है इसलिए यह शुभ है; क्योंकि आय से व्यय कम ही होना चाहिए। इस प्रसंग में एक बहुत ही मनोरंजक किन्तु सटीक उदाहरण दिया जा सकता है 'कमंडलु' का; जिसमें जल की आय का मुख बड़ा और जल के व्यय की टोंटी छोटी होती है; इसीलिए कहना होगा कि 'कमंडल में भूमंडल का अर्थशास्त्र छिपा है।"

भूमि के क्षेत्रफल 22479 में उस मकान (की जाति या प्रकार) के अक्षरों की संख्या जोड़ी जाए, जो उस भूमि पर निर्मित हो रहा है। मान लें उस मकान की जाति है 'विजय' इसलिए 3 अंक जोड़ने पर संख्या हुई 22482; इसमें 4 की संख्या भी जोड़ी जाए क्योंकि आयादि-षड्वर्ग में व्यय का स्थान चौथा है; तब योग हुआ 22482 + 4 = 22486; इसमें अंशों की संख्या 3 का भाग देने पर शेष बचा 1; इसलिए पहले क्रमांक का अंश 'इंद्र' माना जाए।

'तारा' जानने के लिए उपर्युक्त नक्षत्र 'उत्तरा फाल्गुनी' से गृहस्वामी के नक्षत्र 'रेवती' तक गिनने पर 16 की संख्या आती है; उसमें तारा-संख्या 9 से भाग देने पर शेष बचा 7; इसलिए सातवें क्रमांक की तारा मानी जाए।

गृह और गृहस्वामी की राशि आदि का मिलान—

गृह और गृहस्वामी की योनि, गण, राशि, तारा और नाडी का मिलान जन्म-नक्षत्र से होना आवश्यक है। जन्म-नक्षत्र का ज्ञान न हो तो गृहस्वामी के प्रसिद्ध नाम या बोलचाल के नाम से जो नक्षत्र आता हो उससे मिलान किया जाए।

गृह का नाम उसके आकार-प्रकार के अनुसार वास्तु-विद्या में जो निर्धारित हो; उसका प्रयोग किया जाए; निर्धारित न हो सके तो जो नाम उस गृह का प्रचलित हो, उसका प्रयोग किया जाए या फिर अपनी पसंद का कोई भी नाम रखकर उसी से गृहस्वामी के नक्षत्र से मिलान किया जाए।

मंदिर और गृहस्वामी के नक्षत्र से मिलान करना हो, तो मंदिर का वह नाम माना जाए, जो उसके मूलनायक का हो; अर्थात् मंदिर में मुख्य-मूर्ति जिस तीर्थंकर की हो, उसी के नाम से वह मंदिर प्रसिद्ध होता है। उदाहरणस्वरूप किसी मंदिर में यदि आदिनाथ स्वामी की प्रतिमा मूलनायक के रूप में विराजमान है तो उस मंदिर का नामकरण 'आदिनाथ स्वामी दिगंबर जैन मंदिर'-इस तरह से किया जाएगा। इस मिलान में यह तालिका सहायक होगी ;

2.4 आधुनिक शैली का निर्माण

2.4.1 आवास गृहों का सामूहिक निर्माण—

भूमि, समय, श्रम और धन की बचत के लिए और सहकारिता की दृष्टि से सामूहिक आवास योजनाएँ अब सर्वत्र प्रचलित हो रही हैं। यद्यपि इनके अधिक लाभ हैं; किन्तु कुछ हानियाँ भी हैं। अत: इनमें भूमि, भवन और साझा व्यवस्था में विवादों से बचने के लिए दीवारें, जीना, गृह-वाटिका (किचन गार्डन) आदि कम-से-कम बनाए जाएँ।

सामूहिक आवास योजना के लिए भूखंड के चयन में यह ध्यान रखना आवश्यक है। कि बरसात के पानी का बहाव उत्तर-पूर्व की ओर हो। इसी तरह सड़कों का निर्माण उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में हो। कॉलोनी के गेट दो हों, पूर्व में और उत्तर में। यह प्रयास किया जाए कि आवास चतुर्भुज आकार में हों; उनमें प्रात:कालीन सूर्य किरणों का प्रवेश हो सके।

इस प्रकार के निर्माण में सामाजिक और वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तिगत और सामूहिक सुविधाएँ जुटाई जाएँ। सहकारिता की सद्भावना का अतिरिक्त लाभ उठाकर सांस्कृतिक, साहित्यिक और व्यावसायिक कार्य-कलाप हाथ में लिए जाएँ। सहकारिता के इस माध्यम से अनेकता में एकता की स्थापना द्वारा देश सेवा भी की जा सकती है।

2.4.2 बहुमंजिले (मल्टी-स्टोरीड) भवन—

वास्तु विद्या के नियमों और उपनियमों की दृष्टि से, एक बहुमंजिला भवन भी एक प्रकार की सामूहिक आवास योजना है। वैज्ञानिक और सामूहिक सुविधाएँ दोनों में समान रूप से चाहिए।

भूखंड का ढलान उत्तर–पूर्व में हो, दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र के तल की ऊँचाई अधिक हो। भवन की चारों ओर खुली जगह तथा दक्षिण–पश्चिम में कम खाली स्थान छोड़ें। पूर्व में खुली जगह पश्चिम से अधिक हो। उत्तर एवं उत्तर–पूर्व में खुली जगह दक्षिण एवं दक्षिण–पश्चिम से अधिक हो। भूखंड का दक्षिण–पश्चिम कोण समकोण हो, 90^0, जिससे चौकोर या आयताकार मकान बन सकें। उत्तर पूर्व या दक्षिण–पूर्व में मार्ग हों।

निर्माण कार्य प्रारंभ करने से पूर्व ही कुओं या ट्यूबवेल, उत्तर–पूर्व अर्थात् 'ईशान कोण' में बनाया जाए। छत पर पानी की टंकी वायव्य कोण में हो। अग्नि–शमन आदि की वैज्ञानिक व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाए।

प्रथम तल से ऊपरी तल की ऊँचाई कम रखनी चाहिए, परन्तु बहुमंजिलें भवनों में ऐसा करना कठिन होता है अत: सबसे ऊपर की मंजिल की ऊँचाई थोड़ी कम रखी जा सकती है। ऊपर की मंजिलों का निर्माण इस तरह से करें कि प्रात:कालीन सूर्य की किरणें सभी आवासों को प्राप्त हों और वायु का प्रवेश किसी भी आवास में नहीं रुके।

ज्यादातर आवासों की बालकनी पूर्व और उत्तर दिशा में ही हो, और जहाँ तक संभव हो दक्षिण या पश्चिम दिशा में नहीं। स्टोर आदि आवास के दक्षिण–पश्चिम भाग में ही हों।

सीढ़ियाँ दक्षिण या पश्चिम दिशा में या जहाँ तक संभव हो दक्षिणी–पश्चिमी क्षेत्र में बनाएँ, उत्तर–पूर्व में नहीं। आवासों के मुख्य दरवाजे पूर्व, उत्तर–पूर्व और उत्तर–पश्चिम की ओर हों। रसोईघर दक्षिण–पूर्व या उत्तर–पश्चिम में हों।

छोटे वाहनों की पार्किंग का जमीन के अंदर (अंडरग्राउंड) स्थान उत्तर–पूर्व में और बेसमेंट उत्तर या पूर्व क्षेत्र में हों, दक्षिण एवं पश्चिम में नहीं। उत्तर–पूर्व के खुले स्थान में पार्क हों। वृक्ष कम ऊँचाई वाले हों ताकि वायु–संचार नहीं रुके। दक्षिण दिशा में बड़े वृक्ष भी लगाए जा सकते हैं।

2.4.3 औद्योगिक उपयोग के भवन—

औद्योगिक संस्थान के लिए भूखंड के पूर्व में, उत्तर में या उत्तर–पूर्व में मार्ग उत्तम होता है। प्रवेशद्वार उत्तर–पूर्व में या पूर्व में या उत्तर–पश्चिम में हो। औद्योगिक भवनों में दक्षिणी–पश्चिमी भाग ऊँचा बनाया जाए। संस्थान का प्रशासनिक भवन फैक्टरी भवन से नीचा हो और मध्य में उत्तर या पूर्व दिशा में हो। जनरेटर का कमरा दक्षिण में हो या दक्षिण–पूर्व में। भूखंड के उत्तर–पूर्व में अन्य दिशाओं की अपेक्षा अधिक खुला स्थान, दरवाजे, खिड़कियाँ आदि हों। सुरक्षा कर्मचारियों के लिए स्थान उत्तर–पश्चिम या उत्तर में बनाएँ। कर्मचारियों के आवास दक्षिण–पूर्व या उत्तर–पश्चिमी औद्योगिक भवन की दीवार से दूर हों। शौचालय दक्षिण–पश्चिम (नैऋत्य कोण) में हो। भवन के दक्षिण और पश्चिम में अधिक ऊँचे वृक्ष लगाए जा सकते हैं। परन्तु भवन के पूर्व एवं उत्तर में कम ऊँचाई वाले वृक्षों के बगीचे–पार्क हों, जिससे सूर्य का प्रकाश न रुके। कुआँ या ट्यूबवेल पूर्व–उत्तर में, दीवार और गेट से थोड़ी दूर पर हो। उत्तर–पश्चिम में ओवरहेड टैंक स्थापित करें। भारी सामान का भंडारण दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र में और वाहनों की पार्किंग उत्तर–पश्चिम में हो। भारी मशीनरी दक्षिण, पश्चिम या दक्षिण–पश्चिमी दिशा में स्थापित करें। आग संबंधी सभी कार्य जैसे भट्टी, बॉयलर आदि दक्षिण–पूर्व में रखें।

उद्योग में लगने वाली सामग्री दक्षिण, पश्चिम, या दक्षिण–पश्चिम दिशा में रखने का स्थान (स्टोर) हो। उत्तर–पूर्व में तैयार माल रखें। अधबना माल पश्चिमी क्षेत्र में और तैयार माल उत्तर–पश्चिम में रखा जा सकता है। कच्चे माल का उत्पादन दक्षिण–पश्चिम से प्रारम्भ हो। उसकी निकासी उत्तर–पूर्व की ओर से हो।

2.5 वास्तु–विद्या के नए चमत्कार—

भवनों के निर्माण में यंत्रों की भूमिका दिनोंदिन बढ़ रही है। परम्परागत सामग्री का स्थान कृत्रिम सामग्री लेती जा रही है। रेडीमेड दीवारों आदि को नट–बोल्ट से कसकर बड़े-बड़े भवन बनाए जा सकते हैं; नट–बोल्ट खोलकर वही भवन स्थानान्तरित किये जा सकते हैं।

विद्युत–उपकरणों, कम्प्यूटरों, यंत्र–मानवों (रोबोट्स) आदि पर आधारित व्यवस्थाओं और सुविधाओं ने भवनों को इतना चमत्कारी, स्वयंचल (ऑटोमैटिक) और संवेदनशील (सेंसिटिव) बना दिया है कि उनके लिए एक नया शब्द चल पड़ा है, 'इंटैलिजेंट बिल्डिंग' (समझदार भवन)।

भवनों की सुरक्षा, अंतरंग यातायात, वार्तालाप आदि में इंटरकॉम, शॉर्ट–सर्किट टी. वी. आदि के साथ अब कम्प्यूटर की सहायता भी ली जाने लगी है। अवांछित व्यक्तियों और सामान के प्रवेश का निषेध, वातावरण का नियंत्रण (एयर कंडीशनिंग), आग, तूफान, भूकंप आदि की भविष्यवाणी और उनसे बचाव, विद्युत्–आपूर्ति और जल के शुद्धीकरण की स्वचालित व्यवस्था, भवनों का रखरखाव और साज–शृंगार (इंटीरियर डेकोरेशन) आदि यंत्रचालित और कप्यूटरीकृत हो चले हैं।

बहु-मंजिले भवनों में उत्थापक (लिफ्ट) और चक्र–सोपान (एलिवेटर) की व्यवस्था साधारण बात हो गई है। बटन चटकाने भर से रिमोट कंट्रोल से द्वार खुलते या बंद होते हैं, परदे उठते गिरते हैं, यहाँ तब कि बाहर चल रही शीतल–सुखद बयार की अगवानी में खिड़कियाँ अपने आप खुल पड़ती हैं और वातानुकूलन स्थगित हो जाता है। प्राकृतिक प्रकाश का आर्थिक लाभ उठाने के लिए कृत्रिम प्रकाश–व्यवस्था स्वयं स्थगित हो जाती है। यह निश्चित संभावना कितनी आनंदवर्धक है कि विज्ञान के अनंत आविष्कारों से वास्तु–विद्या का भविष्य भी अद्‌भुत–अपूर्व चमत्कारों से भर उठेगा।

2.6 वास्तु–विद्या पर वैदिक साहित्य—

वास्तु–विद्या पर सर्वप्रथम 'अथर्ववेद' में प्रकाश डाला गया, फिर पुराण, ज्योतिष, प्रतिष्ठा आदि के ग्रंथों में भी इस विषय को प्रसंगानुकूल स्थान दिया गया। 'डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर' में डॉ. प्रसन्न कुमार आचार्य ने वास्तु–विद्या पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रकाश डालने वाले लगभग दो सौ सात ग्रंथों के नाम संकलित किए हैं, उनमें अनेक जैन ग्रंथ भी हैं। शैली की दृष्टि से ये ग्रंथ दक्षिणी और उत्तरी परम्पराओं में रखे जाते हैं।

2.6.1 दक्षिणी परम्परा के मुख्य ग्रंथ हैं–शैवागम, वैष्णव पंचरात्र, अत्रि–संहिता, वैखानसागम, दीप्ति–तन्त्र; तंत्र–समुच्चय आदि। **उत्तरी परम्परा के प्रमुख हैं :** मत्स्य पुराण, अग्नि–पुराण, भविष्य पुराण, बृहत्–संहिता (ज्योतिष ग्रंथ); किरण–तंत्र, हयशीर्ष–पंचरात्र, विष्णुधर्मोत्तर–पुराण (चित्र–कला के लिए विशेष), और हेमाद्रि, रघुनंदन आदि के प्रतिष्ठा ग्रंथ। वास्तु–विद्या पर स्वतंत्र रूप से लिखे गए **वैदिक ग्रंथों** में विशेष उल्लेखनीय हैं : विश्वकर्मा का शिल्प–शास्त्र, मय–मत, मानसार, काश्यप–शिल्प (अंशुमद्–भेद), अगस्त्य–सकलाधिकार, सनत् कुमार–वास्तुशास्त्र, शिल्पसंग्रह, शिल्परत्न, चित्र–लक्षण दक्षिणी परम्परा में; और विश्वकर्म–प्रकाश, समरांगण–सूत्रधार–मंडन, वास्तु–रत्नावली, वास्तु–प्रदीप आदि।

2.6.2 करणानुयोग के ग्रंथों में वास्तु-विद्या—

जैनपुराणों तथा करणानुयोग के प्रायः सभी ग्रंथों से वास्तु–विद्या और शिल्पशास्त्र पर विशद प्रकाश पड़ता है। तीन लोक, मध्यलोक, जम्बूद्वीप, मेरु, समवसरण आदि की रचना पर सहस्रों गाथाएँ और श्लोक हैं। प्रतीत होता है कि उन रचनाओं से विशाल राज–प्रासाद, भव्य जिनालय आदि के रूप–निर्धारण में प्रेरणा ली गई थी। जिनालय तो

स्पष्टरूप से समवसरण का लघु रूप होता है। नन्दीश्वरद्वीप की रचना आज भी आष्टाह्निक (अठाई) पर्वों पर की जाती है।

करणानुयोग का प्राचीन किन्तु अनुपलब्ध ग्रंथ है **'लोयविभाग'**, जिसका संस्कृत रूपान्तर 'लोक–विभाग' के ही नाम से मुनि सिंह सूरि (लगभग 11वीं शती) ने किया था। उन्होंने लिखा है कि मूल **'लोकविभाग'** की रचना पल्लववंशी कांची नरेश सिंहवर्मा के शासन–काल में **शक संवत् 380 (302 ई.)** में **मुनि सर्वनन्दी** ने **पाटलिक** नामक ग्राम में की थी; परन्तु यह ग्रंथ इससे भी पूर्व रहा प्रतीत होता है, क्योंकि 'लोयविभाग' का उल्लेख 'तिलोयपण्णत्ती' (176 ई.) में कई बार हुआ है। 'नियमसार' की सत्रहवीं गाथा में सन्दर्भित 'लोय–विभाग' यही ग्रंथ माना जाए, तो उसका रचनाकाल आचार्य श्री कुन्दकुन्द (52 ई. पू. से 48 ई. तक) से पूर्व मानना होगा।

एक और अनुपलब्ध ग्रंथ है 'ज्योतिष्करण्डक', जो कि 'सूर्य–प्रज्ञप्ति' नामक प्राचीन ग्रंथ पर आधारित है और जिस पर आचार्य पादलिप्त सूरि (5वीं शती) की 'प्रकरण' टीका तथा आचार्य मलयगिरि की टीका उपलब्ध है।

उपलब्ध ग्रंथों में सर्वाधिक विस्तृत और सूचनाप्रधान ग्रंथ है आचार्य यतिवृषभ का 'तिलोयपण्णत्ती', जिसका अनुसरण अनेक आचार्यों ने किया है। उसमें अनेक नगरियों के विस्तृत विवरण हैं। आवासगृह, जलाशय, बाजार, परकोटा, प्रवेशद्वार, राजभवन, गुफा, स्तूप, मंदिर, मानस्तम्भ, मेरु आदि की लम्बाई–चौड़ाई, ऊँचाई–गहराई, नाप–जोख आदि तक बताए गए हैं। तीर्थंकर के समवसरण का वर्णन तो और भी विस्तार से है। आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का त्रिलोकसार (11वीं शती), आचार्य पद्मनन्दि का 'जंबूद्दीवपण्णत्ती' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त भी कुछ उल्लेखनीय ग्रंथ हैं : औपपातिकसूत्र, जीवाजीवाभिगम, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, **जिनभद्र गणी** का 'क्षेत्रसमास' और 'संग्रहणी', बृहत्–क्षेत्रसमास (त्रैलोक्य–दीपिका), चंद्र सूरि (12वीं शती) द्वारा संकलित 'बृहत्–संग्रहणी', प्रद्युम्न सूरि (13वीं शती) का 'विचारसार प्रकरण', रत्नशेखर सूरि (14वीं शती) का 'लघुक्षेत्रसमास', सोमतिलक सूरि (14वीं शती) का 'बृहत्–क्षेत्रसमास', आदि।

2.6.3 प्रतिष्ठा-पाठों में वास्तु–विद्या–

जिनवाणी की भाँति वास्तु–विद्या भी आरंभ में गुरु–शिष्य परम्परा से मौखिक रूप में प्रचलित रही। वास्तु–विद्या का ज्ञाता और वास्तु–निर्माण में कुशल सूत्रधार यह विद्या विरासत में लेता और विरासत में देता रहा। स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में नहीं बल्कि प्रतिष्ठा–ग्रंथ के एक अंग के रूप में या फिर वास्तु–विद्या और मूर्ति–कला पर संयुक्त ग्रंथ के रूप में लगभग तेरहवीं शती से इसे लिखित रूप मिला। संभवतः इसका एक कारण यह रहा कि ये विषय एक–दूसरे से इतने अधिक जुड़े हुए हैं कि उन पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखना उस समय व्यावहारिक प्रतीत नहीं हुआ होगा।

ऐसी रचनाओं में पाँचवीं शती के आचार्य पादलिप्त सूरि की 'निर्वाणकलिका', दसवीं शती के उत्तरार्द्ध के आचार्य वीरनन्दी द्वितीय की 'शिल्पिसंहिता' और आचार्य इंद्रनन्दि का 'प्रतिष्ठा–पाठ', लगभग ग्यारहवीं शती के आचार्य ब्रह्मदेव का 'प्रतिष्ठातिलक'; पंडित आशाधर का 'प्रतिष्ठा सारोद्धार' (1228 ई.) और 'पूजा–पाठ', उनके समकालीन पंडित ठक्कुर फेरु का 'वत्थु–सार-पयरण' (1315 ई.) प्रसिद्ध नाटककार हस्तिमल्ल का 'प्रतिष्ठापाठ', बारहवीं–तेरहवीं शती के पण्डित नेमिचंद्रदेव का 'प्रतिष्ठा–तिलक', तेरहवीं शती के नेमिचंद्र सूरि (उपर्युक्त पण्डित जी ?) प्रवचन-सारोद्धार और उस पर उसी समय के सिद्धसेन सूरि (देवभद्र के शिष्य) की तत्त्व ज्ञान–विकासिनी नामक टीका, उपाध्याय सकल चन्द्र का प्रतिष्ठाकल्प का, आचार्य उग्रादित्य का 'कल्याण–कारक' आ. श्री जयसेन द्वारा लिखित 'प्रतिष्ठापाठ' (वसुबिन्दु) एवं वसुनन्दि आचार्य का 'प्रतिष्ठापाठ' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आ. श्री जयसेनकृत 'प्रतिष्ठापाठ' में मंदिर के निर्माण के संबंध में विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।

2.6.4 पंडित आशाधर का 'प्रतिष्ठा–सारोद्धार—

भारतीय साहित्य की अधिकांश विधाओं में पंडित आशाधर का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 1228 ई. में लिखे गए उनके 'प्रतिष्ठा–सारोद्धार' में मूर्ति–प्रतिष्ठा के माध्यम से वास्तु–विद्या का भी विधान है। 'जिन–यज्ञकल्प' के दूसरे नाम से भी प्रसिद्ध 'प्रतिष्ठा–सारोद्धार' प्रौढ़–प्राञ्जल संस्कृत में 971 श्लोकों के छह अध्यायों में विभक्त है—1. सूत्र–स्थापन, 2. तीर्थ–जल का लाया जाना आदि, 3. यागमंडल की पूजा, 4. जिन–प्रतिष्ठा, 5. अभिषेक आदि एवं 6. सिद्ध आदि की प्रतिष्ठा। अंत में ग्रंथकार की विस्तृत प्रशस्ति है।

जिनवाणी के अनन्य उपासक पंडित आशाधर ने इस ग्रंथ में शुद्ध आम्नाय के अनुसार गृहस्थाचार्य, प्रतिष्ठाचार्य आदि को महत्त्व देते हुए मंदिरों के जीर्णोद्धार का विधान भी किया है।

2.6.5 ठक्कुर फेरु का 'वत्थु–सार–पयरण'–

वास्तु–विद्या पर स्वतंत्र और सांगोपांग रूप से वर्णन करने वाला कदाचित् एकमात्र प्रकाशित जैनग्रंथ है **ठक्कुर फेरु** का **'वत्थुसार–पयरण'** अर्थात् 'वास्तुसार–प्रकरण'। 1315 ई. में लिखित इस **प्राकृत ग्रंथ** में क्रमशः 158, 54 और 70 गाथाओं के क्रमशः तीन अध्याय हैं—गृह–प्रकरण, बिंबपरीक्षा–प्रकरण, प्रासाद (मंदिर)–प्रकरण। इतनी कम गाथाओं में वास्तु–विद्या और शिल्प–कला के अधिसंख्य पक्षों का विधान इस ग्रंथ की एक विशेषता है। साथ ही इसमें दिगम्बर–श्वेताम्बर भेदभाव नहीं है। इसके संदर्भ 'आचार–प्रदीप', 'श्राद्ध–विधि' आदि जैनेतर ग्रंथों में भी दिए गए हैं।

'रत्न–परीक्षा' नामक ग्रंथ के भी लेखक ठक्कुर फेरु दिल्ली के निकट करनाल के धंध कुल में उत्पन्न कालिक सेठ के प्रपौत्र और ठक्कुर चंद्र सेठ के पुत्र थे। उन्होंने यह ग्रंथ उस समय लिखने का साहस किया, जब तत्कालीन शासक अलाउद्दीन खिलजी से सभी धर्मों के अनुयायी त्रस्त थे।

'वत्थु–सार–पयरण' का प्रकाशन जैन विविध ग्रंथमाला, जयपुर से 1936 में हुआ था; इसके संपादक–अनुवादक पं. भगवानदास जैन थे। प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में यह आधार–ग्रंथ हैं।

2.6.6 अन्य विषयों के ग्रंथों में वास्तु–विद्या—

वास्तु–विद्या के लिए पुराण–साहित्य का योगदान भी महत्त्वपूर्ण हैं। इस विषय पर आचार्य श्री जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' (783 ई.) में अत्यधिक विस्तार से लिखा है। उनके बाद उल्लेखनीय हैं : आचार्य पुष्पदन्त (10वीं शती) का अपभ्रंश 'महापुराण', आचार्य हेमचन्द्र सूरि (12वीं शती) का 'प्राकृत तिसिट्ठ–महापुरिस–गुणालंकार', आचार्यकल्प पंडित आशाधर (13वीं शती) का 'त्रिषष्टि–शलाकापुरुष–चरित' आदि।

इनके अतिरिक्त काव्य, नाटक, चंपू आदि ग्रंथों में विभिन्न नगरों, राजाप्रसादों, जिनालयों आदि के वर्णन आते हैं; उनसे भी वास्तु–विद्या के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ज्योतिष के ग्रंथों में भी मकान, मंदिर आदि के निर्माण की विधि, मुहूर्त, फलाफल आदि पर विचार करते समय वास्तुविद्या के संदर्भ आते हैं। इसी प्रकार गणित, मंत्र–तंत्र और ऐसे ही अन्य विषयों के ग्रंथों में भी इस विषय के प्रसंग आते हैं। आचार्य उमास्वामी के नाम से प्रचलित एक श्रावकाचार ग्रंथ में भी लिखा है कि 'घर की किस दिशा में कौन–सा कक्ष हो।'

2.7 वास्तु–विद्या पर आधुनिक लेखन—

सामाजिक उत्थान, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, औद्योगिक प्रगति और वैज्ञानिक चमत्कारों ने मिलकर वास्तु विद्या का भी अभूतपूर्व विकास किया है। प्राचीन आचार्यों द्वारा बनाए गए नुस्खे और नियम बेकार साबित नहीं हुए हैं; परन्तु उनकी माँग को निर्माण की नई–नई विधियों, शैलियों, सामग्रियों आदि ने प्रभावित अवश्य किया है।

उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर वास्तु–विद्या पर नए ग्रंथ भी लिखे जा रहे हैं, प्राचीन ग्रंथों के आधार पर और स्वतंत्र चिंतन के आधार पर भी, शोध–खोज के स्तर पर और व्यावसायिक स्तर पर भी, भारत में और भारत के

बाहर भी। इन ग्रंथों का सर्वेक्षण और मूल्यांकन एक बहुत बड़ा काम है। जैनदृष्टि से यह काम किसी सीमा तक स्व. डॉ. यू. पी. शाह, प्रो. एम. ए. ढाकी और डॉ. गोपीलाल 'अमर' ने किया है। फिर भी इस विषय पर शोध–खोज की बहुत आवश्यकता है।

चूँकि वास्तु–विद्या के प्राचीन, मध्यकालीन और नवीन ग्रंथों में एक भी ऐसा नहीं है, जिसमें इस विद्या के प्रत्येक अंग और उपांग की सविस्तार व्याख्या वैज्ञानिक और तुलनात्मक दृष्टि से की गई हो; इसलिए यह शोध अधिक आवश्यक है। सामान्य दृष्टि से इस दिशा में डॉ. प्रसन्न कुमार आचार्य, डॉ. तारापद भट्टाचार्य, डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, श्री अमलानन्द घोष, प्रो. कृष्णदेव आदि ने कुछ काम किया है; परन्तु जैन दृष्टि से अभी पर्याप्त कार्य होना बाकी है। 'जैन आर्ट एंड आर्किटेक्चर' और 'जैन कला और स्थापत्य' के तीन–तीन खंड भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से 'आस्पेक्ट्स ऑफ जैन आर्ट एंड आर्किटेक्चर' ला. द. इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद से 'पैनोरमा ऑफ जैन आर्ट' टाइम्स ऑफ इंडिया नई दिल्ली से तथा कुछ अन्य ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। वे अच्छे हैं, किन्तु अपर्याप्त हैं। वास्तव में 'जैन वास्तु विद्या' पर एक विश्वकोश की आवश्यकता है।

2.8 गृहों में वास्तु शान्ति कब–कब करना—

वास्तुपूजां प्रकुर्वीत गृहारम्भ–प्रवेशने।।18।।
द्वाराभिवर्तने चैव, त्रिविधेच प्रवेशने।
प्रतिवर्षञ्च यज्ञादौ, तथा पुत्रस्य जन्मनि।।19।।
व्रतबन्धे विवाहे च, तथैव च महोत्सवे।
जीर्णोद्धारे सस्यन्मासे, धान्य–रक्षण एव च।।20।।
वज्राभिदूषिते भग्ने, सर्प–चाण्डाल–वेष्टिते।
उलूक–वासिते सप्त–रात्रौ काकाधिवासिते।।21।।
मृगाधिवासिते रात्रौ, गो–मार्जाराभिनादिते।
वारणाश्वादि–विरुते, स्त्रीणां युद्धाभिदूषिते।।22।।
कपोतक–गृहावासे, मधूनां निलये तथा।
अन्यैश्चैव महोत्पातै–दूर्षिते शान्तिमाचरेत्।।23।।

अर्थ—यजमान को गृहारम्भ, द्वार निर्माण, तीन प्रकार के गृहप्रवेश, (नूतन गृहप्रवेश, यात्रा से लौट कर आने पर गृहप्रवेश और जीर्णोद्धार के बाद गृहप्रवेश), प्रतिवर्ष यज्ञादिकाल में, पुत्र–जन्म, व्रतबन्ध, विवाह, बड़े महोत्सव, जीर्णोद्धार, धान्यरक्षण, बिजली–अग्नि आदि प्रकोप से दूषित, सर्प या चाण्डाल आदि से घिरा रहा हो, उल्लू एवं काग (कौवा) सात रात्रि तक निवास कर गये हों, हरिण का वास हो, रात्रि में गौ और बिल्ली आदि शब्द करते हों, हाथी–घोड़े विशेष शब्द करें, स्त्रियों के झगड़े हों, कबूतर वास करते हों, मधुमक्खियों के छत्ते हों एवं जिस घर में बड़े–बड़े उत्पात होते हों उस घर में शान्ति अवश्य करनी चाहिए अर्थात् णमोकार मन्त्र का या भक्तामरजी का अखण्ड पाठ कराकर पूजन करें अथवा शान्तिमण्डल या पञ्चपरमेष्ठी का विधानादि अवश्य करना चाहिए।

2.9 दिशाओं की अनुकूलतानुसार मकान में कक्षों का निर्धारण—

शिल्पशास्त्रियों ने सुखपूर्वक जीवनयापन करने हेतु मनुष्यों के सभी कार्यों के लिए दिशाओं की अनुकूलतानुसार मकान में कक्षों का निर्धारण किया है। जैसे—जन्म के लिए प्रसूतिगृह वायव्यकोण में बनाना चाहिए। शिशु की बुद्धि को पूर्णतया विकसित करने हेतु बालकक्ष भी इसी कोण में होना चाहिए। उसके अध्ययन हेतु अध्ययनकक्ष एवं पूजन

हेतु पूजाकक्ष के लिए ईशान कोण निश्चित है। इसी प्रकार मनोरंजनकक्ष दक्षिण या वायव्य में, विवाह पूर्व शयनकक्ष पूर्व या उत्तर में, विवाह पश्चात् पूर्व एवं ईशान दिशाएँ छोड़कर तथा गृहपति बनने के बाद नैऋत्य कोण में शयनकक्ष होना चाहिए। इस प्रकार जन्म से लेकर जीवनोपयोगी सभी कार्यों हेतु अनुकूल स्थानों का निर्धारण किया गया है किन्तु मरणकक्ष का निर्धारण किसी शिल्पज्ञ ने नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि हमारे ऋषियों–मुनियों को घर में किसी का भी मरण इष्ट नहीं था। अर्थात् उनका यह अभिप्राय रहा है कि मनुष्य को अपने जीवन में संन्यास धारण कर, गृहवास से विरक्त हो, अपनी आत्मा का कल्याण अवश्य करना चाहिए।

2.10 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-दक्षिण-पूर्व दिशा में क्या बनना चाहिए ?

(क) आवास ☐
(ख) रसोई घर ☐
(ग) खिड़कियाँ ☐

प्रश्न 2-प्रत्येक दिशा का एक.....होता है ?

(क) अधिष्ठाता देव ☐
(ख) देवालय ☐
(ग) शेषनाग ☐

प्रश्न 3-प्रतिष्ठा पाठ कौन से आचार्य के द्वारा लिखा गया है ?

(क) वसुनन्दि आचार्य ☐
(ख) आचार्य उग्रादित्य ☐
(ग) पं. आशाधर जी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-भूमि चयन में दिशा का महत्व कैसे होता है ?

प्रश्न 2-दिशाओं के संबंध में व्यवहारिक नियम क्या है ?

प्रश्न 3-ग्रह और ग्रहस्वामी की राशि आदि का मिलान कैसे करते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन ग्रंथों के अनुसार करणानुयोग एवं प्रतिष्ठा पाठों में वास्तु-विद्या किस का वर्णन प्रकार किया है ? विस्तृत विवेचन कीजिए।

पाठ 3—जिन मन्दिर निर्माण हेतु वास्तु नियम

मंदिर की अवधारणा

3.1 'मंदिर' शब्द का अर्थ और भावार्थ—

'मंदिर शब्द का अर्थ संस्कृत में देवालय भी होता है और आवासगृह भी; परन्तु हिन्दी में वह प्रायः देवालय के अर्थ में ही चलता है। जैन साहित्य में एक शब्द और भी इस अर्थ में विशेष रूप में चलता रहा है, वह है 'आयतन' जिसका प्रयोग जिनायतन के अन्तर्गत होने लगा और उसके भी बाद मंदिर, आलय, प्रासाद, गेह, गृह आदि शब्दों ने उसका स्थान ले लिया। 'जिनायतन' शब्द के प्रचलन से एक बात सूचित होती है कि मंदिर में 'जिन' भगवान् की मूर्ति के रूप में निवास होता था। 'मूर्ति' के लिए 'चैत्य' शब्द का भी चलन था, इसीलिए 'चैत्यालय' शब्द भी मंदिर के अर्थ में आज भी चलता है। अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजमान जिनबिंबों को अर्घ्य देने का विधान भी आज जैन पूजा पाठ का एक अंग है। 'अकृत्रिम चैत्यालय' का अर्थ है विजयार्ध पर्वत, कुलाचलों आदि पर विद्यमान शाश्वत जिनायतन, जिनका निर्माण नहीं किया जाता।

3.2 जैन-मंदिर : समवसरण का प्रतीक—

मंदिर को एक अतदाकार स्थापना या प्रतीक मानना अधिक तर्कसंगत होगा; वह मेरु का नहीं बल्कि समवसरण का प्रतीक हो सकता है, जो तीर्थंकर की सभा के लिए दिव्य माया से निर्मित विशाल सभागार होता है; पाँचों परमेष्ठियों में जिनकी वंदना सर्वप्रथम की जाती है उनमें तीर्थंकर ही ऐसे हैं, जो अपना उपदेश केवल समवसरण में देते हैं और मूर्ति के रूप में सर्वप्रथम अंकन भी उन्हीं का हुआ और उन्हीं का तदाकार प्रतीक प्रत्येक मंदिर में मूल–नायक के स्थान पर होना अनिवार्य है।

अनेक प्राचीन और नवीन मंदिरों के समक्ष मानस्तम्भ विद्यमान हैं जो समवसरण का ही एक भाग होता है। यही कारण है कि एक बार मंदिर–स्थापत्य के रूप में प्रतीकबद्ध हो चुका समवसरण, किसी दूसरे लघु प्रतीक के रूप में भी प्रस्तुत नहीं किया गया।

3.3 जैन मंदिरों तथा अन्य मंदिरों में समानता—

जैन मंदिर का विकास अपनी समकालीन परम्पराओं के मंदिरों के साथ ही एक प्रवाह में कभी तीव्र और कभी मंद गति से ही रहा। यही कारण है कि अन्य परम्पराओं के मंदिरों के मध्य एक जैन मंदिर की पहचान के लिए सूक्ष्म परीक्षा की आवश्यकता होती है या फिर उसके लिए किसी अभिलेख या साहित्य का स्पष्ट उल्लेख या परम्परागत प्रमाण या किसी मूर्ति का होना आवश्यक है।"

जैन मूर्तिकला का विकास भी समकालीन परम्पराओं के साथ हुआ, किन्तु एक ही प्रवाह में नहीं; जबकि जैन मंदिर उसी प्रवाह में विकसित हुआ, इसका परिणाम यह भी हुआ कि जैन स्थापत्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने को पृथक् रूप में लिखे गए ग्रंथों की संख्या अत्यन्त कम है।

3.4 मंदिर के अंग और विभाग—

मंदिर का गर्त–विवर या नींव का गड्ढा इतना गहरा हो कि वहाँ या तो भूगर्भ से जल निकलने लगे या शिलातल निकल आए। गर्त–विवर के मध्य धार्मिक अनुष्ठानों के साथ कोण–शिला स्थापित की जाए। जिस दिशा में खात हुआ हों, वहीं नींव में शिलान्यास विधि की जाती है। ज्योतिष के अनुसार जिस दिशा में सूर्य हो, उस कोण में पंचपरमेष्ठी की पूजन करके नीचे एक फुट लंबी–चौड़ी शिला स्थापितकर, उस पर स्वस्तिक व प्रशस्ति सहित विनायक–यंत्र स्थापित

करें। प्रशस्ति में मंदिर निर्माता का नाम, तिथि, संवत् आदि उत्कीर्ण होते हैं। पश्चात् वहाँ छोटा ताम्रकलश स्थापित करें, जिसमें दीपक प्रज्वलित करें। उस पर एक दूसरी 1 फुट × 1 फुट की शिला रख देवें। आसपास की ईंटों से उसे सीमेंट द्वारा समतल किया जाये। इस धार्मिक मंदिर भूमि के बाहर (आगे) शिलापट्ट पर मंदिर–सम्बन्धी प्रशस्ति उत्कीर्ण की जाये किसी व्यक्ति–विशेष के द्वारा उसका अनावरण कराया जाए–यही शिलान्यास विधि है। इसे विशिष्ट मुहूर्तों में ही किया जाना चाहिए।

3.4.1 सूर्य की राशि से 'खात' एवं शिलान्यास के मुहूर्त की दिशा का ज्ञान–

कोण	अग्नि	ईशान	वायव्य	नैऋत्य
गृहारम्भ	सिंह, कन्या, तुला	वृश्चिक, धनु, मकर	कुम्भ, मीन, मेष	वृष, मिथुन, कर्क
देवालय	मीन, मेष, वृश्चिक	मिथनु, कर्क, सिंह	कन्या, तुला, वृष	धनु, मकर, कुम्भ
जलाशय	मकर, कुम्भ, मिथुन	मेष, वृश्चिक, मीन	कर्क, सिंह, कन्या	तुला, वृश्चिक, धनु

3.4.2 अधिष्ठान—इसके पश्चात् उस गड्ढे को सघनता से भर दिया जाए और उसके तल को कूटकर ठोस बना दिया जाए। इस विधि से निर्मित भूतल पर अधिष्ठान अर्थात् पीठ या चौकी का निर्माण किया जाए। 'अधिष्ठान' परिस्थितियों के अनुसार समतल भी बनाया जा सकता है और उस पर एक से पाँच तक स्तर भी बनाए जा सकते हैं, जिन्हें 'थर' या 'प्रस्तर–गल' कहते हैं। कोण या कर्ण, प्रतिरथ, रथ, भद्र और मुखभद्र अधिष्ठान के विभिन्न 'घटक' या 'गोटा' हैं; परन्तु वे मुख्य भवन के ही अंग माने गए हैं। किन्तु नंदी, पल्लव, तिलक और तवंग 'पीठ' के घटक होने पर भी वे मंदिर के अलंकार–तत्त्वों में परिगणित हैं।

3.4.3 मंडोवर—'मंडोवर' के तेरह अंग होते हैं। मंडोवर शब्द पश्चिम भारत में प्रचलित है और संस्कृत 'मंडपवर' या 'मंडपधर' शब्द का स्थानीय या अपभ्रंशरूप प्रतीत होता है। मंडोवर वास्तव में भित्ति या बाहरी दीवाल है, जिस पर प्रासाद के एक या अनेक मंडपों की छत आधारित होती है। सूत्रधार मंडन ने मंडोवर के चार भेद बताए हैं; **नागर, मेरु, सामान्य** और **प्रकारांतर**।

3.4.4 शिखर—'शिखर' एक वृत्ताकार छत है, जो भवन पर उल्टे प्याले की भाँति ऊँची होती जाती है। उसके चार अंग होते हैं; शिखर, शिखा, शिखांत और शिखामार्ग। शिखर के ऊपरी अंगों का विभाजन एक अन्य प्रकार से भी किया जाता है: छाद्य, शिखर, आमलसार या आमलक और कलश। 'आमलक' के अंग हैं—गल, अंडक, चंद्रिका और आमलसारिका। कलश साधारणतः शिखर का सबसे ऊपर का भाग कहलाता है; उसके अंग हैं—गल कर्णिका और बीजपूरक। शुकनासा या शुकनासिका शिखर का वह अगला भाग है, जिसका आकार तोते की चोंच की भाँति होता है। शिखर के ऊपरी भाग पर दंडसहित ध्वज स्थापित किया जाए **'ध्वजहीनं न कारयेत्''**।

3.4.5 मंदिर के द्वार की चौड़ाई ऊँचाई से आधी होनी चाहिये। द्वार की चौखट पर यथास्थान तीर्थकरों, प्रतीहार–युगल, मदनिका (सुंदरी) आदि की आकृतियाँ उत्कीर्ण की जाएँ। जीर्णोद्धार के समय मंदिर का मुख्यद्वार स्थानांतरित न किया जाए और न ही उसमें कोई मौलिक परिवर्तन किया जाए।

'जगती' अधिष्ठान का एक घटक है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार जितनी भूमि पर मंदिर का भवन निर्मित होता है, उतनी भूमि 'जगती' है। 'जगती' को आधार मानकर ही प्रासाद या मंदिर के मुख्यभाग और उसके अंगों की आनुमानिक स्थिति निर्धारित होती है। पीठ के भूतल के रूप में दिखाई पड़ने वाली जगती पर चारों ओर द्वारों या गोपुरों सहित प्राचीर का निर्माण किया जाए।

3.4.6 मंदिर का प्रमुख अंग 'मंडप'—

'मंडप' के कई भेद हैं : 'प्रसाद–कमल मंडप', जिसे 'गर्भगृह' या मंदिर का मुख्य भाग भी कहते हैं : 'गूढ़ मंडप' अर्थात् भित्तियों से घिरा हुआ मंडप : 'त्रिक मण्डप', जिसमें स्तंभों की तीन–तीन पंक्तियों द्वारा तीन आड़ी और तीन खड़ी वीथियाँ बनती है ; 'रंग–मण्डप' जो एक प्रकार का सभागार होता है; और 'तोरण–सहित बलानक' अर्थात् मेहराबदार चबूतरे। मंडप की चौड़ाई गर्भगृह की चौड़ाई से डेढ़गुनी या पौने दोगुनी हो। स्तंभों की ऊँचाई मंडप के व्यास की आधी हो, किन्तु अधिक व्यावहारिक यह होगा कि स्तंभ की ऊँचाई सामान्यतः उसकी पीठ की ऊँचाई से चौगुनी हो; चौकी उसकी पीठ से दोगुनी या तिगुनी हो और ऊपरी भाग पीठ के बराबर या उससे दोगुना हो।

3.5 जैन मंदिरों का नामकरण—

मंडप के भेदों और मंदिर के प्रकारों (अग्रलिखित) के जो नाम हैं, वे भी कई दृष्टियों से शोध–खोज के विषय हैं। यह बहुत ही उल्लेखनीय है कि इनमें से कई नाम इतिहास, पुराण, कोष, शकुन–शास्त्र, रत्न–शास्त्र आदि के प्रमुख शब्द हैं। कुछ मंदिरों के नाम उनके निर्माताओं के नाम से भी चल पड़े हैं। कुछ मंदिर आकार–प्रकार आदि की दृष्टि से यथानाम–तथागुण हैं। आलंकारिक नाम कम हैं। जबकि अधिकांश मंदिरों के नाम उनके मूलनायक के नाम से चलते हैं। देव–देवियों के नाम से जैन मंदिरों के नाम बहुत कम हैं और जो हैं, उनमें भी मूलनायक तीर्थंकर मूर्ति ही होती है।

3.6 मंदिर (जिन प्रासाद) के प्रकार—

जैनमंदिर रचना की दृष्टि से कई प्रकार के होते हैं। प्रकारों की संख्या भी अलग–अलग लिखी मिलती है। वत्थु-सार पयरण में लिखा है; श्री–विजय, महापद्म, नंद्यावर्त, लक्ष्मी–तिलक, नर–वेद, कमल–हंस और कुंजर ये सात प्रासाद जिन भगवान् के लिए उत्तम हैं। विश्वकर्मा ने जिनमंदिर के प्रकारों के असंख्य भेद कहे हैं, उनमें से पच्चीस अतिश्रेष्ठ माने गये हैं : केशरी, सर्वतोभद्र, सुनंदन, नंदिशाल, नंदीश, मंदिर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव हेमवंत, हिमकूट, कैलाश, पृथ्वीजय, इंद्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूट, वैडूर्य पद्मराग वज्रांक, मुकुटोज्जवल, ऐरावत, राजहंस, गरुड़, वृषभ और मेरु। इनमें से प्रथम 'केशरी' के शिखर के साथ चारों ओर एक–एक छोटा शिखर होता है, जिसे अंडक या अंग-शिखर कहते हैं। दूसरे 'सर्वतोभद्र' के शिखर के साथ आठ, तीसरे के बारह, इस तरह प्रत्येक के साथ चार अंडक बढ़ते–बढ़ते पच्चीसवें मेरु नामक प्रकार के मन्दिर शिखर के साथ एक सौ अंडक या अंग-शिखर होंगे।

3.7 जैनमंदिर का एक शास्त्रीय रूप—

मनुष्यों और देवों के आवास गृहों की भाँति जिनालयों अर्थात् जैनमंदिरों के वर्णन भी लोक–विद्या के ग्रंथों और साहित्य में विस्तार से मिलते हैं। इन वर्णनों से ज्ञात होता है कि जैनमंदिर वास्तव में किस आकार–प्रकार का होना चाहिए। तिलोयपण्णत्ती का एक वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है—"भवनवासी देवों के भवनों का आकार सम–चतुष्कोण है। भवन की चारों दिशाओं में एक–एक वेदिका है" जिसके बाह्य भाग में अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम के उपवन हैं। इन उपवनों में चैत्यवृक्ष हैं। प्रत्येक की चारों दिशाओं में तोरण, अष्टमंगल और मानस्तम्भ के साथ जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। वेदिकाओं के मध्य में महाकूट (विशाल टीले) और उन पर एक–एक जिनालय है।

जिनालय तीन प्राकारों (कोटों) के मध्य स्थित है। प्रत्येक प्राकार की चारों दिशाओं में एक–एक गोपुर (विशाल प्रवेश–द्वार) है, इन प्राकारों के बीच की वीथियों (मार्गों) में एक–एक मानस्तंभ, नौ–नौ स्तूप, वन, ध्वजाएँ और चैत्य होते हैं। जिनालयों के चारों ओर के उपवनों में तीन–तीन मेखलाओं से युक्त वापिकाएँ (कटावदार बावड़ियाँ) हैं। जिनालय महाध्वजाओं और क्षुद्रध्वजाओं से अलंकृत हैं। महाध्वजाओं में माला, सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, अम्बर (आकाश), हंस, कमल और चक्र की आकृतियाँ चित्रित हैं।

जिनालयों में वंदन, अभिषेक, नृत्य, संगीत और आकाश के लिए तो अलग–अलग मंडप होते ही हैं; क्रीड़ा गृह, गुणनगृह, (स्वाध्यायशाला) और पट्टशालाएँ (चित्रशालाएँ) भी होती हैं। जिनालयों में जिनेन्द्र की मूर्तियों के अतिरिक्त देवच्छन्द (देव–कुलिका या दीवाल में बना हुआ आला) में अष्टमंगल (झारी, कलश, दर्पण, ध्वज, चामर, छत्र, व्यजन, सुप्रतिष्ठ अर्थात् पुस्तक रखने की रिहल) भी विराजमान होते हैं। जिनेन्द्र प्रतिमाओं के दोनों ओर चामरधारी नागों और यक्षों के युगल खड़े होते हैं।

ये जिनालय कम से कम सात भूमियों के होते हैं, जिनमें जन्म अभिषेक, शयन, परिचर्या और मंत्रणा के लिए अलग–अलग शालाएँ हैं उनमें सामान्यगृह, गर्भगृह, कदलीगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह की विशेष व्यवस्था है। वहाँ जो तोरण, प्राकार, पुष्करिणी (कमल-सरोवर) वापिकाएँ, कूप, मत्तवारण (छज्जे), गवाक्ष (झरोखे) आदि हैं; वे सुन्दर मूर्तियों से सज्जित हैं।

3.8 मन्दिरों के विधि रूप

3.8.1 चौबीसी मंदिर—

चतुर्विंशति जिनालय को हिन्दी में 'चौबीसी मंदिर' कहते हैं। शिल्पकला में जो चतुर्विंशति–पट्ट (एक ही शिला पर चौबीसों तीर्थंकरों की मूर्तियाँ) का प्रचलन रहा है, उसी से इस प्रकार के मन्दिर के निर्माण की प्रेरणा संभवतः मिली होगी। एक ही मन्दिर में एक गर्भालय (कक्ष) में एक या अलग अलग वेदियों पर एक–एक तीर्थंकर की मूर्ति स्थापित करने से उस मंदिर को चौबीसी मंदिर कहने लगते हैं। ऐसा मंदिर विशाल हो तो उसमें प्रत्येक तीर्थंकर–मूर्ति के लिए एक पृथक् देव–कुलिका (वेदी के बराबर छोटा कक्ष) हो सकती है या फिर एक पृथक् कक्ष हो सकता है।

देव–कुलिकाओं या कक्षों की संख्या चौबीस की जगह वास्तव में पच्चीस होती है, आठ–आठ चारों दिशाओं में और एक मध्य में। मध्य में कोई एक तीर्थंकर मूर्ति मूलनायक के रूप में स्थापित की जाती है। उस मूर्ति की अपने क्रम की जो देव–कुलिका या कक्ष खाली हो जाता है उसमें सरस्वती की मूर्ति अर्थात् जिनवाणी स्थापित की जाती है। उल्लेखनीय है कि तीर्थंकर मूर्ति की जगह यदि किसी को देनी ही हो, तो जिनवाणी दी जा सकती है, किसी अन्य देव या देवी की मूर्ति को नहीं; क्योंकि सरस्वती तीर्थंकर के उपदेश अर्थात् जिनवाणी प्रतीक मानी गई है।

3.8.2 गृह मन्दिर—

आवास–गृह में भी धर्मस्थान या मंदिर के निर्माण का विधान वास्तु–विद्या में किया गया है। यह आवास गृह में पूर्व दिशा में ऐसे स्थान पर बनाया जाए, जो गृह के प्रवेश करते समय बाएँ हाथ पर पड़े और जो अन्य स्थानों से नीचा नहीं हो। इस पर आधिपत्य गृहस्वामी का रहे और इसकी व्यवस्था भी वही करे; तथापि यह सबके लिए खुला रखा जाए। इसके अतिरिक्त सर्वोपरि यह ध्यान रखा जाए कि गृह–मन्दिर के निर्माण में भी केवल न्यायोपार्जित धन का उपयोग हो। गृह मन्दिरों का स्थापत्य अन्य मन्दिरों की ही भाँति हो। गृह मन्दिर में तीर्थंकर की मूर्ति अधिक–से–अधिक ग्यारह अंगुल ऊँची स्थापित की जाए।

3.8.3 निषीधिका : निसई या नसिया—

निषीधिका, निषधिका और निषद्या शब्दों का एक ही अर्थ है : निसही या निसई या नसिया। यह वास्तव में किसी चारित्रधारी महापुरुष का शिला या स्तंभ या मंडप के रूप में स्मारक होता है जिससे उसे मन्दिर की भाँति महत्त्व दिया जाता है। आश्चर्य नहीं, यदि प्राचीन जैन स्तूप विशाल निषीधिकाएँ ही रहे हों। जैन साहित्य में स्मारक, समाधि, मकबरा आदि शब्दों का चलन नहीं हुआ; क्योंकि जैन आचार–विचार में स्मारक पूजन या गोरपरस्ती का विधान नहीं है; इसीलिए जैन समाज में 'निषीधिका' के रूप में एक अलग शब्द प्रचलित हुआ।

प्राकृतभाषा में 'णिसीधिया' और 'णिसीहिया' शब्दों का प्रयोग करते हुए आचार्य शिवकोटि (दूसरा नाम शिवार्य) ने लगभग दो हजार वर्ष पूर्व 'मूलाराधना' (दूसरा नाम भगवती आराधना) में (गाथा 1967 से 1973) और उसके छह–सात टीकाकारों ने निषीधिका के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से लिखा है। आचार्य वट्टकेर आदि ने भी लिखा है।

चारित्रधारी महापुरुष अर्थात् साधु के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति का स्मारक, चरण चिह्न या किसी अन्य रूप में बनाने का विधान जैन वास्तुविद्या या शिल्प शास्त्र में नहीं है। साधु का स्मारक भी चरण चिह्न के रूप में बनाया जाए, न कि मूर्ति या मन्दिर के रूप में।

पाषाण पर उत्कीर्ण चरण–चिह्न निषीधिका के आदिमरूप माने जा सकते हैं; जिन पर कालान्तर में मंडप, गुमटी, टोंक आदि बनाए जाने लगे। पास में मन्दिर आदि के निर्माण से निषीधिकाओं का महत्त्व बढ़ा। अतिशय, चमत्कार, मंत्र तंत्र आदि के जुड़ जाने से निषीधिकाओं ने लोकप्रिय स्थानों का रूप ले लिया।

3.8.4 प्रतीकात्मक मंदिर—

जैनमंदिर समवसरण के प्रतीक हैं परन्तु कुछ जैन मन्दिर नंदीश्वरद्वीप, सहस्रकूट आदि के भी प्रतीक माने जा सकते हैं। जैन मन्दिरों के जो चौंसठ प्रकार के 'प्रासाद मंडन' आदि में बताए गए हैं, उनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर कुछ और प्रतीकात्मक मंदिरों का ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार के मन्दिरों में नंदीश्वरद्वीप मन्दिर के अतिरिक्त अन्य किसी मन्दिर का स्पष्ट लक्षणों और विशेषताओं के साथ निर्माण या मूर्ति–शिल्प में अंकन बहुत ही कम हुआ है।

विश्वकर्मा ने 'दीपार्णव' के बीसवें अध्याय में पूर्वोक्त बावन जिनप्रासादों का वर्णन किया है, वे वास्तव में नंदीश्वरद्वीप का प्रतिनिधित्व करते हैं; यद्यपि उनका अलग–अलग स्वरूप बताया गया है। जैन भूगोल में मध्यलोक के आठवें द्वीप का नाम नंदीश्वर है। स्थापत्य में नंदीश्वरद्वीप के अनुसरण पर मन्दिर बनाने की परम्परा रही है। शिलापट्टों पर भी इनका अंकन होता रहा है। इस द्वीप में प्रत्येक दिशा में तेरह–तेरह अकृत्रिम मन्दिर, कुल बावन मन्दिर होते हैं। आष्टाह्निक या अठाई पर्व के रूप में वर्ष में तीन बार इन बावन मन्दिरों में स्थित जिनमूर्तियों की पूजा का प्रचलन है।

3.8.5 सहस्रकूट—

सहस्रकूट भी जैनमन्दिरों का एक प्रकार है, जिसमें एक हजार कूट (शिखरयुक्त मन्दिर) होना चाहिए। इस प्रकार का मन्दिर उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध तीर्थ देवगढ़ (जिला–ललितपुर) में विद्यमान है। यद्यपि उसमें शिखरयुक्त मन्दिरों का अलग निर्माण नहीं है बल्कि जो मन्दिर है, उसी की बाह्यभित्ति पर एक हजार लघु मन्दिर उत्कीर्ण कर दिए गए हैं। बलात्कारगण दिगम्बर जैन मन्दिर, कारंजा (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट चैत्यालय की एक सुन्दर कांस्यमूर्ति है। मध्यप्रदेश के रायपुर में महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय में भी एक खण्डित शिल्प रचना है, जिसे 'सहस्रकूट' कह सकते हैं। कल्याण भवन–तुकोगंज, इंदौर के शांतिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर में भी सहस्रकूट चैत्यालय है।

3.9 स्तूप : जैन स्थापत्य की अनूठी देन—

प्राचीन भारतीय स्थापत्य में स्तूपों के निर्माण की परम्परा थी। यह परम्परा कदाचित मथुरा से प्रचलित हुई, जहाँ एक अत्यन्त प्राचीन स्तूप के अवशेष मिले हैं। उनमें एक प्राचीन शिलालेख भी मिला है, जिसमें कहा गया है कि "वह स्तूप देवों के द्वारा निर्मित किया गया था" इसका अर्थ यह है कि उस समय वह स्तूप इतना प्राचीन हो चुका था कि लोग उसके निर्माता का नाम भूल चुके थे और उसे देवों की रचना मानने लगे थे। इस दृष्टि से कहना होगा कि उस स्तूप का निर्माण तीर्थंकर महावीर से भी पूर्व तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय में हुआ होगा। प्रमुख वास्तुविद्यावेत्ताओं ने उसे भारतीय स्थापत्य की प्राचीनतम रचना माना है।

भारत में जो प्राचीन बल्कि प्रागैतिहासिक काल के निर्माणों के अवशेष मिले हैं, उनमें मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त पुरातात्त्विक महत्त्व की सामग्री अन्यतम है; जिसका तात्पर्य है कि भारत के धार्मिक वास्तु निर्माण में भी जैन

समाज अग्रणी रहा, मूर्ति निर्माण में तो वह अग्रणी रहा ही है। पटना के समीप लोहानीपुर में तीर्थंकरों की पाषाण मूर्तियाँ बनायी गयीं, जिनका समय ईसा से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व मौर्यकाल के आरम्भ में आँका गया है।

3.9.1 आयाग पट्टों पर उत्कीर्ण स्तूप—

वास्तु विद्या में स्तूपों के निर्माण का या उनके आकार–प्रकार का उल्लेख नहीं है परन्तु साहित्य में इसके कई उल्लेख हैं तथा मथुरा से ही प्राप्त दो आयाग पट्टों पर साहित्य से भी अधिक स्पष्ट चित्रण हुआ है। लगभग दो फुट लंबी और उतनी ही चौड़ी पाषाण की नक्काशीदार शिलाएँ 'आयागपट्ट' कहलाती हैं, जिनका उपयोग दो–ढाई हजार वर्ष पहले मथुरा में बहुत होता था।

मथुरा में खुदाई (एक्स्केवेशन) में मिले उक्त स्तूप के खंडहर से ज्ञात होता है कि उसका लगभग तलभाग गोलाकार था, जिसका व्यास 47 फुट था। उसमें केन्द्र से परिधि की ओर बढ़ते हुए व्यासार्ध वाली 8 दीवालें ईटों से चुनी गईं थीं। ईटें छोटी–बड़ी हैं। स्तूप के बाह्य भाग पर जिनप्रतिमाएँ थी। पूरा स्तूप कैसा था ? इसका कुछ अनुमान उसकी खुदाई से प्राप्त सामग्री से लगता है। अनेक प्रकार के मूर्त्यंकनों से युक्त जो पाषाण–स्तंभ मिले हैं, उनसे प्रतीत होता है कि स्तूप के आसपास प्रदक्षिणा–पथ और तोरणद्वार रहे होंगे। उक्त आयाग–पट्टों पर अंकित स्तूप भी यही आभास देते हैं, जो उसी प्रकार की पट्टिकाओं से घिरे दिखाए गए हैं और जिनके तोरणद्वार पर पहुँचने के लिए सात–आठ सीढ़ियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

राजकीय संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित आयाग–पट्ट (क्यू 2) में तोरण दो खड़े स्तंभों से बना है, जिनके ऊपर थोड़े–थोड़े अंतर से एक पर एक तीन आड़ी कड़ियाँ हैं। इनमें निचली कड़ी के दोनों छोर मकराकृति सिंहों पर आधारित हैं। स्तूप के दाएँ–बाएँ दो सुन्दर स्तंभ हैं, जिन पर क्रमशः धर्मचक्र और बैठे हुए सिंहों की आकृतियाँ बनी हैं। ऊपर की ओर उड़ती हुई दो आकृतियाँ संभवतः चारण मुनियों की हैं। वे नग्न हैं, किन्तु उनके बाएँ हाथ में पीछी जैसी वस्तु एवं कमंडल दिखाई देते हैं; उनका दाहिना हाथ मस्तक पर नमस्कार मुद्रा में है। एक और आकृति युगल गरुड पक्षियों की है, जिनके पुच्छ व नख स्पष्ट दिखाई देते हैं। दाई ओर गरुड एक पुष्पगुच्छ व बायीं ओर का पुष्पमाला लिए है। स्तूप के गुम्बज के दोनों ओर हाव–भाव के साथ झुकी हुई नारी आकृतियाँ हैं। घेरे के नीचे सीढ़ियों की दोनों ओर एक–एक देवकुलिका है। दाईं ओर की देवकुलिका में एक बालक सहित पुरुषाकृति और दूसरी ओर स्त्री–आकृति दिखाई देती है।

स्तूप की गुम्मट पर छह पंक्तियों में प्राकृतभाषा में लेख है, जिसमें अरिहंत वर्द्धमान को नमस्कार के पश्चात् कहा गया है कि 'श्रमण श्राविका आर्या लवणशोभिका की पुत्री वासु ने जिनमन्दिर में अरिहंत की पूजा के लिए अपनी माता, भगिनी तथा दुहितापुत्र (नाती) के साथ निर्ग्रथों के अरिहंत आयतन में अरिहंत का देवकुल (देवालय), आयाग–सभा, प्रपा (प्याऊ) तथा शिलापट (प्रस्तुत आयागपट्ट) प्रतिष्ठित कराए। यह शिलापट्ट 2 फुट 1 इंच × पौने दो फुट है। यह अक्षरों की आकृति और मूल्यांकन की दृष्टि से प्रथम–द्वितीय शती ई. अर्थात् कुषाण–काल का होना चाहिए।

राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित दूसरे आयागपट्ट (जे 255) का ऊपरी भाग टूट गया है; तथापि तोरण, घेरा, सोपानपथ (सीढ़ियाँ) एवं स्तूप की दोनों ओर नारी–मूर्तियाँ इसमें पूर्वोक्त शिलापट्ट से भी अधिक स्पष्ट हैं। इस पर भी लेख है जिसमें अरिहंतों को नमस्कार के पश्चात् कहा गया है कि फगुयश नामक व्यक्ति की भार्या शिवयशा ने अरिहंत–पूजा के लिए यह आयागपट्ट बनवाया। लगभग 200 ई. पू. का यह आयागपट्ट सिद्ध करता है कि स्तूपों का प्रचार जैन परम्परा में उससे बहुत पहले से था।

कोई जैन स्तूप सुरक्षित अवस्था में नहीं मिले, उसके अनेक कारण हैं। एक तो यह कि स्तूप प्रायः किसी महापुरुष के अवशेषों पर बनाए जाते थे; जैन समाज में अवशेषों को सुरक्षित रखने का चलन नहीं होने से स्तूपों का भी चलन आगे नहीं बढ़ सका। दूसरे गुफा चैत्यों और मन्दिरों के अधिक प्रचार के कारण स्तूपों का नया निर्माण रुक गया और प्राचीन स्तूपों की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। तीसरे मन्दिर वास्तु में विस्तार, विभिन्न मंडप, साज–

सज्जा आदि का असीमित अवकाश होता है; जो स्तूप में नहीं होता है; इसलिए धीरे–धीरे स्तूप का चलन बंद हो गया। चौथे उपर्युक्त स्तूप के आकार–प्रकार से स्पष्ट है कि बौद्ध और जैन स्तूपों के आकार प्रकार में एकरूपता के कारण कई जैनस्तूप बौद्धस्तूप मान लिए गए।

3.10 जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ—

मूर्ति विशेषज्ञों की प्रबल धारणा रही है कि जैन तीर्थंकरों की प्रथम मूर्तियाँ मथुरा में ही बनाई गई थीं। इनके प्रारम्भिक प्रमाण कंकाली टीले से मिले हैं। इनमें कुषाणकालीन मूर्तियों की संख्या अधिक है। ये तीर्थंकर मूर्तियाँ तीन प्रकार की थीं—1. पालथी मारकर ध्यानमुद्रा में बैठी हुई। 2. कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हुई तथा 3. सर्वतोभद्र मुद्रा में अर्थात् एक ही पाषाणफलक पर पीठ से पीठ मिलाकर खड़ी चार चौमुखी जैन मूर्तियाँ।

3.10.1 लांछन—

मथुरा की आरम्भिक तीर्थंकर मूर्तियाँ एक समान थीं अतः उनकी पहचान कर पाना दुष्कर था और कुषाणकाल तक तो तीर्थंकर मूर्तियों पर लांछनों का अंकन ही नहीं हुआ था। इस कारण मथुरा की प्राथमिक तीर्थंकर मूर्तियों की पहचान की गई, जैसे—स्वामी आदिनाथ को उनके कंधों तक लटकती जटाओं से, स्वामी पार्श्वनाथ चरण चौकी पर कोई लांछन नहीं था परन्तु उनमें कुछेक मूर्तियों में उनके शीर्ष पर सर्पफणों के छत्र थे। कुछेक मूर्तियों के शिलालेखों से उनकी पहचान की गई परन्तु जैन शिल्प ग्रंथों में लांछनों के उल्लेख 7वीं–8वीं सदी ई. के बाद से ही पाये गये।

3.10.2 महापुरुष का लक्षण–

यद्यपि चरण चौकी वाले लांछनों का विकास कुषाणकाल में नहीं हुआ था तथापि उसी काल में लगी उन्हीं स्थानक व आसन मुद्राओं में निर्मित की गई बुद्ध–बोधिसत्त्व की मूर्तियों तथा जैन तीर्थंकर की मूर्तियों में भेद करने का मुख्य साक्ष्य महापुरुष लक्षण था। जैन तीर्थंकर की मूर्तियों के वक्ष पर उक्त प्रकार के श्रीवत्स का अंकन उन्हें बौद्ध मूर्तियों से अलग पहचान देता है। ध्यान मुद्रा में बैठी तीर्थंकर मूर्तियों की हथेलियों पर प्रायः चक्र और पैर के तलुओं पर चक्र और नंद्यावर्त के मांगलिक चिन्ह उकेरे मिलते हैं। उक्त प्रकार के लक्षणों में कुछ अन्य विशेषताओं का भी ध्यान रखना चाहिये—1. तीर्थंकरों की मूर्तियों को या तो मुण्डित मस्तक वाला या कुंचित केश वाला बनाया गया। 2. ऐसी मूर्तियों की आंखों की भौंहों के मध्य ऊर्णी का अंकन किया गया। 3. ये मूर्तियाँ पूर्णतया नग्न (दिगम्बर) थीं क्योंकि तब श्वेताम्बर विचारधारा का उद्भव नहीं हुआ था। परवर्ती युग में फिर तीर्थंकर मूर्तियों में कुछ परिवर्तन किये गये और उनमें ऊर्णी का अभाव रहा। इनमें फिर शीश के पृष्ठ में प्रभामण्डल बनाया जाने लगा तथा उसका विविध रूपों में अलंकरण किया गया। इसी क्रम में तीर्थंकर मूर्तियों पर उनके पारिवारिक देवों तथा यक्ष, शासन देवी, चामरधारी शासकों–उपासकों का अंकन होने लगा। शीश पर त्रिछत्र का तथा उसके ऊपर ढोल बजाते देवता का अंकन किया गया। मूर्ति परिकर में ऊपर मालाधारी विद्याधर व नवग्रहों का भी समावेश किया गया तथा प्रायः आसन के नीचे मध्य में रखे धर्मचक्र को प्रमुखता दी गई। इस प्रकार के उक्त लक्षणों से पहचान सम्भव होना आसान हो गया।

3.10.3 अन्य जैन देव मूर्तियों के लक्षण—

इन्द्र—जैनधर्म के ग्रन्थों में उल्लेख है कि तीर्थंकरों के जन्म, दीक्षा और कैवल्य प्राप्ति के अवसरों पर इन्द्र धरती पर आते हैं। इसी आशय को राजस्थान के जैन मंदिरों (11वीं–12वीं सदी) में देखा जा सकता है।

गजलक्ष्मी तथा सरस्वती—तीर्थंकरों की माताओं द्वारा देखें स्वप्नों में लक्ष्मी का उल्लेख विशिष्टता से है। अतः जैन शिल्प में उन्हें सम्मान जनक स्थान दिया गया। ये मूर्तियाँ शुंगकाल से ही उपलब्ध होती हैं, वहीं इस धर्म में सरस्वती को भी विद्या, बुद्धि की देवी मानकर उसे सम्मान सहित स्थान दिया गया परन्तु उन्हें श्रुतदेवी के नाम से जैन शिल्प में

पहचाना गया। कुषाणयुगीन मथुरा के कंकाली टीले से मिली सरस्वती की मूर्ति सर्वाधिक प्राचीन है, जो वहाँ के जैन परिसर से मिली है। यह लखनऊ संग्रहालय में है।

चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती देवी—जैन शिल्प में कुछ ऐसी देवियों का विधान भी रखा गया जो तीर्थंकरों की शासन देवी है। इनके हाथों में चक्र धारित होता है तथा यह गरुड़ पर आरूढ़ होती हैं। मध्यकाल की इस प्रकार की मूर्तियाँ जैन मंदिरों में देखी जा सकती है।

अम्बिका देवी तीर्थंकर नेमिनाथ की शासन देवी हैं। इसका अंकन भी मध्ययुग में हुआ। इसके हाथों में क्रमशः एक बालक, पाश, अंकुश तथा आम की बौर वाली टहनी होती है। यह सिंह पर आरुढ़ रहती हैं।

पद्मावती तीर्थंकर पार्श्वनाथ की शासनदेवी के रूप में मान्य हैं। इनके शीश पर सर्पफणों का छत्र होना इसका मुख्य लक्षण है। इन तीनों देवियों का स्पष्ट व 11वीं सदी का मूर्त शिल्प झालरापाटन (झालावाड़, राजस्थान) के शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में दर्शित है।

क्षेत्रपाल—जैनधर्म ने क्षेत्रपाल की गणना भैरव के समान योगिनियों के साथ की है। क्षेत्रपाल की मूर्ति लक्षणों में उनकी भयंकर मुखाकृति, श्यामवर्ण, बिखरे केश, पैरों में खड़ाऊ, हाथों में मुग्दर, डमरू तथा अंकुश प्रमुख होते हैं। मथुरा संग्रहालयों में जैन क्षेत्रपाल की एक प्राचीन मूर्ति में उनके हाथ में दण्ड है तथा उन्होंने अपने बायें हाथ में श्वान (कुत्ते) की रस्सी को पकड़ रखा है। उत्तरप्रदेश के देवगढ़ तथा मध्यप्रदेश के खजुराहो में भी 11वी–12वीं सदी की इस प्रकार की मूतियाँ मिलती हैं।

आदि मिथुन—सृष्टि के मूल कारण आदि मिथुन का अंकन जैन शिल्पकला में विशेष स्थान रखता है। इसे जुगलिया (युगल मिथुन) भी कहा गया। इस शिल्प में इन्हें विशाल वृक्ष के नीचे बैठा दर्शाया जाता है। चरण चौकी पर बालकों का अंकन तथा वृक्ष के ऊपर जिनबिम्ब बना होता है। ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार लखनऊ संग्रहालय में इस आशय का एक अंकन फलक पर दर्शित है। सूत्रों के अनुसार उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर में वहाँ के राज्यपुरातत्व संगठन में कूंड नामक स्थान से 11वीं सदी का एक ऐसा ही सुन्दर जुगलिया (आदि मिथुन) फलक खोजा है।

यदि जैन-बौद्ध मूर्तांकन में भेद किये जायें तो अध्ययन करने तथा धर्मों की मूर्तियाँ देखने पर निम्न बिन्दु समक्ष में आते हैं। जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ निर्वस्त्र (दिगम्बर) होती हैं जबकि बुद्ध की मूर्तियों में उनके बायें या फिर दोनों कंधों से संघारि वस्त्र नीचे तक लटकता है। बुद्ध की मूर्तियों के वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन नहीं होता जबकि तीर्थंकरों की मूर्तियों पर श्रीवत्स का लक्षण होता है। तीर्थंकर मूर्तियाँ या तो ध्यानमुद्रा में आसनस्थ अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी दिखायी देती हैं। उनमें अभय, वरद या अन्य मुद्रा का अभाव होता है जबकि बुद्ध मूर्तियाँ अभय मुद्रा में रहती हैं अथवा भूमि स्पर्श, धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठी हुई या महापरिनिर्वाण मुद्रा में लेटी हुई होती हैं। इस प्रकार मुद्राओं तथा लक्षणों के आधार पर मूर्तियों की पहचान आसानी से की जा सकती है।

आयागपट्ट का शिल्प वैशिष्ट्य—वासुदेवशरण अग्रवाल ने मथुरा की जैन कला पर विस्तृत एवं गंभीर विवेचना प्रस्तुत की है। उन्होंने अपने शोध में बताया कि उक्त क्षेत्रीय जैन कला में आयागपट्ट तीर्थंकर मूर्तियाँ, देवी मूर्तियां,स्तूपों के तोरण, शालभंजिका, वेदिका स्तम्भ, ऊष्णीय आदि मुख्य हैं। आयागपट्ट मूल रूप से आर्यकपट्ट होता है अर्थात् पूजा हेतु स्थापित शिलापट्ट, जिस पर स्वस्तिक, धर्मचक्र आदि अलंकरण या तीर्थंकर की मूर्तियां स्थापित की गई हों। स्तम्भ के प्रांगण में इस प्रकार के पूजा शिलापट्ट ऊँचे स्थानों पर स्थापित किये जाते थे तथा दर्शनार्थी उनकी पूजा करते थे। मथुरा की जैन कला में इन आयागपट्टों का अति विशिष्ट स्थान है। उन पर जो अलंकरण की छवि है वह नेत्रों को मोहित कर देती है। उदाहरण के लिये सिंहासनादिक द्वारा स्थापित आयागपट्ट पर ऊपर नीचे अष्टमांगलिक चिन्हों का अंकन है। दोनों पार्श्वों में से एक ओर चक्रांकित ध्वजस्तम्भ व दूसरी ओर गजांकित

स्तम्भ है। मध्य में चार त्रिरत्नों के मध्य में तीर्थंकर की बद्धपद्मासन मूर्ति है। एक अन्य प्राप्त आयांगपट्ट के मध्य भाग में लघु तीर्थंकर मूर्ति है। ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि स्वस्तिक के आवेषण रूप में सोलह देव योनियों से अलंकृत मण्डल है, जिसके चारों कोणों पर चार महोरग मूर्तियां हैं, जबकि नीचे की ओर अष्टमांगलिक चिन्हों की श्रंखला है। तृतीय आयागपट्ट के मध्य षोडष धर्मचक्र का सुन्दर अंकन है तथा इसके चारों ओर तीन मण्डल हैं जिसके प्रथम मण्डल में सोलह नन्दिपद, दूसरे में अष्ट दिक्कुमारिकाएँ और तीसरे में कुण्डलित पुष्पकरस्रज कमलों की माला है। चारों कोनों में चार महोरग मूर्तियां हैं। इस प्रकार का पूजापट्ट प्राचीन काल में चक्रपट्ट कहलाता था। आयाग पट्ट जैन कला की महत्वपूर्ण निधि है। इसकी स्थापना फल्गुयश नर्तक की पत्नी शिवयशा ने अर्हंत पूजा हेतु की थी। इस पर प्राचीन मथुरा जैन स्तूप की आकृति अंकित है जिसमें तोरण, वेदिका तथा सोपान है।

इस प्रकार जैनधर्म की मूर्तियों के उक्त गंभीर प्रमाणों से उनके लक्षणों को देखकर कोई भी श्रद्धालु या शोधार्थी उनकी पहचान आसानी से कर सकता है। परन्तु यह भी एक कटुसत्य है कि प्राचीन मूर्ति शिल्प के लक्षणों, भावों पर जितने भी ग्रन्थ रचे गये वे या तो संस्कृत में हैं या अंग्रेजी में। ये ग्रन्थ ना तो मिलते हैं ना ही पढ़ने वाले हैं क्योंकि यह एक दुरूह कार्य है। अतः सामान्यजन मूर्तियों की पहचान कर ही नहीं पाता।

3.11 मानस्तम्भ का स्वरूप—

मंदिर निर्माण के साथ मानस्तम्भ की रचना का समावेश होता रहा है।

ज्ञान के गर्व से घिरे हुए इन्द्रभूति ब्राह्मण तीर्थंकर महावीर स्वामी के समवसरण में द्वार के समीप दिव्य मानस्तम्भ को देख, गर्व हीन हो गया। मिथ्यात्व का विसर्जन हुआ एवं निर्मल सम्यक्त्व के साथ सम्पूर्ण मिथ्या ज्ञान सम्यक् ज्ञान में परिवर्तित हो गया। इस घटना ने मंदिर के साथ मानस्तम्भ का रूप जोड़ने में प्रबल योग प्रदान किया।

जैन दर्शन कला शिल्प में जिनालय के साथ मानस्तम्भ रचना के विस्तृत प्रमाण तो उपलब्ध नहीं होते लेकिन समवसरण के चारों दिशा के वीथि (मार्ग) में मानस्तम्भ रचना का उल्लेख एवं प्रमाण अवश्य है। यही कारण रहा है कि मंदिर को समवसरण का रूप मानकर मानस्तम्भ की रचना को मंदिर के साथ जोड़ा गया है। इसे कुछ एक स्थानों पर कीर्तिस्तम्भ के नाम से भी जाना गया है। मंदिर निर्माण के शिल्प ग्रंथों में मानस्तम्भ निर्माण का परिचय सुलभ नहीं है लेकिन धर्म एवं सिद्धान्त ग्रंथों में जैसे तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार के अनुसार समवसरण एवं अकृत्रिम स्थलों के देवालयों के सम्मुख मानस्तम्भ रचना के आकार-प्रकार, पीठ, स्तम्भ वेदी एवं मूर्ति के गणितीय विभाग का प्रमाण विस्तृत रूप से उपलब्ध है। इस आधार को प्रमाण मानकर यहाँ मानस्तम्भ रचना के विभिन्न भागों को ज्योतिष एवं गणितीय मान से प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.11.1 मानस्तम्भ की भूमि—

गर्भगृह, श्रीमण्डप, त्रिकमंडप, रंगमण्डप एवं शृंगार चौकी की भूमि छोड़कर मूल शिखर के कलश से शृंगार चौकी के कलश तक गिरता हुआ सूत्र भूमि के जिस भाग को स्पर्श करे वह मानस्तम्भ की भूमि होगी।

1. मानस्तम्भ की ऊँचाई मंदिर के शिखर की ऊँचाई व कलश व आंवलासार तक करना चाहिए। शिखर की शुकनासा (शेर की दृष्टि) तक भी कर सकते हैं। जिनालय की सांजली तक भी स्तम्भ बना सकते हैं।

2. जिनालय की मूल प्रतिमा (मूलनायक वेदी) के सम्मुख ही मानस्तंभ बनाना विधि सम्मत है।

3. मूलवेदी के सम्मुख द्वार के अभाव में मानस्तम्भ बनाना निषेध है।

4. मानस्तंभ में सर्वतोभद्र (चारों दिशाओं में) प्रतिमाएँ होने के कारण मूल वेदी के सामने होने पर भी द्वार भेद नहीं माना जाता।

5. मानस्तंभ कला की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के बनाये जा सकते हैं। पीठ, स्तम्भ, वेदी एवं शिखर में कालानुपाति शैली एवं आकृति को मण्डित कर उसकी सुन्दरता एवं आकर्षकता बढ़ाई जा सकती है लेकिन आकार परिवर्तन योग्य नहीं है।

6. स्तम्भ चौकोर, अष्टमांश एवं वृत्ताकार तीनों आकृति के बनाए जा सकते हैं, इतना अवश्य ज्ञात रहे यदि पीठ चौकोर बनी है तो स्तंभ के तीनों प्रकार बनाए जा सकते हैं लेकिन यदि पीठ अष्टमांश है तो स्तम्भ अष्टमांश या वृत्ताकार ही बनाये जा सकते हैं। वृत्ताकार पीठ पर वृत्ताकार स्तम्भ ही अनुकूल है।

7. स्तम्भ की ऊँचाई मानस्तम्भ की सम्पूर्ण ऊँचाई के आधे भाग प्रमाण होती है। स्तम्भ नीचे मोटा एवं क्रमशः ऊपर घटता–घटता बनता है।

8. स्तम्भ के पर्व विषम संख्या में एवं ग्रंथ (चूड़ी) समसंख्या में सुखदायक होती है।

9. तीर्थंकरों के अतिरिक्त सामान्य केवली की प्रतिमा के सम्मुख मानस्तम्भ का निर्माण प्रमाणहीन है।

10. तिलोयपण्णत्ती अरिहंत, त्रिलोकसार, अकृत्रिम चैत्यालय एवं समवसरण रचना के अनुसार मानस्तम्भ में सिद्ध प्रतिमाओं की स्थापना होती है। तीर्थंकर प्रतिमा का विधान उपलब्ध नहीं है।

11. तिलोयपण्णत्ती एवं कल्पद्रुम पूजा के अनुसार मानस्तम्भ तीर्थंकर प्रतिमा की अवगाहना (ऊँचाई) से 12 गुना ऊँचा होता है।

12. मानस्तम्भ की प्रथम पीठ पर जैन दर्शन के मूल सिद्धान्तों की चित्रावली या आधारमान जिनालय के मूल तीर्थंकर के जीवन सम्बन्धित चित्र या मानस्तम्भ की महिमा दर्शाने वाले चित्रों का उत्कीर्ण किया जाना योग्य है। मानस्तम्भ की द्वितीय पीठ पर अष्टमंगल द्रव्य बनाये जाते हैं। मानस्तंभ की तृतीय पीठ ध्वज पंक्ति से सज्जित होती है। आधारपदक कमल की आकृति का बनाया जाता है। स्तम्भ पर वल्लरियाँ सांकल, शृंखलाएँ, घंटियाँ, तोरण बनाये जाते हैं। जिनवेदी स्तम्भ पर चँवरधारी इन्द्र तथा तोरण बनाना चाहिए। शिखर उशृंग एवं अण्डकयुक्त होता है।

13. मंदिर आंगन के छह भाग इस प्रकार होने चाहिये।

1. गर्भगृह, 2. रंगमण्डप, 3. चौकी, 4. हवन कुंड, 5. मानस्तम्भ, 6. ध्वजास्थल।

3.11.2 मानस्तम्भ की ऊँचाई के विभाग—

1. जगती भूमि में मंदिर के खरतल तक की ऊँचाई प्रमाण भूमि का होगा। जगती के ऊपर से मानस्तंभ की पहली पीठ प्रारम्भ होती है। मानस्तम्भ के 30 भाग बनाकर निम्नभाग प्रमाण निर्माण करना चाहिये।

प्रथम पीठ : 4 भाग प्रमाण ऊँची
द्वितीय पीठ : 2 भाग प्रमाण ऊँची
तृतीय पीठ : 2 भाग प्रमाण ऊँची
आधार पदम : 2 भाग प्रमाण ऊँची
स्तम्भ : 15 भाग प्रमाण ऊँची
ऊर्ध्वपद्म : 1 भाग प्रमाण ऊँची
वेदी : डेढ़ भाग प्रमाण ऊँची
कलश : 1 भाग प्रमाण ऊँचा

मानस्तंभ की जगती एवं तीनों पीठ चौकोर वर्गाकार एवं अष्टकोण की बनाई जा सकती हैं। मानस्तम्भ के शिखर को गुम्बद या साभरण की आकृति भी दी जा सकती है। इससे बची शेष ऊँचाई को स्तम्भ वेदी या पीठ इन तीनों में से किसी में भी समायोजित किया जा सकता है।

3.12 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-जैन मंदिर किसका प्रतीक माना गया है ?

(क) स्मारक ☐
(ख) समवसरण ☐
(ग) मानस्तंभ ☐

प्रश्न 2-मंडोवर शब्द कहाँ प्रचलित है ?

(क) पश्चिम भारत ☐
(ख) उत्तर भारत ☐
(ग) दक्षिण भारत ☐

प्रश्न 3-.....अधिष्ठान का एक घटक है ?

(क) भूमि ☐
(ख) शिखर ☐
(ग) जगती ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-मंदिर शब्द का अर्थ एवं भावार्थ लिखिए ?

प्रश्न 2-महापुरुष की किन-किन लक्षणों से पहचान की जाती है ? लिखिए ?

प्रश्न 3-जैन मंदिरों का कैसा रूप होना चाहिए ? लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-मानस्तंभ का स्वरूप कैसा होता है ? सविस्तार वर्णन कीजिये।

पाठ 4—वास्तु से संबंधित कतिपय प्रमुख ज्ञातव्य विषय

4.1 दिशाएँ बदल देती हैं, दशा—

वास्तु शास्त्र में दिशाओं को भी सुदृढ़ तर्कों के आधार पर धर्म से जोड़ा गया है। इन सभी दिशाओं की अपनी विशेषता और महत्त्व है। उदाहरणार्थ—पूर्व दिशा से सूर्य उदित होता है अतः सूर्योपासना में पूर्व का महत्त्व है। वास्तु शास्त्र में सूर्य के जीवनदायिनी ऊर्जा के कारण ही पूर्व दिशा को प्रधानता दी गई है। लाखों वर्ष पहले ही ऋषि-मुनियों ने पूर्व दिशा में उपासना करना श्रेष्ठ बताया था, जिस पर वास्तुशास्त्र ने अपने नियम बनाए।

वास्तुशास्त्र पंच तत्वों एवं दिशाओं पर आधारित है, कहते हैं कि दिशाएँ दशा बदल देती हैं। सो वह काफी हद तक ठीक है और इसी सूत्र पर पूरा वास्तु शास्त्र आधारित है। बहुत से लोगों ने जब वास्तु अनुसार अपने घर में परिवर्तन किया तो उनको अपार सफलता मिली, पूर्व में आ रही समस्याओं से मुक्ति भी मिली।

4.1.1 पूर्व—

अरुणोदय या सूर्योदय होने वाली दिशा को पूर्व कहा जाता है। विभिन्न वास्तु ग्रंथों में इसके लिए प्राक्, प्राची आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

पूर्व दिशा पितृ स्थान की सूचक है। ऐसा माना गया है कि पितरों की उपासना इसी दिशा की ओर मुंह करके की जानी चाहिए। अग्नि तत्व भी पूर्व दिशा द्वारा प्रभावित होता है। इस दिशा के स्वामी इंद्र हैं। पूर्व दिशा सूर्य की ओजस्वी किरणों का प्रवेश द्वार है अतः वास्तु निर्माण में इस दिशा को सदैव खाली छोड़कर किरणों को स्वतन्त्र रूप से प्रविष्ट होने का मार्ग दिया जाना चाहिए।

4.1.2 पश्चिम—

पश्चिम वह दिशा है, जहाँ सायंकाल सूर्यास्त होता है। वरुण या वायु को इस दिशा का अधिष्ठाता माना गया है अतः यह दिशा वायु तत्व को प्रभावित करती है। पश्चिम दिशा को सुख एवं समृद्धिदायी कहा गया है। शास्त्रों में कहा गया है कि वायु चंचल और चलायमान है अतः जिस घर का प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा में होता है उस घर के निवासी प्रसन्नचित्त तथा विनोदप्रिय होते हैं। यह दिशा प्रायः अपना सामान्य प्रभाव ही दिखाती है।

4.1.3 उत्तर—

प्रातःकाल सूर्य की ओर मुख करके खड़े होने पर ठीक बाएं हाथ की ओर जो दिशा होती है, वह उत्तर है। इसी दिशा में रात्रिकाल ध्रुव तारा दिखाई देता है। यह मातृ भाव को व्यक्त करने वाली आँखें हैं। जल तत्त्व को इसी दिशा में स्थान मिलना चाहिए। उत्तरमुखी भवन में सदा लक्ष्मी की कृपादृष्टि बनी रहती है, जो जीवन को धन-धान्य एवं सुख-सम्पत्ति से भर देती है। उत्तर दिशा में लक्ष्मी का स्थिर है। भवन में सदैव उत्तर दिशा से प्रकाश के आगमन का स्थान रखना चाहिए।

4.1.4 दक्षिण—

दक्षिण वह दिशा है, जो सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख करने पर दाएं हाथ की ओर हो। यह उत्तर दिशा के ठीक विपरीत होती है। दक्षिण दिशा में पृथ्वी तत्व को व्याप्त माना गया है। यम की स्वामित्व वाली इस दिशा को मुक्तिकारक कहा गया है। दक्षिण मुखी प्रवेश द्वार वाले भवन स्वामी की प्रकृति में धैर्य तथा स्थिरता का विशेष स्थान रहता है। इस दिशा के बारे में अनेक ग्रंथों में कुछ शुभ और अशुभ लक्षणों की बात कही गई है।

4.1.5 ईशान—

ईशान एक विदिशा है अर्थात् दो दिशाओं (उत्तर-पूर्व) से निर्मित कोण है। यह चारों कोणों में सर्वाधिक पवित्र है, अतएव इसे आराधना, साधना, विद्यार्जन, लेखन एवं साहित्यिक गतिविधियों हेतु शुभ माना गया है। यह कोण मनुष्य

को बुद्धि, ज्ञान, विवेक, धैर्य तथा साहस प्रदान करके सभी कष्टों से मुक्ति दिलाता है। इतने पूजनीय कोण को सदा पावन एवं स्वच्छ अवस्था में रखा जाना चाहिए।

4.1.6 आग्नेय—

दक्षिण-पूर्व दिशाओं का मिलाने वाला कोण आग्नेय कहलाता है। यह स्वास्थ्यप्रदाता है। इस विदिशा में अग्नि तत्व को स्थिर माना गया है। इसका कारण है कि यह कोण पूर्व एवं दक्षिण के ठीक मध्य में स्थित है। यदि भवन के आग्नेय कोण में गंदगी या दूषित पदार्थों का अस्तित्व हो तो वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

इस कोण में बिजली के उपकरणों तथा लोहे के सामानों को स्थान दिया जाना चाहिए। यदि इन सावधानियों को दृष्टिगत न रखा जाए तो अग्नि द्वारा भीषण हानि होने की संभावना बनी रहती है।

4.1.7 नैऋत्य—

नैऋत्य दक्षिण एवं पश्चिम दिशा को मिलाने वाला कोण है। यह विदिशा शत्रुओं का नाश करती है। इसका स्वामी राक्षस है। कई बार इस दिशा के कारण मनुष्य असमय काल का ग्रास बन जाता है। यदि आवासीय भवन में नैऋत्य कोण को दूषित रखा जाए तो उसमें रहने वाले मनुष्यों का चरित्र दूषित होता है तथा शत्रु पक्ष प्रबल रहता है। इस विदिशा के प्रभाव से ही भवन पर भूत-प्रेत आदि की छाया बनी रहती है। इन सभी दुष्प्रभावों के कारण मनुष्य आकस्मिक संकटों के जाल में फंसा रहता है।

4.1.8 वायव्य—

वायव्य का तात्पर्य उस कोण से है जो उत्तर और पश्चिम दिशा को मिलता है। वायव्य कोण के प्रभाव अत्यन्त शुभ फलदायी होते हैं। यह मनुष्य को दीर्घायु, स्वास्थ्य तथा शक्ति प्रदान करता है। इस विदिशा में हमेशा शुद्धता रहनी चाहिए। यदि यह किसी कारणवश दूषित हो जाए तो अपने विपरीत प्रभावों से भवन के निवासियों को पीड़ा पहुँचाती है। ऐसे में मित्र भी शत्रुवत् व्यवहार करने लगते हैं। शक्ति-सामर्थ्य का असयम ह्रास होता है। यह सब इस कारण होता है क्योंकि घर का मुखिया अहंकारी हो जाता है। उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है।

4.2 किस दिशा में क्या होना चाहिये ?—

पूर्व एवं उत्तर की दिशा हल्की होती है एवं दक्षिण-पश्चिम की दिशा भारी होती है, जमीन का ढाल एवं निर्माण उत्तर-पूर्व की तरफ नीचा होना चाहिए एवं दक्षिण व पश्चिम की तरफ ऊँचा होना चाहिए।

किसी भी घर में, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, एक देवस्थान का होना नितांत अनिवार्य है और यह देवस्थान सदैव उत्तर-पूर्वी कोण पर होना चाहिए। इस कोण को ईशान कोण भी कहते हैं, यह क्षेत्र जल के लिए भी है, अतः इस क्षेत्र में जलाशय, जल संचय इत्यादि इकाइयाँ बनाई जा सकती हैं। ड्राइंग रूम में इसी कोण पर फिश-एक्वेरियम रखे जाने चाहिए।

घर का दक्षिण-पूर्व क्षेत्र आग्नेय कोण कहलाता है। इस क्षेत्र में रसोईघर का निर्माण शुभ है। यदि एक या दो कमरे की ही इकाई हो तो भी रसोई सम्बन्धी कार्य इसी कोण पर होना चाहिए। किसी कारण से यदि इस क्षेत्र में रसोई न रखी जा सके तब उत्तर-पश्चिम कोण पर उसे रखना चाहिए। इसी प्रकार ईशान कोण पर अग्नि सम्बन्धित क्षेत्र नहीं होना चाहिए। कमरों में आग्नेय अथवा उत्तर-पश्चिम कोणों में बिजली के स्विच बोर्ड, टी.वी. आदि का रखा जाना श्रेष्ठ है।

घर का उत्तर-पश्चिम क्षेत्र वायव्य कोण कहलाता है। इसका खुला होना श्रेष्ठ है। अतः खिड़कियों एवं बॉलकनियों के लिए शुभ है। ड्राइंग रूम अथवा अन्य कमरों में इसी क्षेत्र पर पंखे, कूलर आदि लगाना श्रेष्ठ है।

घर का दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र नैऋत्य कोण कहलाता है। यह खुला हुआ न रहे अथवा इस तरफ बहुत ही जरूरी हो तो कम खुला रखें, इस क्षेत्र में जितना अधिक वजन होगा उतना ही शुभ है, पुनः ईशान कोण पर वजन का न होना शुभ

है। बहुत जरूरी होने पर मूल ईशान कोण को छोड़ते हुए बहुत ही हल्के सामान/पवित्र पदार्थ ही इस क्षेत्र में रखने चाहिए।

घर का केन्द्र और इसी प्रकार प्रत्येक कमरे का केन्द्र सदैव खाली रहना चाहिए। यह ब्रह्मस्थान कहलाता है, पुनः सम्पूर्ण इकाई का मूल ब्रह्मस्थान दबा हुआ न हो तथा वह सदैव स्वच्छ रहे।

मुख्य कक्ष (गृह के मुखिया का शयन कक्ष) नैऋत्य क्षेत्र में होना चाहिए। चाहे फिर वह इकाई एक कमरे की ही क्यों न हो। बच्चों का शयनकक्ष पूर्व क्षेत्र में और उनका अध्ययन कक्ष ईशान क्षेत्र में होना शुभ है। कुंआरी लड़कियों का शयन वायव्य क्षेत्र में होना शुभ है।

4.3 वास्तु एवं प्रकृति में स्वस्तिक का महत्व—

माँ वसुन्धरा के अन्दर निधियों का अनमोल खजाना छिपा है। अनादिकाल से आदिब्रह्मा, (भ.ऋषभदेव) नारायण श्रीकृष्ण, ऋषि–मुनि, आचार्यदेव ने इस विषय पर हमें जानकारियाँ दी हैं।

वैज्ञानिकों ने तूफान, बरसात, जमीन के अन्दर पानी, तेल के कुँए आदि की जानकारी के लिए कई यंत्रों का निर्माण किया । इन यंत्रों से प्राप्त जानकारियाँ पूर्णतः सत्य एवं पूर्णतः असत्य नहीं होतीं। जर्मन और फ्रांस ने यंत्रों का आविष्कार किया है जो हमें ऊर्जाओं की जानकारी देता है। उस यंत्र का नाम बोविस है। इस यंत्र से स्वस्तिक की ऊर्जाओं का अध्ययन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों ने उसकी जानकारी विश्व को देने का प्रयास किया है। विधिवत् पूर्ण आकार सहित बनाये गये एक स्वस्तिक में करीब 1 लाख बोविस ऊर्जाएँ रहती हैं। जानकारियाँ बड़ी अद्भुत एवं आश्चर्यजनक हैं।

4.3.1 स्वस्तिक का महत्व सभी धर्मों में बताया गया है—

विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। 4 हजार साल पहले सिन्धु घाटी की सभ्यताओं में भी स्वस्तिक के निशान मिलते हैं। बौद्ध धर्म में स्वस्तिक का आकार गौतम बुद्ध के हृदयस्थल पर दिखाया गया है। मध्य एशिया देशों में स्वस्तिक का निशान मांगलिक एवं सौभाग्यसूचक माना जाता है। नेपाल में हेरंब के नाम से पूजित होते हैं। वर्मा में महा पियेन्ने के नाम से पूजित है। मसोपोटेमिया में अस्त्र-शस्त्र पर विजय प्राप्त हेतु स्वस्तिक चिन्ह प्रयोग किया जाता है। हिटलर ने भी इस स्वस्तिक चिन्ह को ग्रहण किया था। जर्मन के राष्ट्रीय ध्वज में स्वस्तिक विराजमान है। क्रिस्चियन समुदाय क्रास का प्रयोग करते हैं। वह स्वस्तिक का ही रूप है। जैन समुदाय एवं सनातन समुदाय में स्वस्तिक को मांगलिक स्वरूप माना गया है।

4.3.2 वास्तु शास्त्र में चार दिशाएँ होती हैं—

स्वस्तिक चारों दिशाओं का बोध कराता है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, चारों दिशाओं के देव पूर्व के इन्द्र, दक्षिण, के यम, पश्चिम के वरुण, उत्तर के कुबेर। स्वस्तिक की भुजाएँ चारों उप दिशाओं का ज्ञान कराती हैं। ईशान, अग्नि, नैऋत्य, वायव्य । स्वस्तिक के आकार में आठों दिशाएँ गर्भित हैं। वैदिक हिन्दू धर्म के अनुकूल स्वस्तिक को गणपति का स्वरूप माना है। स्वस्तिक की चारों दिशाओं से चार युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलयुग की जानकारी मिलती है। चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। चार आश्रम–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास। चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार वेद इत्यादि अनंत जानकारी का बोधक है।

4.3.3 स्वस्तिक की चार भुजाओं से जिनधर्म के मूल सिद्धांतों का बोध होता है—

समवसरण में भगवान का दर्शन चारों दिशाओं से समान रूप से होता है। चार घातिया कर्म—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय। चार अनंत चतुष्टय—अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य। उपवन भूमि में चारों दिशाओं में क्रमशः अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र वन होते हैं। चार अनुयोग—प्रथमानुयोग,

करणानुयोग,चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। चार निक्षेप–नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव। चार कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ। मुख्य चार प्राण—इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास। चार संज्ञा—आहार, निद्रा, मैथुन, परिग्रह। चार दर्शन–चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल। चार आराधना—दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप। चार गतियां—देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक।

4.3.4 स्वस्तिक के बारे में इतनी जानकारी देने का मुख्य उद्देश्य—

स्वस्तिक के आकार में अनगिनत जानकारियाँ अनेक शक्तियों से गर्भित हैं। शरीर की बाहरी शुद्धि करके शुद्ध वस्त्रों को धारण करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए (जिस दिन स्वस्तिक बनावें) पवित्र भावनाओं से नौ अंगुल का स्वस्तिक 90 डिग्री के एंगल में सभी भुजाओं को बराबर रखते हुए बनायें। केसर से, कुमकुम से, सिन्दुर और तेल के मिश्रण से अनामिका अंगुलि से ब्रह्म मुहूर्त में विधिवत् बनाने पर उस घर के वातावरण में कुछ समय के लिए अच्छा परिवर्तन महसूस किया जा सकता है। स्वास्तिक के अंदर बोविस यंत्र के द्वारा ऊर्जाओं की जो जाँच की गई लगभग 1 लाख सकारात्मक ऊर्जाओं का अस्तित्व रहता है। भवन या फ्लैट के मुख्य द्वार पर एवं हर कमरे के द्वार पर अंकित करने से सकारात्मक ऊर्जाओं का आगमन होता है।

4.4 वास्तु के आसान टिप्स—

घर एक ऐसी जगह होती है जहां हम खुलकर सांस लेना चाहते हैं। जहां मीठी–सी नींद पलक झपकते ही आ जाए। जहां कभी पूरे परिवार के साथ हंसी की खिलखिलाहट सुनाई दे तो कभी कोई कोना हमारे एकांत का साथी बने। इसी घर में जब कलह और तनाव मेहमान बनते हैं तो सारे घर की शांति चली जाती है। हमे नहीं पता होता है कि ऐसा क्यों होता है ?

क्यों छोटी–छोटी बातों पर हम अपने ही परिवार से झगड़ बैठते हैं ? वास्तुशास्त्र बताता है कि जाने–अनजाने घर के निर्माण में कुछ दोष रह जाते हैं। यह उन्हीं का परिणाम होता है। प्रस्तुत हैं आसान से वास्तु टिप्स जो आपके घर को दें सुख, शांति और खुशियों की ठंडी छांव।

दरवाजों के कब्जे में तेल डालते रहें अन्यथा दरवाजा खोलते या बंद करते समय आवाज करते हैं जो वास्तु के अनुसार अत्यन्त अशुभ तथा अनिष्टकारी होता है।

घर में विद्युत संबंधी उपकरण जो कर्कश ध्वनि उत्पन्न करते हों जैसे पंखे, कूलर, आदि की समय–समय पर मरम्मत करवाते रहें।

घर में कम से कम वर्ष में दो बार हवन व यज्ञ करवाएं।

अगर भवन में जल प्रवाह ठीक न हो या पानी की सप्लाई सही दिशा में न हो तो उत्तर–पूर्व दिशा से यानि ईशान कोण से भूमिगत जल की टंकी का निर्माण कर उसी से भवन में जल की सप्लाई करें। ऐसा करने से यह वास्तुदोष समाप्त हो जाएगा तथा जल की गलत दिशा से सप्लाई भी बंद हो जाएगी।

घर में पूजा स्थल का निर्माण ईशान कोण में करवाएं।

घर का अग्र भाग ऊंचा तथा पृष्ठ भाग नीचा हो तो निचले भाग में डिश एंटीना, टी.वी.एंटीना आदि को अगले भाग से ऊंचा कर लगा दें। इस प्रकार यह वास्तुदोष पूर्णरूप से समाप्त हो जायेगा।

यदि घर का पूर्व आग्नेय निचला हो तो प्लाट के स्वामी को लड़ाई–झगड़े, विवाद के कारण यातना सहनी पड़ती है।

घर का वायव्य कोण निचला होने पर भी शत्रुओं की संख्या बढ़ती है। शत्रुओं के कारण गृहस्वामी को मानसिक तनाव मिलता है।

अगर किसी घर का दक्षिण और आग्नेय निचला हो, वायव्य और उत्तर ऊंचे हों तो घर का मालिक कर्ज और बीमारी के कारण मानसिक तनाव में रहता है।

जिस घर में नैऋत्य और दक्षिण निचला होता है और उत्तर और ईशान ऊंचा होता है तो ऐसे घरों के मालिक को अपवित्र कार्य करने और व्यसनों का दास बनने से मानसिक अशांति रहती है और परिवार के लोग भी तनाव में रहते हैं।

यदि आपकी दो मंजिला मकान बनवाने की योजना है तो पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर भवन की ऊंचाई कम रखें।

इस बात का ध्यान रखें कि भवन में उत्तर-पूर्व दिशा में ही दरवाजे व खिड़कियां सर्वाधिक संख्या में होने चाहिए।

4.5 वास्तुशास्त्र अपनाएं, खुशियां पाएं—

वास्तु का सहज शाब्दिक अर्थ एक ऐसे आवास से है जहां के निवासी सुखी, स्वस्थ एवं समृद्ध हों इसलिये वास्तु विज्ञान में हमारे पूर्वजों ने अपने दिव्य ज्ञान से ऐसे अनेक तथ्यों को शामिल किया है जो कि किसी भी भवन के निवासियों को शांतिपूर्वक रहने में परम सहायक होते हैं, इन सभी तथ्यों में क्यों और कैसे की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि प्रयोगकर्ता को होने वाले प्रत्यक्ष लाभ भी इसके प्रमाण है। ऐसे ही कुछ अत्यंत सरल, प्रभावी एवं सार्थक प्रयोग प्रस्तुत है।

घर में बनने वाले भोजन में से प्रत्येक प्रकार का थोड़ा-थोड़ा पदार्थ एक अलग प्लेट में भोजन बनाने वाली महिला पहले निकालकर हाथ जोड़कर वास्तुदेव को समर्पित करें और फिर घर के अन्य सदस्यों को भोजन कराएं (फिर चाहे कोई भी सदस्य कभी भी भोजन क्यों न करें) ऐसा करने से वास्तु देवता उस घर पर सदैव प्रसन्न रहते हैं। बाद में प्लेट में निकाला गया पदार्थ गाय को खिला दें।

घर में टूटी-फूटी मशीनों को न रखें । जितनी जल्दी हो सके कोई भी टूटी हुई अथवा विद्युत मशीन को चाहे वह छोटी हो अथवा बड़ी घर से बाहर कर देना चाहिए। इनके घर में रहने से मानसिक तनाव तथा शारीरिक व्याधियां उस घर के निवासियों को घेरती है।

जिस घर में एक पाए का पटिया (पाटा) रहता है वहां आर्थिक हानि एवं मानसिक तनाव दृष्टिगोचर होते हैं अतः घर में ऐसा एक पाए का पाटा न रखें।

घर में कहीं भी झाड़ू को खड़ी करके नहीं रखना चाहिए। इसी प्रकार उसे न तो ऐसी जगह रखनी चाहिए जहां उसे पैर लगे या उसे लांघा जाता हो। ऐसा होने पर घर में बरकत नहीं होती है। धनागम के स्त्रोतों में कमी आती है।

घर के ईशान क्षेत्र में (उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में) कोई भी पालतू जानवर न बांधें। कुत्ते, मुर्गे एवं भैसों के संबंध में तो और भी सावधान रहें अन्यथा घर में परेशानियों का अंबार लगा रहेगा। प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा, सीता, अशोक, आंवला, हरश्रृंगार, अमलतास, निर्गुण्डी इत्यादि में से कम से कम दो पौधे अवश्य होने चाहिए। ये अमन एवं समृद्धिवर्धक हैं। **कैक्टस** का घर में होना अशांति देता है।

घर में नित्य ईश्वर का भजन-पूजन अवश्य होना चाहिए । पूजन करने वाले सदैव पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर पूजन करें। घर में घी का दीपक अवश्य जलाएं।

घर के प्रत्येक कमरे में एक बार प्रकाश जरूर फैलाना चाहिए अर्थात घर के प्रत्येक कमरे को दिन में भले ही कुछ क्षणों के लिये ही किन्तु प्रकाशित अवश्य ही करना चाहिए।

4.6 विद्यार्थी का अध्ययन कक्ष—

1. अध्ययन कक्ष भवन के पश्चिम-मध्य क्षेत्र में बनाना अति लाभप्रद है, इस दिशा में बुध-गुरु-चन्द्र एवं शुक्र चार ग्रहों से उत्तम प्रभाव प्राप्त होता है। इस दिशा के कक्ष में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को बुध ग्रह से बुद्धि-वृद्धि, गुरु ग्रह से महत्वाकांक्षा एवं जिज्ञासु बुद्धि, चन्द्रगृह से नवीन विचारों की वृद्धि और शुक्रग्रह से प्रतिभा वक्तृत्व एवं लेखन कला में निपुणता और धन वृद्धि होती है।

2. अध्ययनकक्ष में विद्यार्थी की टेबल पूर्व, उत्तर-ईशान या पश्चिम में रहना चाहिए। दक्षिण आग्नेय व नैऋत्य या उत्तर-वायव्य में नहीं होना चाहिए।

3.अध्ययन कक्ष में खिड़की या रोशनदान पूर्व-उत्तर या पश्चिम में होना श्रेष्ठ या दक्षिण में सम्भवतया नहीं रखें।

4.अध्ययन कक्ष में शौचालय कदापि नहीं बनाएं।

5.अध्ययन कक्ष की रंग संयोजना—सफेद, बादामी, फीका आसमानी या हल्का फिरोजी रंग दीवालों पर टेबल या फर्नीचर पर श्रेष्ठ है। काला, लाल, गहरा नीला रंग कमरे में नहीं होना चाहिए।

6.अध्ययनकक्ष का प्रवेश द्वार पूर्व-उत्तर-मध्य या पश्चिम में रहना चाहिए। दक्षिण आग्नेय व नैऋत्य या उत्तर-वायव्य में नहीं होना चाहिए।

7.अध्ययन कक्ष में अभ्यास पुस्तकें रखने की रेक एवं टेबल उत्तर दिशा की दीवाल से लगी होनी चाहिए।

8.अध्ययन कक्ष में पेय जल, मन्दिर, घड़ी उत्तर या पूर्व दिशा में रखना चाहिए।

9.अध्ययन कक्ष में टी. वी., मैग्जीन एवं अश्लील साहित्य व सीडी प्लेयर एवं वीडियो गेम, रद्दी अखबार, अनुपयोगी सामान एवं भारी वस्तुएं न रखें।

10.अध्ययनकक्ष में आदर्शवादी चित्र, सरस्वती माता एवं गुरुजनों के चित्र लगाना चाहिए।

11.युद्ध, लड़ाई-झगड़े, हिंसक पशु-पक्षियों के चित्र व मूर्तियाँ नहीं रखना चाहिए।

12.अध्ययन कक्ष में शयन नहीं करें।

13.अध्ययन कक्ष को अन्य कक्षों के जमीनी तल से ऊँचा या नीचा नहीं रखें। तल का ढाल पूर्व या उत्तर की ओर रखा जाए।

14.अध्ययन कक्ष में केवल ध्यान, अध्यात्म, वाचन, चर्चा एवं अध्ययन ही करना चाहिए। गपशप, भोग-विलास की चर्चा एवं अश्लील हरकतें नहीं करना चाहिए।

15.अध्ययन कक्ष में जूते, चप्पल, मोजे पहनकर प्रवेश नहीं करना चाहिए।

16. अध्ययन कक्ष के मन्दिर में सुबह-शाम कपूर या शुद्ध घी का दीपक व हल्की खुशबु की अगरबत्ती अवश्य लगाएं।

17. कक्ष के तल पर कोटा स्टोन या मार्बल व टाइल्स की रंग संयोजना सफेद, क्रीम, बादामी रंग का उपयोग करें।

18. अध्ययन कक्ष की उत्तर या पूर्व दीवाल पर सीढ़ियाँ, शौचालय एवं रसोई नहीं हो।

4.6.1 अध्ययन टेबल की संयोजना—

1. टेबल हमेशा आयताकार होना चाहिए, गोलाकार या अण्डाकार नहीं होना चाहिए।

2. टेबल की टाप का रंग सफेद दूधिया या क्रीम श्रेष्ठ है या अन्य रंग फीके हल्के कलर हों तो श्रेष्ठ है। प्लेन ग्लास भी रख सकते हैं।

3. टेबल पर अध्ययन करते समय विषय से सम्बन्धित पुस्तकें व आवश्यक इन्स्ट्रूमेन्ट ही रखें।

4. टेबल पट बन्द घड़ी, टूटे-फूटे व बन्द पेन, धारदार चाकू, हथियार व औजार कदापि नहीं रखे।

5. टेबल पर एक क्रिस्टल ग्लोब, स्टैण्ड, कैलेन्डर व फ्लावर पॉट रखें।

6. कम्प्यूटर टेबल पूर्व मध्य या उत्तर मध्य में रखें। ईशान में नहीं रखें।

7. अध्ययन टेबल व कुर्सी के ऊपर सीढ़ियाँ, बीम-कॉलम व डक्ट, टांड नहीं हो।

4.7 कार्यक्षमता बढ़ाएँ वास्तु से-

निम्न वास्तु नियमों का ध्यान रखें—

(1) ऑफिस में जब भी टेबल लगायी जाए ऑफिस के नैऋत्य कोण में लगानी चाहिए। आपका मुँह पूर्व या उत्तर में होना चाहिए। आपके सामने विजिटर्स का मुँह पश्चिम या दक्षिण होना चाहिए।

(2) विजिटिंग कुर्सी आपके टेबल के सम्मुख होनी चाहिए एवं घुमावदार (रिवालविंग) होना चाहिए। मालिक के बैठने की कुर्सी लकड़ी की चार टाँग वाली होनी चाहिए। उस कुर्सी में किसी भी तरह की लोहे की कील न लगायें, लकड़ी की लगायें और जरूरत हो तो पीतल की लगा सकते हैं। विजिटिंग की कुर्सी से मालिक की कुर्सी ऊँची एवं बड़ी तथा सुन्दर होनी चाहिए। उस कुर्सी पर बैठने से आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

(3) मुख्य गेट के सामने टेबल नहीं होनी चाहिए। मुख्य गेट से आपकी टेबल कटनी नहीं चाहिए, ऐसा है तो एकाग्रता नष्ट होगी, ऐसा नहीं हो तो एकाग्रता में वृद्धि होगी।

(4) सीलिंग पर बीम का अगर वेध हो उसे अतिशीघ्र पी ओ पी करवा कर उसे एक रूप दे दें। बीम रहने से माथे पर बोझ, सर का भारी होना होता है। बीम नहीं रहने से मस्तिष्क में भार नहीं होता, मन हल्का प्रसन्न रहता है।

(5) ऑफिस के लिए टेबल बनाते समय, साइड टेबल बनाते समय, बैंक टेबल बनाते समय ध्यान रखें कहीं आप यू आकार में तो नहीं हैं। अगर हैं तो आप ऑफिस में अपने को बँधा-बँधा महसूस करेंगे। ऑफिस से बाहर निकलकर काम करने की इच्छा नहीं होगी। बंधनमुक्त होने के लिए एल शेप में टेबल बनवायें।

(6) आपके पीठ के पीछे कोई बड़ी खिड़की या दरवाजा नहीं होना चाहिए। अगर है तो आप में साहस की कमी होगी। साहस को पाने के लिए खिड़की में ग्लास (शीशा) लगाकर बन्द करें। शीशा लगाने से प्राकृतिक रोशनी का आगमन होता रहेगा। नैऋत्य से आने वाली नकारात्मक ऊर्जाओं का आना बन्द हो जायेगा।

(7) आपके ऑफिस के टेबल का टॉप ग्लास का न हो। ग्लास का होने से आपका अक्स (बिंब) जो दिखायी देता है, आपके शरीर की ऊर्जाओं को कम करने में अक्स सहायक बन जाता है। अगर ऐसा है तो आप कमजोरी, थकान महसूस करेंगे, है तो बदल लेवें। कोई भी प्लेन मैट, बेलबेट, बूडेन फिनिसिंग, मेटपॉलिश का टॉप व्यवहार में लायें। ऐसा करने से कमजोरी का पलायन होगा। साहस की वृद्धि होगी।

(8) ऑफिस प्राकृतिक रोशनी, हवा आना अति आवश्यक है। ए. सी. ऑफिस होने के कारण प्राकृतिक हवा ए. सी. के सहयोग से आती है, प्राकृतिक रोशनी आने के लिए इंटीरियर की सलाह लेकर शीशों के द्वारा रोशनी अंदर लायी जाती है। प्राकृतिक रोशनी एवं हवा से मानव की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

(9) ऑफिस में बन्द घड़ी, धीमी चलने वाली घड़ी, खण्डित वस्तुएँ, डस्टबीन ईशान कोण में रखना, ईशान कोण में भारी-भरकम सामान या अलमारी रखना, ईशान कोण की दीवार पर पहाड़ का चित्र होना, ईशान में मेन स्विच होना, दरवाजा खोलने से आवाज होना इनसे बचना चाहिए।

4.8 आपके रसोईघर का वास्तु—

1. रसोईघर का प्रवेशद्वार दक्षिण दिशा में नहीं बनना चाहिए।
2. शेष तीन दिशाओं में बनाया जा सकता है।
3. रसोईघर बनाने वालों का मुख पूर्व में होना चाहिए।
4. रसोईघर की उत्तर दिशा में धान्य के वजनदार डिब्बे आदि नहीं रखने चाहिए।
5. हाथ धोने का स्थान ईशान कोण में होना चाहिए।
6. भोजन बनाने वाली महिला को भोजन बनाने वाले वाले स्थान पर ही बैठकर कभी भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से घर की ऋद्धि-सिद्धि का नाश होता है।
7. रसोईघर के ठीक सामने शौचालय नहीं होना चाहिए।
8. भोजन करते समय पूर्व अथवा उत्तर में मुख करके भोजन करना चाहिए। दक्षिण में मुख करके भोजन नहीं करना चाहिए।

9. पानी पूर्व या पश्चिम दिशा में मुख करके ही पीना चाहिए। खड़े-खड़े ऊपर मुख करके लोटे या ग्लास से मुख में जल डालकर पानी नहीं पीना चाहिए।

4.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-पूर्व दिशा के स्वामी.....होते हैं ?

(क) राक्षस ☐
(ख) कुबेर ☐
(ग) इन्द्र ☐

प्रश्न 2-वह कौन सा यंत्र है, जिससे स्वस्तिक की ऊर्जाओं का अध्ययन किया जा रहा है ?

(क) बोविस ☐
(ख) हेरंब ☐
(ग) कोई नहीं ☐

प्रश्न 3-घर के बीच में कौन सा स्थान माना गया है ?

(क) ब्रह्म स्थान ☐
(ख) इन्द्र स्थान ☐
(ग) ध्रुव स्थान ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-रसोईघर के वास्तु नियमों का संक्षिप्त उल्लेख करें ?

प्रश्न 2-पश्चिम व उत्तर दिशा का क्या प्रभाव होता है ?

प्रश्न 3-वास्तु एवं प्रकृति में स्वस्तिक का क्या महत्व है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-विद्यार्थी का अध्ययन कक्ष कैसा होना चाहिए ? विस्तार से बताइए।

पाठ-5 – जिन प्रतिमा और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

5.1 गृहस्थ को आत्मकल्याण के लिये पंच-परमेष्ठी की स्तुति एवं पूजा प्रतिदिन करना चाहिये। देवपूजा, गुरुपास्ति स्वाध्याय, संयम, तप, और दान इन षट्कर्मों के आलम्बन नव देवता हैं।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनागम, जिनधर्म, जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा ये नव देवता हैं। प्रतः अपनी उपासना में श्रावक इनकी आराधना करके वीतरागता और मानवता की शिक्षा ग्रहण करता है, जो इसके आध्यात्मिक और व्यवहारिक जीवन में उपयोगी है।

उक्त नव देवों में वर्तमान में जहाँ हम निवास करते हैं उस क्षेत्र में अरहंत एवं सिद्ध परमात्मा विराजमान नहीं हैं अन्तिम तीन परमेष्ठी के दर्शन होते हैं किन्तु उनका प्रतिदिन अभिषेक किया भी नहीं जाता। जिनमंदिर, जिनागम और जिनधर्म का भी अभिषेक नहीं होता। सिर्फ जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा के समय दर्पण में उनके प्रतिबिम्ब का मंत्रपूर्वक अभिषेकपूर्वक पूजन प्रतिदिन नियमित किया जा सकता है और उसके द्वारा हम पंच परमेष्ठी की पूजा कर सकते हैं। यह किसी भी तीर्थंकर की हो, वीतरागता का आदर्श होने से उनके माध्यम से सभी परमेष्ठियों की पूजा की जा सकती है। श्रावक के प्रतिदिन के कर्त्तव्य में देव, शास्त्र, गुरुपूजा, चौबीस तीर्थंकर पूजा, बीस विद्यमान विदेह-क्षेत्रवर्ती तीर्थंकर पूजा, सिद्धपूजा, जिनालय, सिद्धक्षेत्र, नन्दीश्वर, दशलक्षण एवं रत्नत्रयधर्म आदि की अष्टद्रव्य पूजा व अर्घ्य हम चढ़ाते ही हैं। इनमें प्रतिमा ही प्रमुख आलंबन है जिसमें हम पंच परमेष्ठी की स्थापना कर पूजा करते हैं। उनमें अर्हंत प्रतिमा की स्थापना मुख्य है। सिद्धप्रतिमा में अष्ट प्रातिहार्य और चिह्न नहीं होते जबकि अर्हंत प्रतिमा में होते हैं।

5.1.1 प्रतिमा का माप—

आचार्य वसुनन्दि, जयसेन और आशाधर प्रतिष्ठा पाठों में प्रतिमा का लक्षण और माप प्रायः समान है। श्रीवत्स से भूषित उदरस्थल, तरुणांग, दिगम्बर, नख-केश रहित, कायोत्सर्ग या पद्मासन, नासाग्रदृष्टि, सुन्दर संस्थान वाली प्रतिमा होना चाहिये। खड्गासन प्रतिमा 108 अंगुल (भाग) प्रमाण हो जो नव स्थानों में विभाजित हो।

यहाँ अंगुल द्वादशांगुल या ताल माना जाता है। 108 अंगुल में 12 अंगुल मूल, 4 अंगुल ग्रीवा, ग्रीवा से हृदय 12 अंगुल, हृदय से नाभि 12 अंगुल, नाभि से लिंग 12 अंगुल रहना चाहिये। लिंग से गोड़ा 24 अंगुल, गोड़ा 4 अंगुल, गोड़ा से गुल्फ 24 अंगुल, गुल्फ से पगथली 4 अंगुल हो।

पद्मासन से आधा हिस्सा ऊँचाई रहती है। इसमें एक घुटने से दूसरा घुटना बांये घुटने से बांये कन्धे तक, बायें घुटने से दायें कन्धे तक और पादपीठी से केशांत तक इस प्रकार चतुर सुमाप होता है। अभयनंदि तथा यशस्तिलक चम्पूकार आचार्य सोमदेव तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती रचित त्रिलोकसार के अनुसार 10 ताल की प्रतिमा भी जिनेन्द्र प्रतिमा बताई है। इस दृष्टि से 120 भाग होते हैं।

5.1.2 मन्दिर के द्वार की ऊँचाई—

इसी प्रसंग में यह संकेत करना आवश्यक है कि मन्दिर की वेदी में प्रतिमा विराजमान करते समय मन्दिर के सामने द्वार की ऊँचाई का ख्याल रखा जावे। द्वार की ऊँचाई के 8 भाग करें। ऊपर का 8 वां भाग छोड़कर 7 वें भाग में प्रतिमा की दृष्टि होना चाहिये अथवा उक्त 7 वें भाग के 8 भागों में से 5-3-1 वें भाग में दृष्टि रहे। यह स्थूल रूप से बताया गया है। इससे विशेष ज्ञातव्य यह है कि द्वार के 9 भाग करें। नीचे के 6 भाग और ऊपर के 2 भाग छोड़ दें। शेष 7 वें भाग के भी 9 भाग करें इसी के 7 वें भाग में वीतराग जिनप्रतिमा की दृष्टि होना चाहिये।

5.1.3 पंचकल्याणक प्रतिष्ठा—

जहाँ पंचकल्याणक मंत्रों से अतद्गुण में गुणस्थापना रूप आरोप का विधान कर सर्वज्ञता की स्थापना की जाती है वहाँ उस क्रिया के अनुष्ठान से स्थापना निक्षेप द्वारा उसका वैसा ही ज्ञान होता है। स्थापना निक्षेप द्वारा मूर्ति में

पंचकल्याणक मंत्रों से गुणस्थापन और सर्वज्ञता का आरोप करने से वह मूर्ति वीतराग और सर्वज्ञ तीर्थंकर की कहलाती है। प्राणप्रतिष्ठा के मंत्र से वह अचेतन से सचेतन मानी जाती है। अर्हंत प्रतिमा में पंचकल्याणक, अष्ट प्रातिहार्य, अनन्त दर्शनादिगुणारोपण करे। इनके लिये प्रतिमा के प्रत्येक अंग में मंत्रन्यास, 48 संस्कार स्थापन, नेत्रोन्मीलन, श्री मुखोद्घाटन, सूरिमंत्र, प्राणप्रतिष्ठा आदि मंत्रों के द्वारा गर्भ से लेकर केवलज्ञान तक संस्कार होते हैं। जो बाह्यक्रिया में दर्शकों को बताई जाती हैं उन्हें ही पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का स्वरूप समझ लेना भूल है। इनके अतिरिक्त अन्तरंग क्रिया मंत्र संस्कार हेतु की जाती है। गर्भ, जन्म कल्याणकों में जो प्रदर्शन होता है वे तीर्थंकरों के जीवन की घटनायें हैं, वे वीतरागता के पूर्व पुण्य वैभव के रूप में दिखाई जाती हैं। पश्चात् उस वैभव का त्याग होकर वीतरागता का आदर्श ग्रहण कराया जाता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि आत्मा से परमात्मा बनने का विधान है। इसमें प्रारम्भ में किस प्रकार आत्मा का क्रमशः उत्थान होकर मुक्ति प्राप्त होती है तथा प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगों का एक ही जीवन में किस प्रकार समन्वय होता है यह सब पंचकल्याणकों के माध्यम से दिग्दर्शन कराया जाता है। साथ ही स्वप्न व पूर्व भवों के वर्णन से कर्मसिद्धान्त का भी परिचय दिया जाता है। जिनबिम्ब दर्शन को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का साधन माना गया है। पंचकल्याणक व जिनबिम्ब स्थापना को आचार्य जयसेन स्वामी ने सम्यक्त्व का उत्कृष्ट लाभ बताया है।

5.1.4 हवन (शान्तियज्ञ) का औचित्य—

प्रतिष्ठा या अन्य पूजा विधानों में हवन (शान्ति यज्ञ) की परम्परा को आजकल कतिपय सज्जन हिंसा का कारण बनाकर बन्द करना चाहते हैं और इसे भी वैदिक धर्म की नकल मानते हैं। सभी प्रतिष्ठा पाठों और आदिपुराण आदि में आचार्यों ने तीर्थंकर कुण्ड, गणधर कुण्ड और सामान्य केवलि कुण्ड की रचना करके 112 आहुति मंत्र बताये हैं। पूजा में चढ़ाये गये द्रव्य को हवन में क्षेपण का भी उल्लेख मिलता है। मन्दिर में गृहस्थ जब जल, पंखा आदि का उपयोग करते हैं, स्नान आदि के लिये भट्टी जलाते हैं और बड़े–बड़े भोज देते हैं तब हवन का निषेध करना आश्चर्य का विषय है। अखण्ड दीपक, बिजली की रोशनी, आरती आदि, अग्नि में धूप खेना आदि कार्य भी होते हैं। हवन से अनेक रोग दूर होकर शुद्ध वातावरण बनता है, मंत्र, जाप के बाद उनसे आहूति देने पर मंत्र की शक्ति बढ़ती है।

5.2 मूर्ति निर्माण कला तथा पंचकल्याणक—

जैनदर्शन की मान्यता है कि संसारी जीव अपने कर्मबंधन के कारण देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक इन चार गतियों में भ्रमण करता रहता है। कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त होने पर जीवात्मा सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है और लोक के अग्रभाग में जाकर स्थिर हो जाता है, तब उसे संसार में पुनः नहीं आना पड़ता। इन सिद्ध आत्माओं की संख्या अनन्तानन्त है। सभी सिद्ध आत्माएँ मनुष्य योनि से ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती हैं। तीर्थंकर भी उसी प्रकार सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं। वे देव जाति के नहीं होते, वे तो देवाधिदेव हैं क्योंकि मानव शरीर धारण करते हुए भी वे देवताओं द्वारा पूजित होते हैं इसीलिये उन्हें देवाधिदेव कहा गया है।

शास्त्रों के द्वारा अच्छी तरह जाने हुए तीर्थंकरों के प्रति दर्शन पूजनादि आदर रूप व्यवहार करने के लिये अमुक तीर्थंकर हैं, ऐसा कहकर जो अपने भावों में प्रकाशित भगवान की प्रतिमा में स्थापना करना वह प्रतिष्ठा है।

"मुक्त्यादौ तत्त्वेन प्रतिष्ठिताया न देवतापास्तु।
स्थाप्येन च मुख्येयं तदधिष्ठानाध भावेन।।"
"भवति च खलु प्रतिष्ठा निज भावस्यैव देवतोद्देशात्।

मुक्त होकर लोकान्त जा विराजे हुए देवता स्थाप्य (मूर्ति) में नहीं आ सकते अतः साक्षात् देव की स्थापना तो नहीं है परन्तु उपचार से देवता के उद्देश्य से निज भावों की ही मूर्ति में प्रतिष्ठा होती है।

कल्याण मन्दिर में आचार्य श्री ने लिखा है—

आत्मामनीषिभिरयं त्वदभेद बृद्धया।
ध्यातो जिनेश भवतीह भवत्प्रभावः।।

हे भगवन् ! जब बुद्धिमान् पुरुष निज आत्मा को ध्यान के द्वारा आप से अभिन्न कर लेता है तो उसमें आपका प्रभाव आ जाता है। अस्तु !

5.3 जिन पूजा—

अर्हंत् , सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारों को जैन परम्परा में मंगल और लोकोत्तम माना गया है। साधु 3 प्रकार के होते हैं—(1) आचार्य (2) उपाध्याय (3) सर्व साधु। इन पंच परमेष्ठियों और श्रुतदेवता की पूजा करने का विधान प्राचीन जैन ग्रंथों में मिलता है। वसुनन्दि श्रावकाचार में आचार्य श्री ने लिखा है—

जिणसिद्ध सूरिपाठय साहूणं ज सुयस्स विहिवेण।
कीरइ विविहा पूजा वियाण तं पूजाणविह्मणं।।

आचार्य श्री जिनसेन के आदिपुराण में पूजा श्रावक के निरपेक्ष कर्म के रूप में अनुशंसित है।

पूजा के छह प्रकार बताये गये हैं—(1) नामपूजा (2) स्थापना पूजा (3) द्रव्यपूजा (4) क्षेत्रपूजा (5) कालपूजा (6) भावपूजा। इनमें से स्थापना के दो भेद हैं—सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। प्रतिष्ठेय की तदाकार सांगोपांग प्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करना सद्भाव स्थापना है और शिला, पूर्णकुंभ, अक्षत, रत्न, पुष्प, आसन आदि प्रतिष्ठेय का न्यास करना असद्भाव स्थापना है। असद्भाव स्थापना से अन्यथा कल्पना भी कर सकते हैं।

संसारी प्राणियों के अभ्यंतर मल को गला कर दूर करने वाला और आनन्ददाता होने के कारण मंगल पूजनीय है। पूजा के समान ही मंगल भी 6 प्रकार का जैनाचार्यों ने बताया है—(1) नाममंगल (2) स्थापनामंगल (3) द्रव्यमंगल (4) क्षेत्रमंगल (5) कालमंगल (6) भावमंगल। कृत्रिम और अकृत्रिम जिनबिम्बों को स्थापना मंगल माना गया है। जयसेनाचार्य के अनुसार जिनबिम्ब का निर्माण कराना मंगल है।

जिनप्रतिमा के दर्शन कर चिदानंद का स्मरण होता है अतः जिनबिम्ब का निर्माण कराया जाता है। बिम्ब में जिन-भगवान और उनके गुणों की प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा की जाती है। आगम की मान्यता है कि प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर बहत्तर जिनमन्दिरों का निर्माण करवाकर उनमें जिनप्रतिमाओं की स्थापना कराई थी और तब से जैन प्रतिमाओं की स्थापना विधि की परम्परा चल रही है।

जैन प्रतिमाओं का निर्माण और उसकी स्थापना अति प्राचीन काल से चल रही है, इस तथ्य की पुष्टि निश्शंक रूपेण पुरातत्त्वीय प्रमाणों और प्राचीन जैन साहित्य के उल्लेखों से होती है।

5.4 मंदिर निर्माण विधि—

मंदिर कैसे स्थान पर निर्मित होना चाहिये ? इसके समाधान में प्रतिष्ठा पाठ के विशेषज्ञों ने कहा है कि नगर के शुद्ध प्रदेश में, अटवी में, नदी के समीप पवित्र भूमि में मंदिर बनवाना शुभ कहा है। मनोज्ञ स्थानों पर जिनमंदिरों का निर्माण किया जाना चाहिये।

जिनमंदिर के लिये भूमि का चयन करते समय अनेक उपयोगी बातों पर विचार करना होता है। जैसे—भूमि शुद्ध हो, रम्य हो, स्निग्ध हो, सुगंध वाली हो, दूर्वा से आच्छादित हो, पोली नहीं हो, वहाँ कीड़े-मकोड़ों का निवास नहीं हो तथा श्मशान भूमि भी न हो। भूमि का चयन मन्दिर निर्माण विधि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। योग्य भूमि पर निर्मित (प्रसाद) मन्दिर ही दीर्घकाल तक स्थित रह सकता है।

विभिन्न ग्रंथकारों ने भूमि परीक्षा के उपाय बताये हैं, जैसे—जिस भूमि में मन्दिर निर्मित करने का विचार किया गया हो उस भूमि में 1 हाथ गहरा गड्ढा खोदा जावे और फिर उस गड्ढे को उसी में से निकाली मिट्टी से पूरा भरा जावे। ऐसा करने पर यदि मिट्टी गड्ढे से अधिक पड़े तो वह भूमि श्रेष्ठ मानी गई है। यदि मिट्टी गड्ढे के बराबर हो तो भूमि मध्यम कोटि की होती है और यदि उतनी मिट्टी से गड्ढा पुनः न पूरा भरे तो वह भूमि अधम जाति की होती है। वहाँ मंदिर का निर्माण नहीं करना चाहिये। प्रतिष्ठा ग्रंथों तथा वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में मंदिर की भूमि शुद्धि आदि का विवरण मिलता है।

5.5 प्रतिमा निर्माण विधि—

प्राचीन काल में मन्दिरों में प्रतिष्ठा कराने के लिये प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता था। वे दो प्रकार की होती थीं—प्रथम चल प्रतिमा, द्वितीय अचल प्रतिमा। अचल प्रतिमा अपनी वेदिका पर स्थिर रहती है किन्तु चल प्रतिमा विशिष्ट–विशिष्ट अवसरों पर मूल वेदी से उठाकर अस्थायी वेदी पर लायी जा सकती हैं। अचल प्रतिमा और चल प्रतिमा को क्रमशः स्थावर और जंगम प्रतिमा भी कहते हैं।

वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ में आचार्य श्री ने मणि, रत्न, स्वर्ण, रज, पीतल, मुक्ताफल और पाषाण की प्रतिमाएँ निर्मित किये जाने का विधान कहा है। श्री जयसेन आचार्य ने स्फटिक की प्रतिमाएँ भी प्रशस्त बतायी हैं, कुछ आचार्यों ने काष्ठ, दन्त और लोहे की प्रतिमाओं के निर्माण का किसी भी प्रकार से उल्लेख नहीं किया। पाषाण की प्रतिमाएँ निर्मित किया जाना सर्वाधिक मान्यता प्राप्त एवं व्यावहारिक रहा है।

5.5.1 प्रतिमा निर्माण के लिये शिला का अन्वेषण—

पं. आशाधरजी ने लिखा है कि जब मन्दिर के निर्माण का कार्य पूरा हो जावे अथवा पूरा होने को हो तो प्रतिमा के लिये शिला का अन्वेषण करके शुभ लग्न, मंगल मुहूर्त, शकुन में इष्ट शिल्पी के साथ जाना चाहिये। मूर्ति बनाने वाले चतुर शिल्पी को साथ लेकर पवित्र स्थान में स्थित खान पर जावे, वहाँ पर प्रतिमा के योग्य जो शिला होवे उसकी परीक्षा करने के लिये उसके ऊपर लेप करने के लिये शिल्पशास्त्र में अनेक प्रकार के जो लेप लिखे हैं, उनमें से किसी का लेप करे तो पाषाण के भीतर रहे हुए दोष प्रगट हो जाते हैं, जैसे कि—

निर्मल कांजी के साथ बेल वृक्ष की छाल को पीसकर पाषाण या लकड़ी के ऊपर लेप करने से मंडल प्रगट हो जाता है।

पाषाण या लकड़ी में जो दाग देखने में आते हैं वह किसी जंतु विशेष से बने हुए होते हैं। ये रंग आदि से पहचाने जाते हैं तथा उन चित्रों के शुभाशुभ फल भी शिल्प शास्त्र में लिखे हैं। जैसे—मधु के रंग जैसी रंग वाली रेखा दिखे तो वह खद्योत, भस्म के वर्ण की दिखे तो बालू, गुड़ के रंग की दिखे तो मेंढ़क, आकाश के रंग की दिखे तो पानी, कबूतर के रंग की दिखे तो छिपकली, मंजीठ के रंग की हो तो मेंढ़क, लाल रंग की रेखा हो तो गिरगिट, पीले वर्ण की हो तो गोह, कपील वर्ण की हो तो ऊदर, काले वर्ण की हो तो सर्प और अनेक प्रकार के रंग की रेखा दिखे तो बिच्छू इत्यादि जन्तुओं से रेखा दाग बने होते हैं। ऐसे दाग पाषाण या लकड़ी में रहे हो तो सन्तान, लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाशकारक है, परन्तु पाषाण के वर्ण की रेखा या दाग हो तो कोई दोष नहीं माना जाता।

देव की प्रतिमा पुल्लिंग में देवी की प्रतिमा स्त्रीलिंग से, पाद पीठ सिंहासनादि नपुंसक शिला से बनाना लिखा है। इसकी परीक्षा आकृति और आवाज से की जाती है।

जो शिला एक ही वर्ण वाली, सघन, चिकनी मूल से लेकर अग्रभाग तक बराबर समान आकार वाली और गजघंट के समान आवाज वाली हो वह पुल्लिंग शिला जानना। जो मूल भाग में स्थूल और अग्रभाग में कृश हो तथा कांसी जैसी आवाज वाली हो वह स्त्रीलिंग शिला जानना। जो मूल भाग में कृश और अग्रभाग में स्थूल हो एवं बिना आवाज की हो वह नपुंसक शिला जानना। शिला औंधा मुख करके पूर्व दिशा पश्चिम या उत्तर दक्षिण लम्बी रहती है। इसमें दक्षिण और

पश्चिम दिशा में शिला का मूल भाग तथा पूर्व और उत्तर दिशा में शिला का अग्रभाग रहता है। अग्र यह शिला भाग, मूल यह पैर समझना चाहिये। शिला निकालते समय उसमें चिह्न कर लेना चाहिये जिससे शिला का मुख, पृष्ठ, मस्तक और पैर की पहचान हो सके और उसके अनुसार मूर्ति का मुख आदि बना सकें। जहाँ शिला का मुख भाग हो उस भाग में मूर्ति का मुख और शिला का जहाँ पैर हो उस भाग में मूर्ति का पैर बनाना चाहिये। शिल्प ग्रंथों में शिला औंधी सोती हुई लिखा है, इस शिला के नीचे के भाग का मुख और ऊपर के भाग का पृष्ठ भाग बनाना चाहिये।

इस प्रकार परीक्षा करके प्राप्त श्वेत, रक्त, श्याम, मिश्र पारावत् , मुद्ग, कपोत, पदम, मंजिष्ठ और हरित वर्ण की शिला को प्रतिमा निर्माण के लिए उत्तम बताया है। वह शिला कठिन, शीतल, स्निग्ध, सुस्वाद, सुस्पर, दृढ़, सुगंध युक्त, तेजस्विनी और मनोज्ञ होना चाहिये। बिन्दु और रेखाओं वाली शिला प्रतिमा निर्माण कार्य के लिये वर्ज्य कही गई है। उसी प्रकार मृदु विवर्ण, दुर्गन्धियुक्त, लघु, रूक्ष, धूमिल और नि:शब्द शिलाएँ भी अयोग्य ठहरायी गयी हैं।

इस प्रकार परीक्षा करने से प्रतिमा के लिये जो निर्दोष शिला प्राप्त हुई हो उसका अच्छे शुभ दिन में छेदन करें। जिस दिन छेदन करने का हो उसकी प्रथम रात्री को जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलादि सामग्री से—"हे शिले ! अमुकस्य देवस्य पूजनाया परिकल्पिताऽस्ति नमस्ते" इस प्रकार मंत्रोच्चारणपूर्वक पूजन करें। बाद में वनदेवता, क्षेत्र देवता, नव ग्रह, दिक्पाल आदि देवों का शिला में विन्यास करके सुगन्धित द्रव्यादि से पूजन करें। शुभ मुहूर्त में महोत्सव पूर्वक शिला का छेदन करें, पीछे मंगल मुहूर्त में नगर में शिला का प्रवेश करावें। आचार्यों ने लिखा है—

जैनं चैत्यालयं चैत्यमूर्ति निर्मापयन् शुभम्।
वाञ्छन् स्वस्य नृपादेश्च वास्तुशास्त्रं न लंघयेत्।।

मन्दिर व प्रतिमा बनाने वाला यदि अपना और राजा, प्रजा का भला चाहता हो तो उसे शुभ-अशुभ बताने वाले वास्तु शास्त्र के अनुकूल ही सब काम करवाना चाहिये। मूर्ति के पाषाण की शिला के लिये शांतिविधानपूर्वक शुभ मुहूर्त में परीक्षा कर शास्त्रानुसार प्रतिमा का निर्माण कराना उचित है।

5.5.2 शिल्पी का चयन—

प्रतिमा ऐसे कारीगर से बनवाना ठीक है जो बाल वृद्ध व सदोष शरीर वाला न हो, प्रतिमा निर्माण में अधिक चतुर हो। सदाचारी, पवित्रता से रहने वाला हो और अण्डे, मांस, मदिरा, शहद आदि का त्यागी हो। जिसके परिणामों में शांत छवि का आकार झलक रहा हो।

उक्त गुण वाले शिल्पी को घर पर बुलाकर शुभ लग्न में सत्कारपूर्वक वह शिलाबिम्ब बनाने के लिये दी जावे और उसको प्रतिमा तैयार न हो तब तक हर तरह से खुश रखा जावे। निर्मापक सद्गृहस्थ को उचित है कि वह इस महान कार्य में धन का संकोच नहीं करे। चाँदी, सोने या बड़े आकार की या बहुत सी मूर्तियां न बनाकर चाहे पाषाण की छोटी सी एक ही प्रतिमा बनवाने पर विधिपूर्वक निर्माण हो। आजकल शिल्प शास्त्रों का अध्ययन न होने से कारीगर उपरोक्त शिला परीक्षा के नियमों को नहीं जानता है इसीलिये मूर्ति के निर्माण में दोष रहने की सम्भावना रहती हैं, यह सिर्फ कारीगर का दोष नहीं है, मूर्ति बनवाने वाला भी उपरोक्त नियमानुसार नहीं बनवाना चाहता।

देखभाल में प्रमाद व त्रुटि न करें। इस विषय में शास्त्र की आज्ञाओं की विद्वानों से जानकारी जरूर कर लें। प्रतिष्ठाचार्यों का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने व समाज के हितार्थ आत्मबल धारण करें। किसी के दबाव व लोभवश सदोष जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृत न करें।

5.5.3 गृहपूज्य प्रतिमाएँ—

निवासगृह में पूज्य प्रतिमाओं की अधिकतम ऊँचाई के विषय में जैन ग्रंथों में वसुनन्दि आचार्यश्री ने द्वादश अंगुल तक की ऊँची प्रतिमा को ही पूजनीय बतलाया है। प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के दर्शन, वन्दन, पूजन, भक्ति आदि करते रहने

से परिवार में सुख-शांति मिलती है। मलिन, खण्डित, अधिक या हीन प्रमाण वाली प्रतिमाएँ भी गृह में नहीं रखना चाहिये।

5.5.4 अपूज्य प्रतिमाएँ—

रूपमण्डनकार ने हीनांग और अधिकांग प्रतिमाओं के निर्माण का सर्वथा निषेध किया है। शुक्रनीति में हीनांग प्रतिमा को निर्माण कराने वाले की और अधिकांग प्रतिमा को शिल्पी की मृत्यु का कारण बताया है। जैन परम्परा के ग्रंथों में भी वक्राँग, हीनांग और अधिकांग प्रतिमा निर्माण को भारी दोषयुक्त माना गया है।

दिगम्बर जैनाचार्यों ने सदोष प्रतिमा अशुभ बताई है। जैसे—

तिरछी दृष्टि (नजर)—धननाश, विरोध, भय करने वाली।

नीची नजर—पुत्रनाश का कारण।

ऊँची नजर—स्त्री का मरण कराने में निमित्त।

स्तब्ध नजर—शोक, उद्वेग, संताप, धननाश करने वाली।

रौद्र—बनवाने वाले का नाश कराने वाली।

दुबले शरीर वाली—धन नाश का कारण होती है।

ओछे कद वाली—कराने वाले के नाश में कारण है।

चपटी—दु:खदाता।

नेत्र रहित—नेत्र नाश में कारण।

छोटे मुख वाली—शोभा का नाश करने वाली।

बड़े पेट वाली—रोग में निमित्त।

नीचे कन्धों वाली—भाई का मरण।

दुबली जांघ वाली—राजा का अनिष्ट करने वाली।

छोटे पग वाली—देश नाश में कारण।

दुबली कमर वाली—सवारी का नाश।

यह वर्णन श्री वसुनन्दि आचार्य ने किया है। आचार्य श्री वसुनन्दि ने ही जिनप्रतिमा में नाशाग्रनिहित, शान्त, प्रसन्न एवं माध्यस्थ दृष्टि को उत्तम बताया। वीतराग की दृष्टि न तो अत्यन्त उन्मीलित हो और न विस्फुरित हो। दृष्टि तिरछी, ऊँची या नीची न हो इसका विशेष ध्यान रखे जाने का विधान है।

आचार्यकल्प पंडितप्रवर आशाधर जी और वर्धमान सूरि ने भी अनिष्टकारी, विकृतांग और जर्जर प्रतिमाओं की पूजा का निषेध किया है।

भग्न प्रतिमाओं की पूजा नहीं की जाती। उन्हें सम्मान के साथ विसर्जित कर दिया जाता है। मूलनायक प्रतिमा के मुख, नाक, कान, नेत्र, नाभि और कटि के भग्न हो जाने पर वह त्याज्य होती है। ऐसा वास्तुसार प्रकरण में वर्णन आया है। जिन प्रतिमाओं के अंग और प्रत्यंगों के भंग होने का फल बताया है कि नखभंग होने से शत्रुभय, अंगुली-भंग से देश में भय, अराजकता, बाहु भंग से बन्धन, नासिका नष्ट होने से कुलनाश और चरण भंग होने से द्रव्यनाश होता है किन्तु 'वास्तुसार' ग्रंथकार का ही यह भी मत है कि जो प्रतिमाएँ सौ वर्ष से अधिक प्राचीन हों और महापुरुषों द्वारा स्थापित की गयी हों, वे यदि विकलांग भी हो जावें तब भी पूजनीय हैं। उन्होंने उन प्रतिमाओं को केवल चैत्य में रखने योग्य कहा है, गृह में पूज्य नहीं।

5.5.6 जिनप्रतिमा के लक्षण—

जैन प्रतिष्ठा ग्रंथों और वृहत्संहिता, मानसार, अपराजितपृच्छा, देवमूर्ति प्रकरण, रूपमण्डन आदि ग्रंथों में जिन प्रतिमा के लक्षण बताये गये हैं। जिनप्रतिमाएँ केवल दो आसनों में बनायी जाती हैं, एक तो कायोत्सर्ग आसन जिसे खड्गासन भी कहते हैं और द्वितीय पद्मासन इसे कहीं कहीं पर्यंक आसन भी कहा गया है। इन दो आसनों को छोड़कर किसी अन्य आसन में जिनप्रतिमा निर्मित किये जाने का निषेध किया गया है।

प्रतिष्ठा चन्द्रिका में कहा है–

शान्तं नासाग्रदृष्टिं विमल गुणगणैभ्रजिमानं प्रशस्त–
मानोन्मानं च वामे विधृतकरवरं नाम पद्मासनस्थं।
व्युत्सर्गालम्बिपाणिस्थल निहित पदाम्भोज मानभ्रकम्बु–
ध्यानारूढंविदैन्यं भजत मुनिजनानंदकं जैनबिम्बं।।

जिनबिम्ब को शान्त नासाग्रदृष्टि, प्रशस्तमानोन्मानयुक्त, ध्यानारूढ़ एवं किञ्चित् नम्र ग्रीव बताया है। कायोत्सर्ग आसन में हाथ लम्बायमान रहते हैं तथा पद्मासन प्रतिमा में वाम हस्त की हथेली दक्षिण हस्त की हथेली पर रखी हुई होती है। जैन प्रतिमा (दिगम्बर) श्रीवृक्ष युक्त, नखकेशविहीन, परमशान्त, वृद्धत्व तथा बाल्यत्व रहित, तरुण एवं वैराग्य गुण से भूषित होती हैं। आचार्य श्री वसुनन्दि और आशाधर पंडित जी ने भी जिनप्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणों का निरूपण किया है। विवेक–विलास में कायोत्सर्ग और पद्मासन प्रतिमाओं के सामान्य लक्षण बताये गये हैं।

सिद्धपरमेष्ठी की प्रतिमाओं में प्रातिहार्य नहीं बनाये जाते, अर्हत्प्रतिमाओं में उनका होना आवश्यक है। अर्हत् और सिद्ध दोनों की मूल प्रतिमाएँ बनायी तो समान जाती हैं पर अष्ट प्रातिहार्यों के होने अथवा न होने की अवस्था में उनकी पहचान होती है। अर्हंत् अवस्था की प्रतिमा में अष्टप्रातिहार्यों के साथ दायीं ओर यक्ष और बायीं ओर यक्षी और पादपीठ के नीचे जिन का लांछन भी दिखाया जाता है। तिलोयपण्णत्ती में भी सिंहासन तथा यक्ष युगल से युक्त जिनप्रतिमाओं का वर्णन है। ठक्कर फेरू ने तीर्थंकर प्रतिमा के आसन और परिकर का विस्तार से वर्णन किया है। मानसार में भी जिनप्रतिमाओं के परिकर आदि का वर्णन प्राप्त है। अपराजितपृच्छा में यक्ष–यक्षी, लांछन और प्रातिहार्यों की योजना का विधान है। सूत्रधार मंडन के ग्रंथों में जिनप्रतिमा को छत्रत्रय, अशोकद्रुम, देवदुन्दुभि, सिंहासन, धर्मचक्र आदि से युक्त बताया गया है। प्रत्येक जैन तीर्थंकर प्रतिमा अपने लांछन से पहचानी जाती है। वह लांछन प्रतिमा के पादपीठ पर अंकित होता है, किन्तु कुछ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में उनके विशिष्ट लक्षण भी दिखाये जाते हैं, जैसे आदिनाथ प्रतिमा जटाशेखर युक्त होती है, सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प के पांच फणों का छत्र तथा पार्श्वनाथ के मस्तक पर 7 या इससे ज्यादा फणों का नाग छत्र होता है।

5.5.7 प्रतिमा का मान प्रमाण—

जैन और जैनेतर ग्रंथों में जिनप्रतिमा के मानादि का विवरण मिलता है। वसुनन्दि आचार्य ने ताल, मुख, वितहित और द्वादशांगुल को समानार्थी बताया है और उस मान से बिम्ब निर्माण का विधान किया है। प्रतिमा के मुख को एक भाग मानकर सम्पूर्ण प्रतिमा के नौ भाग किये जाने चाहिये, तदनुसार वह प्रतिमा नौ ताल या 108 अंगुल की होगी। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि नव ताल प्रतिमा का नवां भाग एक ताल और उसका 108 वाँ भाग एक अंगुल कहलावेगा।

वसुनन्दि ने नव ताल में बनी ऊर्ध्व (कायोत्सर्ग आसन) जिनप्रतिमा का मान इस प्रकार बताया है—

मुख	–	1 ताल (12 अंगुल)
ग्रीवाधः भाग	–	4 अंगुल

कंठ से हृदय तक	–	12 अंगुल
हृदय से नाभि तक	–	1 ताल (12 अंगुल)
नाभि से मेंढ्र तक	–	1 ताल (12 अंगुल)
मेंढ्र से जानु तक	–	1 हस्त (24 अंगुल)
जानु	–	4 अंगुल
जानु से गुल्फ तक	–	1 हस्त (24 अंगुल)
गुल्फ से पादतल तक	–	4 अंगुल
योग		108 अंगुल = 9 ताल

प्रतिष्ठासार संग्रह में आचार्य श्री वसुनन्दि ने प्रतिमा के अंग उपांगों के मान का विस्तार से विवरण दिया है। द्वादशांगुल विस्तीर्ण और आयात केशान्त मुख के तीन भाग करने पर ललाट, नासिका और मुख (वचन) प्रत्येक भाग 4-4 अंगुल का होता है। नासिकारंध्र 8-1/2 यव और नासिका पाली 4 यव प्रमाण होना चाहिये। ललाट का तिर्यक् आयाम आठ अंगुल बताया गया है। उसका आकार अर्धचन्द्र के समान होता है। पाँच अंगुल आयात केशस्थान में उष्णीष दो अंगुल उन्नत होता है। श्री जयसेन आचार्य के प्रतिष्ठा पाठ में भी जिनप्रतिमा का ताल सम्बन्धी जो विवरण उपलब्ध है वह प्रायः वसुनन्दि के समान ही है।

पद्मासन जिनप्रतिमा का उत्सेध कायोत्सर्ग प्रतिमा से आधा अर्थात् 54 अंगुल बताया गया है। उसका तिर्यक् आयाम एक समान होता है। एक घुटने से दूसरे घुटने तक, दायें घुटने से बायें कंधे तक, बायें घुटने से दायें कंधे तक और पादपीठ से केशांत तक चारों सूत्रों का मान एक बराबर बताया गया है।

5.5.8 शिल्प ग्रंथों के अनुसार मूर्ति के शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार हैं।

प्रमाणोपेत सम्पूर्ण अवयवों वाली और शुभ लक्षण वाली मूर्ति आयुष्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने वाली है। यदि मूर्ति का मस्तक छत्राकार हो तो धन-धान्य की वृद्धिकारक है, अच्छे नयन और ललाट हो तो निरन्तर लक्ष्मीप्रद है। सब प्रकार से शुभ हो तो प्रजा सुखी होवे।

5.5.9 प्रतिष्ठा विधि—

प्रतिमा बन जाने पर ही पूज्य नहीं होती है उसमें प्रतिष्ठा विधि के द्वारा पूज्यता लाई जाती है। अतएव जो जिनभक्त सज्जन इस प्रभावनावर्द्धक महान पुण्य कार्य में सद्भावों के द्वारा अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करता है उसको प्रतिष्ठा पाठों में यजमान की पदवी दी गई है, सो ही कहा है–

पाक्षिकारसम्पन्नो धी संपद्बन्धुबन्धुरः।
राज मान्यो वदान्यश्च यजमानो मतः प्रभुः।।

प्रतिष्ठापक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो पाक्षिक श्रावक के आचार को अच्छी तरह पालता हो, बुद्धिमान हो, सम्पत्ति का धारक हो। राजा व राज्य कर्मचारी जिसको आदर की दृष्टि से देखते हों जिसके स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि कुटुम्ब परिवार अच्छा हो, समाज या देश में बदनाम न हो, प्रतिष्ठा कार्य में तन–मन–धन से योग देता हो वही व्यक्ति प्रतिष्ठा कराने का पात्र होता है।

प्रतिष्ठेय (मूर्ति) की प्रतिष्ठा कराने के लिये प्रतिष्ठापक इन्द्र, यजमान, स्थापक ऐसे सज्जनों की आवश्यकता पड़ती है जो अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का शुभ भावों से पंचकल्याणक महोत्सव कराने में सदुपयोग करना चाहता हो।

प्रतिष्ठापक पाक्षिक श्रावक के आचरण को अच्छी तरह पालता हो, समाज में आदरणीय हो, उत्तम वर्ण–जाति, कुल व शरीर का धारक हो।

''देशाजातिकुलाचारैः श्रेष्ठोदत्तसुलक्षणः।''

जो शूद्र व बाल-वृद्ध न हो, उत्तम जाति व कुल में जन्मा हो, सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, मन्दकषायी, जितेन्द्रिय व सुन्दर हो, स्वयं पूजनादि करता हो, प्रतिष्ठायें जिसने कराई हों, ज्योतिष, मुहूर्त आदि का ज्ञाता हो, मंत्र, तंत्र, यंत्रादि का जानकार हो, पवित्रता से रहने वाला हो, विनयी हो, इत्यादि बहुत गुण जिसमें हो वही प्रतिष्ठाचार्य बनने के योग्य है।

जैनागम में प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन काल के पाँच प्रसिद्ध घटनास्थलों का वर्णन मिलता है। उन्हें पंचकल्याणक के नाम से कहा जाता है क्योंकि वे अवसर जगत् के लिये अत्यन्त कल्याण व मंगलकारी होते हैं जो जन्म से ही तीर्थंकर प्रकृति लेकर उत्पन्न हुए हैं उनके तो पांच ही कल्याणक होते हैं परन्तु जिसने अन्तिम भव में ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है उसके यथासम्भव चार व तीन व दो कल्याणक भी होते हैं, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति के बिना साधारण साधकों को वे नहीं होते। नवनिर्मित जिनबिम्ब की शुद्धि करने के लिये जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पाठ किये जाते हैं वह उसी प्रधान पंचकल्याणक की कल्पना है, जिसके आरोप द्वारा प्रतिमा में असली तीर्थंकर की स्थापना होती है।

जम्बूद्वीपपण्णत्ति में आचार्यश्री ने लिखा है–

गब्भावयारकाले जन्मणकाले तहेव णिक्खमणे।
केवलणाणुप्पण्णे परिणिव्वाणम्मि समयम्मि।।

श्री जिनदेव गर्भावतारकाल, जन्मकाल, निष्क्रमणकाल, केवलज्ञानोत्पत्तिकाल और निर्वाण समय इन पांच स्थानों में पंच महाकल्याणकों को प्राप्त होकर महाऋद्धियुक्त सुरेन्द्र इन्द्रों से पूजित हैं।

5.6 पंच कल्याणक महोत्सव का परिचय—

(1) गर्भकल्याणक—भगवान् के गर्भ में आने से छह मास पूर्व से लेकर जन्म पर्यन्त 15 मास तक उनके जन्म स्थान में कुबेर द्वारा प्रतिदिन तीन बार 3-1/2 करोड़ रत्नों की वर्षा होती रहती है। दिक्कुमारी देवियाँ माता की परिचर्या व गर्भशोधन करती हैं। गर्भ वाले दिन से पूर्व रात्रि को माता को 16 उत्तम स्वप्न दिखते हैं, जिन से भगवान का अवतरण निश्चय कर माता-पिता प्रसन्न होते हैं।

(2) जन्मकल्याणक—भगवान का जन्म होने पर देव भवनों व स्वर्गों आदि में स्वयं घण्टे आदि बजने लगते हैं और इन्द्रों के आसन कम्पायमान हो जाते हैं। जिससे उन्हें भगवान के जन्म का निश्चय हो जाता है। सभी इन्द्र व देव भगवान का जन्मोत्सव मनाने को बड़ी धूमधाम से पृथ्वी पर आते हैं। अहमिन्द्रजन अपने-अपने स्थान पर सात पग आगे जाकर भगवान को परोक्ष नमस्कार करते हैं। दिक्कुमारी देवियाँ भगवान के जातकर्म करती हैं। कुबेर नगर की अद्भुत शोभा करता है। इन्द्र की आज्ञा से इन्द्राणी प्रसूतिगृह में जाती है, माता को मायामयी निद्रा से सुलाकर उसके पास एक मायामयी पुतला लिटा देती है और बालक भगवान को लाकर इन्द्र की गोद में दे देती है, जो उसका सौन्दर्य देखने के लिये हजार नेत्र बनाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता। ऐरावत हाथी पर भगवान को लेकर इन्द्र सुमेरु पर्वत की ओर चलता है। वहाँ पहुँचकर पाण्डुक शिला पर भगवान का क्षीरसागर से देवों द्वारा लाये गये जल के 1008 कलशों द्वारा अभिषेक करता है। तदनन्तर बालक को वस्त्राभूषण से अलंकृत कर नगर में देवों सहित महान उत्सव के साथ प्रवेश करता है। बालक को देवोपुनीत वस्त्राभूषण पहनाकर, ताण्डव नृत्य आदि अनेकों मायामयी आश्चर्यकारी लीलाएँ प्रगट कर देवलोक लौट जाता है।

(3) तपकल्याणक—

कुछ काल तक राज्य विभूति का भोग कर लेने के पश्चात् किसी एक दिन कोई कारण पाकर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होता है। उसी समय ब्रह्म स्वर्ग से लौकान्तिक देव भी आकर उनके वैराग्य की सराहना करते हैं। इन्द्र उनका

अभिषेक करके उन्हें वस्त्राभूषण से अलंकृत करता है। कुबेर द्वारा निर्मित पालकी में भगवान स्वयं बैठ जाते हैं। इस पालकी को पहले तो मनुष्य अपने कन्धों पर लेकर कुछ दूर पृथ्वी पर चलते हैं और फिर देव लोग लेकर आकाशमार्ग से चलते हैं। तपोवन में पहुँच कर भगवान वस्त्रालंकार का त्याग कर केशों का लुंचन कर देते हैं और दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेते हैं । अन्य भी अनेकों राजा उनके साथ दीक्षा धारण करते हैं, इन्द्र उन केशों को मणिमय पिटारे में रखकर क्षीर सागर में क्षेपण करता है। दीक्षा स्थान तीर्थ बन जाता है। भगवान बेला तेला आदि के नियमपूर्वक 'नमः सिद्धेभ्य' कहकर स्वयं दीक्षा लेते हैं क्योंकि वे स्वयं जगतगुरू हैं। नियम पूरा होने पर आहारार्थ नगर में जाते हैं और यथाविधि आहार ग्रहण करते हैं। दातार के घर पंचाश्चर्य रत्नों की वर्षा होती है। आहार के बाद जंगल की ओर चले जाते हैं तथा तपस्या करते हैं।

(4) ज्ञानकल्याणक—

यथाक्रम से तप, संयम आदि की साधना करते हुए ध्यान की श्रेणियों पर आरूढ़ होते हुए चार घातिया कर्मों का नाश हो जाने पर भगवान को केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्त होती है तब पुष्पवृष्टि, दुन्दुभी शब्द, अशोक वृक्ष, चमर, भामण्डल, छत्रत्रय, स्वर्ण सिंहासन और दिव्यध्वनि ये आठ प्रातिहार्य प्रगट होते हैं। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवसरण रचता है, जिसकी विचित्र रचना से जगत् चकित होता है। 12 सभाओं में यथास्थान देव, मनुष्य, तिर्यंच, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि सभी बैठकर भगवान के उपदेशामृत का पान कर जीवन सफल करते हैं।

भगवान का विहार बड़ी धूमधाम से होता है। याचकों को किमिच्छक दान दिया जाता है, भगवान के चरणों के नीचे देव लोग सहस्र दल स्वर्ण कमलों की रचना करते हैं और भगवान इनको भी न स्पर्श करके अधर आकाश में ही चलते हैं। आगे-आगे धर्म चक्र चलता है। बाजे, नगाड़े बजते हैं। पृथ्वी ईति, भीति रहित हो जाती है। इन्द्र राजाओं के साथ आगे-आगे जय-जयकार करते चलते हैं। मार्ग में सुन्दर क्रीड़ा स्थान बनाये जाते हैं। मार्ग अष्टमंगल द्रव्यों से शोभित रहता है। भामण्डल, छत्र, चमर स्वतः साथ-साथ चलते हैं। ऋषिगण पीछे-पीछे चलते हैं। इन्द्र प्रतिहार बनता है। अनेकों निधियाँ साथ-साथ चलती हैं। विरोधी जीव वैर विरोध भूल जाते हैं। अन्धे, बहरों को भी दिखने-सुनने लग जाता है। हरिवंश पुराण में लिखा है—

मध्यदेशे जिनेशेन धर्मतीर्थे प्रवर्तिते।
सर्वेष्वपि च दिशेषु तीर्थ मोहोन्यवर्तते।।

मध्य देश में धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति के उपरान्त सम्पूर्ण देशों में विहार करके धर्म के विषय में अज्ञान भाव का निवारण किया था। त्रिलोकीनाथ ने धर्मक्षेत्र में सद्धर्मरूपी बीज बोने के साथ ही उसे धर्मवृष्टि के द्वारा सींचा। इस प्रकार दिव्य सन्देश जन-जन को दिया।

(5) निर्वाणकल्याणक—

अन्तिम समय आने पर भगवान योग निरोध द्वारा ध्यान में निश्चलता कर चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर देते हैं और निर्वाण धाम को प्राप्त होते हैं। देव लोग निर्वाणकल्याणक की पूजा करते हैं। भगवान का शरीर कपूर की भाँति उड़ जाता है। इन्द्र उस स्थान पर भगवान के लक्षणों से युक्त सिद्ध शिला का निर्माण करता है।

इस प्रकार पंचकल्याणक विधि के द्वारा ही मूर्ति को पूजनीय बनाते हैं। पद्मनन्दि स्वामी ने लिखा है—

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवतं तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।।
प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवता गुरुदर्शनम्।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या धर्म श्रुतिरुपासकैः।।

जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते हैं, न पूजन करते हैं और न ही स्तुति करते हैं उनका जीवन निष्फल है तथा उस गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

5.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-बिना चिन्ह की प्रतिमा.....कहलाती है ?

(क) अरहन्त ☐
(ख) सिद्ध ☐
(ग) तीर्थंकर ☐

प्रश्न 2-अचल प्रतिमा को.....और चल प्रतिमा को.....कहा जाता है ?

(क) नित्यमह, अनित्यमह ☐
(ख) स्थावर, जंगम ☐
(ग) शुभ-अशुभ ☐

प्रश्न 3-कृत्रिम और अकृत्रिम जिनबिम्बों को क्या माना जाता है ?

(क) द्रव्य मंगल ☐
(ख) भाव मंगल ☐
(ग) स्थापना मंगल ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-मंदिर निर्माण विधि का वर्णन लिखिए ?

प्रश्न 2-ग्रह पूज्य प्रतिमाएँ और अपूज्य प्रतिमाओं में क्या-क्या अन्तर है ? लिखिए ?

प्रश्न 3-"देश जाति कुलाचारैः श्रेष्ठोदस्त सु लक्षणः" इस पंक्ति का अर्थ लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-जिनप्रतिमा का लक्षण बताइए तथा प्रतिमा के मान प्रमाण का विवरण लिखिए ?

इकाई–5 जैन आगम में वर्णित आयुर्वेद एवं यंत्र मंत्र आदि

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) ज्योतिष मंत्र–यंत्र आदि का संक्षिप्त इतिहास

(2) जैन शासन में यंत्र विद्या

(3) स्वप्न विज्ञान : स्वप्न दर्शन का शुभाशुभ फल

(4) जैनाचार ही आयुर्वेद है

(5) कल्याणकारक ग्रंथ में वर्णित प्रासुक चिकित्सा विधि

पाठ 1 – ज्योतिष मंत्र–यंत्र आदि का संक्षिप्त इतिहास

1.1 वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशिता आदि गुणों से अलंकृत जिनेन्द्र भगवान के मुखारबिन्द से निर्गत एवं गणधर देव द्वारा गुम्फित द्वादशांगगत सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति में तथा त्रिलोकसार आदि ग्रंथों में सूर्य, चन्द्र एवं राहु आदि ग्रहों का सांगोपांग वर्णन किया गया है तथा कल्याणवाद पूर्व में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के संचार, उत्पत्ति एवं विपरीत गति के शुभाशुभ फलों का तथा शुभाशुभ शकुनों के फलों का वर्णन किया गया है। विद्यानुवाद पूर्व में प्रगुंष्ठसेनादिक सात सौ अल्प विद्याओं, रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं के साथ–साथ आठ महानिमित्तों का भी सांगोपांग वर्णन है।

1.2 निमित्त—

जिन लक्षणों को देखकर भूत–भविष्यत् में घटित हुई अथवा घटित होने वाली घटनाओं का आभास प्राप्त होता है उसे निमित्त कहते हैं। कारक और सूचक के भेद से ये निमित्त दो प्रकार के हैं। जो किसी वस्तु को सम्पन्न करने में सहायक होते हैं, उन्हें कारक निमित्त कहते हैं, जैसे कुम्हार के निमित्त से घट और जुलाहे के निमित्त से पट निष्पन्न होता है, तथा जिससे किसी वस्तु या कार्य की सूचना मिलती है, उसे सूचक निमित्त कहते हैं, जैसे–सिगनल का झुकना गाड़ी आने का और ठण्डी हवा बरसात या तालाब की सूचक है। ज्योतिष शास्त्र में सूचक निमित्तों की विशेषता है, क्योंकि शुभ अशुभ प्रत्येक घटनाओं के घटित होने के पूर्व प्रकृति, शरीर, स्वभाव, वाणी आदि में कुछ न कुछ अच्छे–बुरे विकार अवश्य उत्पन्न होते हैं। ये शुभाशुभ विकार सूर्यादि ग्रह अथवा अन्य प्राकृतिक कारण किसी भी व्यक्ति का स्वयं इष्ट अनिष्ट नहीं करते अपितु इष्ट–अनिष्ट रूप में घटित होने वाली भावी घटनाओं को मात्र सूचना देते हैं, और जो ज्ञानी पुरुष इन संकेतों अथवा सूचनाओं के रहस्य को समझते हैं वे भूत–भावी शुभाशुभ घटनाओं को सरलतापूर्वक जान लेते हैं।

1.3 अन्तरिक्ष निमित्त ज्ञान—

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, और इन सभी द्वीप समुद्रों में अलग–अलग सूर्य–चन्द्रादि ज्योतिष देवों का अवस्थान है, किन्तु जहाँ तक मनुष्यों का सञ्चार है वहाँ (अढ़ाई द्वीप) तक के सूर्य चन्द्रादि गमन शील हैं, आगे सर्वत्र अवस्थित हैं, यह सूर्य–चन्द्रादि ग्रहों का गमन घड़ी, घण्टा, दिन, माह, ऋतु, अयन एवं वर्ष आदि व्यवहार काल मात्र का द्योतक नहीं हैं, अपितु अंधकार में दीपक के प्रकाश सदृश मनुष्यों की भूत–भावि शुभाशुभ घटनाओं के भी द्योतक हैं। इन सूर्य–चन्द्रादि ग्रहों के उदय, अस्त तथा इनकी विपरीत चाल आदि को देखकर जो भावी सुख दुःख एवं जन्म मरण आदि का ज्ञान होता है वह **अन्तरिक्ष निमित्त ज्ञान** कहलाता है।

जैनागम में ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि आठ कर्म कहे गये हैं, इनमें मोहनीय कर्म के दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के भेद से दो भेद हैं, इस प्रकार मुख्य कर्म नौ हैं, इन्हीं कर्मों के फलों को सूचित करने वाले नव ग्रह अन्तरिक्ष में

अवस्थित हैं। ये ग्रह किसी भी व्यक्ति के इष्टानिष्ट का सम्पादन नहीं करते मात्र मानव के शुभाशुभ कर्म फलों के अभिव्यञ्जक हैं।

इन ग्रहों में से कुछ ग्रहों का किरणें अमृतमय, कुछ की विषमय और कुछ ग्रहों की उभय मिश्रित किरणें होती हैं। सौम्य ग्रह आकाश में अपनी–अपनी गति विशेष के द्वारा जहाँ–जहाँ जाते हैं। वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य एवं बुद्धि आदि पर अपनी अमृत किरणों द्वारा सौम्य प्रभाव डालते हैं, इसी प्रकार क्रूर ग्रह दुष्प्रभाव और उभय मिश्रित रश्मिग्रह मिश्रित प्रभाव डालते हैं। बालक–बालिकाओं की उत्पत्ति के समय भी उनके पूर्व संचित कर्मानुसार जिन जिन रश्मि वाले ग्रहों की प्रधानता रहती है, उसी से उसके सम्पूर्ण जीवन के शुभाशुभ का पर्यापेक्षण कर लिया जाता है। अमृतमय रश्मियों के प्रभाव से जातक कुशाग्रबुद्धि, सत्यवादी, अप्रमादी, जितेन्द्रिय, स्वाध्यायशील एवं सच्चरित्र होते हैं, विषमय रश्मियों के प्रभाव से विवेक शून्य, दुर्बुद्धि, व्यसनी, सेवावृत्ति एवं हीनाचरण वाले होते हैं तथा मिश्रित रश्मियों के प्रभाव से मिश्रित स्वभाव वाले होते हैं।

इन ग्रह रश्मियों का प्रभाव मात्र मानव पर ही नहीं पड़ता, अपितु अचेतन पदार्थो पर भी पड़ता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण तथा स्थान–विशेष के कारण भिन्न–भिन्न क्षेत्र एवं भिन्न–भिन्न समय में उत्पन्न हुए व्यक्तियों के स्वभाव, आकृति आदि में भी विभिन्नता पाई जाती है। इसी प्रकार जड़–चेतन पदार्थों में उत्पन्न होने वाली विलक्षणताओं का प्रभाव सूर्यादि ग्रह एवं नक्षत्रों पर भी पड़ता है। जैसे–अकम्पनादि सात सौ मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग आने से आकाश मंडल में श्रवण नक्षत्र का कम्पायमान होना।

1.4 द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन चारों के परस्पर एवं भिन्न–भिन्न सम्पर्क से भी इनमें शुभ–अशुभपना आता है—

द्रव्य जैसे–आटे में शक्कर के सम्पर्क से मधुरता और विष के सम्पर्क से कटुता आ जाती है। **क्षेत्र**–मल, मूत्र, हड्डी, रक्त, आदि के सम्पर्क से क्षेत्र में अशुद्धता एवं महामहोत्सव, पूजा, प्रतिष्ठा, यज्ञ आदि के सम्पर्क से शुद्धता आ जाती है, उसी प्रकार अग्निदाह, अतिवृष्टि, सूर्य–चन्द्रादि ग्रहण के निमित्त **काल** में अशुद्धता और निर्वाण गमन एवं तीर्थकरादि महापुरुषों के जन्म आदि के कारण काल में शुद्धता आ जाती है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एवं वार आदि के सम्पर्क से भी समय में शुद्धता–अशुद्धता आती है। जैसे–

1. मंगलवार को सप्तमी तिथि हो तो अमृत योग एवं मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो तो सर्व कार्यों को सिद्ध करने वाला अमृतसिद्धि योग बनता है, किन्तु यदि सप्तमी मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र होता है तो सर्व कार्यों का विनाशक विष योग बन जाता है।

2. 3, 8, 13 तिथि को बुधवार हो तो पाप योग बनता है, किन्तु यदि 3, 8, 13 तिथि बुधवार को मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, जेष्ठा भरणी और अश्विनी नक्षत्र में से कोई एक नक्षत्र हो तो अमृतयोग बन जाता है। 3, 8, 13 तिथि को यदि गुरुवार हो तो भी अमृतयोग बन जाता है।

3. 4, 9, 14 तिथि सर्व कार्यों को विफल करने वाली रिक्ता तिथियाँ हैं, किन्तु इन्हें यदि शनिवार का योग प्राप्त हो जाय तो ये सर्व सिद्धिदा बन जाती हैं अर्थात् सर्वार्थसिद्धि योग बन जाता है।

4. सूर्य ग्रह जिस नक्षत्र पर हो उससे यदि चंद्रग्रह 4, 6, 9, 10, 13 एवं 20 वें नक्षत्र पर हो तो जैन सिद्धान्तानुसार एक लाख दोषों को नाश करने वाला रवि योग होता है, किन्तु यदि सूर्य नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र सातवाँ हो तो भस्म योग और 15वां हो तो दण्ड योग बनता है जो सर्वथा त्याज्य है।

ऐसे सहस्त्रों उदाहरण हैं जिनसे समय (काल) की शुद्धता और अशुद्धता ज्ञात होती है। ज्योतिष शास्त्र में काल की इस शुद्धता का नाम शुभमुहूर्त और अशुभता का नाम अशुभमुहूर्त है जिनके निमित्त से भावी घटनाओं का संकेत प्राप्त हो जाता है।

एक कार्य की पूर्णता अनेक कारणों से होती है, और उन कारणों के प्रति सजगता अर्थात् सचेष्ट रहना ही पुरुषार्थ है, यही पुरुषार्थ अर्थात् प्रयत्न कार्य की सफलता का मूल रहस्य है। जैसे–खेती करने वाला, कृषक खेत, खाद्य, जल एवं बीज आदि साधनों को जुटाते हुए साथ में समय का भी साधन जुटाता है, अर्थात् कौन सा धान्य बोने का और काटने का सर्वोत्तम मौसम कौन सा है, इसका भी ध्यान रखता है, उसी प्रकार बीज बोने या काटने के प्रारम्भ में भी उपयुक्ततम समय देखना अति आवश्यक है, क्योंकि खेती की सफलता में जैसे अनेक कारण सहायक हैं वैसे शुभमुहूर्त भी सहायक है।

जैन दर्शन ने काल को चक्ररूप से उद्घोषित किया है। अर्थात् जैसे गाड़ी के चाक में लगे हुये आरे ऊपर नीचे होते रहते हैं, वैसे ही काल रूपी चाक के प्रमुख छह आरे घूमते रहते हैं, इनमें तीन आरे शुभ, शुभतर और शुभतम हैं तथा तीन अशुभ, अशुभतर और अशुभतम हैं। काल की इस शुभता और अशुभता का मापदण्ड है प्रकृति और प्राणी। जैसे– उपर्युक्त तीनों शुभ कालों में तारतम्यता को लिए हुए प्रकृति का सौन्दर्य, सौम्यता, शान्तता, सुभिक्षता आदि क्रमशः वृद्धिगत हैं। मनुष्य के स्वभाव एवं सुख–दुःख की हानि वृद्धि में भी इसी प्रकार परिवर्तन होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि समय एक सदृश नहीं रहता वह कभी शुद्ध कभी अशुद्ध होता रहता है और उसकी शुद्धता, अशुद्धता का प्रभाव मनुष्य पर अवश्य पड़ता है, अतः समुचित जीवनयापन के लिए एवं कार्य सम्पादन के लिए अन्य अनेक साधनों के ज्ञान सदृश ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान एवं उसका सदुपयोग भी अति–आवश्यक है।

काल के सदृश सूर्य–चन्द्रादि ग्रह भी मानव जीवन के अभिव्यञ्जक हैं। इस ग्रह सम्बन्धी इस ज्योतिष शाखा के मूलतः तीन विभाग हैं।

1. **भौतिक खण्ड**–इसमें केवल सांसारिक सफलता, भौतिक समृद्धि और पारिवारिक स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

2. **मानसिक खण्ड**–इसमें मनुष्य की मानसिक शक्ति का विकास, विचार शक्ति का विकास, विद्याध्ययन की योग्यता एवं क्रिया तथा ज्ञान शक्ति के परस्पर संयोग–वियोग का अध्ययन किया जाता है।

3. **आध्यात्मिक खण्ड**–इसमें मनुष्य की आध्यात्मिक प्रवृत्ति, ज्ञान, ध्यान, तपस्या, योग, वैराग्य, सिद्धि, असिद्धि एवं मोक्ष आदि का अध्ययन किया जाता है। जैसे नग्न दिगम्बरत्व श्रमण की दीक्षा का योग कारक ग्रह शनि है, बलवान शनि यदि गुरु के साथ हो या गुरु को देखता हो अथवा चन्द्र और सूर्य का प्रत्यक्ष अथवा दृष्टि (अप्रत्यक्ष) सम्बन्ध शनि या राहू से हो, अथवा बलवान शनि की गुरु, चन्द्र और लग्न पर दृष्टि हो तथा गुरु नवम भाव में हो अथवा दशम भावपति, मंगल या शनि के नवांश में हो तथा शनि से दृष्ट और चन्द्र से युक्त हो तो प्रबल आध्यात्मिक सन्यास योग बनता है। मानव के जीवन विकास के लिए जैसे अन्य अन्य साधनों का एवं तज्जन्य ज्ञान होना आवश्यक है। उसी प्रकार उसकी जन्मपत्री आदि का ज्ञान भी उसके जीवन विकास के लिए अत्यावश्यक है।

1.5 मन्त्र—

मन्त्र शब्द मन् धातु से ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय लगा कर बना है। जिसके द्वारा आत्मा का आदेश–निजानुभव जाना जाय आत्मादेश पर विचार किया जाय अथवा परमपद में स्थित पंच परमेष्ठियों का एवं शासन देवों का सत्कार किया जाय उसे मन्त्र कहते हैं। ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यञ्जन बीज संज्ञक हैं और अ आ इ आदि स्वर शक्ति रूप हैं, अतः बीज और शक्ति दोनों के संयोग से बीज मन्त्रों की निष्पत्ति होती है।

ये सब स्वर–व्यञ्जन मातृका वर्ण कहलाते हैं, इन वर्णों में सृष्टि, स्थिति और संहार रूप तीनों शक्तियाँ पाई जाती हैं, इसीलिये ये मन्त्र विधिपूर्वक जाप्य करने वाले के लौकिक एवं अभ्युदय सुखों की सृष्टि करते हैं। बाधक कारणों का उच्चाटन आदि करके प्राप्त हुये सुख साधनों में अथवा आत्मसाधना में स्थिर रखते हैं, और अशुभ कर्मों का तथा अष्ट कर्मों का संहार करते हैं। प्रत्येक बीजाक्षरों में अनेक प्रकार की शक्तियाँ निहित हैं, किन्तु इन शक्तियों की जागृति में पूर्ण विधि विधान

का ज्ञान अति आवश्यक है। सुसिद्ध, सिद्ध, साध्य और शत्रु के भेद से मन्त्र चार प्रकार के होते हैं, जो मन्त्र और जपने वालों के नाम के स्वर–व्यंजनों को जोड़कर उसमें चार का भाग देकर निकाले जाते हैं। इस प्रक्रिया से शोधन किया हुआ यदि सुसिद्धि दायक भी मंत्र है, किन्तु यदि अशुभ मुहूर्त में प्रारम्भ कर लिया जायेगा तो भी अभीष्ट फल प्राप्ति नहीं होती। जैसे– ज्येष्ठ मास में किया हुआ जप मरण और आषाढ़ मास में किया हुआ जप बुद्धि नाश में कारण पड़ता है, इत्यादि।

जैनागम में णमोकार मंत्र महामन्त्र है, अन्य सभी मन्त्र इसी महामन्त्र से निःसृत हैं, अतः मन्त्र शास्त्र भी श्रद्धास्पद एवं आत्मकल्याण में साधक हैं।

1.6 यन्त्र—

भगवान आदिनाथ ने गार्हस्थ्य अवस्था में अपनी ब्राह्मी कन्या को सर्वप्रथम स्वर–व्यंजन और सुन्दरी कन्या को अंक सिखाये थे, इसलिए जैनागम में दोनों विद्याओं का समादर सदृश है। गोल, त्रिकोन, चौकोन एवं षट्कोनादि रेखाओं से वेष्टित बीजाक्षरों द्वारा जो यन्त्र बनाये जाते हैं वे प्रायः सभी जिन मन्दिरों में उपलब्ध हैं और उन यन्त्रों पर उतनी ही श्रद्धा है जितनी भगवान् की मूर्ति पर है।

जिस प्रकार स्वर–व्यंजनों से मन्त्र और यन्त्र बनते हैं उसी प्रकार संख्या से भी यन्त्र बनते हैं। समस्त अंकों में नौ का अंक प्रधान है। भूवलय आदि ग्रंथों में इसकी महिमा महान कही है। रत्नहार की मध्यवर्ती प्रधान मणि के समान ही गणित का यह अंग प्रधान है। यह अंक समस्त विद्याओं का साधक, विश्व का रक्षक एवं छद्मस्थ की बुद्धि के अगम्य है। 3, 6 और 9 इन तीनों की बनावट तीन लोक की द्योतक है, इसीलिए 3 और 6 नौ अंक के पूरक हैं। इन तीनों में परस्पर अति मित्रता है। 3 और 6 का पहाड़ा 3, 6 और 9 को छोड़कर अन्य किसी अंक को ग्रहण नहीं करता, और विश्व व्याप्त होने से 9 का पहाड़ा तो अपने नवांक को छोड़कर अन्य किसी भी अंक को आत्मसात् करता ही नहीं।

क्षायिक लब्धियाँ 9 ही क्यों हैं ? लोक 3 ही क्यों ? तीर्थंकर 24 नारायण 9, प्रतिनारायण 9, बलदेव 9, शलाका पुरुष 63 (= 9) ही क्यों ? 27 (= 9) श्वासोछ्वास में कायोत्सर्ग 9 ही क्यों ? माला में 108 (= 9) दाने क्यों ? भगवान में 1008 (= 9) साधु में 108 (= 9) और आर्यिका में 105 (= 6) ही क्यों ? इसी प्रकार 6 माह का अयन, 12 माह का वर्ष, 30 दिन का माह, 24 घंटे का दिन रात, 60 मिनट का घंटा और 60 सेकेण्ड का मिनट आदि ही क्यों ? जीव के भ्रमण की 84 लाख (= 12 = 3) योनियां क्यों ? फेरे 7 ही क्यों ? तथा कषायें 25 (= 7) ही क्यों ? जगत् में ऐसे प्रायः अनेक पदार्थ इसी प्रकार कोई न कोई संख्याओं से बद्ध हैं, वे कुछ न कुछ रहस्य को लिये हुए ही हैं।

मानव जीवन के उत्थान, पतन एवं शत्रुता–मित्रता आदि में जैसे अन्य पदार्थ, स्थान, काल, व्यक्ति, राशियाँ एवं ग्रह आदि कारण पड़ते हैं, उसी प्रकार अंक भी कारण पड़ते हैं, इसीलिए 15 का यंत्र, 21 का, 34 का, 81 का एवं 170 आदि के भिन्न–यन्त्र भिन्न–भिन्न कार्योत्पादक होते हैं तथा व्यक्तियों के नाम अंक अथवा जन्म तारीख आदि के अंकों से शत्रु मित्र भी बन जाते हैं, क्योंकि राशि एवं ग्रहों के सदृश अंकों में भी परस्पर में शत्रुता मित्रता है।

1.7 तन्त्र—

यह भी एक अपूर्व विद्या है, विद्वानों ने इसका भी विस्तृत वर्णन किया है। छोटे–छोटे ग्रामों में जहाँ वैद्य, डाक्टर एवं अस्पतालों आदि का अभाव है, वहाँ आधाशीशी, एकातरा, तिजारी आदि अनेक रोगों का उपचार इसी तन्त्र विद्या के बल से कर लिया जाता है। इतना ही नहीं, इस विद्या के प्रयोग से व्यापार आदि में भी लाभ होता है। जैसे–पुष्य नक्षत्र में निर्गुण्डी और सफेद सरसों गृह या दुकान के द्वार पर रखने से क्रय–विक्रय अच्छा होता है। मेघा नक्षत्र में लाई हुई पीपल की जड़ पास रखकर सोवे तो स्वप्न नहीं आते। तीनों उत्तरा नक्षत्रों में उत्तर दिशा से सफेद चिरचिटे की जड़ को लाकर सिर पर रखे तो नियम से विजय प्राप्त होती है इत्यादि।

रोगी मनुष्य को रोग निवृत्ति के लिए औषधि जितनी आवश्यक है, संसारी प्राणी को सुख शांति से जीवन यापन हेतु ज्योतिष, मंत्र, यंत्र एवं तन्त्र विद्या का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है। जिस प्रकार धन पतन का कारण नहीं है, अपितु उसका दुरुपयोग पतन का कारण है, उसी प्रकार ये उपर्युक्त विद्याएँ हानिप्रद नहीं है, मात्र इनका दुरुपयोग हानिप्रद है।

1.8 जैन मन्त्र शास्त्रों में मन्त्र-यन्त्र एवं तन्त्र—

आज हमारा ध्यान भारतीय संस्कृति की ओर जाता है तो हमें गौरव का अनुभव होता है कि कोई समय था जब भारतीय संस्कृति का विश्व व्यापी साम्राज्य था और समस्त संसार इसकी मान्यताओं, सिद्धांतों एवं परम्पराओं का अनुकरण कर स्वयं को गौरवशाली अनुभव करता था। आज स्थिति खेदजनक है कि अपने ही धर्म के अनुयायी इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में पूजा–पाठ, जप–तप आदि धार्मिक कर्मकाण्डों का अनुकरण करना अन्धविश्वास और पिछड़ेपन की निशानी माना जाने लगा है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों से आकर्षित व्यक्तियों को गहराई से जानना चाहिये कि आधुनिक विज्ञान ने स्थूल जगत में ही अपने अन्वेषण किये हैं। उनके यन्त्र एवं उपकरण स्थूल वस्तुओं की गतिविधियों का ही पता चला सकते हैं। सूक्ष्म जगत में उनका प्रवेश नहीं है। सूक्ष्म जगत में अनेक शक्तियों के भण्डार भरे पड़े हैं। जिन ऋषि मुनियों ने भारतीय संस्कृति की मान्यताओं, सिद्धान्तों, उपासनाओं, कर्मकाण्डों आदि पद्धतियों का निर्माण किया था वे निश्चित ही उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे। उनकी ज्ञानज्योति में स्पष्ट झलकता था कि स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत में अधिक शक्ति सन्निहित होती है तथा उसका विकास कर मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में चमत्कारी सफलता प्राप्त कर सकता है। धार्मिक साधनाएँ सूक्ष्म शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। सूक्ष्म शक्ति को विकसित एवं तेजपुंज बनाने के लिये पूजा–पाठ, उपासना, जप–तप, ध्यान–योग आदि विधि विधानों की व्यवस्था की गई। मंत्रयोग का भी यही आधार है।

1.9 मन्त्रयोग का अपना स्वतन्त्र विज्ञान है—

मन्त्रयोग को हम शब्दविज्ञान अथवा ध्वनिविज्ञान भी कह सकते हैं। शब्द की शक्ति पर विचार करने पर हमारा ध्यान भारतीय मन्त्रशास्त्र पर जाता है। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथ मन्त्रों की महिमा से भरे पड़े हैं। जब हम मन्त्र शब्द के अर्थ पर विचार करते हैं तो कुछ ऋषि–मुनियों एवं विद्वानों द्वारा बताये गये अर्थ को समझना पर्याप्त होगा। दस से बीस वर्णों के संग्रह को मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र में ध्वनियाँ होती हैं और ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहा जाता है। व्याकरण की दृष्टि से मन्त्र शब्द 'मन्' धातु (दिवादि ज्ञान) से 'ष्ट्रन' (त्र) प्रत्यय लगकर बनाया जाता है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है **'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशो अनेन इति मन्त्रः'** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेश का निजानुभव किया जाय वह मन्त्र है। दूसरी प्रकार तनादिगणीय (तनादि अवबोधे to Consider) 'मन्' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्ति के अनुसार **''मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्रः''** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेशो पर विचार किया जावे वह मन्त्र है। तीसरे प्रकार से सम्मानार्थक 'मन्' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगकर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ **''मन्यते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताः आत्मानः वा यक्षादि शासन देवता अनेन इति मंत्रः''** अर्थात् जिसके द्वारा परमपद में स्थित पंच उच्च आत्माओं का अथवा यक्षादि शासन देवों का सत्कार किया जावे वह मन्त्र है। दिगम्बर जैनाचार्य श्री समन्तभद्राचार्य ने मन्त्र व्याकरण में बताया है कि **''मन्त्यन्ते गुप्तं भाष्यन्ते मन्त्र विद्भिरिति मन्त्राः''** मन्त्र विदों द्वारा गुप्तरूप से बोला जावे उसे मन्त्र जानना। 'मन के साथ जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्यज्योति प्रगट होती है उन ध्वनियों के समुदाय को मन्त्र कहा जाता है। मन्त्रों का बार–बार उच्चारण किसी सोते हुए को बार–बार जगाने के समान है। यह प्रक्रिया इसी के तुल्य है, जिस प्रकार किन्हीं दो स्थानों के बीच बिजली का सम्बन्ध लगा दिया जावे। साधक की विचार शक्ति 'स्विच' का काम करती है और मन्त्रशक्ति विद्युत लहर

का। जब मन्त्र सिद्ध हो जाता है तब आत्मिक शक्ति से आकृष्ट देवता मान्त्रिक के समक्ष अपना आत्मसमर्पण कर देता है और उस देवता की सारी शक्ति उस मान्त्रिक में आ जाती है, अतः मन्त्र अपने आप में देव है। उच्चकोटि के मन्त्र का पूजन–अर्चन करने के लिए यन्त्र होता है। मन्त्र देव है तो यन्त्र देव गृह है ऐसा माना जाता है। मन्त्रविदों का कहना है कि तपोधन ऋषि–मुनियों द्वारा जो रेखाकृति बनाई जाती है, मनोरथ पूर्ण करने की जो शक्ति बीजाक्षरों में है उसे स्वयं ही मन्त्र सामर्थ्य से रेखाकृतियों (यन्त्रों) में भर देते हैं। मंत्र और मंत्र देवता इन दोनों का शरीर यंत्र कल्प में होता है, कारण यन्त्र इन मन्त्र और मन्त्र देवता का शरीर होता है।

यन्त्रमन्त्रमयं प्रोक्तं, मन्त्रात्मा देवता एव हि।
देहात्मनो यथा भेदो, यन्त्र देवतयोस्तथा।।

मन्त्र–यन्त्र की स्थापना के बाद उनके विधि–विधान और क्रम के लिए तन्त्र अर्थात् शास्त्र की रचना होती है। शास्त्र के अर्थ में तन्त्र को न लेकर उसे मन्त्र–यन्त्र के समकक्ष अर्थ में समझना होगा। किसी विशेष समय में किसी वस्तु विशेष को विधिपूर्वक लाकर उपयोग करना तन्त्र शास्त्र के अन्तर्गत आता है। अर्थात् दिन, पक्ष, नक्षत्र, माह, लग्न आदि का ध्यान रखकर किसी वस्तु को विधिपूर्वक लाना तथा उद्देश्यानुसार उपयोग करना उसे तन्त्र विद्या कहा जाता है। तन्त्रविद्या में मन्त्रसाधना की आवश्यकता नहीं होती। यदि फिर भी उससे सम्बन्धित कोई मन्त्र हो तब उसे सिद्ध कर लेने में तन्त्र अधिक गुणकारी हो जाता है। तन्त्रौषधि भी अपने आप में देव मानी जाती है। अतः मन्त्र–यन्त्र जितना गुणकारी है उतनी ही तंत्र विद्या भी गुणकारी है। **आचार्यों ने मन्त्र को देव, यन्त्र को उसका शरीर तथा तंत्र को उसकी प्रिय वस्तु माना है।**

1.10 मन्त्र विद्या वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है—

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में कुछ उदाहरणों द्वारा यह समझेंगे कि भारतीय मन्त्रविद्या मात्र कपोल कल्पना नहीं, अपितु इसके पीछे ठोस वैज्ञानिक सिद्धान्त काम करते हैं। मन्त्र में शब्द होते हैं और शब्दों के घर्षण में सूक्ष्म–शक्ति होती है। स्थूल शरीर में कुछ भी शक्ति नहीं है वरन् हमारे सूक्ष्म शरीर (आत्मा) में अनेक प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हैं। जिनको मन्त्र की सूक्ष्म शक्ति से जगाकर हम असाधारण कार्यों का भी सम्पादन कर सकते हैं। यह नियम है कि सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म की ही पहुँच सम्भव हो सकती है, स्थूल वस्तुओं का प्रवेश वहाँ निषिद्ध है। मंत्रों का आधार जब शब्दों का उच्चारण होता है तो उससे कम्पन्न उत्पन्न होते हैं। वह कम्पन इथर के माध्यम से विश्व की यात्रा में अनुकूल कम्पनों के साथ मिलते हैं, अनुकूलता में एकता का सिद्धान्त है। उन कम्पनों का पुंज बन जाता है और अपने केन्द्र तक (साधक) लौटते लौटते अपनी काफी शक्ति बढ़ा लेते हैं और यह कार्य इतनी तीव्र गति से होता है कि साधक को इसका अनुभव भी नहीं हो पाता कि शब्दों के उच्चारण मात्र से कैसे चमत्कार उत्पन्न हो रहे हैं। संसार में शब्दों के अनेक चमत्कार प्रत्यक्षरूप से देखने को मिलते हैं। मेघ मल्हार से वर्षा की जाती है, दीपकराग से बुझे हुए दीपक जलाये जाते हैं। ढोल अथवा थाली बजाकर मंत्र पढ़ते हुए सर्प, बिच्छु आदि का जहर उतारा जाता है।

आज से 24 वर्ष पूर्व लखनऊ के वैज्ञानिक श्री सी. टी. एम. सिंह ने स्लाइडों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि संगीत की स्वर लहरी सुनाकर गायों एवं भैसों से अपेक्षाकृत अधिक दूध प्राप्त होता है। कटक और दिल्ली के कृषि अनुसंधान केन्द्रों में भी ऐसे ही परीक्षण किये गये हैं जिनसे पेड़ पौधों की उत्पादन शक्ति पर संगीत के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। विदेशों में भी ऐसे ही परीक्षणों का पता चला है कि राग–रागनियों से गन्ने, धान और नारियल आदि की खेती प्रभावित होती है।

ग्राहम और नील नामक दो वैज्ञानिकों ने आस्ट्रेलिया के मेलबोन नगर की एक भारी भीड़ वाली सड़क पर शब्दशक्ति का वैज्ञानिक प्रयोग किया और सार्वजनिक प्रदर्शन में सफल रहे। परीक्षण का माध्यम भी एक निर्जीव कार

जिसे अपने इशारों पर नचाना चाहते थे और यह सिद्ध करना चाहते थे कि शब्दशक्ति की सहायता से बिना किसी चालक के कार चल सकती है। हजारों की संख्या में लोगों ने देखा कि संचालक के कार स्टार्ट करते ही कार चलना प्रारम्भ हो गई और 'गो' के सुनते ही गति पकड़ ली। लोग देखते ही रहे कि निर्जीव कार के भी कान होते हैं। जैसे–थोड़ी दूर जाकर संचालक ने 'हाल्ट' का आदेश दिया तो वह कार तुरन्त रुक गई। यह कोई हाथ की सफाई का काम नहीं था, वरन् इसके पीछे विज्ञान का एक निश्चित सिद्धान्त काम कर रहा था। ग्राहम के हाथ में एक छोटा ट्रांजिस्टर था जिसका काम यह था कि आदेशकर्त्ता की ध्वनि को एक निश्चित फ्रीक्वेन्सी पर विद्युतशक्ति के द्वारा कार में 'डेशबोर्ड' के नीचे लगे 'नियन्त्रण कक्ष' तक पहुँचा दे। उसके आगे 'कार रेडियो' नाम का एक दूसरा यंत्र लगा हुआ था इस यंत्र से जब शब्द की विद्युत चुम्बकीय तरंगें टकरातीं तो कार के सभी पुर्जे अपने आप संचालित होने लगते थे। लोगों ने चमत्कार की संज्ञा दी पर वास्तव में यह शब्द शक्ति का विकसित प्रयोग था जिसे आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों का आधार प्राप्त था।

इस प्रकार और भी कई आधुनिक विज्ञान के प्रयोग शब्द शक्ति के सम्बन्ध में हैं जो प्राचीन शास्त्रों में वर्णित शब्दशक्ति का समर्थन करते हैं। फ्रांस की एक प्रसिद्ध महिला वैज्ञानिक फिनोलिंग ने शब्द विज्ञान पर परीक्षण किये थे और उसने सिद्ध किया था कि शब्द के साथ मन और हृदय का सम्बन्ध रहता है। यह शब्द तरंगों के जिस चमत्कारित प्रभाव का वर्णन वैज्ञानिक परीक्षणों से किया गया है उनका संचालन विद्युतशक्ति के द्वारा होता है।

आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में शब्द की सामर्थ्य को सभी भौतिक शक्तियों से बढ़कर सूक्ष्म और विभेदन क्षमतावाली पाया तथा इसी बात की निश्चित जानकारी हमारे ऋषि–मुनियों के दिव्य–ज्ञान में झलकती थी जिसके कारण उन्होंने मंत्रविद्या, यंत्रविद्या तथा तंत्रविद्या का विकास किया जिस पर कई ग्रंथों की रचना हुई। उन मंत्र तंत्रों के ग्रंथों की विषयगत व्यापकता बड़ी दर्शनीय है।

भारतीय मंत्र शास्त्र की इस विशाल परम्परा में जैनधर्म में मंत्र, यंत्र एवं तंत्र से सम्बन्धित शास्त्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जैनदर्शन की प्रत्येक विद्या का प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से सम्बन्ध भगवान महावीर की वाणी से जुड़ा हुआ है। विद्यानुवाद पूर्व नामक पूर्व में मंत्र, यंत्र, तंत्र का निमित्त आदि का विस्तृत वर्णन पाया जाता है उसी के आधार से वर्तमान में उपलब्ध मंत्र साहित्य निर्मित है।

1.11 जैन मंत्र शास्त्रों में प्राप्त मंत्रों को निम्न स्वरूपों में विभक्त किया गया है—

शान्तिक मन्त्र–जिन मंत्रों के द्वारा भयंकर आधि, व्याधि, व्यन्तर–भूत–पिशाचों की पीड़ा, क्रूरग्रह, जंगम स्थावर विष बाधा, अतिवृष्टि, दुर्भिक्षादि ईतियों और चोर आदि का भय शांत हो जावे वे शांतिक मंत्र हैं।

पौष्टिक मंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा धन, धान्य, सौभाग्य, यशकीर्ति तथा संतान आदि की प्राप्ति होती है।

वश्याकर्षण–जिन मंत्रों के द्वारा मनुष्य, पशु–पक्षी, देवी–देवता आदि वशीभूत किये जा सकें।

मोहनमंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा प्राणी मात्र को मोहित किया जा सके।

स्तम्भनमंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा मनुष्य, पशु–पक्षी, भूत–प्रेत आदि को निष्क्रिय कर स्तम्भित किया जा सके।

विद्वेषणमंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा किसी दो व्यक्तियों के मध्य वैमनस्य उत्पन्न कर दिया जावे।

उच्चाटनमंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा प्राणीमात्र को अपने स्थान से भ्रष्ट किया जा सके।

मारणमंत्र–जिन मंत्रों के द्वारा किसी आततायी का प्राण हरण कर लिया जावे।

लक्ष्मी की अनिवार्यता को प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है, क्योंकि संसार का प्रत्येक कार्य इसी के सहयोग से सम्पन्न होता है यह जीवन की प्रथम आवश्यकता है। व्यक्ति ही नहीं समाज और राष्ट्र का उत्थान और पतन इसी पर निर्भर करता है। स्वामि एलाचार्य ने अपने कुरलकाव्य ग्रंथ में कहा भी है—

तुच्छोऽपि गुरुतां याति विश्रुतिञ्चाप्यविश्रुतः।
धनेन मनुजो ह्येवं शक्तिः क्वान्यत्र दृश्यते।।

"अर्थात् धन संसार के अन्य द्रव्यों में अद्भुत द्रव्य है जिसकी प्राप्ति से भिखारी भी प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है।" जिस घर में लक्ष्मी का निवास नहीं होता वहीं दुःख, दारिद्र, कलह, मनमुटाव, निराशा, असंतोष व विभिन्न प्रकार की समस्याएँ एवं उलझने उत्पन्न होती रहती हैं। धन का अभाव दुर्भाग्य का सूचक माना गया है। जैनाचार्यों द्वारा विरचित मंत्र शास्त्रों में पौष्टिक मंत्रों के अन्तर्गत धन प्राप्ति सम्बन्धी अनेक मंत्र, यंत्र, तंत्रों का प्रतिपादन किया गया है उनकी जानकारी गुरुमुख (किन्हीं जानकार गुरुजनों) से प्राप्त कर उनकी साधना के द्वारा अपने जीवन को सम्पन्न बनाया जा सकता है। लक्ष्मी प्राप्ति प्रकरण में अनेकविध मंत्र और यंत्रों का वर्णन जैन साहित्य में प्राप्त होता है।

इतने सारे मंत्र–यंत्र और तंत्रों को पढ़ने के बाद यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब ये सभी मंत्र–यंत्र एवं तंत्र लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक हैं और उसी के लिये लिखे गये हैं तो क्या एक मंत्र, एक यंत्र अथवा एक तंत्र से कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है ? इतने सारे मंत्र लिखने की क्या आवश्यकता थी ? इस सम्बन्ध में आचार्यों ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा कि हर मंत्र हर किसी व्यक्ति को लाभ नहीं पहुचा सकता। जो मंत्र एक व्यक्ति को लाभ पहुंचा सकता है उसी से दूसरे व्यक्ति को हानि भी हो सकती है। मल्लिषेणाचार्य ने बताया है कि "बुद्धिमान पुरुष (मान्त्रिक) मंत्र और मंत्री (साधक) अंशों को जानकर ही मन्त्र बतावे, अन्यथा साधक की साधना व्यर्थ जाती है।"

1.12 मन्त्र सिद्धि के बारे में जानने की विधि—

अतः मन्त्र साधना के पूर्व साधक अपने नाम राशि के अनुसार सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध एवं अरि (शत्रु) को जानकर अर्थात् अंशक परीक्षा कर मंत्र साधना का प्रयत्न करें ऐसा आचार्यों ने उल्लेख किया है। "भैरव पद्मावती कल्प" के अनुसार अंशक परीक्षा में मंत्र और मंत्री (साधक) के नाम अनुसार व्यंजन और स्वरों को पृथक्–पृथक् करके उपर मन्त्र के और नीचे साधक नाम के अक्षरों को रखे। मन्त्री (साधक) के नाम के अक्षरों से मन्त्र के अक्षरों को (ऋ ॠ ऌ ॡ की छोड़कर) गिनकर जोड़ देवे और उनको चार का भाग देवे फिर आय (भागफल) में भाग देकर निकले हुए शेष को बुद्धिमान आदि में एक पंक्ति में रखे। यदि वह एक हो तो सिद्ध, दो हो तो साध्य, तीन हो तो सुसिद्ध और चार अथवा शून्य हो तो शत्रु जानना। इसमें से बुद्धिमान सिद्ध और सुसिद्ध मन्त्र को ग्रहण कर ले और साध्य तथा शत्रु को छोड़ देवे, क्योंकि सिद्ध और सुसिद्ध फल देते हैं तथा साध्य और शत्रु हानि करते हैं।

आचार्य महावीर कीर्ति स्मृति ग्रंथ में अंशक परीक्षा में निम्न कथन पाया जाता है–

"जिस मन्त्र की साधना करना हो उस मन्त्र के अक्षरों को तीन गुना करके अपने नाम के (साधक के नाम के) अक्षरों की संख्या उसमें मिला दे तथा उस संख्या को 12 से भाग देवें। शेष जो बचे उसका फल इस प्रकार होगा।

5, 9 शेष बचे तो मंत्र सिद्ध होगा।

6, 10 शेष बचे तो मंत्र देरी से सिद्ध होगा।

7, 11 शेष बचे तो मंत्र अच्छा है।

8, 12 शेष बचे तो मंत्र सिद्ध नहीं होगा।

मल्लिषेण सूरि ने मन्त्र एवं साधक के नाम के अक्षरों के स्वर व्यंजन अनुस्वार आदि को पृथक् पृथक् कर जोड़ने का विधान बताया है तथा चार का भाग देने को कहा है। महावीर कीर्ति स्मृति ग्रंथ के अनुसार स्वर एवं व्यंजन आदि को पृथक् करने का विधान नहीं है, किन्तु मन्त्र के अक्षरों को जोड़कर तीन का गुणा करने पर तथा साधक अक्षरों को जोड़कर कुल संख्या में 12 का भाग देने को बताया है। दोनों के अंशक परीक्षा करने की विधि में काफी अन्तर है।

1.13 मंत्र साधना में कुछ मूलभूत क्रियाओं का ध्यान रखना आवश्यक है जो निम्न प्रकार हैं—

1. स्थान शुद्ध और पवित्र होना चाहिए–तीर्थभूमि, मन्दिर, वन प्रदेश, पर्वत का ऊँचा स्थान, नदी का किनारा। घर में एकान्त स्थान जहाँ आवाज न पहुँचे, ऐसी जगह उपासना गृह रखने का विधान बताया है।

2. प्रतिमाजी के सम्मुख अथवा चित्र के सम्मुख साधना करने का विधान है।

3. साधना का समय एवं जप संख्या निर्धारित होती है उसमें फेरफार नहीं करने का विधान बताया है।

4. वस्त्र धुला हुआ शुद्ध एवं मन्त्र विधि के रङ्गानुसार लेने का विधान है।

5. धूप, दीप अवश्य रखना चाहिए ऐसा विधान बताया है।

6. मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण न अतिशीघ्र न अति धीरे, मध्यम गति से जप करने का विधान बताया गया है।

7. मंत्र की उपासना, ध्यान, पूजन, जप आदि को श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक करने का निर्देश दिया हुआ है।

8. दिशा, काल, मुद्रा, आसन, वर्ण, माला, मंडल, पल्लव और दीपनादि मंत्रानुसार जानकर ही साधना करने का विधान बताया है।

विशेष—जिन मंत्रों के साथ मंत्र नहीं दिये हुए हैं सिर्फ अंक ही दर्शाये गये हैं उनके बारे में सिद्ध करने का विधान निम्नानुसार है–

सिर्फ अंक वाले यन्त्र हैं—उन्हें उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख कर चौकी पर भूर्ज पत्र रखकर अथवा कागज रखकर धूप, दीप के साथ कम से कम साढ़े बारह हजार यंत्र अष्टगन्ध से लिखकर तथा आटे की गोलियाँ कर नदी अथवा तालाब में बहा देने से सिद्ध होने का विधान बताया है। बाद में जिस उपयोग के लिये लिखा है उस उपयोग में लेने से फल प्राप्ति की आशा है।

तन्त्र विद्या में–एक दिन पूर्व शाम को उस पेड़ को न्योता देकर अर्थात् पूजनकर निमन्त्रण दे आने तथा दूसरे दिन उसे बिना लोहे के हथियार के काटने का विधान है। साथ ही घर लाकर पंचामृत से शुद्धि कर फलफूल नैवेद्य समर्पण करके तन्त्रानुसार फल प्राप्ति का विधान बताया है।

रविपुष्य योग–में घर अथवा दुकान के द्वार पर सफेद सरसों और निर्गुण्डी को बांधी जाय तो क्रय विक्रय बहुत होता है अर्थात् व्यापार बहुत होता है।

रविपुष्य योग–में कच्चा कपूर, सोवीरांजन, पातालतुम्ब, सफेदगिरी का मूल तथा पाताल गुगल के धुएं से काजल बनाकर स्वयं की आंख में अंजन करना तथा पीपल के सोलह पत्ते आंखों पर बांधना जिससे जिस स्थान पर सम्पत्ति हो उस स्थान पर ज्वाला दिखती है तथा जितने स्थान पर ज्वाला दिखती है उतने ही स्थान पर सम्पत्ति होती है।

पुष्यार्क योग–में सफेद आक जिसकी जड़ गणेशाकार होती है लाकर द्रव्य में रखने से अष्टसिद्धि तथा नवनिधि प्राप्त होती है।

रोहिणी नक्षत्र–में बिल्व (बेल) वृक्ष का बांधा बायें हाथ पर बांधने से दारिद्र दूर होता है।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र–में दक्षिण मुख करके डमरा मूल (डमरानुमूल) लाकर गद्दी के नीचे रखने से उद्योग व्यापार अच्छा चलता है।

चित्रा नक्षत्र–में सफेद आक का बांधा लाकर अपने पास रखने से मन में सोचे हुए कार्य की सिद्धि होती हैं

भरणी नक्षत्र–में दर्थ का बांधा लाकर श्री रोकड़ की तिजोरी अथवा रुपयों की थैली में रखने से व्यापार में वृद्धि होती है।

रोहिणी नक्षत्र–में बिल्व पत्ता (बिलीनुपांदडु) तीन पत्तेवाला लाकर पूजनकर कवच में बन्द कर हाथ पर बांधने से दरिद्रता का नाश होता है। लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

विशाखा नक्षत्र–में बेर का पत्ता (बोरडीनु पानु) लाकर कवच में रख हाथ पर बांधने से व्यापार अच्छा चलता है।

मघा नक्षत्र–में बड़ के नीचे दूसरा बड़ का पौधा जो कि बड़ बीज के द्वारा स्वत: ही उगा हुआ हो उसे पहले दिन विधिपूर्वक आमंत्रण देकर दूसरे दिन (मघा नक्षत्र में) वहां जाकर अपनी छाया उस पर नहीं पड़े इस प्रकार खड़े होकर पूजन कर पूर्वाभिमुख होकर उस छोटे से बड़ के पौधे को हाथ से उखाड़ कर घर लाना। शुद्ध जल से अभिषेक कर धूप, दीप, फल, फूल द्वारा पूजाकर तांबे के डिब्बे में रखने से अष्टसिद्धि तथा सभी प्रकार की सुख समृद्धि होती है धनिष्ठा नक्षत्र में नारियल का पत्ता लाकर अपने पास रखने से धन की वृद्धि होती है। रोहिणी नक्षत्र में जिस बड़ वृक्ष की बड़वाई (बड़ की शाखाओं से पतली–पतली धागानुमा निकलने वाली पृथ्वी की ओर जाकर पृथ्वी में प्रवेश कर एक नये बड़ का रूप धारण करती हैं) बढ़कर तालाब नदी के जल तक पहुँच गई हो उसे विधिपूर्वक हाथ से तोड़ कर घर लाना तथा उसकी अंगूठी (गोलाकार) बनाकर तांबे के डिब्बे में रखना, चांवल, कुमकुम, ताम्बुल, धूप, दीप से पूजा कर तिजोरी अथवा नगदी की जगह रखने से क्रय विक्रय अच्छा होता है।

पुष्य नक्षत्र–और गुरुवार हो उस दिन महुए की कोमल डाल पत्ते सहित विधिपूर्वक लाकर विधिपूर्वक रिंग (गोल) आकार बनाकर गल्ले के नीचे रखने से व्यापार अच्छा चलता है।

1.14 निष्कर्ष—

जैन मन्त्र शास्त्र की एक विशाल परम्परा है जिसके स्वरूप को आचार्यों ने अष्ट विधाओं में विभक्त कर मानव के प्रत्येक क्षेत्र को सहज एवं सुखमय बनाने का मार्ग सुझाया है। इसे केवल कल्पना नहीं, किन्तु आयुर्वेद के चिकित्साशास्त्रों से भी प्रमाणित हैं कि मंत्र तंत्र से अनेक प्रकार की आधि–व्याधि से मुक्ति दिलाकर मानव के जीवन को प्रशस्त किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा शब्द की ध्वनि तरङ्गों की भौतिक उपलब्धियों के उदाहरणों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय तो मंत्र शक्ति के रहस्यों पर आस्था और विश्वास अधिक बढ़ सकता है। जिस अदम्य साहस और परिश्रम से भौतिक विज्ञान के आचार्यों ने शब्द विज्ञान के रहस्यों को प्रगट करके नयी आस्थाएँ बनायी हैं, उसी प्रकार मंत्र साधना के आचार्यों का भी कर्तव्य होगा कि वह इस क्षेत्र में हर प्रकार के प्रयोग करे तथा तथ्यों का विश्लेषण कर लुप्त प्राय: विधि विधानों को विकसित करे ताकि वैज्ञानिक युग में मंत्रशक्ति पर डूबते हुए विश्वास को पुन: उभारा ही नहीं जा सके अपितु मानव जीवन को प्रशस्त किया जा सके।

1.15 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-उस नक्षत्र का नाम बताओ जो अकम्पनादि सात सौ मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग आने से आकाश में कम्पायमान हुआ ?

(क) श्रवण ☐
(ख) अश्विनी ☐
(ग) मघा ☐

प्रश्न 2-मंत्र कितने प्रकार के होते हैं ?

(क) दो ☐
(ख) चार ☐
(ग) दस ☐

प्रश्न 3-तिरेसठ शलाका पुरुषों में बलदेव और तीर्थंकर की संख्या कितनी है ?

(क) 9, 9 ☐
(ख) 24, 9 ☐
(ग) 9, 24 ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-निमित्त किसे कहते हैं ? ये कितने प्रकार के हैं ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 2-मंत्र किसे कहते हैं ? जैनागम में महामंत्र कौन सा है ? उस मंत्र को लिखिए ?

प्रश्न 3-"तंत्र विद्या" क्या है ? समझाइए ?

प्रश्न 4-जैन मंत्र शास्त्रों में प्राप्त मंत्रों को कितने स्वरूपों में विभक्त किया है ? परिभाषित कीजिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-"मंत्रयोग का अपना स्वतंत्र विज्ञान है" इस तथ्य को स्पष्ट कीजिए ?

पाठ-2—जैन शासन में यंत्र विद्या

2.1 द्वादशांग वाणी के अन्तर्गत दृष्टिवाद अङ्ग के पूर्वरूप चौदह भेदों में 'विद्यानुवाद' नामक पूर्व कहा गया है, उसी विद्यानुवाद पूर्व से निस्सरित विद्यामंत्र और यंत्र विधान है। विद्या–जिस मंत्र की अधिष्ठातृ देवी हों, मंत्र–जिसका अधिष्ठाता देव हो। बीजाक्षर हो अथवा स्वर हो या व्यंजन हो, प्रत्येक का एक–एक अधिष्ठाता देव या देवी होते हैं। इसका विस्तृत विवेचन वर्तमान में उपलब्ध विद्यानुशासन में पाया जाता है। 500 महाविद्याओं और 700 क्षुद्रविद्याओं का वर्णन तथा इनको सिद्ध करने का विधान आदि विद्यानुवाद में पाया जाता है। ये विद्याएं निर्ग्रंथ ऋषियों को विद्यानुवाद का स्वयमेव अध्ययन करने मात्र से सिद्ध हो जाती हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि श्रावक, विद्याधर आदि की विशेष तप, संयम, ध्यान से तथा विधि–विधान करने से सिद्ध होती है । इन विद्याओं को सिद्ध करने के लिये प्रथम तो श्रद्धान की परम आवश्यकता है जिस मंत्र की सिद्धि करने के लिये जैसा विधि–विधान कहा है उसी प्रकार करने से वह मंत्र सिद्ध हो सकता है, अन्यथा हानि की उठानी पड़ती है। आदिपुराण में जिनसेनाचार्य ने भी राजा नमि-विनमि के राज्य प्राप्ति विषयक विवेचन के अन्तर्गत राजा नमि, विनमि को धरणेन्द्र द्वारा कुछ विद्याओं को सिद्ध करने का विधि–विधान भी बताया गया ऐसा कहा है। विधि–विधान सम्बन्धी उपदेश देते हुए बताया कि यह विद्याधर लोक है, विद्याधर लोक में मनुष्य को कुछ विद्याएं तो स्वयं सिद्ध हो जाती हैं और कुछ आराधना से सिद्ध होती हैं। मातृपक्षीय और पितृपक्षीय कुल विद्याएं तो स्वयं सिद्ध होती हैं तथा आराधना से सिद्ध होने वाली विद्याएं भी है। उनको सिद्धायतन कूट के पास अथवा द्वीप, समुद्र, नदी, आदि पवित्र स्थान में शुद्ध वस्त्र धारण कर, उन विद्याओं की आराधना करके सिद्ध करें। इस विधि से ही विद्याएं सिद्ध हो सकती हैं तथा नाना प्रकार के इच्छितआकाश गमनादि व भोगोपभोग पदार्थ देती हैं।

2.2 यंत्र लेखना योजना—

जब यंत्र साधन या सिद्धि करने बैठें तो उससे पहले यंत्र लिखने की योजना समझना चाहिये, क्योंकि बिना समझे उसमें भूल होना संभव है। मान लो भूल हो गई और लिखे हुए अंक को काट दिया या मिटा दिया और उसकी जगह दूसरा लिखा तो यह यंत्र लाभदाई नहीं होगा। इसी प्रकार अंक में 1 की जगह 2 लिखा गया हो तो यह भी एक प्रकार की भूल मानी गई है। भूल होने पर उस भोज पत्र या कागज को छोड़ दो दूसरा लेकर लिखो। भूल न हो इसके लिये पूर्व अभ्यास करना चाहिए।

यंत्र लिखते समय सबसे पहले देख लो कि सबसे छोटा अंक किस खाने में है। उसी खाने से लिखना शुरु किया जाय और वृद्धि पाते अंङ्क से लिखते जाओ। जैसे यंत्र में सबसे छोटा अंङ्क 5 है तो 5 से लिखना प्रारम्भ करो बाद में 6–7–8 जो भी संख्या हो क्रम वृद्धि से लिखते जाओ। इस क्रम से पूरा यंत्र लिख लो। ऐसा कभी न करो कि लाइन से खाने भर दो और सबसे छोटा अंङ्क अंत में या बीच में भरो। इस प्रकार से अक्रम से भरा यंत्र लाभकारी नहीं होगा।

यंत्रांक योजना :

अधिकांश यंत्रों में अंक संख्या इस विधि से लिखी होती है कि किसी तरफ से जोड़ने पर एक ही संख्या आती है इसका अभिप्राय यह है कि यन्त्रक सब ओर अपना बल समान रखना चाहता है। किसी भी दिशा में निज प्रभाव कम नहीं होने देता है।

यन्त्रों में भिन्न 2 प्रकार के खाने होते हैं और वे भी प्रमाणित रूप से व अंङ्कों से अंकित होते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक अंक निज बल को पिछले अंक में मिला दश गुणा बढ़ा देते हैं, तदनुसार यह योजना भी यन्त्र शक्ति को बढ़ाने के हेतु से की गई समझना चाहिये।

जिन यन्त्रों में विशेष खाने हों और जिनके अंकों का योग करने से एक ही योग न आता हो तो इस तरह के यन्त्र अन्य हेतु से समझना चाहिए। ऐसे यन्त्रों का योगांक करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे यन्त्र इस प्रकार के देवों से

अधिष्ठित होते हैं कि जिनका प्रभाव बलिष्ट होता है। जैसे भक्तामर आदि के यन्त्र, इसलिए जिन यन्त्रों का योगाङ्क एक न मिलता हो उन यन्त्रों के प्रभाव या लाभ प्राप्ति में शंका नही करना चाहिए।

2.3 यंत्र लेखन विधान—

यन्त्र लिखने बैठें तब यन्त्र के साथ विधान लिखा हो तो प्रथम उस पर ध्यान दो। प्रधानतः यन्त्र लिखते समय मौन रहना चाहिए। सुखासन से बैठना चाहिए। सामने छोटा या बड़ा पाटिया या बाजोठ हो तो उस पर रखकर लिखना, परन्तु निज के घुटने पर रखकर कभी नहीं लिखे क्योंकि नाभि के नीचे अङ्ग ऐसे कार्यो में उपयोगी नहीं माने गए हैं।

प्रत्येक यन्त्र को लिखने के समय दीप, धूप, अवश्य रखनी चाहिए और यन्त्र विधान में जिस दिशा की ओर मुख करके लिखने का विधान बताया हो, उसी दिशा की ओर मुख करके लिखें, यदि नहीं लिखा हो तो सुख सम्पदा प्राप्ति के लिए पूर्व दिशा की ओर, संकट, कष्ट, आधि, व्याधि के मिटाने को उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिए। सम्पूर्ण क्रिया कर शरीर शुद्धि करके स्वच्छ कपड़े पहन कर विधान पर पूरा ध्यान रखना उचित है। लेखन विधि ऊन के बने आसन पर बैठकर नहीं करना चाहिए। स्थान शुद्धि का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये।

2.4 यंत्र चमत्कार—

यंत्र का बहुमान करके उससे लाभ की प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। वार्षिक पर्व दीपावली के दिन दुकान के दरवाजे पर या अन्दर जहां देव स्थापना हो वहां पर पन्दरिया, चौंतीसा, पेंसठिया, यंत्र लिखने की प्रथा बहुत जगह देखने में आती है। विशेष में यह भी देखा है कि गर्भवती स्त्री कष्ट पा रही हो और छुटकारा न होता हो तो विधि सहित यंत्र लिखकर उस स्त्री को दिया जाय तो देने मात्र से छुटकारा हो जाता है। किसी स्त्री को डाकिनी, शाकिनी सताती है तो यंत्र को हाथ में या गले में बांधने से या सिर पर रखने व दिखाने मात्र से आराम हो जाता है।

प्राचीन काल में ऐसी प्रथा थी कि किले या गढ़ की नींव लगाते समय अमुक प्रकार का यंत्र लिख दीपक के साथ नींव में रखते थे। इस समय भी बहुत से मनुष्य यंत्र को हाथ में बांधे रहते हैं और जैनधर्म में तो पूजा करने के भी यंत्र होते हैं जिनका नित्यप्रति अभिषेक कराया जाता है और चन्दन से पूजा कर पुष्प चढ़ाते हैं। इस तरह से यंत्र का बहुमान प्राचीन काल से होता आया है जो अब तक चल रहा है साथ ही श्रद्धा भी फलती है, जिस मनुष्य को यन्त्र पर भरोसा होता है उसे फल भी मिलता है। इसीलिए श्रद्धावान लोग विशेष लाभ उठाते हैं। श्रद्धा रखने से आत्मविश्वास बढ़ता है। एक निष्ठ रहने की प्रकृति हो जाती है। एक निष्ठा से आत्मबल व आत्मगुण भी बढ़ते हैं। परिणाम पुष्ट–निर्मल होते हैं अतः आत्म शुद्ध्यर्थ भी श्रद्धान रखना परमावश्यक है। जैनागम में अनेक यन्त्रों का सविस्तार विधि–विधान पूर्वक वर्णन पाया जाता है।

2.5 मंत्र–तंत्र–यंत्र विद्या—

जैन धर्म में ध्यानाध्ययनादि का विशेष वर्णन है–उसीप्रकार मंत्र, तंत्र और यंत्र का भी विशेष वर्णन है। दृष्टिवाद नामक 12 वें अंग के पांच भेद हैं उसमें चूलिका नामक जो भेद है– उसके जलगता, आकाशगता, स्थलगता, मायागता और रूपगता यह पांच भेद हैं– उनमें मंत्र तंत्र के प्रयोग का वर्णन किया गया है।

जल में गमन, जल का स्तंभन, अग्नि स्तंभन, अग्नि भक्षण, अग्निप्रवेश करने में कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरण आदि का वर्णन जिस ग्रन्थ में है–उसको जलगता चूलिका कहते हैं।

भूमि में प्रवेश करने का वा पृथ्वीगत वस्तु का प्रतिपादन करने वाले मंत्र तंत्र का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र को स्थलगता चूलिका कहते हैं।

व्याघ्र सिंह हरिण आदि रूप से परिवर्तन करने में कारणभूत मंत्र तंत्र कथन करने वाले शास्त्र को मायागता कहते हैं।

इन्द्र जालादि सम्बन्धी मंत्र तंत्र का जिसमें वर्णन है उसको मायागता चूलिका कहते हैं।

आकाश में गमन के कारण मंत्र तंत्रादि का वर्णन जिसमें है उसको आकाशगता चूलिका कहते हैं।

चौदहवाँ पूर्व विद्यानुवाद नामक पूर्व है–उसमें तो पूर्ण रूप से मंत्र, तंत्र और यंत्र का ही वर्णन है। इस प्रकार जैन ग्रन्थों में मंत्र तंत्र का विधिवत् प्रयोग किया है– और मंत्र तंत्र की साधना पद्धति भी लिखी है–तथा उनके प्रयोग से जिनको फल प्राप्त हुआ है उनके नामोल्लेख भी हैं।

प्रभावशाली महत्त्वपूर्ण रहस्यमय शब्दात्मक वाक्यों को "मंत्र" कहते हैं। जो कुछ गुप्त वार्त्ता होती है उसको मंत्र कहते हैं। अथवा–मन्त्र्यते मन्त्रणं वा मंत्रं। मत्रि गुप्त भाषणे इस व्युत्पत्ति से मंत्र शब्द का अर्थ होता है–गुप्त मंत्रणा। "मंत्रो वेद विशेषे स्याद्देवादीनां च साधने गुह्य वादेपि च पुमान् "मंत्र–शब्द वेद विशेष में देवताओं की साधना करने में और गुप्त मंत्रणा में आता है। यहाँ पर मंत्र शब्द का अर्थ है–देवताओं की आराधना वा आत्मा साधना।

मंत्रों का भी व्याकरण है, उसी के अनुसार विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न प्रकार के बीजाक्षरों की योजना करके विभिन्न प्रकार के मंत्र बनाये जाते हैं। विद्यानुशासन ग्रंथ में मंत्रो का व्याकरण बतलाया गया है।

मंत्र क ख ग घ आदि बीजाक्षरों से निष्पन्न होते हैं उन मंत्र में निहित बीजाक्षरों में उच्चरित ध्वनियों से आत्मा में धन और ऋणात्मक दोनों प्रकार की विद्युत शक्तियां उत्पन्न होती हैं। जिससे अनेक कार्यों की सिद्धि एवं कर्म कलंक का प्रक्षालन् होता है।

बीजाक्षरों की योजना से चमत्कार प्रकट करने वाले मंत्र दो प्रकार के हैं–लौकिक और अलौकिक। जिन मंत्रों की विद्युत शक्तियों से सर्प–विष, आधि–व्याधि, भूत प्रेतादि बाधा दूर की जाती है अथवा जिनका प्रयोग वशीकरण, मारण, उच्चाटन के लिये किया जाता है वे लौकिक मंत्र हैं और जिन मंत्रों के जपने से आत्म शुद्धि एवं आत्मोन्नति होती है वे लोकोत्तर मंत्र होते हैं।

बीजाक्षर–ककार से लेकर हकार पर्यंत व्यजंन बीज संज्ञक है और अकारादि स्वर शक्ति रूप हैं। मंत्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है।

मंत्र शास्त्रों में कथित सारस्वत बीज, माया बीज, शुभनेश्वरी बीज, पृथ्वी बीज, अग्नि बीज, प्रणव बीज, मारुत बीज, जल बीज, आकाश बीज आदि की उत्पत्ति ककारादि हत्य् बीजों से और अकारादि 'अच्' शक्ति से होती है।

प्रत्येक स्वर और व्यंजनों की शक्तियों का वर्णन–

अ– अव्यय, व्यापक ज्ञान स्वरूप शक्ति का द्योतक प्रणव बीज का जनक है।

आ– शक्ति और बुद्धि का दायक सारस्वतबीज का जनक कीर्ति–धन का देना वाला है।

इ– लक्ष्मी प्राप्ति का साधक–कठोर कर्मों का बाधक एवं ह्रीं बीज का उत्पादक है।

ई– अमृत बीज है, ज्ञानवर्द्धक, स्तंभक, मोहक और जंभृक है।

उ– उच्चाटन कारक तथा श्वास नालि के द्वारा जोर का धक्का देने से है।

ऊ– उच्चारक, मोहक और विशेष शक्ति का परिचायक है।

ऋ–ऋद्धिबीज, सिद्धिदायक, शुभ कार्य सम्बन्धी बीजों का मूल कार्य सिद्धि का सूचक है।

ॠ–सत्य का संचारक, वाणी का ध्वंसक, लक्ष्मी और आत्मसिद्धि का दीपक है।

ए– अरिष्ट निवारक और सुख सम्पत्ति का वर्द्धक है।

ऐ– उदात्त–जोर से उच्चारण करने पर वशीकरण।

ओ–यह उदात्त स्वर माया बीज का उत्पादक लक्ष्मी–श्री पोषक सर्व कार्यों का साधक और निर्जरा का कारण है।

औ–मारण और उच्चाटन में प्रधान शीघ्र कार्य का साधक है।

अं– स्वतंत्र अनेक शक्तियों का उद्घाटक है।

अ:–शांति बीजों में प्रधान है।

क–शक्ति बीज प्रभावशाली सुखोत्पादक और संतान प्राप्ति की कामना को पूरने वाला है।

ख–आकाश बीज–अभाव कार्यों की सिद्धि के लिए कल्पवृक्ष है।

ग– पृथक् करने वाले कार्यों का साधक है।

घ– स्तंभन बीज है, स्तंभन कार्यों का साधक और विघ्न घातक है।

इस प्रकार 'च' आदि सम्पूर्ण बीजाक्षर संयुक्त वा असंयुक्त होकर कार्य सिद्धि को करते हैं। इन बीजाक्षरों की शक्ति अचिंत्य हैं। कठिन से कठिन कार्य, दुसाध्य रोग, ईति–भीति आदि सर्व उपद्रव बीजाक्षरों के ध्यान से नष्ट हो जाते हैं।

सर्वप्रथम बीजाक्षरों से निष्पन्न णमोकार मंत्र है, जिसके चिंतवन से लौकिक कार्य की सिद्धि और आत्मोन्नति होती है। इसके जपने वालों के उदाहरणों से शास्त्र भरे हुये हैं। इसी मंत्र के ध्यान से सुदर्शन के लिये सिंहासन, रावण को विद्याओं की सिद्धि, मानतुंग के 48 ताले टूटना, वादिराज के कुष्ट रोग का निवारण, कुन्द कुन्द के द्वारा अम्बिका का अवतरण, आदि अनेक कार्य सिद्ध हुये हैं। इस णमोकार मंत्र से ही सर्व मंत्रों की उत्पत्ति होती है। मंत्र व्याकरण के अनुसार इसमें अनेक प्रकार के बीजाक्षर और पल्लव जोड़ देने से इसमें अद्भुत शक्ति का योग हो जाता है। जैसे धन प्राप्ति के लिए 'क्लीं', शांति के लिये 'ह्रीं', विद्या के लिये ''ऐं'', कार्य सिद्धि के लिए भ्रौं' बीजाक्षर और स्वाहा या नम: पल्लव का प्रयोग किया जाता है। मारण, उच्चाटन, विद्वेषन करने के लिये घेघे' वषट् शब्द का प्रयोग किया जाता है।

तथा–ॐ ह्राँ णमो अरिहंताणं, ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं, ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं, ॐ ह्र: णमो लोए सव्व साहूणं–यह एक मंत्र बन गया–जिस कामना से इसका जाप्य करना है–वही पल्लव जोड़ देना चाहिये।

जैसे यदि अग्नि को शमन करना है तो इसी मंत्र के अंत में अग्निं उपशमय उपशमय सर्वशांतिं कुरु कुरु स्वाहा, ऐसा जाप करना चाहिये। वृष्टि कराने के लिये मेघं आनय आनय वृष्टिं कुरु कुरु स्वाहा। वृष्टि को रोकने के लिये वृष्टिं स्तंभय हूँ फट् स्वाहा मंत्र बोलना चाहिये। विष को दूर करने के लिये–सर्पविषं वा वृश्चिक विषं नाशय नाशय हूँ फट् स्वाहा। इसी प्रकार आधि–व्याधि शोक संताप दारिद्र का नाश करने के लिये पल्लव को जोड़कर ऊपर कथित णमोकार मंत्र का जाप करने से कार्य की सिद्धि होती है।

इस णमोकार मंत्र के समान और भी बहुत से मंत्र हैं–जिनसे भी अनेक कार्य सिद्ध होते हैं–

जैसे 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ अर्हं नम:' सर्व शांतिदायक मंत्र है। ॐ ह्रीं क्लीं ऐं हंस वाहिनी मम जिह्वाग्रे आगच्छ आगच्छ स्वाहा इस जाप्य से विद्या शीघ्र सिद्ध होती है।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो आमोसहिपत्ताणं, ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं, ॐ ह्रीं अर्हं णमो खेल्लोसहि पत्ताणं, ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोस्सहिपत्ताणं मम सर्व रोग विनाशनं कुरु कुरु स्वाहा, इस मंत्र से सर्व रोग दूर हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं अर्हं अक्खीणमहाणसाणं मम अक्खय ऋद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। इससे धन धान्य की प्राप्ति होती है।

ॐ ह्रीं नम:–इससे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं। इस मंत्र का पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के दक्षिण बाहु के समीप पद्मासन बैठकर दो हजार जप करने से सर्व कार्य सिद्ध होते हैं।

इसी ॐ ह्रीं नम:' मंत्र को 21 बार जप कर दशों दिशाओं में पानी फैंकने से वर्षा बद्ध हो जाती है।

इसी मंत्र से 27 बार अन्न को मंत्र करके खाने से आठवें दिन लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

रात्रि में 108 बार जपने से लक्ष्मी की वृद्धि होती है।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वाग्वादिनी भगवती सरस्वती ह्रीं नम: इस मंत्र के जाप्य से विद्या की प्राप्ति होती है।

ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथाय एहि–एहि भगवती दह दह हन हन चूर्णय चूर्णय भंज भंज कंड कंड मर्दय मर्दय हम्ल्व्र्यूं आवेशय 2 हूँ फट् स्वाहा–इस मंत्र का 4000 पुष्पों से जाप्य करने से सर्वरोग नष्ट हो जाते हैं।

ॐ ह्रीं ऐं क्लीं ह्रौं नमः 12000 जाप्य करने से सिद्ध होता है। शुक्रवार के दिन धरणेन्द्र पद्मावती सहित पार्श्वनाथ भगवान के समक्ष जप करने से स्वप्न में शुभाशुभ की सूचना मिलती है।

ॐ णमो अरिहंताणं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा–इस मंत्र से 108 बार मालकांकिणी को मंत्र कर खाने से बुद्धि की वृद्धि होती है।

इस प्रकार मंत्रों से अनेक कार्य सिद्ध होते हैं– मंत्रो की महिमा अचिंत्य है। इन मंत्रों से आत्म कल्याण के साथ लौकिक अभ्युदयों की प्राप्ति होती है। अनेक प्रकार के मंत्रो का प्रयोग जैन शास्त्रों में किया है।

2.6 मंत्रों के समान यंत्रों का भी महात्म्य अचिन्त्य है—

बीजाक्षर और अंक से यंत्र बनते हैं– अर्थात् इन्ही बीजाक्षरों की मंत्रों को तथा एक दो आदि अंको को ताम्र पत्र, कांस्य पत्र, सुवर्ण पत्र आदि पर लिखा जाता है–वह यंत्र कहलाता है–मंत्र शास्त्र के अनुसार इसमें अलौकिक शक्तियां मानी गई हैं इसलिये जैन सम्प्रदाय में इसे पूजा वा विनय का विशेष स्थान प्राप्त है। मंत्र सिद्धि–पूजा–प्रतिष्ठा यज्ञ विधान आदि में इनका बहुलता से प्रयोग किया जाता है। प्रयोजन के अनुसार तत्काल भी यंत्र बनाये जाते हैं।

यंत्रों के नाम– अंकुरार्पण यंत्र, अग्नि मंडल यंत्र, ऋषि मंडल यंत्र, अर्हन्मंडल यंत्र, कर्मदहन यंत्र, कलिकुण्ड दंड यंत्र, कल्याण त्रिलोक्यसार यंत्र, कूर्म चक्र यंत्र, गंध यंत्र, गणधरवलय यंत्र, षट स्थानोपयोगी यंत्र, चिंतामणि यंत्र, मृत्युंजय यंत्र सारस्वत यंत्र, सर्वतोभद्र यंत्र, सुरेन्द्र चक्र यंत्र नित्य उपयोग में आने वाले सिद्ध यंत्र, दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण, चतुर्विंशति तीर्थंकर यंत्र, शांति यंत्र, विनायक यंत्र, सरस्वती यंत्र, यंत्रेश यंत्र, मातृक। यंत्र, आदि अनेक यंत्र हैं–उसी प्रकार पंचकल्याण आदि विधानों में उपयोगी मृतिका नयन यंत्र, नयनोन्मिलन यंत्र, जल यंत्र, निर्वाण सम्पत्ति यंत्र, बोधि समाधि यंत्र, चिंतामणि यंत्र आदि अनेक बीजाक्षर के यंत्र हैं। भक्तामर, कल्याणमन्दिर के जितने श्लोक हैं उतने ही उनके यंत्र भी हैं।

इन बीजाक्षरों के समान 'अंक' यंत्र भी हैं– जैसे 15 का यंत्र 20–45–21–81 आदि अनेक यंत्र हैं। 64 ऋद्धि का भी यंत्र है। नागौर के शास्त्र भंडार में एक विस्तृत विजय पताका यंत्र है–उसमें सारे अंक यंत्र गर्भित हैं। इनके लिखने की विधि और फल का भी विस्तृत वर्णन है। जैसे कितनी भी संख्या का यन्त्र बनाना है–उसके लिये 16 कोष्ठ का यंत्र बनाकर इस विधि से भरना चाहिए–उसका सूत्र है किसी भी सम संख्या का यंत्र बनाना हो तो–उस संख्या में दो का भाग देना चाहिये ओर जो उसमें लब्ध आता है उसमें एक कम करके दूसरे कोष्ठ में स्थापन करना चाहिये। तदनंतर एक–एक हीन करके क्रम से धने (नौवें) कोष्ठ में सोलहवें कोष्ठ में, सप्त कोष्ठ में, अष्ठम कोष्ठ में, पन्द्रहवें कोष्ठ में, दशवें कोष्ठ में और प्रथम कोष्ठ में स्थापना करनी चाहिए। शेष कोष्ठों में क्रम से 2–7–6–3–8–1–4 और पांच लिखना चाहिये।

"इच्छाकृतार्धं कृत रूप हीनं , धने ग्रहे षोडश सप्त चाष्टौ।

तिथि दशमं प्रथमे च कोष्ठे, द्वि सप्त षट त्रि अष्ट कु– वेद बाण।।

जैसे हमें एक सौ सोलह का यंत्र बनाना है–तो सर्वप्रथम इसका आधा (58) करना चाहिये। तदनंतर इसमें से एक घटाकर दूसरे कोठे में स्थापित करना चाहिए। तदन्तर एक एक कम करके 9 वें सौलवें, सातवें, आठवें, पन्द्रहवें, दशवें और प्रथम कोष्ठ में स्थापित करना चाहिए। उसके बाद दो, सात, छह, तीन, आठ, एक, चार और पांच को लिखना चाहिये। कुछ यंत्र ऐसे भी हैं जिनमें बीजाक्षर और अंक दोनों रहते हैं। इस प्रकार अनेक विध यंत्रों की आराधना से भी अनेकों कार्य सिद्ध होते हैं।

2.7 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-यंत्र लिखते समय क्या रखना आवश्यक है ?

(क) दीप ☐
(ख) धूप ☐
(ग) दीप, धूप दोनों ☐

प्रश्न 2-इन्द्र जलादि संबंधी मंत्र तंत्र का जिसमें वर्णन है, उसको.....कहते हैं ?

(क) स्थलगता चूलिका ☐
(ख) मायागता चूलिका ☐
(ग) आकाशगता चूलिका ☐

प्रश्न 3-उच्चारक, मोहक और विशेष शक्ति का परिचायक, कौन सा स्वर माना गया है ?

(क) ॐ ☐
(ख) ई ☐
(ग) अः ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-यंत्र लेखन विधि का क्या विधान है ? बताइए ?

प्रश्न 2-दृष्टिवाद अंग के चूलिका नामक भेद के भेद कितने हैं ? बताइए ?

प्रश्न 3-जलगता चूलिका किसे कहते हैं ? समझाइए ?

प्रश्न 4-यंत्र किसे कहते हैं ? कुछ यंत्रों के नाम भी लिखिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-प्रत्येक स्वर और व्यंजनों की शक्तियों का वर्णन कीजिए ?

पाठ-3—स्वप्न विज्ञान : स्वप्न दर्शन का शुभाशुभ फल

नत्वा जिनेन्द्रं गतसर्वदोषं, स्वानन्दभूतं धृतशान्तरूपम्।
नरामरेन्द्रैर्नुतपादयुग्मं, श्रीवीरनाथं प्रणमामि नित्यम्।।

3.1 नाना प्रकार के कर्मों से यह संसारी आत्मा क्षण क्षण में जरा से निमित्तों को प्राप्त कर आकुल–व्याकुल हो उठता है। जागृत व सचेत अवस्था में तो नाना प्रकार के मन के घोड़े दौड़ाता रहता है लेकिन आश्चर्य यह है कि जब यह प्राणी शारीरिक व मानसिक चेष्टाओं में व्यस्त होने पर थकान का अनुभव करता है तथा उसे दूर करने का उपाय सोचता है तब आश्रय एकान्त स्थान का लेता है और वहाँ विश्राम कर समस्त चिंताओं से दूर होने के लिए निद्रादेवी की गोद में अपने को समर्पित कर देता है। जरा ध्यान से विचार करें कि उस निद्रित अवस्था में शारीरिक व वाचनिक क्रियायें सभी स्तब्ध हो जाती है। लेकिन क्या वह मुक्त है चिंताओं से, क्या उसके मन ने विश्राम पाया है ? आप कह सकते हैं कि ऐसी अवस्था में मन करेगा भी क्या ! अरे भाई, उस समय भी वह जीव कर्मबन्ध कर रहा है। अचेत होकर भी यदि कहो कैसे? तो बहुत ही सीधा और सरल उत्तर है–उस कर्म बन्धन से बद्ध होने का प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं, जिसे मुक्त स्वर में सभी स्वीकार करते हैं। चलो, अपने भूतकालीन अनुभवों की डायरी उठाकर देखें तो पता चल जावेगा कि हम अमुक दिन सोकर उठे तो अपने को घबड़ाते हुए पाया। घबड़ाने का कारण था बस, यही न कि स्वप्न में मेरे बच्चे को हरण कर लिया है और अपने चित्त की पूर्ण शान्ति को खो चुका हूँ। इस प्रकार नाना तरह से स्वप्न देखा ही करते हैं, कभी कुछ कभी कुछ ये सब हमें ज्ञात कराते हैं कि हम शारीरिक व वाचनिक क्रिया के निरोध में भी कर्मबन्धन से अछूते नहीं हैं। हमारा हर समय आकुलताओं में निकल रहा है। शास्त्रों में हम पढ़ा करते हैं कि स्वर्गों में रात्रि दिन का भेद नहीं होता। ठीक उसी प्रकार आकुलताओं की स्थिति में भी रात्रि दिन का भेद नहीं होता। दिन की अपेक्षा अपने को रात्रि में अधिक व्याकुल पाते हैं। सुबह होते ही स्वप्न का शुभ–अशुभ जानने की चिन्ता व्यक्त करते हुए लोगों को देखा जाता है। उसका कारण जब खोजते हैं तो पाते हैं कि इस विषय का हमें अध्ययन ही नहीं है। अष्टांग निमित्तों का कथन करते हुए ज्योतिष विषय के माध्यम से स्वामी भद्रबाहु ने अपने नाम से एक संहिता लिखी है। इसका पूरा नाम "भद्रबाहु संहिता" है। इसी ग्रंथ के छब्बीसवें अध्याय में उन्होंने स्वयं लिखा है–

नमस्कृत्य महावीरं सुरासुर जनैर्नतम्।
स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभ–समीरितम्।।

अर्थात् देव और दानवों द्वारा नमस्कृत किये गये भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार कर स्वप्नों के शुभाशुभ निमित्तों का वर्णन करता हूँ।

आचार्यश्री कहते हैं कि स्वप्न दो प्रकार के होते हैं–शुभ और अशुभ। स्वप्न शास्त्र में प्रधानतया स्वप्न नौ प्रकार के कहे गये हैं। यथा—दृष्ट–श्रुत–अनुभूत–प्रार्थित–कल्पित–भाविक–दोषज, मंत्रज व देव।

3.2 नौ प्रकार के स्वप्न इस प्रकार हैं—

(1) दृष्ट—जो कुछ जागृत अवस्था में देखा हो उसी को स्वप्न अवस्था में देखा जावे।
(2) श्रुत—सोने से पहले कभी किसी से सुना हो उसे स्वप्न अवस्था में देखा जावे।
(3) अनुभूत—जो जागृत अवस्था में किसी भाँति अनुभव किया हो उसी का स्वप्न देखना।
(4) प्रार्थित—जिसकी जागृत अवस्था में प्रार्थना (इच्छा) की हो उसी को स्वप्न में देखना।
(5) कल्पित—जिसकी जागृत अवस्था में कभी भी कल्पना की हो उसे स्वप्न में देखना।
(6) भाविक—जो कभी न देखा न सुना हो, पर जो भविष्य में होने वाला हो उसे स्वप्न में देखना।

(7) दोषज—वातादि दोषों से उत्पन्न दोषज स्वप्न।

(8) मंत्रज—पापरहित मंत्र साधना द्वारा सम्पन्न स्वप्न।

(9) देव—पुण्य और पाप के व्यापक स्वप्न–

विशेष—इन नौ प्रकार के स्वप्नों में मंत्रज और देव ये स्वप्न सत्य होते हैं। आरम्भ के 6 प्रकार के स्वप्न प्रायः निष्फल होते हैं। अशुभ के आने पर व्यक्ति स्वप्न के पश्चात् जागकर सो जावे तो अशुभ स्वप्न का फल नष्ट हो जाता है। यदि स्वप्न के पश्चात् पुनः शुभ स्वप्न दिखाई पड़े तो अशुभ फल नष्ट होकर शुभ फल की प्राप्ति होती है। अशुभ फल के दिखलाई पड़ने पर जगकर णमोकार मंत्र का जाप करना चाहिये। यदि अशुभ स्वप्न के पश्चात् शुभ स्वप्न आवे तो दुष्ट स्वप्न की शांति के उपाय की आवश्यकता नहीं है। स्वप्न के सम्बन्ध में आचार्य भद्रबाहु कहते हैं कि बुद्धिमान् व्यक्ति को गुरु के समक्ष शुभ–अशुभ स्वप्नों का कथन करना चाहिये किन्तु अशुभ स्वप्नों को गुरु के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के समक्ष कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये।

सर्वप्रथम यहाँ वात–पित्त–कफ प्रकृति वाला व्यक्ति किस प्रकार के स्वप्न विशेषरूप से देखता है उसे क्रमशः बताते हैं–

(1) गिरना, तैरना, सवारी पर चढ़ना, पर्वत पर चढ़ना, वृक्ष, प्रासाद (महल) पर चढ़ना आदि को वात प्रकृति वाला व्यक्ति देखता है।

(2) रक्त पीत पदार्थ, अग्नि संस्कार से युक्त पदार्थ, स्वर्ण के आभूषण उपकरण आदि को पित्त प्रकृति वाला देखता है।

(3) जल–जल से उत्पन्न पदार्थ धान्य, पत्र सहित कमल, मणि मोती प्रवाल आदि को स्वप्न में कफ प्रकृति वाला व्यक्ति देखता है।

3.3 स्वप्नफल—

(1) जो सिंह, व्याघ्र, गाय, बैल, घोड़ा और मनुष्य से युक्त होकर रथ पर चढ़कर गमन करते हुए देखता है वह राजा या शासक होता है।

(2) श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर महल या समुद्र में प्रवेश करते हुए स्वप्न देखता है, वह नीच शासक होता है।

(3) जो श्वेत हाथी पर नदी या नदी के तट पर भात का भोजन करता हुआ स्वप्न में देखता है वह शीघ्र शासक होता है।

(4) जो व्यक्ति प्रासाद, भूमि या सवारी पर आरूढ़ हो सोने या चाँदी के बर्तनों में स्नान, भोजन, पान आदि की क्रियायें करता हुआ स्वप्न में देखे उसे राज्य की प्राप्ति होती है।

(5) जो राजा स्वप्न में श्वेत वर्ण के मल मूत्र आदि को इधर–उधर फेंकता है वह राज्य, काल को शीघ्र प्राप्त होता है।

(6) जो व्यक्ति स्वप्न में जहाँ तहाँ स्थित होकर जीभ को नखों से खुरचता दीखे व लालवर्ण की झील में स्थित होता हुआ देखे वह व्यक्ति नीच होते हुए भी राजा या शासक होता है।

(7) जो व्यक्ति स्वप्न में वन, पर्वत, अरण्य युक्त पृथ्वी सहित समुद्र के जल को भुजाओं द्वारा पार करता हुआ देखे, वह व्यक्ति राज्य प्राप्त करता है।

(8) जो राजा स्वप्न में सिर कटा हुआ या तलवार के द्वारा छेदित हुआ देखता है उसे सहस्रों का लाभ तथा प्रचुर भोग प्राप्त होता है।

(9) जो व्यक्ति स्वप्न में धनुष पर बाण चढ़ाना, धनुष का स्फालन करना, प्रत्यंचा को समेटना आदि देखता है वह अर्थ लाभ करता है। युद्ध में जय व शत्रु का वध होता है।

(10) जो व्यक्ति सिर पर पर्वत, घर, खण्डहर तथा दीप्तिमान पदार्थों को देखता है वह स्वस्थ होकर भूमि का उपभोग करता है।

(11) जो स्वप्न में मृतिका के हाथी पर समुद्र को पार करता हुआ देखे और उसी स्थिति में जाग जावे तो वह शीघ्र ही पृथ्वी का स्वामी होता है। जो व्यक्ति शस्त्रों द्वारा शत्रुओं को परास्त कर पृथ्वी और पर्वतों को अपने आधीन कर लेना देखता है अथवा जो शुभ पर्वतों पर अपने को आरोहण करता देखता है वह राज्याभिषेक को प्राप्त होता है।

(12) जो व्यक्ति स्वप्न में हाथी, गाय, सवारी, धन, लक्ष्मी, कामदेव, अलंकार और आभूषणों से युक्त पुरुष का दर्शन करता है उसके भाग्य की वृद्धि होती है। जो स्वप्न में अपने शरीर की नसों से गांव को वेष्टित करते देखे, वह मण्डलाधिप होता है।

(13) जो स्वप्न में तालाब स्थित पात्र में रखी खीर को निश्चित हो खाते देखता है वह चक्रवर्ती राजा होता है।

(14) यदि स्वप्न में कोई धन धान्य से युक्त हो राज, राजपुत्र या चोर होना अपने को देखे तो राज्य की अभिवृद्धि होती हैं।

3.4 सामान्य शुभफलदायक स्वप्न—

जो व्यक्ति स्वप्न में सूर्य या चन्द्रमा का स्पर्श करता देखता है वह व्यक्ति सौभाग्य बंधन की प्राप्ति करता है। जो स्वप्न में शुक्ल वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषणों से अलंकृत होकर हाथी पर चढ़ा हुआ भयभीत देखता है वह समृद्धि को प्राप्त होता है। जो स्वप्न में संतोष के साथ देव, साधु, ब्राह्मणों को और प्रेतों को देखते हैं वे सब सुख चाहते हैं, सुख प्राप्त करते हैं और विपरीत देखने से विपरीत फल होता है। अर्थात् स्वप्न में उक्त देव, साधु का क्रोधित होना देखने से उलटा फल होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में गृह को विवर्ण देखे या पहचाने वह शीघ्र ही विपत्ति से छुटकारा पाता है। यदि स्वप्न में शर्बत या जल को पीता हुआ देखे अथवा किसी बंधे व्यक्ति को छोड़ता हुआ देखे तो उस स्वप्न का फल ब्राह्मण के लिये सोमपान और शिष्यों के लिए धन सम्पत्ति देने वाला होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में नीचे कुएँ के छिद्र को और भयभीत होकर स्थल पर चढ़ता हुआ देखता है वह धन धान्य द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है। स्वप्न में वीणा, वल्लकी और विष को ग्रहण करे पश्चात् जागृत हो जावे तो उसी स्त्री को सुन्दर गुणवती कन्या की प्राप्ति है। जो स्वप्न में विष भक्षण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो अथवा विष भक्षण करना देखे तो वह धन–धान्य से युक्त होता है तथा चिरकाल तक वह किसी प्रकार के बन्धन में बंधा नहीं रहता। स्वप्न में पूज्य व्यक्तियों का दर्शन करना, सामायिक पुष्प और फलों का दर्शन करना धन प्राप्ति के लिये होता है। स्वप्न में शयन आसन करना हितकर और प्रशस्त माना गया है। शोक युक्त व्यक्ति, यदि स्वप्न में मरुस्थल, वृक्षरहित वन एवं जल रहित नदी को देखता है तो उसके लिए वह स्वप्न शुभ फलप्रद होता है। स्वप्न में जो कोई आसन, शय्या, सवारी, घर, वस्त्र आभूषण दान करता है व देखता है वह सुखी होता है तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अलंकृत पदार्थ, श्वेत हाथी, घोड़े, बैल आदि का स्वप्न में दर्शन करने से यश की प्राप्ति होती है। पताका, तलवार, लाठी, शुक्ति, सीप, मोती, सोना, दीपक आदि को स्वप्न में प्राप्त करता है वह भी धन प्राप्त करता है। जो व्यक्ति स्वप्न में सांप, बिच्छू या अन्य कीड़ों द्वारा काटे जाने पर भयभीत नहीं होता और शोक नहीं करता हुआ देखता है वह धन को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति स्वप्न में काला गुरु, चन्दन की घिसने से सुगन्धित के कारण प्रशंसा करता है तथा उनका लेपन करना पीसना देखता है उसे धन की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति स्वप्न में पुष्पित केला और देवदारु या नीम के वृक्ष पर बैठना या चढ़ना देखता है उसे धन की प्राप्ति होती है। यदि स्वप्न में कोई मगर या घड़ियाल मनुष्य को खींचता हुआ दिखाई पड़े तो व्यक्ति कारागार आदि या मुकदमा में फँसा हो उसकी मुक्ति होती है। स्वप्न में यदि किसी व्यक्ति को पीले या लाल फूल या फल दिखलाई पड़े तो उसे सोना–चाँदी का लाभ निःसन्देह होता है। श्वेत आसन, श्वेत सवारी, श्वेत

माला का धारण करना तथा अन्य श्वेत द्रव्यों का दर्शन स्वप्न में शुभ होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में श्रेष्ठ बैलों के रथ पर चढ़कर पूर्व तथा उत्तर की तरफ गमन करता है वह धन प्राप्त करता है। स्वप्न में गृह में स्थित पुष्प और शाखाओं से युक्त वृक्षों से यदि गिरता हुआ देखता है तो उसकी चेष्टायें सफल होती हैं। जो स्वप्न में शुक्ल और हरे वृक्षों से युक्त अपने को देखता है, उसी समय जाग जाता है व अग्नि द्वारा जलता हुआ अपने को देखता है वह फांसी पर लटकाने के समय फांसी से या कारागार से बद्ध होने पर छोड़ दिया जाता है।

स्वप्न में दूध, तेल, घी का दर्शन शुभ है, खाना शुभ नहीं। विशेष रूप से दर्शन शुभ माना गया है। स्वप्न में जिस व्यक्ति की गोद सुन्दर धन, धान्य, फल, पुष्प से भर जाय वह धन प्राप्त करता है। यदि सुन्दर रूपयुक्त कन्या आती दिखाई पड़े तो क्षत्रियों को राज्य की प्राप्ति और अन्य वर्ण वालों की वृद्धि होती है। स्वप्न में श्वेत गाय बंधी हुई, चलती हुई, ठहरी हुई अथवा खूंटे से शूली दिखलाई पड़े तो हमेशा यश की प्राप्ति होती है। स्वप्न में सफेद वस्त्र अलंकारों से युक्त सुन्दर स्त्री आलिंगन करती दिखलाई पड़े तो उसे सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। जो स्वप्न में उदयाचल पर सूर्य और चन्द्रमा को उदय होते हुए देखे उसे धन की प्राप्ति होती है, उसका दु:ख नष्ट होता है। जो स्वप्न में अपने को हाथी पर बांधे देखता है उसे पुत्र प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने दाहिनी ओर श्वेत सांप को देखता है और स्वप्न दर्शन के पश्चात् तत्काल उठ जाता है उसे अति लाभ होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में चाँदी के बर्तन में स्थित फैन सहित दूध को पीते देखता है उसे धन धान्यादि सम्पत्ति की प्राप्ति तथा विद्या का लाभ होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में स्वर्ण भूषण स्वर्ण पीत पुष्प या फल को अन्य किसी द्वारा ग्रहण करते देखता है उसे स्वर्णाभूषणों की प्राप्ति होती है। स्वप्न में दही से सज्जन–प्रेम की प्राप्ति, गेहूं के दर्शन सुख की प्राप्ति, जौ दर्शन से जिन पूजा की प्राप्ति, पीली सरसों के दर्शन से शुभ फल की प्राप्ति होती है। स्वप्न में देवपूजा पूजिका व्यन्तरआदि या देवभक्ति या देव का आलिंगन करने वाली नारी जिस प्रकार का वरदान को देती हुई दिखलाई पड़े, उसी प्रकार का फल जानना चाहिए। जो स्वप्न में श्वेत छत्र, श्वेत चन्दन एवं कपूर आदि वस्तुओं को प्राप्त करते देखता है, उसे अभ्युदय प्राप्त होते हैं। यदि स्वप्न में लाल तलवार धारण किये वीर पुरुषों के जूते का दर्शन या लाभ हो तो यात्रा की सफलता समझना चाहिये।

3.5 अशुभ फलदायक स्वप्न—

जो व्यक्ति स्वप्न में श्मशान में सूखे वृक्ष एवं लकड़ी को देखता है अथवा यज्ञ के खूंटे पर अपने को चढ़ता हुआ देखता है वह विपत्ति को प्राप्त होता है। स्वप्न में जिस घर में लाक्षा रस, रोग अथवा वायु का अभाव देखा जावे तो घर में आग लगती है या चोरों द्वारा शस्त्र का घात होता है। स्वप्न में निर्जन चौराहा मार्ग में प्रविष्ट होता देखे पश्चात् जागृत हो जावे तो सुन्दर गुणयुक्त पुत्र की प्राप्ति उनकी स्त्री को नहीं होती। यदि स्वप्न में कोई व्यक्ति आसव और उसका पान करते हुए देखे अथवा नि:सहाय अपने को मरता हुआ देखे तो इस अशुभ स्वप्न की शांति के लिये सत्य वचन बोलना चाहिये, क्योंकि थोड़ा सा भी असत्य भाषण विकास के लिये हितकारी नहीं होता। जो व्यक्ति रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न में यज्ञ स्तंभ गंधर्व शूल पर आरोहित होते देखता है वह कल्याण को प्राप्त नहीं होता। जो व्यक्ति श्रेष्ठ महल के परकोटे पर चढ़ता हुआ देखे, तो वह शेष लक्ष्मी का त्याग करता है, भयंकर कष्ट पाता है। स्वप्न में पक्व मांस दर्शन, ग्रहण और भक्षण व्यक्ति को घोर कष्टोत्पादक माना गया है। स्वप्न में वमन करते हुए देखने से मरण, दस्त लगना देखने से धन नाश और यान आदि के छत्र के ग्रहण करने से धन धान्य का अभाव होता है। स्वप्न में गाना देखने से रोना पड़ता है, नाचना देखने से वध वंधन होता है, हँसना देखने से शोक, पढ़ना देखने से कलह, बंधन देखने से स्थान प्राप्ति और छूटना देखने से परदेश गमन होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में तालाब, नदी, पर्वत, कलश और गृहों को शोकार्त देखता है उसे शोक बढ़ता है। स्वप्न में रक्त कमल, नील कमलों का दर्शन, ग्रहण और तोड़ना देखने से प्रयाण होता है। जटाधारी,

सिरमुंडित, विरूपाकृति वाली मलीन नीले वस्त्र वाली स्त्री को स्वप्न में ग्लानिपूर्वक देखता है तो सामूहिक भय का सूचक है। तपस्वी पुण्डरीक तथा नवीन कमलों को स्वप्न में देखते ही जाग जाता है तो ग्लानि फल की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति भूमि पर विकीर्ण (फैल जाना) और जल में नाश को प्राप्त हो जाना देखता है उस व्यक्ति को महान भय होता है। स्वप्न में लाल माला या लाल सूत्र के द्वारा जो अंग बांधा जावे तो उसी में क्लेश होता है। यदि स्वप्न में रुधिर से अभिषिक्त होता हुआ देखता है वह व्यक्ति चिरकाल तक धन धान्य से युक्त नहीं होता।

3.6 अशुभतर फलदायक स्वप्न—

जो व्यक्ति स्वप्न में शीशा, राँगा, जस्ता, पीतल, रज्जू, सिक्का तथा मधु का दान करता देखता है उसका मरण निश्चय होता है। जो स्वप्न में प्रेतयुद्ध गर्दभ (गधा) युक्त रथ में आरूढ़ दक्षिण दिशा में जाता हुआ देखता है वह मनुष्य शीघ्र की मरण को प्राप्त होता है। यदि रात्रि के उत्तरार्ध में स्वप्न में कोई सूकरयुक्त नारी किसी की बंधी हुई गर्दन को खींचे तो उसकी पर्वत पर मृत्यु होती है। स्वप्न में कोई व्यक्ति गर्दभ, सूकर, ऊँट, भेड़िया सहित रथ से दक्षिण दिशा को जावे तो शीघ्र ही उस व्यक्ति का मरण होता है। स्वप्न में दिन में घर में प्रवेश करता हुआ देखे उसका धन नाश वा मृत्यु का निर्देश होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में काले वस्त्र धारणकर काले घोड़े पर सवार होकर खिन्न ही दक्षिण दिशा की तरफ गमन करता है वह निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होता है। भयंकर विकृति वाली काली स्त्री यदि स्वप्न में उत्तर या दक्षिण दिशा की तरफ खींचे तो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने शरीर पर लता गुल्म, वृक्ष, वामी आदि का होना देखता है उसके शरीर का विनाश होता है। स्वप्न में जो व्यक्ति अपने मस्तक पर माला, बाँस, गुल्म, खजूर और हरे वृक्षों को उपजते देखता है उसकी एक सप्ताह में मृत्यु हो जाती है। यदि हृदय में वृक्षादिकों का उत्पन्न होना देखे तो उसका हृदय रोग से विनाश को प्राप्त होता है। जिस अंग में वृक्षादिकों का उत्पन्न होना स्वप्न में दिखलाई पड़ता है उसी अंग का बीमारी द्वारा विनाश हो जाता है।

3.7 तिथियों के अनुसार स्वप्नफल—

शुक्ल पक्ष–प्रतिपदा को स्वप्न देखने से विलम्ब में फल मिलता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया–इस तिथि में स्वप्न देखने से विपरीत फल मिलता है, अपने को देखने से दूसरे को और दूसरे को देखने से अपने को फल मिलता है। शुक्लपक्ष की तृतीया–इस तिथि के स्वप्न का विपरीत फल मिलता है, फल की प्राप्ति देर से होती है। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी और पंचमी इन तिथियों में स्वप्न देखने से दो महीने से लेकर दो साल तक फल मिलता है। शुक्ल पक्ष की षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नौमी, दशमी इन तिथियों में स्वप्न देखने से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है, स्वप्न सत्य निकलता है। शुक्ल पक्ष की एकादशी और द्वादशी इन तिथियों में स्वप्न देखने से विलम्ब से फल मिलता है। शुक्लपक्ष की त्रयोदशी और चतुर्दशी इन तिथियों में स्वप्न देखने से स्वप्न का फल नहीं मिलता स्वप्न मिथ्या होते हैं। पूर्णिमा तिथि के स्वप्न का फल अवश्य मिलता है।

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा–इस तिथि के स्वप्न का फल नहीं होता। कृष्ण पृक्ष की द्वितीया–इस तिथि के स्वप्न का फल विलम्ब से मिलता है। कृष्ण पक्ष की तृतीया और चतुर्थी तिथियों के स्वप्न मिथ्या होते हैं। पंचमी और षष्ठी तिथियों के स्वप्न दो माह बाद और तीन वर्ष के भीतर फल देने वाले होते हैं। कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि का स्वप्न अति शीघ्र फल देता है। अष्टमी और नौवीं का स्वप्न विपरीत फल देता है। दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी इन तिथियों के स्वप्न मिथ्या होते हैं। चतुर्दशी तिथि का स्वप्न सत्य होता है और शीघ्र फल देता है। अमावस्या इस तिथि के स्वप्न का फल मिथ्या होता है।

3.8 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-.....को स्वप्न देखने से विलम्ब में फल मिलता है।

(क) शुक्ल पक्ष-प्रतिपदा ☐
(ख) शुक्ल पक्ष-द्वितीया ☐
(ग) शुक्ल पक्ष-चतुर्थी ☐

प्रश्न 2-स्वप्न दो प्रकार के होते हैं ? ऐसा किन आचार्य ने कहा है ?

(क) आचार्य पूज्यपाद स्वामी ☐
(ख) आचार्य भद्रबाहु स्वामी ☐
(ग) आचार्य समन्तभद्र स्वामी ☐

प्रश्न 3-पापरहित मंत्र साधना द्वारा सम्पन्न स्वप्न कहलाता है-

(क) मंत्रज ☐
(ख) देव ☐
(ग) दोषज ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-वात-पित्त-कफ प्रकृति वाला व्यक्ति किस प्रकार के स्वप्न विशेष रूप से देखता है ? बताइए ।

प्रश्न 2-किस प्रकार के स्वप्न देखने का फल व्यक्ति को राजा या शासक बनना बताता है ?

प्रश्न 3-अशुभतर फलदायक स्वप्न कौन से माने गये हैं ? संक्षेप में बताइए ?

प्रश्न 4-दृष्ट-श्रुतादि नौ प्रकार के स्वप्नों में से कौन से स्वप्न शुभ और कौन से स्वप्न अशुभ फल देने वाले होते हैं ? बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-स्वप्न शास्त्र में स्वप्न प्रधान रूप से कितने प्रकार के कहे गये हैं ? उन प्रकारों के नाम बताते हुए उन्हें परिभाषित भी कीजिए ?

पाठ-4 – जैनाचार ही आयुर्वेद है

4.1 जैनधर्म सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत है और यह प्ररूपण द्वादशांगरूप में प्ररूपित किया गया है। इस प्ररूपण में विश्व का कोई भी विषय अछूता नहीं रहा है। इसमें सम्पूर्ण विषयों का सर्वांगीण निरूपण है। सम्पूर्ण श्रुतज्ञान को अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट के दो भेदों में विभजित किया गया है। सम्पूर्ण विश्व की रचना और उसके क्षेत्र व स्थानों में होने वाली क्रम प्रक्रिया का विशद् वर्णन है। अनन्त जीवों के विविध योनिस्थान, स्वरूप, रंगों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन जहाँ है, वहां इनके प्राकृतिक परिवर्तन तथा हलन–चलन रूप क्रिया कलापों का भी विशद विवेचन है। प्रत्येक वस्तु का गुण, अवगुण, परिपाक, विपाक और उससे होने वाले प्रभाव को भी खुलासा किया गया है। उसी के आधार पर जैनाचार्यों ने दर्शन, कला, काव्य, ज्योतिष व वैद्यक, व्याकरणादि सभी विषयों पर अपने महान ज्ञानानुभव के आधार पर अनेक ग्रंथों की रचना की है। 11 अंग और 14 पूर्वों के अन्तर्गत सभी विषय आ जाते हैं। दुर्भाग्य से कहिये या हमारे प्रमाद के कारण इन अंग और पूर्वों के ज्ञान के आधार पर परम्परागत आचार्यों द्वारा रचित नानाविध विषयों पर ग्रंथ थे उनमें से अनेक शास्त्र या तो दीमकों ने भक्षण कर लिये हैं या धर्मान्ध द्वेषियों ने उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर अग्नि में समर्पित कर दिये। इसी कारण वे महान ग्रंथ आज हमें दृष्टिगोचर नहीं हैं, किन्तु जो कुछ हमारे समक्ष हैं उनके वाचन से हमें उन आचार्यों की सर्वतोमुखी प्रतिभा का और उनके अगाध ज्ञान का परिचय अवश्य होता है। जैनाचार्यों द्वारा रचित कुछ ग्रंथों को छोड़कर वैद्यक ग्रंथ आज हमें उपलब्ध नहीं हैं तथापि उपलब्ध आयुर्वेदीय ग्रंथों का अवलोकन करते हैं तो आयुर्वेद शब्द की व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ इस प्रकार है–"**आयुरस्मिन् विद्यते अनने वा आयुः विदंति इत्यायुर्वेदः**" इससे सिद्ध होता है कि आयुर्वेद आयु–जीवन का शास्त्र है। अतः आयु का संरक्षण जिससे हो वही आयुर्वेद है। वर्तमान आयु के अन्त तक पूर्ण स्वस्थता ही आरोग्य है। स्वस्थता के विरोधी रोग हैं। व्याधि रोग का पर्यायवाची शब्द है।

4.2 शरीर में व्याधियाँ चार प्रकार की मानी गई हैं—

1. वातज, 2. पित्तज, 3. कफज, 4. संसर्गज।

वातोत्पादक पदार्थों का सेवन वातज व्याधियों का जनक है, पित्तज पदार्थों के सेवन से पित्तप्रधान व्याधियाँ होती हैं तथा कफोत्पादक वस्तुओं का सेवन कफज व्याधियों को उत्पन्न करता है। एक–दूसरे के संसर्ग से होने वाली व्याधियाँ संसर्गज कहलाती हैं। संसर्गज व्याधियों में शीतला, मोतीज्वर, राजयक्ष्मा (टी. बी.) उपदंश आदि को लिया जा सकता है। प्रकृति ने अनेक भोज्य पदार्थ उत्पन्न किये हैं जैसे–अन्न, विविध फल, विविध शाक, पत्र–पुष्पादि ये सब अपने–अपने समय पर सर्वत्र उत्पन्न होते रहते हैं। ये नानाविध खाद्य पदार्थ विभिन्न प्रकार की व्याधियों से मुक्त कराने की शक्ति से युक्त हैं इनमें अपूर्व शक्ति है, जिनके सेवन से ही विविध रोग शान्त हो सकते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं जिनके सेवन से नानाविध रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए विवेकियों ने–मनीषियों ने विवेक से काम लेने को कहा। जैसे—बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर ये पंच उदुम्बर फल कहलाते हैं। इनमें अनेक जीव हैं जो चलते–फिरते दिखाई देते हैं तो फिर इनके खाने से शरीर कैसे स्वस्थ रह सकता है। कुछ शाक आदि ऐसे हैं जिनमें चलते फिरते जीव तो नहीं दिखाई देते हैं, किन्तु अनेक निगोदिया जीवों का पिण्ड स्वरूप ही है, जैसे आलू, शकरकन्दी आदि जमीकन्द। उनके भक्षण करने से भी बुद्धि में प्रमाद, भारीपन और मन्दता आ जाती है साथ विष्टम्भ तो होता ही है।

4.3 मद्य, मांस और मधु तो प्रत्यक्ष ही घृणास्पद, मदकारक व हिंसा जन्य है—

ये बुद्धि को विपरीत व कुण्ठित करने वाले हैं तथा क्रूरता उत्पन्न करने वाले हैं। ये पदार्थ मन व मस्तिष्क में क्षोभ उत्पन्न करते हैं, हेयोपादेय के बोध से रहित करते हैं। ये पदार्थ स्वयं ही अभक्ष्य हैं इनको भक्षण करने वाला अन्य भी अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने में संकोच नहीं करता है। जैन–चिकित्सा पद्धति में भी इनका प्रयोग निषिद्ध माना गया

है और कल्याणकारक ग्रंथ में चिकित्सा करने में भी इनको ग्राह्य नहीं माना है। अतः यह तो निर्बाध सिद्ध है कि आयुर्वेद और जैनाचार का बड़ा निकटतम सम्बन्ध रहा है। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जैनधर्म के अनुयायियों को जिन प्रारम्भिक नियमों का पालन करने को कहा है उनके अतिरिक्त सद्गृहस्थ और साधु पुरुषों की जो भी दिनचर्या शास्त्रों में कही गई जिनमें आहारचर्या की प्रमुखता है, का बड़ा वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखा गया है। जैन धर्मानुसार विहित नियमोपनियम धार्मिकता के साथ–साथ स्वास्थ्य रक्षा में ही अत्यन्त सहायक साधन हैं।

जैनसाधु 24 घण्टे में सूर्योदय के कम से कम 72 मिनट पश्चात् और सूर्यास्त से कम से कम 72 मिनट पूर्व दिन में एक बार आहार ग्रहण करते हैं। दूसरी बार पानी भी नहीं लेते। अतः आंतों को भोजन पचाने के लिए समय अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त गरिष्ट, अमर्यादित व कंद मूलादि, प्रमाद बढ़ाने वाले पदार्थ, अनिष्टकारक व अनुपसेव्य पदार्थों का वे प्रयोग नहीं करते। सात्त्विक भोजन करते हैं और यथावसर अनशन, अवमौदर्य, रस परित्याग आदि तपों को भी करते हैं, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में भी बहुत सहयोग मिलता है और अहिंसा प्रधान धर्म का भी परिपालन होता है। समय–समय पर विभिन्न रसों का परित्याग वे करते रहते हैं जिससे जब जैसे रस की आवश्यकता शरीर को होती है, वह उसे मिलता है और जिसकी आवश्यकता नहीं होती उसका सेवन भी बच जाता है, क्योंकि बदलते हुए आहार में वे प्रायः रसों का परिवर्तन करते रहते हैं।

साधुचर्या में प्रासुक (गर्म) पानी के सेवन की ही प्रमुखता है अतः स्वास्थ्य की रक्षा में गर्म पानी का भी योगदान मिलता रहता है। आयुर्वेद में भी प्रायः सामान्य रोगों की चिकित्सा तो आहार (खान–पान) शुद्धि से ही हो जाया करती है।

4.4 चिकित्सा क्षेत्र में पथ्या पथ्य आहार–विहार का महत्त्वपूर्ण स्थान है—

पथ्य रूप आहार–विहार ही अनेक रोगों का चिकित्सक है। कहा भी है—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
अपथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।।

अर्थात् पथ्य पूर्वक रहा जावे तो औषध सेवन की क्या आवश्यकता है और अपथ्यपूर्वक रहने वालों को औषधि का सेवन क्या कार्यकारी होगा ? अपथ्य सेवन से रोगोत्पत्ति होती है। इस प्रकार जैनाचार आयुर्वेद ही है। यदि ऐसा भी कह दिया जावे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आयुर्वेद भी उपवास, भूख से कम खाने, खट्टे रसों के सेव के त्याग पर बल देता है। आयुर्वेद में चलित रसीय पदार्थों का सेवन भी वर्जित है, व्याधिकारक पदार्थों को भी नहीं खाने का आग्रह किया गया है। बिना छना पानी भी वर्जित है। उष्ण किये गये पानी का सेवन करना स्थान–स्थान पर कहा गया है।

संसार में इस समय अनेक प्रकार की भयंकर बीमारियाँ चल रही हैं उनसे बचने के लिए ही सही हमें जैनाचार को अपने जीवन में स्थान देना चाहिए। उसके अनुसार हमारे खान–पान, रहन–सहन का ढंग संयमित होता है और हम भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखते हैं तो स्वस्थ रह सकते हैं।

4.5 आयुर्वेद और जैनाचार—

आयुर्वेद या जीवन विज्ञान विश्व के उन महत्त्वपूर्ण विषयों में से एक है जिसके सिद्धान्तों, उपयोगिता व अनिवार्यता से विश्व के सभी लोग सहमत हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा अनुसंधान के अनुरूप इस विषय की विवेचन प्रणाली में यथा समय परिवर्तन होते रहना स्वाभाविक है। आयुर्वेद विश्व का प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान हैं (जिसका उद्गम भारत वर्ष में हुआ है। शेष प्रचलित चिकित्सा शास्त्र (एलोपेथी, यूनानी, होमियोपैथी इत्यादि) इसके अंग कहे जा सकते हैं। इस तथ्य को विश्व के सभी ऐतिहासिकों ने स्वीकार किया है। वर्तमान युग में कुछ नवीन भौतिक व वैज्ञानिक तथ्यों

का सामने आना व उसके प्रकाश में आयुर्विज्ञान में भी नवीनता का आभास अस्वाभाविक नहीं, किन्तु ये सब तथ्य उसी परिधि के अन्दर परिलक्षित होते हैं जिसकी नीव दिव्य ज्ञानधारी विवेचकों ने डाली थी।

आयुर्वेद भारतीय आगम का एक मुख्य अंग है। जिसका मूल स्रोत जैनागम के अनुसार चौदह पूर्वों में से 'प्राणिवाद' नामक पूर्व है। जो त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ की वाणी है। इसी पक्ष को अन्य भारतीय आगमों में आयुर्वेद को अथर्ववेद के उपांगरूप में स्वीकार किया है। वहां पर वेदों को अपौरुषेय माना गया है। इन दोनों मान्यताओं का उद्देश्य समान है। वह है इसकी प्रामाणिकता। आप्त वाक्यों को सभी जगह सदेहातीत माना है। आप्तोपदेश का अंश ही आयुर्वेद है। आयुर्वेद एक शाश्वत जीवन शास्त्र है। भले ही इसके उद्गम का इतिहास ४–५ हजार वर्ष से अधिक पुराने उपलब्ध साहित्य के आधार पर न मिलता हो, किन्तु इस ऐतिहासिक धारणा का खण्डन आयुर्वेद शब्द की निरुक्ति एवं अर्थ से ही हो जाता है।

4.5.1 आयुषो वेदः आयुर्वेद—

अर्थात् आयु–जीवन या जिन्दगी का जो वेद या शास्त्र है उसे आयुर्वेद कहते हैं। भारतीय शब्द शास्त्रज्ञों ने अनेक निरूक्त्यर्थों द्वारा इसी तथ्य को प्रमाणित किया है। आयु और अनेकार्थक विद्‌ल धातु से आयुर्वेद शब्द बना है। आयुर्वेद शास्त्र की प्राचीनतम आर्य संहिता सुश्रुत में आयुर्वेद शब्द की कितनी व्यापक विशद निरूक्ति की है सो माननीय है। तथाही–

(1) आयुरस्मिन् विद्यते, अनेनवा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः।

(2) आयुः शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्मसंयोग :, तदस्मिन्नायुर्वेदे विद्यते अस्तीत्यायुर्वेदः।

(3) आयुर्विद्यते ज्ञायते अनेनेत्यायुर्वेदः।

(4) आयुर्विद्यते, विचार्यते अनेन वेत्यायुर्वेदः।

(5) आयुरनेन विन्दति प्राप्तोतीत्यायुर्वेदः।

अर्थात् इसमें आयु रहती है अथवा इसके द्वारा आयु जानी जाती है अथवा इसके द्वारा आयु के विषय में विचार ऊहापोह किया जाता है अथवा इसके द्वारा आयु को प्राप्त किया जाता है। इसलिये इसे आयुर्वेद कहते हैं। आयु का अर्थ होता है शरीर इन्द्रियाँ मन और आत्मा इनका संयोग। अर्थात् शरीर इन्द्रिय आत्मा और मन का जब तक सम्बन्ध रहता है उसे आयु कहते हैं। इस आयु का सर्वतोमुखी विवेचन जिस शास्त्र में है, वह आयुर्वेद है। आयुर्वेद की दूसरी और प्राचीनतम संहिता चरक में भी आयु शब्द का और भी व्यापक विवेचन किया है। तथाहि–

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।। च. सू. अ १

जीव का हित, अहित, सुख और दुख इसका नाम आयु है। इस आयु के लिये पथ्य (हितकर) अपथ्य (अहितकर) और आयु के परिमाण (स्थिति काल) का विवेचन जिस शास्त्र में है उसे आयुर्वेद कहते हैं। अन्यच्च–

शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्म संयोगो धारिजीवितम्।
नित्यगश्चान बन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते।। च. सू. अ. १

शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा इनके संयोग का नाम आयु है। नित्यग, अनुबंध, ये आयु के पर्यायवाची शब्द हैं। इसका सीधा अर्थ हुआ कि जबसे शरीरादि का सम्बन्ध है और जब तक रहेगा तब तक के अपरिमेय काल का नाम आयु है। इस असीम आयु के हिताहित का विशद विश्लेषण करने वाला शास्त्र ही आयुर्वेद है।

वर्तमान आयुर्वेद का आधार चरक संहिता के तात्त्विक विश्लेषण से वैशेषिक दर्शन, और सुश्रुत संहिता की विवेचन शैली व दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुरूप सांख्य दर्शन हैं ये दोनों दर्शन आत्मा या जीव की अनादिता व नित्यत्व

को स्वीकार करते हैं। जैनदर्शन ने जीव का यह स्वरूप सापेक्ष दृष्टिकोण से मान्य किया है। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण से जीव अनादि व अनन्त है। इसलिये उसका प्रतिपादक साहित्य व उसका मौलिक अस्तित्व भी अनादि है। इसके समर्थक प्रमाणों, उद्धरणों से आयुर्वेदागम भरा पड़ा है। आयुर्वेद की उक्त परिभाषा के अन्तर्गत अनादि–अनिधन जीव के जन्म से लेकर तद्भव मरण पर्यन्त ही नहीं, अपितु असंख्य भव भवान्तरों तक उसके हिताहित के विवेचन के उत्तरदायित्व का भार और अंतगोगत्वा मुक्ति तक पहुँचा देने का उत्तरदायित्व भी आयुर्वेद का है। इसलिये अन्य शास्त्रों की तुलना में इसका महत्त्व कम नहीं है।

4.5.2 जैनागम में आयुर्वेद साहित्य—

जैनागम में आयुर्वेद साहित्य इस समय यद्यपि प्रचुर रूप में उपलब्ध नहीं होता है, किन्तु प्राचीन काल में अन्य साहित्य की भाँति इस विषय पर भी जैनाचार्यों ने पर्याप्त लिखा है। श्री उग्रादित्याचार्य (लगभग ११ वीं शताब्दी) कृत और पं. श्री वर्द्धमान पार्श्वनाथजी शास्त्री द्वारा संपादित 'कल्याणकारक' नामक ग्रंथ ही एक मात्र जैनायुर्वेद का प्रतीक है, किन्तु इसके अलावा भी विशाल साहित्य जैनायुर्वेद का रहा है यह निर्विवाद है। जैन सिद्धान्त के सुप्रसिद्ध आचार्य पूज्यपाद ने भी आयुर्वेद पर कई ग्रंथ लिखे हैं। पूज्यपाद आचार्य के अनेक योग तो अपने मूल रूप में अजैनाचार्यों द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक ग्रंथों में मिलते हैं। ऐसे योगों के अन्त में पूज्यपाद स्वामी का नाम अंकित रहता है। श्वेताम्बर जैनाचार्यों द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक साहित्य का पर्याप्त उल्लेख भी मिलता है। जैनाचार्यो के आयुर्वेदिक ग्रंथों में जैन सिद्धान्तों की छाप स्पष्टतया रहती है। जैनाचार का प्राण अहिंसा सिद्धान्त का इसमें पूर्णतया संरक्षण किया है।

4.6 आयुर्वेद का उद्देश्य—

आयुर्वेद का उद्देश्य व्याधिग्रस्त लोगों की व्याधि दूर करना और स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना है तथाहि–"**इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनम् व्याध्युपस्टष्टानां व्याधि परिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च सुश्रुत**" अर्थात् रोगग्रस्त को रोग से मुक्त करना और स्वस्थ जीव की रक्षा करना आयुर्वेद का उद्देश्य है। यहां पर व्याधि शब्द दूषित हुए वातादि दोष जन्य ज्वरादि शारीरिक रोगों, और संसार परम्परा के जनक रागद्वेष क्रोधादि मानसिक विकारों का बोधक है। इन दोनों प्रकार के रोगों को दूर करना न केवल भौतिक खान–पान और प्रवृत्ति निवृत्ति पर निर्भर है, अपितु वैचारिक शुभ शुद्ध समीचीन प्रवृत्ति की भी अपेक्षा रखता है। इस दिशा में जैनाचार को महत्त्व देना अनिवार्य है। आचार शब्द का व्यापक अर्थ इस क्षेत्र में आचार्यों ने स्वीकार किया है। "**आ समन्तात् चरणमाचारः**" अर्थात् व्यक्ति का जो अन्तरंग और बहिरंग समीचीन क्रिया कलाप होता है उसे आचार कहा है। व्रत, नियम, उपवास सामायिक, संध्यावंदन आदि सभी धार्मिक नियमों व क्रियाओं का समावेश इसमें हो जाता है। यह सबका सब आचार–विचार आयुर्वेद के सदवृत्त (सदाचार) में भी है। यही शुभ प्रवृत्ति उत्कर्ष करती हुई जब अभ्यासवश निवृत्ति का रूप धारण कर लेती है और इसके मूल नायक जीव की अपने गन्तव्य चरम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करा देती है तभी यह आचार अपने सही रूप में चरितार्थ होता है। आयुर्वेद भी इसी लक्ष्य (लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय) की प्राप्ति में फलितार्थ होता है। अपने कथन के प्रमाण में आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अन्यतम आचार्य, वाग्भट संहिता के लेखक वाग्भट का निम्न श्लोक ही पर्याप्त होगा।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।। (वाग्भट सू.)

जिस व्यक्ति के वात–पित्त–कफ दोष समान है, रस रक्तादि धातुओं का निर्माण व मल मूत्र का विसर्जन स्वाभाविक रूप में होता है, तथा मन इन्द्रियाँ और आत्मा प्रसन्न है वह स्वस्थ है। यहाँ संसारावस्था में मन और आत्मा

की प्रसन्नता न केवल इच्छानुरूप आहार पर निर्भर है, अपितु आकुलता के उत्पादक रागद्वेषादि दोषों की कमी व अभाव की अपेक्षा रखती है। फिर आत्मा की आत्यन्तिक प्रसन्नता तो और उसके नायक जीव का नाम स्वस्थ है। **''स्वे आत्मनि तिष्ठतीति स्वस्थः।''** स्पष्ट है कि जैनाचार का आयुर्वेद से अंगांगिभाव सम्बन्ध है। इसका समर्थन आयुर्वेद के प्रसिद्ध जैनेतर ग्रंथ सुश्रुत में भी मिलता है। यथा—

तद् दुख संयोगो व्याध्य उच्यन्ते। ते चतुर्विधा–आगन्तवः, शारीराः मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति। तेषामागन्तवोभि–घातनिमित्ता। शारीरा स्त्वन्तपान मूला वातपित्तकफशोणितसन्निपात वैषम्यनिमित्ता। मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतयः इच्छाद्वेष भेदैर्भवन्ति। स्वाभाविकास्तु क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्रा प्रभुतयः।।

4.7 दुःखों के संयोग का नाम व्याधि है वे चार प्रकार की होती हैं—

(1) आगंतुक (अभिघात चोट, अभिषंग अभिचार से पैदा होने वाली) (2) शारीरिक–ज्वर रक्तपित्त आदि (3) मानसिक क्रोध, लोभ, हर्ष ईर्ष्या आदि। (4) स्वाभाविक–भूख, प्यास, बुढ़ापा, नींद, मृत्यु आदि इन्हें दूर करना आयुर्वेद का लक्ष्य है। यही उद्देश्य जैनाचार का भी है। अतः यह स्पष्ट है कि जैनाचार बिना आयुर्वेद अधुरा है। जहाँ तक आहार व औषध के रूप में मद्य मांस, मधु, के सेवन का प्रतिपादन और तन्निमित्त मात्र हिंसा के समर्थन का प्रश्न है, वह आयुर्वेद के प्रणेता आचार्यों के निजी दर्शन व संप्रदाय का है। जिससे बचा नहीं जा सकता। दार्शनिक क्षेत्र के विवाद की तरह आयुर्वेदिक क्षेत्र में इतना मतवैषम्य आश्चर्यजनक और अस्वाभाविक नहीं। आयुर्वेद और जैनाचार की प्रवृत्ति व उद्देश्य समान हैं। इसमें दो मत नहीं हो सकते। जैनायुर्वेदिक ग्रंथ 'कल्याण कारक' में भी स्वास्थ्य का विश्लेषण इसी प्रकार किया है। तथाहि–

अथेह भव्यस्य नरस्य साम्प्रतं, द्विधैव तत्स्वास्थ्य मुदाहृतं जिनैः।
प्रधानमाद्यं परमार्थमित्यतो, द्वितीय मन्यद् व्यवहार सम्भवम्।।

अर्थात् परमार्थ स्वास्थ्य (आध्यात्मिक स्वास्थ्य) और व्यवहार स्वास्थ्य (शारीरिक स्वास्थ्य) के भेद से स्वास्थ्य दो प्रकार का जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। इन दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों की सिद्धि सम्यगाचार विचार व व्यवहार से ही हो सकती है। यह सर्व सम्मत राय है।

4.8 आयुर्वेद के नियम व जैनाचार संहिता में साम्यता—

उपलब्ध आयुर्वेद संहिताओं के स्वस्थ वृत्त या स्वास्थ्य के नियमों का परिशीलन या पठन करते समय इसमें व धर्म के अंगभूत आचारशास्त्र के नियमोपनियमों में भेद कर सकना मुश्किल है। जैन गृहस्थाचार, जिसका मूल सप्तव्यसन का त्याग और श्रावक के १२ व्रत (पंचाणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और ३ गुणव्रत) हैं, इनका इसी नाम से उल्लेख यद्यपि स्वास्थ्य संरक्षक या स्वास्थ्यप्रद आयुर्वेदिक आचार में नहीं है, किन्तु वे वही हैं, केवल नाम मात्र का अन्तर है, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। जैनाचार में जिस प्रकार ऐहिलौकिक सुख सामग्री व अभ्युदय प्राप्त करने का, उनके भोग करने का सीमित विधान है और आध्यात्मिक आत्यान्तिक सुख (मोक्ष) को मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य माना है बिल्कुल यही स्थिति आयुर्वेदाचार में भी है। उदाहरण के तौर पर सुप्रसिद्ध आयुर्वेद ग्रंथ 'वाग्भट' और 'चरक संहिता' के कुछ उद्धरण यहां दिये जाते हैं।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वा प्रवृत्तयः।
सुखं च न बिना धर्मात्तस्माद्धर्म वरोभवेत्।।

हिंसास्तेयान्यथा कामं मैथुन्यं परूषानृते।
संभिन्नालाप व्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम्।।
पापं कर्मेतिदशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत्।
अवृत्ति व्याधिशोकार्तमनुवर्तेत शक्तितः।।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम्।
संपद्धिपत्स्वेकमना हेतावोर्ष्येत्फलेन तु।।
कालेहितं मितं ब्रूयादविस्म्वादिमपेशलम्।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम्।।
आर्द्रसंतानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः।
स्वार्थबुद्धि परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्वृतम्।।
नक्तं दिनानि मे यान्ति कथं भूतस्य सम्प्रति।
दुःखभाग् न भवत्येवं नित्यं सन्निहित स्मृतिः।।
इत्याचारः समासेन यं प्राप्तोति समाचरन्।
आयुरारोग्यमैश्वर्य यशोलोकांश्च शाश्वतान्।। (वाग्भट सूत्रस्थान)

प्राचीनतम चरक संहिता का यही प्रकरण पढ़ते समय यही कल्पना होती है कि यह सद्वृत्त किसी जैनाचार ग्रंथ का है। गृहस्थ के १२ व्रतों का मूलरूप एवं उनके अतिचार का प्रायः समस्त वर्णन इसमें है। इसके अलावा और जैनाचार क्या है ? रही मोक्ष की बात सो आयुर्वेद शास्त्र में भी अन्ततोगत्वा लक्ष्य यही रखा गया है, क्योंकि इसकी नींव वैशेषिक व सांख्य दर्शन पर है जो परम आस्तिक व आत्मा की नित्यता के पोषक हैं। आत्मा की चरम शुद्ध अवस्था भी वे स्वीकार करते हैं। देखिये चरक के सद्वृत्त का कुछ अंश जो मूलतः जैनाचार से मेल खाता है–

नानृतं ब्रूयात। नान्यस्वमाददीत। नान्यस्त्रिभिलेषेत्। नान्यश्रियम्। न कुर्यात्पापम्। नान्यदोषान्ब्रूयाद्। नान्यरहस्यआगममयेत्। न भूमिं त्विलिखेत। न छिन्दयात्तृणम्। न लोष्टं मृन्दीयात्। न नियमं भिन्द्यात्। न मद्यद्यूतवेश्याप्रसंगरूचीः स्यात्। नैकः सुखी। नेन्द्रिय वशगः स्यात्। ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्री कारुण्यहर्षोपेक्षा प्रशमपरश्च स्यात्। (चरक अ. 8)

ऊपर के आयुर्वेदिक उद्धरणों की भाषा व अर्थ बहुत सरल है। अतएव उसका हिन्दी अनुवाद न कर इतना संकेत मात्र पर्याप्त होगा कि यह सारा वर्णन जैनाचार का ही अंग है। अहिंसादिक पांच अणुव्रतों का सैद्धान्तिक विश्लेषण, अनर्थदण्डव्रत व उसके भेदों का अविकल स्वरूप, और औषधादिक चारों दानों की उपादेयता, नैक : सुखी स्यात् के रूप में जैनदर्शन के अन्यतम स्तंभ 'अपिरग्रहवाद' को गागर में सागर के रूप में भर दिया है। नेन्द्रिय वशगः स्यात् कहकर समग्र इन्द्रिय संयम, 'आत्मवत्सससततं पश्येदपि कीट पिपीलिकाम्' का निर्देशकर समूचा प्राणि संयम बता दिया है। 'हिंसास्तेयान्यथाकामं मैथुन्ये परुषानृते सम्भिन्नालाप व्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम्।'' पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैत्यजेत्'। इनमें जैनाचार के सभी पाप कर्मों का त्याग और इनके विपरीत उत्तम क्षमादिक दश धर्मों के मन, वचन, काय से पालन करने का स्पष्ट निर्देश है। 'सर्वधर्मेषु, मध्यमांगति अनुयायात्' यह संकेत जैनदर्शन की रीढ़ अनेकांतवाद एवं स्यादवाद को स्वीकार करने का आदेश देता है। सारांश यह है कि आयुर्वेद न केवल चिकित्सा प्रणाली या पैथी मात्र है अपितु जीवन विज्ञान है। जीव के हितावह तथ्यों को स्वीकार और अहितकर दुष्कृत्यों का त्याग किये बिना वह ठहर नहीं सकता। आयुर्वेद में ऐसी बातों को सद्वृत्त–स्वस्थ वृत्त कहा है। जबकि किसी धार्मिक क्षेत्र में इसे आचार संज्ञा दी गई है।

जैनसिद्धान्त की भाँति आयुर्वेद का भी अन्तिम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है। यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है। इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप चरकसंहिता का निम्न पद्य देखिये और उसकी तुलना, जैनाचार्यवादीभसिंह की आत्म कल्याण की भावना से करिये। कितना साम्य दोनों में है। **नक्तं दिनानि में यांति कथंभूतस्य सम्प्रति। दुःखभाग् न भवत्येवं नित्यं सन्निहित स्मृतिः।।**

इत्याचारः समासेन यंप्राप्नोति समाचरन्।
आयुरारोग्यमैश्वर्य यशोलाभांश्च शाश्वतान्।। (चरक सूत्र)
को हं कीदृग्गुणः क्वत्यः किं प्राप्यः किं निमित्तकः।
इत्यूहः प्रत्यहं नो चेदस्थानेहि मतिर्भवेत्।। (क्षत्रचूड़ामणि)

आयुर्वेद कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने दिन रात के कर्मों का लेखा प्रतिदिन करना चाहिये। ऐसा करने से वह पाप कर्मों से बचकर पुण्य कमों एवं आत्म कल्याण के मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है। "जैनाचार्य वादीभसिंह" भी यही कहते हैं "मैं कौन हूँ, मेरे गुण क्या हैं ? कहां रहा हूँ ? क्या मेरा लक्ष्य है ? मेरी यह अवस्था और लक्ष्य किम्निमित्तक है ? इस प्रकार विचार विमर्श यदि जीव प्रतिदिन नहीं करता है तो वह अपने लक्ष्य से भ्रष्ट होकर दुर्गति को प्राप्त होता है।" महानुभाव ! बताइये क्या अन्तर है दोनों के तत्त्व विश्लेषण में ? कुछ नहीं।

जैन धर्मानुयायी प्रत्येक विवेकशील पुरुष भगवान से प्रार्थना करता है, कामना करता है कि भगवान मेरी प्रवृत्तियां भावना कैसी रहे। मेरी भावना के रूप में विस्तार से और निम्न श्लोक के रूप में अति संक्षेप से हर एक जैनी इसे जानता है। आयुर्वेद और उसके पंडित लोग (वैद्य) इसी भावना के पोषक होते हैं। यह केवल शब्द भेद रखने वाले दोनों पक्षों के नीचे लिख दो पद्यों से सुस्पष्ट हो जाता है।

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषुजीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावो विपरीत वृत्तौ सदा ममात्मा विदधातुदेव।।
मैत्री कारूण्यमार्तेषु शक्ये प्रतिरूपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यबुद्धिश्चश्युर्विधा।। (चरक)

सब प्राणियों से मैत्री भाव, गुणीजनों में आदरभाव और प्रमोद, दुःखीजनों के प्रति दयाभाव और अपने विरोधियों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिये। आयुर्वेद भी यही कहता है। सर्व पुरुषों के प्रति मित्रता, रोग ग्रस्त जीवों के प्रति करुणाभाव (दुःख दूर करने की भावना) साध्य रोग या रोगी के प्रति उत्साह अथवा रुचि और असाध्य रोगियों के प्रति उपेक्षाभाव वैद्य के होना चाहिये।

संक्षेप में संसार के समग्र दुःख–सुख के मूल कारण की और आयुर्वेद सम्बन्धी महर्षि चरक की मान्यता के द्योतक तथा प्रसिद्ध आचार्य वाग्भट के सार्वदेशिक स्वास्थ्य के प्ररूपक उद्धरणों को यहाँ दिया जा रहा है—

समग्रं दुःखमायतमविज्ञाने द्वयात्रयम्।
सुखं समग्रं विज्ञाने विमले च प्रतिष्ठितम्।। (चरक)

संसार के सभी प्रकार के मानसिक व शारीरिक रोगों का मूल स्रोत अज्ञान है। जबकि सभी प्रकार के सुखों का उद्गम मनुष्य का निर्मल ज्ञान या विवेक है। इन दुःखों को दूर करने और सुखों को प्राप्त करने हेतु व्यक्ति को विवेकशील होकर सदाचारी बनना अनिवार्य है। समूचे जैनाचार का उपसंहार आचार्य वाग्भट कितने सुन्दर संक्षिप्त शब्दों में करते हैं।

आर्द्र सन्तानता (सर्वसत्वेषुकृपालुत्वम्) त्यागः कायवाक्चेतसां दमः।
स्वार्थबुद्धि परर्थेषु पर्याप्तमिति सद्वृतम्।।

संसार के समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव (अनुकम्पा) अनावश्यक परिग्रह का त्याग, मन वचन काय पर सुशासन। दूसरे के प्रति आत्मसद्भावना, इतना ही सदाचार का स्वरूप है। अतः स्पष्ट है कि कि सार्वत्रिक पाये जाने वाले मत वैषम्य के तुल्य आयुर्वेद व जैनाचार में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के कारण आंशिक मत वैचित्र्य होते हुए भी उनके समोद्देश्य व भावना मूलक पवित्र सम्बन्ध से इंकार नहीं किया जा सकता। वे परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं।

4.9 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-बड़, पीपल, ऊमरादि ये सब क्या हैं ?

(क) उदुम्बर फल ☐
(ख) मकार ☐
(ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 2-स्वस्थता के विरोधी कौन हैं ?

(क) रोग ☐
(ख) व्याधि ☐
(ग) ये दोनों ☐

प्रश्न 3-आयु का पर्यायवाची शब्द है-

(क) शरीर ☐
(ख) अनुबंध ☐
(ग) आत्मा ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-शरीर में कितने प्रकार की व्याधियाँ मानी गयी हैं ? उनका नाम बताते हुए उन्हें परिभाषित भी कीजिए ?

प्रश्न 2-आयुर्वेद का क्या उद्देश्य है ? संक्षेप में समझाइए ।

प्रश्न 3-"जैन सिद्धान्त की भांति आयुर्वेद का भी अंतिम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है" इस पंक्ति को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 4-जैन साधु का आहार ग्रहण करने का क्या समय रहता है ? बताइए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-आयुर्वेद क्या है ? आयुर्वेद और जैनाचार में क्या-क्या समानताएँ पायी जाती हैं ? बताइए?

पाठ-5 – कल्याणकारक ग्रंथ में वर्णित प्रासुक चिकित्सा विधि

5.1 जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव हैं। इनका उल्लेख वेदों में भी प्राप्त होता है तो भी जैन धर्म हिन्दु धर्म से अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण पृथक् है और है अति प्राचीन। जैनधर्म की अपनी सबसे बड़ी विशेषता है समन्वयात्मक (अनेकान्तात्मक) मार्ग का निर्देश करना। प्रस्तुत 'कल्याणकारक' चिकित्साग्रंथ भी इसी सारिणी का अनुसरण करता है। ऋषभदेव से प्रारम्भ होकर वर्धमान तक चिकित्सा की जैन वैद्यक परम्परा रही है, किन्तु इस कालखण्ड का कोई प्रामाणिक साहित्य प्राप्त नहीं होता है। तदुपरान्त का जो जैन साहित्य मिलता है उसमें चिकित्साग्रंथ विरल मिलते हैं।

जैन वैद्यक परम्परा आयुर्वेद से विचारधारा में बहुत अधिक भिन्न नहीं है, तथापि अपनी धार्मिक पृष्ठभूमि के कारण कुछ भिन्न सी प्रतीत होती है। जैन वैद्यक विचारकों ने वाग्भट्ट के समान चरकसुश्रुत आदि के विचारों को समुचित आदर प्रदान किया है और वाग्भट्ट को बौद्ध वैद्यक परम्परा का अनुगामी माना है। ठीक इसी प्रकार कल्याणकारक के रचयिता आचार्य उग्रादित्य ने किया है। यद्यपि उन्होंने ऐसा कहीं भी स्वीकार तो नहीं किया है, उन्होंने आयुर्वेदावतरण भिन्न प्रकार से माना है, तथापि जैन वैद्यक की परम्परा में बहुत से उपयोगी चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्त हैं यह सिद्ध हो जाता है। कल्याणकारक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म का दर्शन, विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र पर कैसे प्रभाव होता है, यह ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है। अनेक विचार–धाराओं के मध्य में रहते हुए उनसे तालमेल रखते हुए अपना अस्तित्त्व बनाना महत्त्वपूर्ण है।

कल्याणकारक चिकित्साग्रंथ के रचयिता आचार्य उग्रादित्य थे। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध है कि यह एक जैन आचार्य थे और राष्ट्रकूट वंशी राजा अमोघवर्ष प्रथम तथा चालुक्य वंशी राजा कालि–विष्णुवर्धन पंचम के काल में थे, जिनका समय ईस्वी की 9वीं शताब्दि है। उग्रादित्य के गुरु श्रीनन्दि थे जो 'प्राणावाय विज्ञान' के विद्वान थे उन्हीं से इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान ग्रहण किया था। कल्याणकारक में अनेकों आचार्यों के नामों का उल्लेख मिलता है जो जैन वैद्यक परम्परा में हैं, उन्होंने अलग–अलग चिकित्सा की शाखाओं पर ग्रंथ लिखे हैं।

महर्षि पूज्यपाद	शलाक्य तंत्र (Diseases of Eye, Nose & Throat)
पात्र केसरी स्वामी	शल्य तंत्र (Surgery)
सिद्धसेन भगवान	अगद तंत्र एवं भूत विद्या (Toxicology)
दशरथ मुनीश्वर	काय चिकित्सा (Medicine)
मेघनादाचार्य	कौमार भृत्य (Children diseases)
सिंहनाद मुनीन्द्र	वाजीकरण और रसायन तंत्र

समन्तभद्राचार्य ने अष्टांग आयुर्वेद पर विस्तार से ग्रंथ रचना की है। कल्याणकारक में उन्हीं का संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया गया है। इनमें से उग्रादित्याचार्य के कल्याणकारक वैद्यकग्रंथ के अतिरिक्त कोई भी प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

5.2 कल्याणकारक के महत्त्वपूर्ण चिकित्सा सिद्धान्त—

जैनधर्म के जीव एवं सृष्टि के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा उग्रादित्य ने अपने ग्रंथ में की है। कर्म से जीव का जन्म तथा व्याधि की उत्पत्ति होती है। अन्य कारण जिनसे व्याधि उत्पन्न होती है गौण माने हैं जिनमें दोष तथा अभिघात हेतु होता है। रोगों की उत्पत्ति के लिए शरीर के विकृत दोष उत्तरदायी हैं। महारोगों में वे शीघ्र प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। जबकि अन्य रोगों में मन्दगति से अपना प्रभाव दिखाते हैं, इसका कारण स्वभाव तथा कर्म माना है।

प्रकुपित दोष शरीर में प्रसरित होते हैं, उनके अनेक प्रकार हैं। 15 प्रकारों का वर्णन कल्याणकारक में किया गया है, जिसके अनुसार तीन दोष तथा रक्त मिलकर इस प्रकार के भेद बनते हैं। यह एक आयुर्वेद सम्मत सिद्धान्त है। तीन दोष के सिद्धान्त को मान्य करता हुआ लेखक रक्त को भी दोष की श्रेणी में लाने का प्रयत्न करता है। रोग की चिकित्सा कर्म की उपशान्ति है। उपाय या चिकित्सा की सहायता से रोग के शमन का काल आने पर रोगोपशमन होता है। ऐसा विचार आचार्य उग्रादित्य ने प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार चिकित्सा क्रम में रोगी की चिकित्सा करते समय ज्योतिष के अनुसार ग्रह, स्वप्न तथा दोषों की स्थिति का विचार किया है। दोषों के बिना रोगात्पत्ति सम्भव नहीं है जहाँ रोग विशेष का नाम नहीं है वहाँ दोषों के अनुसार विचार करना चाहिए यह विचार आचार्य चरक के अनुसार है–

विकारणामकुशलो न जिह्वीयान् कदाचन।
न हि सर्वविकाराणां नामतोस्ति ध्रुवा स्थितिः।।

5.3 कल्याणकारक में मद्य–मांस–मधु का निषेध—

धार्मिक तथा आत्मिक दृष्टि से अहिंसा एक प्रधान तत्त्व है। जिसे आयुर्वेद में भी स्थान दिया गया है। इसी कारण से मांसाहार का निषेध जैनवैद्यक में किया गया है, अन्यथा नैतिक विरोध उत्पन्न हो जाता। जैनों ने मांसाहार को कभी भी किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया है। जैन वैद्यक में उसका पूर्ण पालन किया गया है। उसी प्रकार मधु का प्रयोग भी वर्जित माना है, मधु में असंख्य जीवों का आश्रय होता है। अतः मांस के तुल्य ही इसे चिकित्सा में स्थान नहीं दिया है। शल्य में अनेक कर्मों का सीमित एवं आवश्यक विधान बताया है।

जैनधर्म के अनुसार मद्य के प्रयोग को सर्वथा निषिद्ध माना है। अतः मद्यपान का चिकित्सा कार्य में कहीं प्रयोग नहीं बताया है। आयुर्वेद चिकित्सा में प्रयोग किये जाने वाले आसव, अरिष्ट को भी निषिद्ध माना है। मद्य, मांस व मधु का त्यागी ही जैनी होता है। जैन मतानुयायी के इस गुण को आचार्य उग्रादित्य ने चिकित्सा में सुरक्षित रखा है। गम्भीरता से विचार करने पर मद्य, मांस एवं मधु के दुर्गुणों का ज्ञान होगा। जैनदर्शन एवं तत्त्वज्ञान का अध्ययन इसके लिए अत्यावश्यक है, अन्यथा इसका ज्ञान व अनुभूति दोनों असम्भव हैं।

अहिंसा के इस सूक्ष्म विचार को कुछ लोग शल्य चिकित्सा के विकास में बाधक मानते हैं, किन्तु शरीर रचना, शरीर क्रिया एवं शल्य विषय ग्रंथ लेखन इस बात का द्योतक है कि जैनधर्म की अहिंसा शल्य चिकित्सा के विकास में अवरोधक नहीं रही है। विज्ञान के नाम पर अनावश्यक प्राणि हिंसा का निषेध ही किया है।

मद्य, मांस व मधु के द्रव्य गुणात्मक विचार को ध्यान में रखते हुए इन द्रव्यों के प्रतिनिधि द्रव्यों का स्थान–स्थान पर प्रयोग बताया है। मद्य के स्थान पर पुष्पों का रस, मांस के स्थान पर विभिन्न द्विदल धान्य, मधु के स्थान पर गुड़ का प्रयोग लिखा है, जो आचार्य उग्रादित्य की वैज्ञानिक मीमांसा का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार प्राचीन वेदानुयायी आयुर्वेद के समस्त विचारों को आत्मसात करते हुए समन्वय की दृष्टि कल्याणकारक में अपनाई गई है। त्रिसूत्र आयुर्वेद–हेतु, लिंग, औषध का पूर्ण विचार कल्याणकारक में किया है। औषध के लिए उग्रादित्य ने प्रशस्त औषध के प्रयोग के लिए ऐसा कहा है।

5.4 जो औषधि निम्न गुणों युक्त होगी वही प्रशस्त औषधि मानी जावेगी—

1. जो ज्ञान व चिकित्सा में व्यवहृत होती हो।
2. अल्प मात्रा में प्रयोग कर सकें।
3. गन्ध, वर्ण, स्वाद में प्रिय हों।
4. शुद्ध हो, जिससे किसी प्रकार के व्यापद (Complications) न हों।

5. शीघ्र प्रभावकारी हों।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी आज द्रव्य (Drug) के सम्बन्ध में यही विचार मानता है। औषधि के सभी विचार–आयुर्वेद के साथ पूर्ण सम्मत हैं। द्रव्य के कार्य को (The mode of action of the drug) 15 प्रकार से वर्गीकृत किया है जिसे 'भेषजकर्म' कहा है। यह सरल तथा सुगम वर्गीकरण है जो सामान्य चिकित्सक के लिए उपयोगी है।

5.5 औषधि कर्म—

(1) संशमन (2) अग्निपरीक्षा (3) रसायन (4) वृंहण (5) लेखन (6) संग्रहण (7) वृष्य (8) शोषकरण (9) विलयन (10) अध:शोधन (11) ऊर्ध्वशोधन (12) उभय भाग शोधन (13) विरेचन (14) विष (15) विषौवध।

इस प्रकार औषधि कर्मों का वर्गीकरण अतिवैज्ञानिक व आयुर्वेद में विकास का द्योतक है। कुछ औषधियों के स्वरस का प्रयोग मंत्रोपचार के साथ किया है। मसूरिका (Small Pox) में वनौषधियों से निर्मित पंखे की हवा का सेवन बताया है। इसी प्रकार विषों की चिकित्सा का विशेष वर्णन किया है, जिसे 'अगदतंत्र' कहा जाता है। औषधि के अन्य प्रयोगों का वर्णन आयुर्वेद सम्मत है जैसे–अञ्जन, कर्णपूरण, नस्य, वर्तिकवल आदि। प्रमेह की चिकित्सा के उपक्रम चरक, सुश्रुत की अपेक्षा विशेषता युक्त हैं। प्रमेह की चिकित्सा में विभिन्न प्राणियों के मल (The Excrete of the animals) का उपयोग बताया है। यह अनुसंधान का विषय है।

पारद का उपयोग–

कल्याणाकरक में संक्षिप्तरूप से पारद तथा उसके संस्कारों का वर्णन है। पारद से स्वर्ण निर्माण का कथन है। अनेक पारद योगों का शक्तिवर्द्धक योगों के रूप में वर्णन है।

शृंगार प्रसाधन–

कल्याणकारक में पालित नाशन, केश कृष्णीकरण, मुखकान्ति वर्द्धक शृंगार प्रसाधन योगों का वर्णन है।

विमर्श–

आयुर्वेद में जैन वैद्यक परम्परा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह प्रायोगिक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकार का है। मद्य, मांस, मधु के निषेध के साथ उनका उचित पूरक बताया है। वात, पित्त, कफ, वात की सहायता से अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार सामान्य चिकित्सक के सरल प्रयोग परक चिकित्सा ग्रंथ कल्याणकारक है। रोगों का वर्गीकरण दोषानुसार कर चिकित्सक का महान उपकार किया है। इस प्रकार कल्याणकारक एक मौलिक वैज्ञानिक जैन वैद्यक परम्परा का ग्रंथ है।

5.6 शाश्वत जीवन विज्ञान आयुर्वेद और जैन व्रत—

आयुर्वेद एक शाश्वत जीवन विज्ञान है। जीवन के प्रत्येक क्षण की प्रत्येक स्थिति आयुर्वेदीय सिद्धान्तों में सन्निहित है। आयुर्वेद मानव जीवन से पृथक् कोई भिन्न वस्तु या विषय नहीं है, अपितु दोनों में अत्यधिक निकटता और कहीं–कहीं तो तादात्म्य भाव है। सामान्यत: मनुष्य के जीवन की आद्यन्त प्रतिक्षण चलने वाली शृंखला ही आयु है, वह आयु ही जीवन है, उस आयु (जीवन) का वेद (ज्ञानी) ही आयुर्वेद है; अत: आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन–विज्ञान है। यह आयुर्वेद अनादिकाल से इस भूमण्डल पर प्रवर्तमान है। जब सृष्टि का आरम्भ और मानव जाति का विकास इस भूमण्डल पर हुआ है तब ही से उसके जीवन के अनुरक्षण, स्वास्थ्य–रक्षा हेतु नियमों का उपदेश और रोगोपचार हेतु विविध उपायों का निर्देश करने के लिए यह आयुर्वेदशास्त्र सतत प्रवर्तित रह रहा है। इसकी नवीन उत्पत्ति नहीं होती है, अपितु अभिव्यक्ति होती है। अत: यह अनादि है। इसका विनाश नहीं होता है, अपितु कुछ काल के लिए तिरोभाव है। अत: यह अनन्त है। अनाद्यनन्त होने से यह शाश्वत है।

आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य, व्यापक, जनजीवनोपयोगी एवं सर्वसाधारण के हितकारी हैं कि सरलता पूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथा शीघ्र आरोग्य लाभ किया जा सकता है। आयुर्वेद शास्त्र केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही उपयोगी नहीं है, अपितु मानसिक एवं बौद्धिक स्वास्थ्य के लिए भी हितावह है। इसमें प्रतिपादित सिद्धान्त चिकित्सा के अतिरिक्त ऐसे नियमों का प्रतिपादन करते हैं जो मनुष्य के आध्यात्मिक, आचरण, मानसिक प्रवृत्ति, और बौद्धिक जगत् के क्रिया कलापों को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। अतः यह केवल चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु शरीर विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, तत्त्व विज्ञान, दर्शनशास्त्र, आचार शास्त्र एवं धर्मशास्त्र का एक ऐसा अद्‌भुत समन्वित रूप है जो सम्पूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है। अतः निःसन्देह यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है।

वर्तमान में उपलब्ध वैदिक आयुर्वेद साहित्य के अनुसार भारतीय संस्कृति के आद्यस्रोत वेद और उपनिषद के बीच ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं। यही कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्त्वों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तत्त्वों के विश्लेषण में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है। इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शन शास्त्र एवं धर्मशास्त्र ने भी आयुर्वेद के अध्यात्म सम्बन्धी कतिपय सिद्धान्तों को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। यही कारण है कि आयुर्वेद का अध्यात्म पक्ष भी उतना ही सबल एवं परिपुष्ट है जितना उसका भौतिकतत्त्व विश्लेषण सम्बन्धी पक्ष है। इसी का परिणाम है कि भारतीय संस्कृति के विकास में जहाँ धर्म–दर्शन–नीति शास्त्र–आचरणशास्त्र–व्याकरण–साहित्य–संगीत–कला आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है वहाँ आयुर्वेद शास्त्र ने भी अपनी जीवन पद्धति तथा शरीर, मन और बुद्धि को आरोग्य प्रदान करने वाले विशिष्ट सिद्धान्तों के द्वारा उसके स्वरूप को स्वस्थ और सुन्दर रखने के लिए अपनी विचारधारा से सतत आप्यायित किया है।

5.7 स्वस्थता का महत्त्व—

इस सन्दर्भ में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि चाहे अभ्युदय प्राप्त करना हो या निःश्रुयस्, दोनों की प्राप्ति के लिए मानव शरीर की स्वस्थता नितान्त अपेक्षित है। स्वस्थ शरीर ही समस्त भोगोपभोग अथवा मनः शान्तिकारक या आत्म–अभ्युन्नति कारक देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, त्याग, दान आदि धार्मिक क्रियाएँ करने में समर्थ है। विकार ग्रस्त अथवा अस्वस्थ शरीर न तो भौतिक विषयों का उपभोग कर सकता है और न ही धर्म का साधन। इसीलिए चतुर्विध पुरुषार्थ का मूल आरोग्य निरूपित किया गया है–**'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।'** शरीर को आरोग्य प्रदान करने और विकार ग्रस्त शरीर की विकाराभिनिवृत्ति करने में एक मात्र आयुर्वेद ही समर्थ है। अतः आयुर्वेद को भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग माना गया है। भारतीय संस्कृति में जो स्थान धर्म–दर्शन आदि का है वही स्थान आयुर्वेद का भी है।

आयुर्वेद शास्त्र की यह एक मौलिक विशेषता है कि इसमें मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ–साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गम्भीर विचार किया गया है। शरीर के साथ साथ प्राण तत्त्व का विवेचन, आत्मा और मन के विषय में स्वतन्त्र दृष्टिकोण तथा शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास क्रम का यथोचित वर्णन आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता के सबल प्रमाण हैं। उसकी वैद्यक विद्या अपनी पृथक् पद्धति एवं चिकित्सा सम्बन्धी व्यापकता के कारण विशिष्ट महत्त्वपूर्ण है। पोषण सम्बन्धी तत्त्वों एवं रासायनिक पदार्थों का उसमें विशिष्ट रूप से विभक्तीकरण किया गया है जो पूर्णतः मात्रा और गुण पर आधारित है। विशिष्ट विधिपूर्वक निर्मित रस–रसायन–पिष्टी–भस्म–चूर्ण–वटी–लेप–घृतपाक–तैलपाक–अवलेह–मोदक आदि कल्पनाएँ और समस्त वनौषधियों के प्रयोग ने इस विज्ञान को निश्चय ही मौलिक स्वरूप प्रदान किया है। अपनी सरलता और रोगमुक्त करने

की क्षमता के कारण आयुर्वेद की अनेक प्रक्रियाओं ने ग्रामीण जन जीवन में इतनी आसानी से प्रवेश पा लिया कि आज भी गांवों में किसी के व्याधित या रोग पीड़ित हो जाने पर विभिन्न काढ़ों (क्वाथ), लेपों आदि के द्वारा ग्रामीण जन उपचार करते देखे जाते हैं। इसका मूल कारण यही है कि आयुर्वेद मानव जीवन के अत्यधिक सन्निकट है।

आयुर्वेद द्वारा प्रतिपादित रोग निदान और चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्तों में रोगी के अन्तरिम प्राण बल के अन्वेषण पर भी बल दिया गया है। रोग के मूल कारण को मिथ्या आहार–विहार जनित बतला कर जिस प्रकार संयम द्वारा आहारगत पथ्य के नियम बनाए गए हैं वे अत्यन्त उत्कृष्ट एवं व्यावहारिक हैं। जो लोग एलौपथी, होमियोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा आदि में विश्वास रखते हैं वे भी आज आहार के महत्त्व को समझने लगे हैं और रोग निवारण के लिए रोगी के चिकित्सा क्रम में संयम द्वारा विर्निमित आहारगत पथ्य क्रम को महत्त्व देने लगे हैं।

आयुर्वेद शास्त्र को जिस प्रकार वैदिक विचार धारा और वैदिक तत्त्वों ने प्रभावित किया है उसी प्रकार जैनधर्म और जैन विचार ने भी उसे पर्याप्त रूप से प्रभावित कर अपने अनेक सिद्धान्तों से अनुप्राणित किया है यही कारण है कि जैन वाङ्मय में भी आयुर्वेद शास्त्र का स्वतन्त्र स्थान है। अन्य विषयों या अन्य शास्त्रों की भाँति वैद्यक शास्त्र की प्रामाणिकता भी जैन वाङ्मय में प्रतिपादित है। जैनागम में आयुर्वेद को भी आगम के अंगरूप में स्वीकार किया गया है। जैनागम में केवल उसी शास्त्र या विषय की प्रामाणिकता प्रतिपादित है जो सर्वज्ञ द्वारा कथित हो। सर्वज्ञ कथन के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय का कोई भी स्थान या महत्त्व नहीं है। सर्वज्ञ तीर्थंकर के मुख से जो दिव्य–ध्वनि खिरती है उसे श्रुतज्ञान के धारक गणधर अविकल रूप से ग्रहण करते हैं। गणधर द्वारा गृहीत वह दिव्यध्वनि (जो ज्ञानरूप होती है) उनके द्वारा आचारांग आदि बारह भेदों में विभक्त की गई। गणधर द्वारा निरूपित बारह भेदों को द्वादशांग की संज्ञा दी गई है। इन द्वादशांगों में प्रथम 'आचारांग' है और बारहवां 'दृष्टिवाद' नाम का अंग है। उस बारहवें दृष्टिवादांग के पांच भेद हैं–परिकर्म, सूत्र; प्रथमानुयोग; पूर्वगत और चूलिका। इनमें जो 'पूर्व' या 'पूर्वगत' नामक भेद है उसके चौदह भेद हैं। उन चौदह भेदों में 'प्राणावाय' या 'प्राणावाद' नामक एक भेद है। इसी प्राणावाय नामक अंग में अष्टांग आयुर्वेद का कथन अत्यन्त विस्तारपूर्वक किया गया है। जैन मतानुसार आयुर्वेद या वैद्यक शास्त्र का मूल द्वादशांग के अन्तर्गत यही 'प्राणावाय' नामक भेद है। इसी के अनुसार अथवा इसी के आधार पर जैनाचार्यों ने लोकोपयोगी वैद्यक शास्त्र की रचना की या आयुर्वेद प्रधान ग्रंथों का निर्माण किया। जैनाचार्यों ने 'प्राणावाय' की विवेचना इस प्रकार की है– **''कायचिकित्साद्यष्टांग आयुर्वेदः भूतकर्मजांगुलिप्रक्रमः प्रणापानविभागोऽपि यत्र विस्तरेण वर्णितस्तत्प्राणावायम्।''**

अर्थात् जिस शास्त्र में काय, तदगत दोष और उनकी चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, पृथ्वी आदि पंच महाभूतों के कर्म, विषैले जीव जन्तुओं के विष का प्रभाव और उसकी चिकित्सा तथा प्राण–अपान वायु का विभाग जिसमें विस्तार पूर्वक वर्णित हो वह 'प्राणावाय' होता है।

5.8 प्राणावाय पूर्व के आधार पर ही आयुर्वेद ग्रंथों का प्रणयन—

द्वादशांग के अन्तर्गत निरूपित प्राणावाय पूर्व नामक अंग मूलतः अर्धमागधी भाषा में लिपिबद्ध है। इस प्राणावाय पूर्व के आधार ही अन्यान्य जैनाचार्यों ने विभिन्न वैद्यक ग्रंथों का प्रणयन किया है। श्री उग्रादित्याचार्य ने भी प्राणावाय पूर्व के आधार पर ''कल्याण कारक'' नामक वैद्यक ग्रंथ की रचना की है। इसका उल्लेख आचार्य श्री ने स्थान पर किया हैं ग्रंथ के अन्त में वे लिखते हैं–

सर्वार्धाधिकमागधीयविलसद् भाषापरिशेषोज्वलात्
प्राणावायमहागमादवितथं संगृह्य संक्षेपतः।

उग्रादित्यगुरुर्गुरुर्गुरुगुणैरुद्भासि सौख्यास्पदं
शास्त्रं संस्कृतभाषया रचितवानित्येष भेदस्तयोः। (कल्याणकारक, अ. 25 श्लो. 54)

अर्थात् सम्पूर्ण अर्थ को प्रतिपादित करने वाली सर्वार्धमागधी भाषा में जो प्राणावाय नामक महागम (महाशास्त्र) है उससे यथावत् संक्षेप रूप से संग्रह कर उग्रादित्य गुरु ने उत्तम गुणों से युक्त सुख के स्थानभूत इस शास्त्र की रचना संस्कृत भाषा में की। इन दोनों (प्राणावाय अंग और कल्याण कारक) में यही अन्तर है। याने प्राणावाय अंग अर्धमागधी भाषा में निबद्ध है और कल्याण कारक संस्कृत भाषा में रचित है बस दोनों में यही अंतर है।

जैनमतानुसार आयुर्वेद रूप सम्पूर्ण प्राणावाय के आद्य प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हैं। इसके विपरीत वैदिक मतानुसार आयुर्वेद शास्त्र के आद्य प्रवर्तक या आद्युपदेष्टा ब्रह्मा हैं जिन्होंने सृष्टि की रचना से पूर्व ही उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र की अभिव्यक्ति की जिस प्रकार बालक के जन्म के पूर्व ही माता के स्तनों में सतन्य (क्षीर) का आविर्भाव हो जाता है, किन्तु जैनमतानुसार यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। अतः इसकी रचना का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रथम और द्वितीय काल में यहाँ भोग भूमि को उत्कृष्ट दशा थी जिसमें सभी मनुष्यों में पारस्परिक सौहार्द भाव था। ईर्ष्या और द्वेष भाव से पूर्णतः रहित वे एक दूसरे को अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखते थे। उनकी सभी अभिलाषाएँ कल्पवृक्षों से पूर्ण होती थीं, वे कल्पवृक्ष सभी प्रकार के मनोवांछित सुख के प्रदाता थे। अभिलषित सुख का उपभोग करने वाले भोगभूमि में उत्पन्न वे पुण्यात्मा मनुष्य यावज्जीवन उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सुखोपभोग कर अपने आयुकर्म के क्षय के अनन्तर स्वर्ग को प्राप्त होते थे। इस प्रकार भोगभूमि में मनुष्यों को किसी भी प्रकार कोई दुःख नहीं था और न ही वे किसी व्याधि से पीड़ित होते थे।

भोगभूमि के पश्चात् इस क्षेत्र कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। फिर भी उपपाद शय्या में उत्पन्न होने वाले देवगण, चरम व उत्तम शरीर को प्राप्त करने वाले पुण्यात्मा अपने पुण्य प्रभाव से विष–शस्त्रादि के द्वारा होने वाले अपघात् से सुरक्षित दीर्घायुषी शरीर को ही प्राप्त करते थे, किन्तु उस समय शनैः–शनैः कालक्रम से ऐसे मनुष्य भी उत्पन्न होने लगे जो विष शस्त्रादि द्वारा घात होने योग्य शरीर को धारण करने वाले होते थे। उन्हें वात–पित्त–कफ के उद्रेक से महाभय उत्पन्न होने लगा। ऐसी स्थिति में भरत चक्रवर्ती आदि भव्य जन भगवान ऋषभदेव के समवसरण में पहुँचे जो अशोक वृक्ष, सुरपुष्प वृष्टि, दिव्यध्वनि, छत्र, चामर, रज्नजड़ित सिंहासन, भामण्डल और देव–दुन्दुभिरूप अष्ट महाप्रातिहार्य तथा बारह प्रकार की सभाओं से वेष्टित था। वहां पहुँच कर उन्होंने प्रभु से निम्न प्रकार निवेदन किया–

देव ! त्वमेव शरणं शरणागतानामस्माकमाकुलधियामिह कर्मभूमौ।
शीतातितापहिमवृष्टिनिपीडितानां कालक्रमात्कदशनाशनतत्पराणाम्।।
नानाविधामय भयादतिदुःखितानामाहारभेषजनिरुक्तिमजानतां नः।
तत्स्वास्थ्यरक्षणविधानमिहातुराणां का वा क्रिया कथयतामथ लोकनाथ।।

–कल्याणकारक, अ. 1/6-7

अर्थात् हे देव ! इस कर्मभूमि में अत्यधिक ठंड, गर्मी और वर्षा से पीड़ित तथा कालक्रम से मिथ्या आहार विहार के सेवन में तत्पर, व्याकुल बुद्धि वाले शरणागत हम लोगों के लिए आप ही शरण है। हे तीन लोक के स्वामिन्! अनेक प्रकार की व्याधियों के भय से अत्यन्त दुःखी तथा आहार औषधि के क्रम को नहीं जानने वाले हम व्याधितों (पीड़ितों) के लिए स्वास्थ्य रक्षा के उपाय और रोगों का नाश करने वाली क्रिया (चिकित्सा) बतलाने की कृपा करें।

इस प्रकार भगवान से निवेदन करने के पश्चात् वृषभसेन आदि प्रमुख गणधर और भरत चक्रवर्ती आदि प्रधान पुरुष अपने अपने स्थान पर मौन होकर अवस्थित हो गए। तब उस महान् सभा रूप समवसरण में भगवान की उत्कृष्ट देवी (साक्षात् पट्टरानी) रूप सरस वाग्देवी दिव्य ध्वनि से युक्त प्रसारित हुई। उस दिव्यध्वनि रूप सरस्वती ने सर्वप्रथम पुरुष लक्षण, रोग लक्षण, औषधियाँ एवं सम्पूर्णकालरूप सकल वस्तु चतुष्टय का संक्षेपतः वर्णन किया जो सर्वज्ञत्व का सूचक है।

5.9 आयुर्वेद शास्त्र के आद्युपदेष्टा भगवान ऋषभदेव—

इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र का आविर्भाव आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के मुखारविन्द से निःसृत दिव्यध्वनि के द्वारा हुआ। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद शास्त्र के आद्युपदेष्टा भगवान ऋषभदेव हैं। उनसे उपदिष्ट आयुर्वेद की परम्परा किस प्रकार से प्रसार को प्राप्त हुई, इसका विवेचन श्री उग्रादित्याचार्य ने अपने ग्रंथ कल्याणकारक में निम्न प्रकार से किया है–

दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तथा गणधरोऽधिजगे समस्तम्।
पश्चात् गणाधिप निरूपितवाक्प्रपंचमष्टार्ध निर्मलधियो मुनयोऽधिजग्मुः।।
एवं जिनान्तरनिबन्धनसिद्धमार्गादायातमायतमनाकुलमर्थगाढ़म्।
स्वायम्भुवं सकलमेव सनातनं तत्साक्षाच्छ्रु तं श्रुतदलैः श्रुतकेवलिभ्यः।।

–कल्याणकारक अ. 1/9-10

अर्थात् इस प्रकार भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट हुआ परमार्थ रूप से उत्पन्न सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को गणधर परमेष्ठी ने साक्षात् रूप से जान लिया। तत्पश्चात् गणधर प्रमुख द्वारा निरूपित उस वस्तु स्वरूप को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान को धारण करने वाले निर्मल बुद्धि वाले मुनियों ने जाना। इस प्रकार यह आयुर्वेद शास्त्रअन्य तीर्थंकर द्वारा भी प्रतिपादित होने से निरन्तर चला आया है। (याने आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर पर्यन्त सभी तीर्थंकरों के मुखारविन्द से निःसृत दिव्यध्वनि द्वारा इसका प्रतिपादन किया गया है।) अतः अन्य तीर्थंकरों द्वारा कथित सिद्ध मार्ग से आया हुआ यह आयुर्वेद शास्त्र अत्यन्त विस्तृत, दोषरहित एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त है। तीर्थंकरों के मुखकमल से स्वतः समुद्भूत होने से स्वयम्भू है और बीजांकुर न्याय से (पूर्वोक्त क्रम से) अनादि काल से सतत चले आने से सनातन है। ऐसा यह आयुर्वेद शास्त्र गोवर्धन, भद्रबाहु आदि श्रुतकेवलियों के मुख से अल्पांगज्ञानी या अंगांग ज्ञानी मुनिवरों द्वारा साक्षात् रूप से सुना हुआ (सुनकर ग्रहण किया हुआ) है। तात्पर्य यह है कि श्रुतकेवलियों ने अन्य मुनियों को इस शास्त्र का उपदेश दिया।

अल्पांगज्ञानी या अंगांगज्ञानी उन मुनिवरों ने अपने शिष्यों या अन्य मुनियों को इस शास्त्र का उपदेश दिया और उन्होंने उन ज्ञान के आधार पर पृथक्–पृथक् रूप से ग्रंथों के रूप में निबद्ध कर लोकहित की दृष्टि से उसे प्रचारित किया। इस प्रकार आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक ग्रंथों का प्रणयन कालान्तर में करुणाधारी मुनिजनों द्वारा किया। कालक्रम, आलस्य और उपेक्षा के कारण आज अनेक ग्रंथ कालकवलित या विलुप्त हो चुके हैं। जो बचे हैं उनके संरक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है और न ही उसके लिए कोई उपाय किए जा रहे हैं। अतः शनैः शनैः बचे हुए ग्रंथों के भी विलुप्त होने की सम्भावना है।

आयुर्वेद शास्त्र का मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने वाले और उसमें निष्णात व्यक्ति को 'वैद्य' कहा जाता है ऐसा कथन तज्ज्ञ मुनिजनों ने किया है। वैद्यों का शास्त्र होने से इसे वैद्य शास्त्र या वैद्यक शास्त्र भी कहते हैं। श्री उग्रादित्याचार्य ने वैद्य एवं आयुर्वेद शब्द को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

विद्येति सत्प्रकटकेवललोचनाख्या तस्यां यदेतदुपपन्नमुदारशास्त्रम्।
वैद्यं वदन्ति पदशास्त्रविशेषणज्ञा एतद्विचिन्त्य च पठन्ति च तेऽपि वैद्याः।।
वेदोऽयमित्यपि च बोधविचारलाभात्तत्वार्थसूचकवचः खलु धातुभेदात्।
आयुश्च तेन सह पूर्वनिबद्धमुद्यच्छास्त्राभिधानमपरं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।।

–कल्याणकारक अ. 1/18-19

अर्थात् अच्छी तरह से उत्पन्न केवलज्ञान रूपी चक्षु को विद्या कहते हैं। उस विद्या से उत्पन्न उदार शास्त्र को व्याकरण शास्त्र के विशेषज्ञ वैद्यशास्त्र कहते हैं। उस उदार शास्त्र को जो लोग अच्छी तरह मनन पूर्वक पढ़ते हैं वे वैद्य कहलाते हैं। यह आयुर्वेद भी कहलाता है। इसमें 'वेद' शब्द विद् धातु से निष्पन्न है। विद् धातु बोध (ज्ञान), विचार और लाभ अर्थ वाली है। यहां वेद शब्द का अर्थ वस्तु के यथार्थ स्वरूप को बतलाने वाला है याने तत्त्व के अर्थ को प्रतिपादित करने वाले वचन। इस वेद शब्द के पहले 'आयुः' शब्द जोड़ दिया जाय तो 'आयुर्वेद' शब्द निष्पन्न होता है। अतः उस वैद्यशास्त्र के ज्ञाता उस शास्त्र का अपर (दूसरा) नाम आयुर्वेद शास्त्र कहते हैं।

आयुर्वेद के विशिष्टार्थ एवं विस्तृत व्याख्या के सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि जिस शास्त्र में आयु का स्वरूप प्रतिपादित किया गया हो, जिस शास्त्र का अध्ययन करने से आयु सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है अथवा जिस शास्त्र के विषय में विचार करने से हितकर आयु, अहितकर आयु, सुखकर आयु और दुखकर आयु के विषय में जानकारी प्राप्त होती है अथवा जिस शास्त्र में बतलाए हुए नियमों का पालन करने से दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है उसका नाम आयुर्वेद है। इसी प्रकार स्वस्थ और अस्वस्थ मनुष्य की प्रकृति, शुभ और अशुभ बतलाने वाले दूत एवं अरिष्ट लक्षण इत्यादि के उपदेशों से जो शास्त्र आयु का विषय अर्थात् यह स्वल्पायु है अथवा मध्यमायु है या दीर्घायु है इन सब विषयों का ज्ञान करा देता है वह आयुर्वेद हैं

यहां यह स्मरणीय है कि आयु शब्द का अर्थ वय नहीं करना चाहिये। आयु और वय में पर्याप्त भिन्नता है। आयु शब्द यावज्जीवन काल का बोधक है जबकि वय शब्द जीवन की एक निश्चित कालावधि का द्योतक है। अतः आयु शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए आयुर्वेद के सन्दर्भ में उसकी जो विवेचना मनीषियों द्वारा की गई है वह यथार्थ है। तदनुसार आयु के लिए कौन सी वस्तु लाभदायक है अथवा किस वस्तु या विषय के सेवन से आयु की हानि हो सकती है ? किस प्रकार की आयु हितकर है और किस प्रकार की आयु अहित कर है ? यह सम्पूर्ण विषय जिस शास्त्र में वर्णित होता है तथा आयु को बाधित करने वाले रोगों का निदान और उनका प्रतिकार करने के उपायों (चिकित्सा) का वर्णन जिस शास्त्र में किया गया है उसे विद्वानों ने आयुर्वेद संज्ञा से अभिहित किया है। इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूँकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, अतः मुनिश्रेष्ठों द्वारा इसे 'आयुर्वेद' कहा गया है। तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का विधिपूर्वक अध्ययन करके यदि समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने और अपनी आयु का संरक्षण करने का उपाय सहज ही ज्ञात हो जाता है, क्योंकि इस शास्त्र में प्रतिपादित आहार–विहार सम्बन्धी नियमों और अन्य सदाचारों का पालन करने से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है। इसलिए मुनिवरों ऋषियों और आचार्यों ने इसे आयुर्वेद के नाम से कहा।

5.10 यह वैद्य शास्त्र लोकोपकार के लिए प्रतिपादित किया गया है—

इसका प्रयोजन द्विविध है–

1. स्वस्थ पुरुषों के स्वास्थ्य की रक्षा करना और 2. रोगी मनुष्यों के रोग का प्रशमन करना। श्री उग्रादित्याचार्य ने वैद्य शास्त्र के ये ही दो प्रयोजन बतलाए हैं। यथा–

लोकोपकरणार्थमिदं हि शास्त्रं, शास्त्रप्रयोजनमपि द्विविधं यथावत्।
स्वस्थस्य रक्षणमथामयमोक्षणं च, संक्षेपतः सकलमेव निरूप्यतेऽत्र।।

–कल्याणकारक अ. 1/24

इस शास्त्र में भगवान जिनेन्द्र देव के अनुसार दो प्रकार का स्वास्थ्य बतलाया गया है–पारमार्थिक स्वास्थ्य और व्यवहार स्वास्थ्य। इन दोनों में पारमार्थिक स्वास्थ्य मुख्य है। परमार्थ स्वास्थ्य का निम्न लक्षण बतलाया गया है–

अशेषकर्मक्षयजं महाद्भुतं यदेतदात्यन्तिकमद्वितीयम्।
अतीन्द्रियं प्रार्थितमर्थवेदिभिः तदेतदुक्तं परमार्थनामकम्।।

–कल्याणकारक, अ. 2/3

अर्थात् आत्मा के सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने से उत्पन्न, अत्यन्त अद्भुत, आत्यन्तिक एवं अद्वितीय, विद्वानों द्वारा अपेक्षित जो अतीन्द्रिय मोक्षमुख है उसे ही पारमार्थिक सुख कहते हैं।

व्यवहार स्वास्थ्य का लक्षण निम्न प्रकार बतलाया गया है–

समाग्नि धातुत्व मदोषविभ्रमो मलक्रियात्मेन्द्रियसुप्रसन्नता।
मनः प्रसादश्च नरस्य सर्वदा तदेवमुक्तं व्यवहारजं खलु।।

–कल्याणकारक अ. 2/4

अर्थात् मनुष्य के शरीर में सम अग्नि (अवकृित जठराग्नि) होना, धातुओं का सम होना, वात–वित्त–कफ तीनों का विभ्रम (विकृत) नहीं होना, मलों (स्वेद मूत्र–पुरीष) की विसर्जन किया यथोचित रूप से होना, आत्मा, इन्द्रिय और मन की प्रसन्नता सदैव रहना यह व्यवहारिक स्वास्थ्य का लक्षण है।

इस प्रकार द्विविध स्वास्थ्य का लक्षण कहने का आशय यह है कि पहले मनुष्य सम्यक् आहार विहार द्वारा व्यवहारिक स्वास्थ्य याने शारीरिक स्वास्थ्य का लाभ और उसका अनुरक्षण करे। तत्पश्चात् स्वस्थ शरीर द्वारा अशेष कर्म क्षयकारक तपश्चरण आदि क्रियाओं से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके अक्षय, अविनाशी सुखरूप पारमार्थिक स्वास्थ्य का लाभ लेवे। इसे ही अन्य शास्त्रों में आध्यात्मिक सुख भी कहा गया है। मनुष्य जब उस परम सुख को प्राप्त कर लेता है तो उसके लिए और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। उसे चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है और उसका जीवन सफल एवं सार्थक हो जाता है। यही इस आयुर्वेद शास्त्र का मूल प्रयोजन है और इसी प्रयोजन के लिए वह प्रवर्तित है।

जन सामान्य में रोगोपचार हेतु इसका व्यापक प्रचलन देखते हुए यहां कतिपय चिकित्सा योगों को उद्धृत करना आवश्यक है ताकि सभी लोग उनका व्यवहार कर उनसे अपेक्षित लाभ उठा सकें।

5.11 कुछ उपयोगी योग निम्न हैं—

1. गिलोय, सोंठ, नागरमोथा और जवासा इन सबका क्वाथ बना कर देने से ज्वर नष्ट होता है।
2. गिलोय, सोंठ और पीपलामूल इन सबका काढ़ा बना कर पीने से वात ज्वर मिटता है।
3. पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता इनका काढ़ा बनाकर 1–1 तोला प्रातः सायं पीने से पित्त ज्वर नष्ट होता है।
4. मीठा अनार का रस पिलाने से या फालसा के रस में सेंधा नमक मिलाकर देने से पित्त ज्वर शान्त होता है।
5. नीम की छाल, सोंठ, गिलोय, कटा पोहकर मूल, कुटकी, कचूर, अडूसा, कायफल, पीपली और शतावरी इनको 3–3 माशा लेकर इनका काढ़ा बनाकर देने से कफ ज्वर शान्त होता है।
6. कायफल, पीपल, काकड़ासिंगी, पोहकर मूल समभाग लेकर इनका बारीक चूर्ण 3 माशा की मात्रा में मिश्री की चासनी के साथ देने से कफ ज्वर नष्ट होता है।
7. कायफल, पीपलामूल, इन्द्र जौ, भारंगी, सौंठ, चिरायता, काली मिर्च, पीपल, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, रास्ना, दोनों कटेरी, अजमोद, छड़ बच, पाठ, अडूसा, चव्य इन सबको समभाग लेकर 8 माशा का क्वाथ बनाकर दोनों समय देने से सन्निपात ज्वर, सभी प्रकार के वातरोग, ज्ञान का न होना, पेट का शूल, आफरा, वाय व कफ विकारों का नाश होता है।

8. धनिया और पित्तपापड़ा का क्वाथ पीने से जीर्ण ज्वर (पुराना ज्वर) मिटता है।

9. जो जीर्ण मलेरिया ज्वर कुनैन आदि औषधियों के सेवन से नहीं मिटता है वह ज्वर दारु हल्दी का चूर्ण या क्वाथ देने से मिट जाता है।

10. पित्त पापड़ा और गिलोय के काढ़े में काली मिर्च का चूर्ण डालकर पिलाने से जीर्ण ज्वर और खांसी में लाभ होता है।

11. विषम ज्वर (मलेरिया) की स्थिति में सुदर्शन चूर्ण गरम जल से देने से ज्वर शान्त होता है।

12. बकरी के दूध में सोंठ का बारीक चूर्ण मिलाकर या सोंठ को घिस कर सिर पर लेप करने से सिरदर्द ठीक होता है।

13. अरीठा को 1-2 काली मिर्च के साथ पानी में पीस कर नास देने से आधाशीशी मिट जाता है।

14. हरड़ की गुठली को पानी में पीस कर लेप करने से आधा शीशी की पीड़ा मिट जाती है।

15. प्रातः सायं दूध के साथ गुलकन्द का सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।

16. घी और दूध के साथ 1 माशा बच का चूर्ण लेने से स्मृति की वृद्धि होती है।

17. ब्राह्मी से निर्मित घृत या मण्डूकपर्णी का स्वरस या गव्य दुग्ध के साथ यष्टीमधु (मुलेठी) का चूर्ण या गिलोय स्वरस या मूल और पुष्प युक्त शंखपुष्पी के कल्क का प्रयोग करने से मेधा की वृद्धि होती है। अतः ये मेध्य रसायन हैं। इनमें ब्राह्मी एवं शंख पुष्पी विशेषतः मेध्य है।

18. अडूसा, मुनक्का और मिश्री का सेवन करने से सूखी खांसी मिट जाती है।

19. केर की लकड़ी की भस्म 1 रत्ती की मात्रा में मिश्री की चासनी के साथ खाने से सूखी खांसी में लाभ होता है।

20. अदरक का रस, नागरबेल के पान का रस और तुलसी पत्तों का रस सम भाग लेकर उसमें मिश्री मिला कर पीने से कफज खांसी में लाभ होता है।

21. मिश्री 16 तोला, वंशलोचन 8 तोला, पिप्पली 4 तोला, छोटी इलायची 2 तोला और दाल चीनी 1 तोला इनको कूट छान कर बारीक चूर्ण बना लें। यह सितोपलादि चूर्ण श्वास, कास, हाथ-पैर की जलन, पित्त विकार आदि में अत्यधिक लाभकारी है।

5.12 वनस्पति विज्ञान और आयुर्वेद—

जब ये संसार में मानव शरीर की उत्पत्ति हुई है-तब से उसके साथ ही रोग की भी उत्पत्ति हुई अतएव रोग की उत्पत्ति का इतिहास भी मनुष्य शरीर के साथ ही प्रारम्भ होता है, और जब से रोग की उत्पत्ति हुई तभी से मनुष्य उसको दूर करने के उपायों की खोज करने लगा और तभी से उसके उपाय चिकित्सा शास्त्र के रूप में प्रकट होने लगे अतएव यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं कि चिकित्सा शास्त्र का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव जाति का इतिहास।

ज्यों-ज्यों औषधि विज्ञान का विस्तार होता गया त्यों-त्यों वनस्पति विज्ञान की महत्ता अधिकाधिक लोगों के ध्यान में आने लगी और क्रमशः इस विज्ञान ने एक स्वतन्त्र शास्त्र का रूप धारण किया जिसका नाम आयुर्वेद हुआ। वनस्पति विज्ञान के अन्तर्गत सुश्रुतसंहिता में 700 वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है।

अनादि सृष्टि का विभाग करने पर हमें दो ही भेद प्राप्त होते हैं एक सजीव-दूसरा निर्जीव। सजीव सृष्टि का अर्थ है जिनमें जीवनी शक्ति के चिन्ह प्राप्त हो सके जैसे-मनुष्य, पशु, पक्षी और पौधे। निर्जीव से अभिप्राय है पत्थर, चूना, नमक इत्यादि।

जितनी भी सृष्टि आप देखेंगे सर्वत्र चर सृष्टि में सदैव प्रत्येक प्राणी एक न एक घातक के भय से अपना रक्षा विधान सोचा करता है, हमारी वनस्पतियां भी उससे बच न सकीं। जिधर देखेंगे उसका सर्वनाश हो रहा है, पशुओं,

मनुष्यों तथा हर प्रकार के पक्षियों की ये खाद्य वस्तुयें हो रही हैं। पशु वनस्पति पर ही अपना निर्वाह कर रहें हैं, मांसाहारी पशु भी शाकाहारी पशुओं के ही मांस पर जीवित हैं और मनुष्य तो हर प्रकार से इनका उपयोग करते हैं। अतः वनस्पितियों को इससे बचने के लिए प्रकृति ने विशेष प्रकार की शक्ति प्रदान की है। जो भिन्न–भिन्न रूप में होती है जैसे–कई प्रकार के कण्टक विषाक्त रोग, कड़वापन, चरपरापन, वा अन्य प्रकार के गन्धादि। वृहती आदि के पत्रों में कांटे, वर्चादि में गन्ध, शाखी वृक्षों में वल्कल, विशेष औषधियों में विष, वृश्चिकादि, रोम व कंटकारी आदि इसी बात के प्रदर्शक हैं कि जिससे इनकी रक्षा हो सके।

5.13 वनस्पतियों में गुण निर्माण—

प्रत्येक प्राणी जानता है कि पौधे पृथ्वी से व सूर्य से तथा वायु से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। पृथ्वी से वे जितना पदार्थ ग्रहण करते हैं उससे कहीं अधिक वे वायु से पोषक पदार्थ ग्रहण करते हैं। वायु के संयोजक पदार्थों में से एक प्रकार का वायव्य (कार्बन द्वियोषित) अधिक परिमाण में इन वनस्पतियों द्वारा संग्रहीत है। अतः सर्व प्रधान शक्ति वायु जनित होती है, सूर्य से भी बहुत कुछ संग्रह करती हैं–वनस्पतियों के पत्र श्वास–प्रश्वास का कार्य करते हैं–जैसे हम शरीर के भीतर की दूषित वायु को प्रश्वास द्वारा त्याग करके श्वास द्वारा शुद्ध वायु को ग्रहण करते हैं–वैसे ही वनस्पतियों में यह कार्य सूर्य की रश्मियों द्वारा उनके पत्रों का स्वयमेव सम्पादित हो जाता है। इस प्रकार सूर्य रश्मियों के ग्रहण से उनमें एक प्रकार की आग्नेय शक्ति (ताप) का संचय होता है पृथ्वी से वे जल तथा अन्य पोषक पदार्थ ग्रहण करते हैं। सूर्य की तरह अन्य कई ग्रह–उपग्रहों से उन्हें अन्य शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे चन्द्रमा से सोम या शीत प्रधान अंशादि। इस प्रकार वनस्पतियों में कई प्रकार के पदार्थों व शक्ति का संचय होता है।

5.14 वनस्पति व त्रिदोष—

उपर्युक्त क्रमों से यह विदित होता है कि वायु–सोम (द्रव्य) द्वारा वनस्पतियों का जीवन है, जिन पदार्थों से जिसका निर्माण होगा–उसमें वही पदार्थ अधिक पाये जायेंगे, इनको ही प्राचीन चिकित्सकों ने ध्यान में रखकर वात–पित्त–कफ की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया था और शरीर में वात–पित्त–कफ से उत्पन्न व्याधियों में इन औषधियों के इन प्रधान गुणों को लक्ष्य करके उपयोग किया है। प्राणी वर्ग में चाहे छोटे से छोटा जीव हो या बड़े से बड़ा सभी को जीवन के मुख्य लक्षणों में गुजरते रहने से जीवन क्रियाओं में बहुत कुछ साम्य है और विशेषकर वनस्पति व मनुष्यों में तो हर प्रकार से सादृश्य देखा जाता है अतः त्रिदोष की साम्य प्रकृति का 'सोम' 'सूर्य' के द्वारा पालित पोषित होने पर हर प्रकार से होता है।

आयुर्वेद में वनस्पतियों को उनके गुणावगुण द्योतनार्थ पांच विभागों में विभक्त किया गया है–रस–गुण–वीर्य–विपाक व शक्ति, जिनके कई विषयों के अन्वेषण मार्ग का आज का वैज्ञानिक अवहेलना की दृष्टि से देखता है और उसके अचिन्त्य महत्व में सन्देह करता है जैसे–शक्ति की वीर्य अचिन्त्य क्रिया। इस अचिन्त्य क्रिया का ज्ञान यांत्रिक विज्ञान बतलाने में असमर्थ है। जैसे गुलवनप्सा के विषय में उसका प्रतिश्याय हरत्व प्राप्त नहीं होता ऐसा लेबोरिट्रयां प्रतिध्वनित करती हैं, किन्तु प्रतिदिन 'गुलवनप्सा' पीकर हजारों व्यक्ति प्रतिश्याय से मुक्त होते हैं। चन्द्रोदय के ऊपर पाचक रसों की प्रत्यक्ष क्रियायें असिद्ध हैं, किन्तु वैद्य वर्ग दिन–रात चन्द्रोदय देकर मृतक में भी जान डालते हैं।

भारतवर्ष की बहुत सी औषधियाँ जिनको हम घास–फूस समझकर व्यर्थ ही फेंक देते हैं वही जब विदेशों में जाकर टिंचर–अर्क व एक्सट्रेक्ट का रूप धारण करके सुन्दर लेविल से युक्त होकर आती हैं तो हम उनके लिए विपुल धनराशि खर्च करके खरीदते हैं जैसे–अजवाइन, अनन्तमूल, धतूरा, मीठातेलिया आदि।

5.15 प्राच्य–पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का समन्वय—

हमारे देश में कई ऐसी औषधियाँ हैं जो विलायती औषधियों से गुणों में अच्छा और निरुपद्रव काम करती हैं। जैसे–हृदय गति ठीक करने के लिए 'डिजिटेलिस' नाम की दवा काम करती है तो कुटकीक्वाथ से वही लाभ सफलतापूर्वक प्राप्त करते हैं। 'पोटाशब्रोमाइड्' नामक औषधि के मुकाबले हमारे देश की 'हरमल' नामक औषधि अच्छा कार्य करती है, 'केलम्बा' के मुकाबले गिलोय, गोवाकम, चम्पा, कालादाना, 'थायमल' के स्थान पर अजवाइन इस प्रकार अनेकों औषधियाँ है।

कई औषधियाँ ऐसी हैं। जिनकी बराबरी एलोपैथिक औषधियाँ नहीं कर सकती। जैसे कामला रोग पर 'पोडोफोलिन' या 'टेरेक्सी' की मात्रायें पीने से ठीक नहीं होता जबकि 'बन्दाल' के केवल सूंघने मात्र से कामला–पाण्डु रोग ठीक होता है, **''ज्वरं हन्ति शिरोवद्धा सहदेवी जटा यथा''** अर्थात्–शिर पर सहदेवी की जड़ बांधने मात्र में ज्वर ठीक होता है। 'एस्प्रीन' जिस शिर दर्द को ठीक नहीं कर सकती उसे ताजे 'अपमार्ग' के पत्रों का स्वरस कान में डालते ही शान्त करते हैं। 'जंगलनी जड़ी बूटी' में कहा गया है कि शान्ति निकेतन के एक छात्र को बड़े जोर से नाक से खून बहना चालू हुआ अनेकों डाक्टरों द्वारा चिकित्सा की गई, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ इतने में एक सेथाल उधर से गुजरा उसने 'वक्सी' की जड़ लेकर पानी के साथ पीसकर पिला दी जिससे रोगी का खून बहना तत्काल बन्द हो गया। इसी प्रकार महिलाओं को रक्त प्रदर में भी इस औषधि का चमत्कारिक प्रयोग सफलता से होता है।

नर्मदा के किनारे पर बड़ौदा की सरहद पर ''गौला'' नामक एक औषधि होती है इस विषय में कहा जाता है कि पानी में डूबा हुआ मनुष्य मृत्यु के मुंह में हो तो पुनर्जीवन देती है। डाक्टरों का मत है कि क्लोरोफार्म के समकक्ष अन्य कोई औषधि भारतवर्ष में पैदा नहीं होती है पर हिमालय पर्वत के अन्दर नेपाल से भूटान के बीच में 'विखमा' नामक एक वनस्पति के पौधे पाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई 4 से 5 फुट होती है इस औषधि की यह प्रवृत्ति है कि कोई भी व्यक्ति इसके पास से निकल जाता है तो वह मूर्छित हो जाता है। (अर्थात् इस औषधि को सूंघने से मूर्छित हो जाता है)। इस वनस्पति की तरह दर्पनाशक एक वन्सपति 'निर्विषा' है जो कि 'विखमा' के पास ही पैदा होती है, इसको सूंघने मात्र से बेहोश मनुष्य तत्काल होश में आ जाता है। आचार्य चरक ने कई दिव्य औषधियों के विषय में बताया है–जैसे 'ब्रह्मसुर्वचला' नाम की औषधि होती है जिसको 'हिरण्य क्षीरा' भी कहते हैं जिसके पत्ते कमल के सदृश होते हैं। एक औषधि 'सूर्यकांता' नामक है जिसका दूध सुवर्ण के समान पीला होता है और फूल सूर्य मण्डल के आकार के होते हैं। एक औषधि 'नारी' नामक होती है इसके पत्ते बकरे के सदृश होते हैं। एक 'सर्पा' नामक औषधि सर्प जैसी होती है। 'सोम' नामक औषधि जो सब औषधियों की रानी है, इसके पन्द्रह पत्ते होते हैं और चन्द्रमा की कला के अनुसार कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन एक एक पत्ता घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक एक पत्ता नवीन आता जाता है। उपरोक्त औषधियाँ महान दिव्य औषधियां हैं इनके रस का तृप्ति पर्यन्त पान करने से और ऊपर से बकरी का दूध पीने से तथा उसके बाद पलाश की हरी लकड़ी के बनाये हुए ढ़क्कनदार टब में नग्न स्थिति में सोने से नवीन शरीर की प्राप्ति होती है। वह मनुष्य आयु वर्ण स्वर–आकृति बल और प्रभा में देवताओं के सदृश हो जाता है। इसी प्रकार भूख और प्यास दूर करने वाली अनेकों औषधियाँ हैं तथा सोना बनाने वाली भी अनेकों चमत्कृत गुणों से युक्त औषधियाँ हमारे यहाँ के पर्वतों में पैदा होती हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी पूरी जानकारी न होने से इनके चमत्कृत प्रयोगों से वंचित हैं।

आज की बढ़ती हुई बीमारियों को देखते हुए वैद्य समाज का कर्त्तव्य है कि औषधियों के प्रति हमारी उदासीनता को दूर करें। हमारी उदासीनता–प्रमाद से और सरकार से वांछित सहयोग प्राप्त न होने से हम सभी औषधियों के लाभ से वंचित हैं उनकी जानकारी करके जन समुदाय के सामने लायें जिससे कि उनके विषय में अनुसन्धान करके उस पद्धति से जनता जनार्दन की समुचित सेवा हो सके।

5.16 प्रश्नावली—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न-

प्रश्न 1-"महर्षि पूज्यपाद" ने कौन-सा चिकित्सा ग्रंथ लिखा-

(क) शल्य तंत्र ☐
(ख) शलाक्य तंत्र ☐
(ग) काय चिकित्सा ☐

प्रश्न 2-जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर कौन हैं ?

(क) तीर्थंकर महावीर ☐
(ख) तीर्थंकर वृषभदेव ☐
(ग) तीर्थंकर पार्श्वनाथ ☐

प्रश्न 3-"कौमार भृत्य" नामक चिकित्सा ग्रंथ किन आचार्य ने लिखा है ?

(क) मेघनादाचार्य ☐
(ख) सिंहनाद मुनीन्द्र ☐
(ग) आ. पात्रकेसरी स्वामी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-कल्याणकारक चिकित्साग्रंथ के रचयिता कौन थे ? और किन-किन आचार्यों ने चिकित्सा की शाखाओं पर ग्रंथ लिखे हैं, उन सबके नाम बताओ ?

प्रश्न 2-प्रशस्त औषधि में कौन-से गुण होना आवश्यक है ?

प्रश्न 3-द्रव्य के कार्य को कितने प्रकार से वर्गीकृत किया है ? इनके नाम बताइए ?

प्रश्न 4-मानव शरीर में "स्वस्थता" का क्या महत्व है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न-

प्रश्न 1-"वनस्पति विज्ञान और आयुर्वेद" इस पर प्रकाश डालिए ?

अहिंसा, अनेकांत एवं जैनदर्शन के कतिपय प्रमुख विषय

-संदर्भ ग्रंथ-

1. वत्थुविज्जा -आर्यिका श्री विशुद्धमति माताजी
2. अहिंसा दर्शन -डॉ. अनेकान्त कुमार जैन
3. भारतीय ज्योतिष -डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य
4. जैन ज्योतिष महाविज्ञान -ब्र. श्री धर्मचन्द जैन शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य
5. जैन वास्तु विद्या -डॉ. गोपीलाल जी (अमर)
6. स्याद्वाद : एक अनुशीलन -जैन विद्या संस्थान श्री महावीरजी
7. Multi-Dimensional -पार्श्वनाथ विद्यापीठ बनारस
8. आचार्य श्री धर्मसागर अभिवंदन ग्रंथ
9. मनीषा ग्रंथ
10. www.encyclopediaofjainism.com

प्रश्नावली (Questions Bank)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1- जैनधर्म की अहिंसा का मूल आधार.....है।

(क) पूजा-पाठ ☐ (ख) भाईचारा ☐ (ग) समता ☐

प्रश्न 2- जैनधर्म के अनुसार संसार के समस्त प्राणी कितने प्रकार के हैं ?

(क) पाँच ☐ (ख) दो ☐ (ग) आठ ☐

प्रश्न 3- हिंसा का स्तर निर्धारित करने के लिए जैनधर्म में कितने साधन माने गए हैं ?

(क) दस ☐ (ख) बारह ☐ (ग) दो ☐

प्रश्न 4- चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज ने मुनि दीक्षा किस तारीख और किस सन् में ग्रहण की?

(क) 25 जुलाई 1872 ☐ (ख) 25 जून 1915 ☐ (ग) 2 मार्च 1920 ☐

प्रश्न 5- जिनधर्म का मूल क्या है ?

(क) सत्य-अहिंसा ☐ (ख) स्वाध्याय ☐ (ग) त्याग-तपस्या ☐

प्रश्न 6- तेरापंथ धर्मसंघ की स्थापना किसने की ?

(क) आचार्य तुलसी ☐ (ख) आचार्य भिक्षु ☐ (ग) आचार्य महाश्रमण ☐

प्रश्न 7- "हिं सैव दुर्गतेर्द्वारं" यह वाक्य किन आचार्य ने कहे ?

(क) आचार्य जिनसेन ☐ (ख) आचार्य शुभचन्द्र ☐ (ग) आचार्य रविषेण ☐

प्रश्न 8- किस ग्रंथ में निम्न लक्षण कहा गया है-अहिंसा लक्षणो धर्मः तद्विपक्षश्च पातकम्" ?

(क) आत्मानुशासन ☐ (ख) उत्तर पुराण ☐ (ग) ज्ञानार्णव ☐

प्रश्न 9- भगवती आराधना में अहिंसा धर्म के बारे में क्या सूक्ति कही है ?

(क) अत्ता चेव अहिंसा ☐ (ख) न वैरं कुर्वेत् केनचित् ☐ (ग) मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ☐

प्रश्न 10- जैन ग्रंथों में अनेकांतवाद का दूसरा नाम क्या है ?

(क) सप्तभंगी न्याय ☐ (ख) सर्वक्षणिक न्याय ☐ (ग) अनेक धर्मात्मक न्याय ☐

प्रश्न 11- नमक, मिर्च, खटाई के संयोग से कितने स्वाद बनते हैं ?

(क) छह ☐ (ख) सात ☐ (ग) दस ☐

प्रश्न 12- पुरुषार्थसिद्धियुपाय के रचयिता कौन है ?

(क) समन्तभद्र स्वामी ☐ (ख) अमृतचन्द्रसूरि ☐ (ग) हेम चन्द्र स्वामी ☐

प्रश्न 13- कौन सा सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान का सर्वोच्च शिखर माना जाता है ?

(क) क्वान्टम सिद्धान्त ☐ (ख) अनेकांत वाद ☐ (ग) कोई नहीं ☐

प्रश्न 14- व्यवहारिक जीवन की पवित्रता के बिना.....की श्रेष्ठता संभव नहीं है ?

(क) स्याद्वाद जीवन ☐ (ख) आध्यात्मिक जीवन ☐ (ग) गृहस्थ जीवन ☐

प्रश्न 15-इंजीनियर या वैज्ञानिक किसका उत्पादन नहीं कर सकते हैं ?

(क) इलेक्ट्रॉन ☐ (ख) न्यूट्रॉन ☐ (ग) ऊर्जा ☐

प्रश्न 16-वेदान्त सूत्र के रचयिता कौन है ?

(क) महर्षि व्यास ☐ (ख) बाल्मिकी जी ☐ (ग) तुलसीदास जी ☐

प्रश्न 17-प्रत्येक पदार्थ के कितने धर्म होते हैं ?

(क) तीन ☐ (ख) दो ☐ (ग) सात ☐

प्रश्न 18-स्याद्वाद जैन सिद्धान्त का.....है ?

(क) बीज ☐ (ख) जीव ☐ (ग) सच्चा सुख ☐

प्रश्न 19-पदार्थ के सामान्य गुण कितने हैं ?

(क) छह ☐ (ख) आठ ☐ (ग) सात ☐

प्रश्न 20-स्वर्ण रूप में.....घट रूप में.....और टुकड़े रूप में.....होता है ?

(क) नित्यता, नाश, उत्पाद ☐ (ख) नाश, सोना, उत्पाद ☐ (ग) उत्पाद, नित्यता, नाश ☐

प्रश्न 21-नय ज्ञान को क्या कहाँ जाता है ?

(क) सप्तभंगी ☐ (ख) नय सप्तभंगी ☐ (ग) प्रमाण सप्त भंगी ☐

प्रश्न 22-ज्योतिष शास्त्र के मुख्य भेद कितने हैं ?

(क) दो ☐ (ख) पाँच ☐ (ग) चार ☐

प्रश्न 23-ग्रहों की स्थिति व गति पर से जो शुभ-अशुभ फल का निरूपण किया जाता है। उसे..... कहते हैं।

(क) गणित ज्योतिष ☐ (ख) फलित ज्योतिष ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 24-ज्योतिष के मुख्य भेदों में से एक-

(क) भूशोधन ☐ (ख) शकुन विचार ☐ (ग) संहिता ☐

प्रश्न 25-भारतीय ज्योतिष में फलित सिद्धान्त के कितने भेद किए हैं ?

(क) दो ☐ (ख) पाँच ☐ (ग) तीन ☐

प्रश्न 26-अमावस्या के तीन भेदों में से-

(क) कुहू ☐ (ख) स्वर ☐ (ग) व्यंजन ☐

प्रश्न 27-ज्योतिष शास्त्र में तिथियों की गणना कहाँ से प्रारंभ होती है ?

(क) पूर्णिमा से ☐ (ख) एकादशी से ☐ (ग) शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ☐

प्रश्न 28-अट्ठाईसवें नक्षत्र का नाम क्या है ?

(क) पुनर्वसु ☐ (ख) धनिष्ठा ☐ (ग) अभिजित ☐

प्रश्न 29-रोहिणी नक्षत्र के नक्षत्र स्वामी कौन हैं ?

(क) चन्द्रमा ☐ (ख) अदिति ☐ (ग) ब्रह्मा ☐

प्रश्न 30-तामस नक्षत्र के कितने भेद हैं ?

(क) 8 ☐ (ख) 10 ☐ (ग) 12 ☐

प्रश्न 31-जड़ और चेतन सभी प्रकार के पदार्थों पर किसका प्रभाव पड़ता है ?

(क) समय का ☐ (ख) खान-पान का ☐ (ग) स्वास्थ्य का ☐

प्रश्न 32-जैन मान्यता के अनुसार नामकर्म जन्मदिन से कितने दिन तक किया जा सकता है ?

(क) 27 दिन ☐ (ख) 45 दिन ☐ (ग) 40 दिन ☐

प्रश्न 33-कन्याओं का अन्नप्राशन किन मासों में शुभ रहता है ?

(क) पाँचवें, सातवें और नवें मास में

(ख) छठे, आठवें और दसवें मास में

(ग) तीसरे, चौथे, पाँचवें मास में

प्रश्न 34-विघ्नों का निवारण करने वाली कौन सी कला है ?

(क) शास्त्र ☐ (ख) ज्ञान ☐ (ग) वास्तु विद्या ☐

प्रश्न 35-उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा को क्या कहते हैं ?

(क) नैऋत्य ☐ (ख) वायव्य ☐ (ग) ईशान ☐

प्रश्न 36-गणित की भाषा में भाग्य को कितना प्रतिशत माना है ?

(क) 20 प्रतिशत ☐ (ख) 40 प्रतिशत ☐ (ग) 10 प्रतिशत ☐

प्रश्न 37-दक्षिण-पूर्व दिशा में क्या बनना चाहिए ?

(क) आवास ☐ (ख) रसोई घर ☐ (ग) खिड़कियाँ ☐

प्रश्न 38-प्रत्येक दिशा का एक.....होता है ?

(क) अधिष्ठाता देव ☐ (ख) देवालय ☐ (ग) शेषनाग ☐

प्रश्न 39-प्रतिष्ठा पाठ कौन से आचार्य के द्वारा लिखा गया है ?

(क) वसुनन्दि आचार्य ☐ (ख) आचार्य उग्रादित्य ☐ (ग) पं. आशाधर जी ☐

प्रश्न 40-जैन मंदिर किसका प्रतीक माना गया है ?

(क) स्मारक ☐ (ख) समवसरण ☐ (ग) मानस्तंभ ☐

प्रश्न 41-मंडोवर शब्द कहाँ प्रचलित है ?

(क) पश्चिम भारत ☐ (ख) उत्तर भारत ☐ (ग) दक्षिण भारत ☐

प्रश्न 42-.....अधिष्ठान का एक घटक है ?

(क) भूमि ☐ (ख) शिखर ☐ (ग) जगती ☐

प्रश्न 43-पूर्व दिशा के स्वामी.....होते हैं ?

(क) राक्षस ☐ (ख) कुबेर ☐ (ग) इन्द्र ☐

प्रश्न 44-वह कौन सा यंत्र है, जिसमें स्वस्तिक की ऊर्जाओं का अध्ययन किया जा रहा है ?

(क) बोबिस ☐ (ख) हेरंब ☐ (ग) कोई नहीं ☐

प्रश्न 45-घर के बीच में कौन सा स्थान माना गया है ?

(क) ब्रह्म स्थान ☐ (ख) इन्द्र स्थान ☐ (ग) ध्रुव स्थान ☐

प्रश्न 46-बिना चिन्ह की प्रतिमा.....कहलाती है ?

(क) अरहन्त ☐ (ख) सिद्ध ☐ (ग) तीर्थंकर ☐

प्रश्न 47-अचल प्रतिमा को.....और चल प्रतिमा को.....कहा जाता है ?

(क) नित्यमह, अनित्यमह ☐ (ख) ध्रुवबेर, उत्सवबेट ☐ (ग) शुभ-अशुभ ☐

प्रश्न 48-कृत्रिम और अकृत्रिम जिनबिम्बों को क्या माना जाता है ?

(क) द्रव्य मंगल ☐ (ख) भाव मंगल ☐ (ग) स्थापना मंगल ☐

प्रश्न 49-उस नक्षत्र का नाम बताओ जो अकम्पनादि सात सौ मुनिराजों के ऊपर उपसर्ग आने से आकाश में कम्पायमान हुआ ?

(क) श्रवण ☐ (ख) अश्विनी ☐ (ग) मघा ☐

प्रश्न 50-मंत्र कितने प्रकार के होते हैं ?

(क) दो ☐ (ख) चार ☐ (ग) दस ☐

प्रश्न 51-तिरेसठ शलाका पुरुषों में बलदेव और तीर्थंकर की संख्या कितनी है ?

(क) 9, 9 ☐ (ख) 24, 9 ☐ (ग) 9, 24 ☐

प्रश्न 52-यंत्र लिखते समय क्या रखना आवश्यक है ?

(क) दीप ☐ (ख) धूप ☐ (ग) दीप, धूप दोनों ☐

प्रश्न 53-इन्द्र जलादि संबंधी मंत्र तंत्र का जिसमें वर्णन है, उसको.....कहते हैं ?

(क) स्थलगता चूलिका ☐ (ख) मायागत चूलिका ☐ (ग) आकाशगता चूलिका ☐

प्रश्न 54-उच्चारक, मोहक और विशेष शक्ति का परिचायक, कौन सा स्वर माना गया है ?

(क) ॐ ☐ (ख) ई ☐ (ग) अः ☐

प्रश्न 55-.....को स्वप्न देखने से विलम्ब में फल मिलता है।

(क) शुक्ल पक्ष-प्रतिपदा ☐ (ख) शुक्ल पक्ष-द्वितीया ☐ (ग) शुक्ल पक्ष-चतुर्थी ☐

प्रश्न 56-स्वप्न दो प्रकार के होते हैं ? ऐसा कितन आचार्य ने कहा है ?

(क) आचार्य पूज्यपाद स्वामी ☐ (ख) आ. भद्रबाहु स्वामी ☐ (ग) आ. समन्तभद्र स्वामी ☐

प्रश्न 57-पापरहित मंत्र साधना द्वारा सम्पन्न स्वप्न कहलाता है-

(क) मंत्रज ☐ (ख) देव ☐ (ग) दोषज ☐

प्रश्न 58-बड़, पीपल, अमरादि ये सब क्या हैं ?

(क) उदुम्बर फल ☐ (ख) मकार ☐ (ग) इनमें से कोई नहीं ☐

प्रश्न 59-स्वस्थता के विरोधी कौन हैं ?

(क) रोग ☐ (ख) व्याधि ☐ (ग) ये दोनों ☐

प्रश्न 60-आयु का पर्यायवाची शब्द है-

(क) शरीर ☐ (ख) अनुबंध ☐ (ग) आत्मा ☐

प्रश्न 61-"महर्षि पूज्यपाद" ने कौन-सा चिकित्सा ग्रंथ लिखा-

(क) शल्य तंत्र ☐ (ख) शलाक्य तंत्र ☐ (ग) काय चिकित्सा ☐

प्रश्न 62-जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर कौन हैं ?

(क) तीर्थंकर महावीर ☐ (ख) तीर्थंकर वृषभदेव ☐ (ग) तीर्थंकर पार्श्वनाथ ☐

प्रश्न 63-"कौमार भृत्य" नामक चिकित्सा ग्रंथ किन आचार्य ने लिखा है ?

(क) मेघनादाचार्य ☐ (ख) सिंहनाद मुनीन्द्र ☐ (ग) आ. पात्रकेसरी स्वामी ☐

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1- हिंसा की नीव क्या-क्या हैं ? स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 2- जैनधर्म का प्रसिद्ध सूत्र क्या है ? यह सूत्र किसके साथ अंकित है ?

प्रश्न 3- जैनधर्म के अनुसार अनेकांत की परिभाषा बताइए ?

प्रश्न 4- अहिंसा के तीन स्तर कौन-कौन से हैं, नाम बताइए ?

प्रश्न 5- चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के वचन बिन्दुओं में से किन्हीं दो का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 6- महर्षि अरविन्द का जन्म किस सन् और किस तारीख में हुआ ? राष्ट्रभक्ति और अहिंसक चेतना के संदर्भ में उन्होंने पत्र में क्या संदेश दिया ?

प्रश्न 7- स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त परिचय बताइए ? उनका प्रसिद्ध संदेश क्या है ?

प्रश्न 8- खान अब्दुल गफ्फार खान को किस नाम से जाना जाता है ? उन्होंने किस आन्दोलन को प्रारंभ किया ?

प्रश्न 9- अहिंसा के तीन पहलू कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 10-इस्लाम धर्म में जीवदया के संदेश में क्या-क्या कहा है ? हजरत मुहम्मद साहब की दयालुता के बारे में क्या किस्सा मशहूर है ?

प्रश्न 11-संस्कृत वाङ्मय के आदि सूत्रकार आचार्यश्री उमास्वामी ने हिंसा की परिभाषा देते हुए कहा सूत्र कहा है, अर्थ सहित बताइए ?

प्रश्न 12-धवला ग्रंथानुसार प्राण किसे कहते हैं और उसके कितने और कौन-कौन से भेद हैं ?

प्रश्न 13-स्याद्वाद का क्या अर्थ है ? परिभाषा लिखिए ?

प्रश्न 14-स्याद्वाद का विकास कैसे हुआ ?

प्रश्न 15-देवागम स्तोत्र के अनुसार अनेकान्तवाद का लक्षण लिखिए ?

प्रश्न 16-'घर कारागृह वनिता बेड़ी परिजन रखवारे' इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 17-विज्ञान की दृष्टि से 'अदृश्य घटक' को सिद्ध करिये ?

प्रश्न 18-'कर्त-अकर्ता' को विज्ञान-अध्यात्म-व्यवहारिक जीवन में कैसे घटित किया है ? लिखिए ?

प्रश्न 19-न्याय दर्शन में छल का लक्षण क्या है ? एवं छल के भेद कितने हैं ?

प्रश्न 20- वाक् छल किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित लिखिए ?
प्रश्न 21- अनेकांतवाद से सभी समस्याओं का समाधान कैसे होता है ? लिखिए ?
प्रश्न 22- साप्त धर्म कौन से हैं ? उनके नाम व परिभाषा लिखिए ?
प्रश्न 23- विरोध कितने प्रकट के होते हैं ? नाम लिखिए ?
प्रश्न 24- पदार्थ के विशेष गुण कौन-कौन से हैं ?
प्रश्न 25- जैन ज्योतिष के ग्रंथों में से दस के नाम बताइए ?
प्रश्न 26- अभिचारनी सूचक निमित्तों के संहिता ग्रंथों में कितने और कौन-कौन से भेद हैं ?
प्रश्न 27- स्वर निमित्त एवं भौम निमित्त में क्या अन्तर है ?
प्रश्न 28- प्रश्नशास्त्र किसका अंग है, इसमें किस प्रश्नों का उत्तर दिया गया है तथा इसमें कौन-कौन से मुख्य ग्रंथ प्रसिद्ध हैं ?
प्रश्न 29- तिथियों के स्वामी कौन-कौन से हैं ?
प्रश्न 30- ज्योतिष शास्त्र में 27 नक्षत्रों के नाम क्या-क्या हैं ?
प्रश्न 31- करण किसे कहते हैं ? उनके भेद कितने हैं, नाम बताइए ?
प्रश्न 32- ग्रहों के छह प्रकार के बलों के नाम बताते हुए किन्हीं दो की परिभाषा बताओ ?
प्रश्न 33- कौन सा ग्रह किन-किन नक्षत्रों का स्वामी है ?
प्रश्न 34- नक्षत्र कितने प्रकार के होते हैं ? तीनों नक्षत्रों में से राजस नक्षत्र के नाम बताइए ?
प्रश्न 35- नक्षत्रों के लिंग भेद बताते हुए स्त्रीलिंग नक्षत्र के नाम बताइए ?
प्रश्न 36- क्षयमास और मलमास में वर्जित कृत्य कौन-कौन से हैं ?
प्रश्न 37- बालक के विद्यारंभ का क्या मुहूर्त बताया है ?
प्रश्न 38- गृहनिर्माण के लिए सप्त सकार योग कौन-कौन से हैं ?
प्रश्न 39- ज्योतिष शास्त्र का विकास कहाँ से हुआ तथा इसके उद्देश्य क्या हैं ?
प्रश्न 40- षट्खण्डागम की धवला पुस्तक चार में मुहूर्तों के कितने और कौन-कौन से नाम हैं ?
प्रश्न 41- वास्तु-विद्या और कला की समानता कैसे सिद्ध होती है ? लिखिए ?
प्रश्न 42- मनुष्य की तीन मौलिक आवश्यकताएँ कौन सी हैं ? और इष्टोपदेश में क्या कहा है ?
प्रश्न 43- आचार्य वीरसेन स्वामी ने वास्तु-विद्या के संबंध क्या महत्व दिया है ? लिखिए ?
प्रश्न 44- भूमि चयन में दिशा का महत्व कैसे होता है ?
प्रश्न 45- दिशाओं के संबंध में व्यवहारिक नियम क्या है ?
प्रश्न 46- ग्रह और ग्रहस्वामि का राशि आदि का मिलान कैसे करते हैं ?
प्रश्न 47- मंदिर शब्द का अर्थ एवं भावार्थ लिखिए ?
प्रश्न 48- महापुरुष की किन-किन लक्षणों से पहचान की जाती है ? लिखिए ?
प्रश्न 49- जैन मंदिरों का कैसा रूप होना चाहिए ? लिखिए ?
प्रश्न 50- "स्वस्तिक, सव्रतो ऋद्ध" इस पंक्ति का अर्थ लिखिए ?
प्रश्न 51- पश्चिम व उत्तर दिशा का क्या प्रभाव होता है ?
प्रश्न 52- वास्तु एवं प्रकृति में स्वस्तिक का क्या महत्व है ?
प्रश्न 53- मंदिर निर्माण विधि का वर्णन लिखिए ?

प्रश्न 54- ग्रह पूज्य प्रतिमाएँ और अपूज्य प्रतिमाओं में क्या-क्या अन्तर है ? लिखिए ?

प्रश्न 55- "देश जाति कुलाचारैः श्रेष्ठोदस्त सु लक्षणः" इस पंक्ति का अर्थ लिखिए ?

प्रश्न 56- निमित्त किसे कहते हैं ? ये कितने प्रकार का है ? नाम सहित बताइए ?

प्रश्न 57- मंत्र किसे कहते हैं ? जैनागम में महामंत्र कौन सा है ? उस मंत्र को लिखिए ?

प्रश्न 58- "तंत्र विद्या" क्या है ? समझाइए ?

प्रश्न 59- जैन मंत्र शास्त्रों में प्राप्त मंत्रों को कितने स्वरूपों में विभक्त किया है ? परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 60- यंत्र लेखन विधि का क्या विधान है ? बताइए ?

प्रश्न 61- दृष्टिवाद अंग के चूलिका नामक भेद के भेद कितने हैं ? बताइए ?

प्रश्न 62- जलगता चूलिका कितसे कहते हैं ? समझाइए ?

प्रश्न 63- यंत्र किसे कहते हैं ? कुछ यंत्रों के नाम भी लिखिए ?

प्रश्न 64- वात-पित्त-कफ प्रकृति वाला व्यक्ति किस प्रकार के स्वप्न विशेष रूप से देखता है ? बताइए ।

प्रश्न 65- किस प्रकार के स्वप्न देखने का फल व्यक्ति को राजा या शासक बनना बताता है ?

प्रश्न 66- अशुभतर फलदायक स्वप्न कौन से माने गये हैं ? संक्षेप में बताइए ?

प्रश्न 67- दृष्ट-श्रुतादि नौ प्रकार के स्वप्नों में से कौन से स्वप्न शुभ और कौन से स्वप्न अशुभ फल देने वाले होते हैं ? बताइए ?

प्रश्न 68- शरीर में कितने प्रकार की व्याधियाँ मानी गयी हैं ? उनका नाम बताते हुए उन्हें परिभाषित भी कीजिए ?

प्रश्न 69- आयुर्वेद का क्या उद्देश्य है ? संक्षेप में समझाइए ।

प्रश्न 70- "जैन सिद्धान्त की भांति आयुर्वेद का भी अंतिम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है" इस पंक्ति को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 71- जैन साधु का आहार ग्रहण करने का क्या समय रहता है ? बताइए ?

प्रश्न 72- कल्याणकारक चिकित्साग्रंथ के रचयिता कौन थे ? और किन-किन आचार्यों ने चिकित्सा की शाखाओं पर ग्रंथ लिखे हैं, उन सबके नाम बताओ ?

प्रश्न 73- प्रशस्त औषधि में कौन-से गुण होना आवश्यक है ?

प्रश्न 74- द्रव्य के कार्य को कितने प्रकार से वर्गीकृत किया है ? इनके नाम बताइए ?

प्रश्न 75- मानव शरीर में "स्वस्थता" का क्या महत्व है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1- अहिंसक आचरण संबंधी क्रियाएँ कौन-कौन सी हैं, विस्तार से बताइए ?

प्रश्न 2- आचार्य विनोबा भावे और उनकी अहिंसा को विस्तृत रूप में बताइए ?

प्रश्न 3- जैन ग्रंथानुसार हिंसा के चार भेद कौन-कौन से हैं ? इस संदर्भ में सागार धर्मामृत में सोदा हरण क्या कथन किया गया है ?

प्रश्न 4- जैन संस्कृति में स्याद्वाद का व्यवहारिक उपयोग और सफलता कहाँ तक सिद्ध होती है ? परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 5- आधुनिक भौतिक विज्ञान में अनेकांतवाद को किस प्रकार से परिभाषित किया ? उदाहरण देकर लिखिए ?

प्रश्न 6- स्याद्वाद की उपयोगिता को एक कहानी के माध्यम से लिखिए ?

प्रश्न 7- अनेकांतवाद पर तथा कथित दुषणों का युक्ति संगत निराकरण किस प्रकार किया गया लिखिए ?

प्रश्न 8- अंगनिमित्त ज्ञान का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 9- योग की परिभाषा बताइए ? योगों के नाम बताते हुए योगों के स्वामी कौन-कौन से हैं, बताइए ?

प्रश्न 10- ए.सी.आई.पी. एवं अम अक्षर से जिन जातकों का नाम प्रारंभ होता है, उनके व्यक्तित्व को किस प्रकार का बताया गया है ?

प्रश्न 11- धार्मिक कार्यों में मुहूर्त को कितने भागों में विभक्त किया है ? भेदों को बताते हुए श्रमण के कार्य में मुहूर्त का विस्तृत विवेचन कीजिए ?

प्रश्न 12- जैन रसोई पद्धति की वैज्ञानिकता कैसे सिद्ध किया है ?

प्रश्न 13- जैन ग्रंथों के अनुसार करणानुयोग एवं प्रतिष्ठा पाठों में वास्तु-विद्या किस प्रकार से कही है ? लिखिए ?।

प्रश्न 14- मानस्तंभ का स्वरूप कैसा होता है ? वर्णन करिये ?

प्रश्न 15- वास्तु शास्त्र के लाभ कितने होते हैं ?

प्रश्न 16- जिनप्रतिमा का लक्षण व प्रतिमा का मान प्रमाण व विवरण लिखिए ?

प्रश्न 17- "मंत्रयोग का अपना स्वतंत्र विज्ञान है" इस तथ्य को स्पष्ट कीजिए ?

प्रश्न 18- प्रत्येक स्वर और व्यंजनों की शक्तियों का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 19- स्वप्न शास्त्र में स्वप्न प्रधान रूप से कितने प्रकार के कहे गये हैं ? उन प्रकारों के नाम बताते हुए उन्हें परिभाषित भी कीजिए ?

प्रश्न 20- आयुर्वेद क्या है ? बताइए एवं आयुर्वेद और जैनाचार में क्या-क्या समानताएँ पायी जाती हैं ? बताइए?

प्रश्न 21- "वनस्पति विज्ञान और आयुर्वेद" इस पर प्रकाश डालिए ?

नोट्स